3.1 V1

[illegible]	[illegible]
[illegible]	[illegible]
मनु	[illegible]
अंगिरस	शाश्वती
[illegible]	सुलेखा
अतिथि	सुभद्रा
[illegible]	नूती
सत्य-श्रवा	ज्योत्स्ना
भुजंगराव	वाचक्नवी गार्गी
सुबन्धु	सुलभा मैत्रेयी
[illegible]	[illegible]
[illegible]	ममता
पुष्प [illegible]	अपर्णा
[illegible]	सुपर्णा
[illegible]	आम्रपाली
[illegible]	प्रतिमा
सौम्य	कात्यायनी
वसुबन्धु	सुपर्णा
विष्णुगुप्त	सूर्या
देवशर्मा	पुष्पवती
वसिष्ठ	अनसूया
वामदेव	[illegible]
अम्बरीष	शची [illegible]
	[illegible]
	[illegible]

मधुसूदन - 33
10 5/68 कादम्बरी - 33
शाह 35
2 ... 90%

2.5.68 जागरण - 1 - 25
मध्य कालीन हिन्दी साहित्य - 15
प्राचीन मध्य युग सौरस अलंकार शास्त्र - 10
20

रामानुजम ... - 30
विक्रमादित्य - 10
12.5.68 संस्कृत अनुवाद - 15
हिन्दी अनुवाद - 10
निबन्ध - 35
3 ... 90%

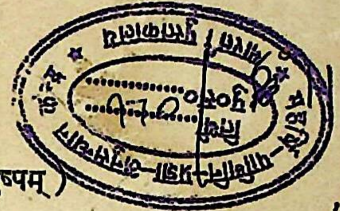
2.5.68 (5)
[illegible] - 10
[illegible] - 10
आधुनिक ... - 10
हिन्दी ... - 20

हिन्दी नाटक तथा कथा साहित्य का इतिहास - 20
20

आधुनिक कविता ... 1-4, 6 - विजय - 23
मेघ ... - 20
14.5.68 मूल ... - 20
... - 15
हिन्दी व्याकरण - 10
निबन्ध - 25
100

3 5/68 → 4, 5
5/68
2 5/68
6
... 55 - 55
... 15
जगन्नाथ
50
50
.60 | .60
200
960 + 6

काशी-संस्कृत-ग्रन्थमाला
१५१



(काव्यविभागे (१५) पञ्चदशं पुष्पम्)

महाकविश्रीबाणभट्टविरचिता

कादम्बरी

'चन्द्रकला'-'विद्योतिनी' द्वयोपेता

टीकाकारः—
साहित्य-व्याकरण-वेदान्ताद्यनेकशास्त्राचार्य-ठक्कुरोपनामक-
पण्डित श्री कृष्णमोहन शास्त्री एम. ए.
'श्रीगङ्गानीश्वर-चिदानन्द-संस्कृतविद्यालय'-प्रधानाध्यापकः,
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्थ-सङ्गीतमहाविद्यालयीयानुसन्धानविभागप्रधानसहायकश्च ।



चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस
बनारस

वि० सं० २०१३] [ई० १९५६

प्रकाशक :
जयकृष्णदास हरिदास गुप्त,
चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज आफिस,
पो० बा० नं० ८, बनारस-१

The Chowkhamba Sanskrit Series Office.
Post Box 8, Banaras.
(INDIA)
1956
(द्वितीयं संस्करणम्)

मुद्रक :—
विद्याविलास प्रेस,
बनारस-१



प्रस्तावना

संस्कृत-गद्य

संस्कृत-भाषा का गद्य-साहित्य कुछ अपनी विशिष्टता लिए हुए है। गद्य का प्रथम आविर्भाव हमें वैदिक-संहिताओं में ही प्राप्त होता है। समग्र ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना भी गद्य-रूप में ही हुई है। इतना ही नहीं आरण्यक एवं प्राचीन उपनिषद् भी गद्यात्मक ही हैं। लौकिक संस्कृत-गद्यों की अपेक्षया वैदिक-साहित्य में गद्य का प्रयोग बहुत व्यापक एवं उदार-रूप से हुआ है।

समस्त दर्शन ग्रन्थों की सैद्धान्तिक विवेचना गद्य-रूप में ही मिलती है। ऐसा होने पर भी आयुर्वेद एवं ज्यौतिष आदि के ग्रन्थ पद्य में ही मिलते हैं। लौकिक संस्कृत ग्रन्थों की अधिकतर रचना पद्यों में ही हुई, उसका एकमात्र कारण था शीघ्रता से स्थायीरूप में अभ्यास हो जाना। क्योंकि छन्दोबद्ध पद्य का रूप संगीतमय एवं लघुकाय हो जाता है, जिससे वे स्मृति-पट पर अमिट-रूप से अङ्कित हो जाते हैं।

संस्कृत-गद्य में समासवाले पद अधिक प्रयुक्त होते हैं, जिससे गद्य का लघुरूप हो जाता है। ऐसी स्थिति अन्य किन्हीं भाषाओं में नहीं है। समास संस्कृत-गद्य का जीवन है। इसमें ओजो गुण का आधिक्य रहता है, जिसके कारण ही अद्भुत-प्रकार की भावग्राहिता और गाढ़बन्धता का सञ्चार होता है। इससे गद्य का सौन्दर्य पूर्ण-रूप से विकसित हो जाता है। समास की बहुलता-रूप ओज ही गद्य का प्राण है। इस बात को दण्डी ने अपने काव्यादर्श में स्पष्ट रूप से बताया है(१)। दण्डी का अविर्भाव गद्य के सुवर्णयुग में हुआ था। ईसवीय प्रथम तथा द्वितीय शतक के शिलालेखों में प्रचुरता से इस गद्य की उपलब्धि होती है। शास्त्रीय ग्रन्थों एवं टीका-टिप्पणियों में गद्यों का ही साम्राज्य है। यद्यपि लैटिन भाषा का ही गद्य अधिक प्रौढ़, सुन्दर एवं ओजस्वी बतलाया जाता है, तथापि यह पक्षपातरहित सत्य है कि संस्कृत-भाषा के गद्य में इन गुणों का उससे कहीं अधिक-मात्रा में सन्निवेश हुआ है।

पौराणिक ग्रन्थ में हम वैदिक तथा लौकिक-संस्कृत गद्यों का संमिश्रण पाते हैं। उदाहरण के लिए यह स्पष्ट रूप में कहा जा सकता है कि श्रीमद्भागवत तथा विष्णु-पुराण का गद्य नितान्त आलङ्कारिक तथा प्रासादिक है।

गद्य-कथा का अभ्युदय

कात्यायन ने 'क्रतूक्थादिसूत्रान्ताट्ठक्' (४।२।६०) सूत्र के अपने वार्तिक—'आख्यानाख्यायिकेतिहास-पुराणेभ्यश्च' में आख्यान और आख्यायिका का पृथक् रूप में स्पष्ट उल्लेख किया है। इसके ऊपर भाष्य करते समय पतञ्जलि (ई० पू० ३००) ने 'यवक्रीत' 'प्रियङ्गव' तथा 'ययाति' का आख्यान के उदाहरण में एवं

---

(१) 'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्।' (काव्यादर्श)

'वासवदत्ता' और 'सुमनोहरा' का आख्यायिका के उदाहरण में नाम निर्देश किया है। इससे पता चलता है कि संस्कृत में गद्यात्मक कथाओं का उदय विक्रम से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व ही हुआ था।

कादम्बरी के मुखभाग के बीसवें पद्य में 'धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा' ऐसा स्पष्ट उल्लेख किया गया है, इससे पता चलता है कि कादम्बरी गद्य कथा के पहिले 'वासवदत्ता' और 'बृहत्कथा' नाम की दो कथाएँ बनकर प्रसिद्ध हो चुकी थीं, जिन्हें अतिक्रमण करने के लिए ही बाणभट्ट का प्रयास इस कादम्बरी के रूप में सफल हुआ है।

काव्य ध्वनि तथा गुणीभूत श्रव्य तथा दृश्य भेद से चार प्रकार के हैं। उनमें श्रव्य गद्य-पद्य भेद से दो प्रकार के होते हैं। छन्दोबद्ध पद्य कहलाता है, वृत्तबन्धोज्झित गद्य। गद्य भी कथा आख्यायिका भेद से दो प्रकार के हैं। उनमें कादम्बरी कथारूप गद्य काव्य है। कथारूप गद्य काव्य में सरस पदार्थों का आर्या, वक्त्रक, अपवक्त्रक आदि छन्दों में ही समावेश होता है और आरम्भ में पद्यों से नमस्कार एवं खलादिकों का वृत्त-कीर्त्तन होता है। विशेषतया मुक्तक, चूर्णक, वृत्तगन्धि, उत्कलिका भेद से गद्य चार प्रकार के होते हैं। जिनमें कादम्बरी कथा का गद्य उत्कलिकाप्राय है। आख्यायिका भी कथा की तरह ही होती है, किन्तु इसमें अन्य कवियों का भी समावेश होता है और कथाओं का विराम जहाँ होता है उसे 'आश्वास' नाम दिया जाता है इत्यादि। साहित्य-दर्पणकार **विश्वनाथ** ने कथा और आख्यायिका का पृथक्-पृथक् भेद स्पष्ट करते हुए बाणभट्ट की ही कथा रूप कादम्बरी और आख्यायिका रूप हर्षचरित का उद्धरण दिया है(१)।

लौकिक गद्य काव्यों के लेखकों में सुबन्धु का ही सर्वप्रथम स्थान है। 'वासवदत्ता' इनकी एकमात्र कृति है। बाण ने इसे महावीर कर्ण की शक्ति के समान बतलाकर इसकी महनीय प्रशंसा की है। पारमार्थिक रूप से विचार करने पर पता चलता है कि रस भाव से पूर्ण अभिनवार्थ की कल्पना इसमें है ही नहीं, केवल श्लेष का ही सर्वत्र चमत्कार दिखाई देता है। कवि का कौशल गद्य काव्य के द्वारा ही परीक्षित है। प्राचीनों ने गद्य को कवियों की कसौटी मानी है(२)। गद्य में कविको पूरी सफलता मिलने का श्रेय प्राप्त होता है। बाण का मूर्धन्यस्थान गद्य कवियों में ही नहीं है, किन्तु महाकवियों में भी ये चूडामणि ही माने जाते हैं।

कादम्बरी

यह संस्कृत-साहित्य का समुज्ज्वल हीरक है। इसमें भाषा भाव एवं शब्द और अर्थ का समुचित सन्निवेश हुआ है। ग्रन्थ के इस आश्रमवर्णन-पर्यन्त छोटे से भाग को ही हम देखते हैं तो पता चलता है कि यदि कहीं विन्ध्याचल की विकट अटवी तथा साहस-प्रेमी शबर-सैन्य का रोमाञ्चकारी वर्णन है तो कहीं धर्म की साक्षात् मूर्त्ति, सदयता के परम अवतार, आध्यात्मिकता के ज्वलन्त निदर्शन जाबालिमुनि तथा उनके परम-पावन मनोरम आश्रम की सुभग शोभा दर्शकों का हृदय मोह रही है। इस ग्रन्थ के सभी स्थलों में अलंकारों का मधुर झंकार कानों

---

(१) 'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्। क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम् ॥' यथा—कादम्बर्यादिः।
'आख्यायिका कथावत्स्यात् कवेर्वंशानुकीर्त्तनम्। अस्यामन्यकवीनाञ्च वृत्तं पद्यं क्वचित् क्वचित् ॥
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते। आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित् ॥
अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।' यथा—हर्षचरितादि।

(२) 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति।'

को सुख दे रहा है। रागात्मिका वृत्ति की सुभग व्यंजना हृदय को प्रफुल्लित कर रही है। यथार्थ में विचार करें तो अलंकार तथा रस के मधुर मिलन में—भाषा तथा भाव के परस्पर सम्पर्क में—कल्पना तथा वर्णन के अपूर्व संघटन में—कादम्बरी संस्कृत-साहित्य में अनुपम (अद्वितीय) ग्रन्थ है। कादम्बरी रसिक हृदयों को मत्त करने वाली कादम्बरी=मीठी मदिरा है। बाणतनय की उक्ति ही उत्तरार्द्ध में इसका समर्थन करती है(१)।

इसमें हृदयग्राहिणी उपमाओं, चमत्कारी श्लेषों एवं सुन्दर परिसंख्याओं का अधिक विलक्षण सन्निवेश हुआ है। भव्यार्थ कमनीय एवं मनोहारी हैं। महाकवि की कविता मौलिक अर्थों की निधि है। अर्थों का पिष्ट-पेषण कहीं भी इसमें दिखाई नहीं देता, सर्वत्र अभिनव अर्थ ही विद्यमान हैं। प्राकृतिक दृश्य वर्णन में तो इनकी निपुणता अत्यधिक है(२)। उदाहरण के रूप में इनकी कविताओं में पहिले उपर्युक्त गुणावलियों में उपमा के लिए इस ग्रन्थ के चतुर्थ पद्य को ही ले लीजिये(३)। जिसमें खलों की श्रृङ्खला से सज्जनों की मणिनूपुर से जो उपमा दी गई है वह हृदय को अत्यधिक चमत्कृत करती है। गद्य कविता के दिग्दर्शन में इसी प्रस्तुत छोटे अंश के अन्तर्गत आश्रमवर्णन प्रसंग में परिसंख्या का रोचक प्रयोग विदग्धों का नितान्त हृदयावर्जक है(४)।

कादम्बरी में अनुकूल धीरोदात्त नायक है। 'कादम्बरी' विवाह से पहिले कन्या परकीया, मुग्धा नायिका है। विवाह के अनन्तर (उत्तरार्ध में) स्वकीया मध्या नायिका है। यहाँ प्रधान रस विप्रलम्भ श्रृङ्गार है। पूर्व भाग और उत्तर भाग के कुछ अंश तक पूर्वरागरूप, शेष में करुणरूप है। कहीं पर सम्भोग श्रृङ्गार भी है, तो कहीं कहीं पर करुण, हास्य आदि रस भी विद्यमान हैं। माधुर्य गुण की इसमें अधिकता है, जहाँ तहाँ प्रसाद गुण भी हैं। पाञ्चाली रीति अधिक है, गौड़ी आदि रीतियाँ भी जहाँ तहाँ अवश्य हैं। इस प्रसङ्ग में म. म. हरिदास सिद्धान्त वागीशजी ने सुन्दर रूप में एक पद्य का उद्धरण दिया है(५)।

महाकवि बाणभट्ट

महाकवि बाणभट्ट सरस्वती के वरद पुत्र थे। प्राचीनतम संस्कृत के कतिपय महाकवियों की जीवनी अन्धकार से अनावृत नहीं है। किन्तु यह परम सौभाग्य का विषय है कि बाण ने हर्षचरित के प्रथम दो परिच्छेदों में अपने वंश एवं जीवनचरित का सुन्दर सुस्पष्ट वर्णन किया है। उससे पता चलता है कि इनके पूर्वज सोन नद पर 'प्रीतिकूट' नामक नगर में निवास करते थे। यह स्थान सम्भवतः बिहार प्रान्त के पश्चिमभाग

(१) कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।'

(२) देखिये—बलदेव उपाध्यायजी का 'संस्कृत साहित्य का इतिहास'

(३) 'कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनश्रृंखला इव।
मनस्तु साधु ध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव॥'

(४) 'यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितम्, वयःपरिणामे द्विजपतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्वम्, एणकानां गीतव्यसनम्, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।' (कादम्बरी)

(५) 'चन्द्रापीडोऽनुकूलः सकलगुणधरो नायकोऽस्मिन्नुदात्तो
नेत्री कन्याऽन्यदीया मृदुललिततनुर्मुग्धकादम्बरी च।
पाञ्चाली नाम रीतिर्विलसति बहुला विप्रलम्भो रसोऽङ्गी
माधुर्याख्यो गुणो वा कविमुकुटमणेः काव्ययोरन्त्यमेतत्॥'

शाहाबाद (आरा) जिले के अन्तर्गत था। इनका कुल वात्स्यायन गोत्रीय था। वात्स्यायन से छठी सन्तति में बाण का स्थान है(१)।

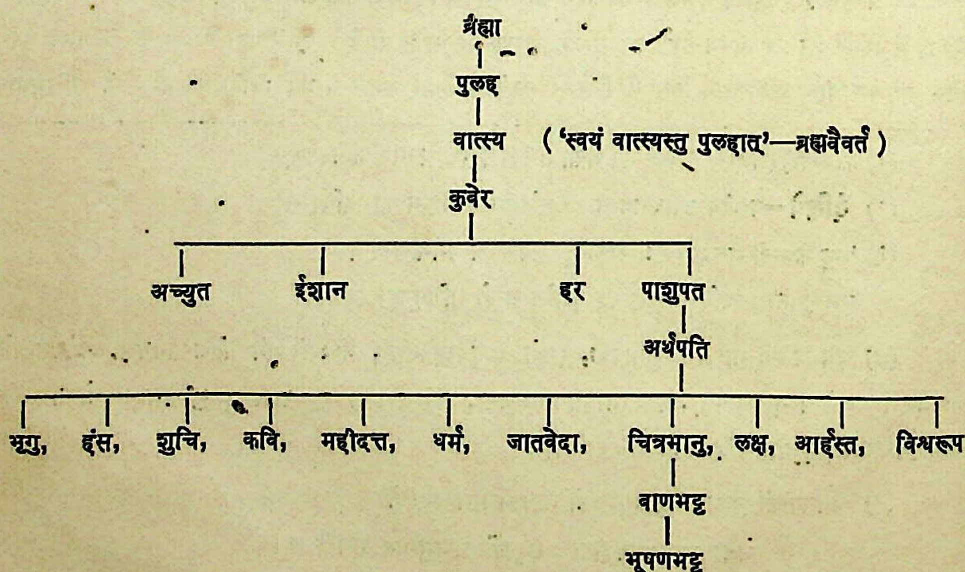
बाल्यावस्था में ही इनकी माता **राजदेवी** का स्वर्गवास हो गया था। जब ये १४ चौदह वर्ष के थे तभी इनके पिता **चित्रभानु** भी परलोकवासी हो गये। उस समय पैतृक-सम्पत्ति इनके पास अधिक थी किन्तु वैसे सुयोग्य अभिभावक के न रहने के कारण अपने मित्रों के साथ बाण—ग्राम, नगर, एवं देश-देशान्तरों का परिभ्रमण कर बहुत दिन के बाद अपने नगर लौट आये। इस बीच में हर्ष के दरबार में अन्य विद्वान इनकी पर्याप्त निन्द कर चुके थे, जिससे हर्ष को इनके प्रति श्रद्धा नहीं रह गई थी। एक दिन अचानक हर्ष के चचेरे भाई कृष्ण के दूत ने आकर बाण को एक पत्र दिया, जिसमें यह संकेत किया गया था कि—तुम अविलम्ब दरबार में चले आओ। बाण ने पत्र पढ़ने के अनन्तर ही **श्रीहर्ष** की सभा में उपस्थित होने के लिए प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँचने पर यद्यपि पहिले राजा द्वारा इनका अपमान तो अवश्य हुआ किन्तु अपने प्रखर पाण्डित्य के बल से राजा को प्रसन्न कर इन्होंने राजप्रदत्त सर्वोच्च आसन ग्रहण किया। कुछ समय के बाद राजा से विशेष आग्रह किये जाने पर सर्वप्रथम पहल हर्षचरित आख्यायिका का निर्माण किया।

महाकवि बाणभट्ट का समय

बाण-भट्ट, मातङ्गदिवाकर और मयूर श्रीहर्ष की सभा में प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। राजशेखर ने इन कवियों का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया है(२)। चीनदेशीय प्रसिद्ध यात्री 'ह्वेनसाङ्ग' ने ६२९-६४५ ई० तक भारत का पर्यटन किया था। उन्होंने अपने लेख में यह स्पष्ट किया है कि—'उत्तर भारत में उस समय श्रीहर्ष ही एकमात्र अधिपति थे, दूसरा कोई प्रशासक नहीं था।' भारतीय इतिहास से यह स्पष्ट पता चलता है कि ६०६ ई० में श्रीहर्ष थानेश्वर में सिंहासनारूढ़ हुए और ६४८ तक इन्होंने राज्य किया। यद्यपि भारतीय राजाओं में हर्ष नाम के अनेक व्यक्ति हो गये हैं, किन्तु यह निश्चित है कि—थानेश्वर के अधिपति ही बाण

---

(१) हर्षचरितानुसार बाण का वंशक्रम



(२) 'अहो ! प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः। श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥'

के हर्षचरित के नायक थे। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि ६०० ई० के अन्तिम एवं ७०० ई० के पूर्वार्ध में बाणभट्ट थे।

हर्षचरित में बाण ने अपने पूर्वग्रन्थकारों में व्यास, भट्टार हरिचन्द्र, सातवाहन, सेतुकृत्प्रवरसेन, भास, कालिदास और आढ्यराज का एवं ग्रन्थों में वासवदत्ता, बृहत्कथा, का नामोल्लेख किया है। बाण के परवर्त्ती वामन (८०० ई०) आनन्दवर्धन (९०० ई०) भोजराज (११०० पूर्वार्ध) आदि महाकवियों ने मुक्तकण्ठ से बाण की प्रशंसा भी की है इससे भी यही निश्चित होता है कि बाण का समय सप्तम शतक का पूर्वार्ध अवश्य रहा होगा।

संक्षिप्त कथा

विदिशा नाम की प्रसिद्ध राजधानी में समस्त गुणों का आकर शूद्रक नाम का राजा राज्य करता था। एक समय जब वह सभामण्डप में राजाओं से परिवेष्टित होकर परस्पर वार्त्तालाप कर रहा था, तब प्रतिहारी ने आकर उससे निवेदन किया—महाराज! एक चाण्डालकन्या पिंजड़े में वैशम्पायन नामक शुक (तोते) को लेकर एक वृद्ध के साथ द्वार पर खड़ी है और आपका दर्शन करना चाहती है। उस समय कौतुकी राजाने उसे अविलम्ब प्रवेश कराने की अनुमति दे दी। तदनन्तर आज्ञा पाकर वे दोनों राजा के समक्ष उपस्थित हुए। चाण्डालकन्या के प्रणाम करनेके अनन्तर वह वृद्ध प्रणामपूर्वक उस शुक को राजा के आगे रख कर उसकी गुणावलियों को सुनाकर अतिशीघ्र वहाँ से चला गया। उनके चले जाने पर उस शुक ने अपने दाहिने चरण को उठाकर राजा की प्रशंसा में इस आर्या को पढ़ कर सुनाया :—

'स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥' (पृ० ३९)

इसे सुनकर सभासदों के साथ राजा अत्यधिक आश्चर्यान्वित हो—'इसे अन्तःपुर में शीघ्र ले जाकर स्वादु भोजनादि द्वारा तृप्त कराओ'—ऐसी आज्ञा देकर नित्य-कृत्य के लिए सभामण्डप से उठ गया। नित्य-कृत्य सम्पन्न हो जाने के अनन्तर परम बुद्धिमान् कुमारपालित नामक प्रधान मन्त्री के साथ आनन्द से बैठकर राजा ने उस तोते को मँगवाकर उसे अपना समस्त वृत्तान्त सुनाने के लिए आदेश दिया। इसके बाद उसने इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाना आरम्भ किया :—

विन्ध्य नाम के जङ्गल में एक विशाल शाल्मली (सेमर) वृक्ष के कोटर में मेरे माता-पिता रहते थे। मेरे उत्पन्न होने के अनन्तर ही जब मेरी माता का देहावसान हो गया, तब मेरे वृद्ध पिता ने ही मेरा पालन किया। एक समय मृगया (शिकार) करने के लिए मातङ्ग नामक सेनापति के पीछे-पीछे चलने वाला कोई वृद्ध शबर अपने साथियों से बिछुड़ कर उस शाल्मली वृक्ष के निकट उपस्थित हुआ। वहाँ पक्षियों का कोलाहल सुनकर अपनी बुभुक्षा निवृत्ति के लिए उसने उस वृक्ष पर चढ़कर तोतों के प्राण ले लेकर उन्हें भूमि पर पटकने लगा। मेरे पुत्र पर भी कदाचित् यह दुष्ट आक्रमण न कर दे इस भय से मेरे पिता ने अपने पंखों में मुझे चिपका लिया। उस चाण्डाल के द्वारा जब वे भी मार कर नीचे फेंके गये तब मैं भी उनके साथ ही नीचे चला आया, किन्तु संयोगवश उस समय उस दुष्ट ने मुझे नहीं देखा। मैं वहाँ से धीरे-धीरे खिसककर एक तमाल वृक्ष की जड़ में जा छिपा। इतने में वह दुष्ट नीचे उतरकर मरे हुए पक्षियों को लेकर चला गया। तदनन्तर मुझे पिपासा अधिक लगी जिससे अत्यधिक व्याकुल होकर मैंने आसपास में ही जल का अन्वेषण करने के लिए वहाँ से चलने का उद्योग किया, किन्तु उड़ने का सामर्थ्य उत्पन्न न होने के कारण उस स्थान में ही इधर-उधर तड़प रहा था। वहाँ से थोड़ी ही दूर पर महर्षि जाबालिका अतिरमणीय पवित्र आश्रम था।

(जाबाल्याश्रम कथा समाप्त)

—००:०:००—

द्वितीय संस्करण

कादम्बरी की प्राचीन एवं अर्वाचीन टीकाएँ अनेक हैं। मैंने भी इसकी संस्कृत टीका एवं भाषानुवाद किया है। यह अत्यधिक प्रसन्नता की बात है कि बहुत अल्पकाल में ही इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया।

गतवर्ष से ही जाबाल्याश्रम तक का भाग दुष्प्राप्य हो गया था। श्रीमान् बाबू **जयकृष्णदास** जी को इसके प्रकाशन कराने की अधिक चिन्ता रहने पर भी मुझे अनेक कारणवश अवकाश नहीं मिल सका था इसीलिए इतना अधिक विलम्ब हुआ। आशा है सहृदय पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे।

इस कार्य के सम्पादन कराने में अधिक दत्तचित्त भ्रातृवर पं० **रामचन्द्र** झा जी का एवं मित्रमण्डलियों में न्यायवेदान्ताचार्य एम. ए. श्री **सुरेन्द्रनाथ** शास्त्री, व्याकरण-साहित्याचार्य एम. ए. **श्रीकृष्णमणि** त्रिपाठी तथा व्याकरण-मीमांसाचार्य एम. ए. **श्रीबलिराम** शास्त्री जी का चिरकृतज्ञ रहूँगा जिन्होंने मुझे समय समय पर विशेष प्रोत्साहन देकर अनुगृहीत किया है। साथ ही साथ श्री काशीविश्वनाथमन्दिराध्यक्ष श्री **रामशंकर** त्रिपाठीजी बी. ए. के भी अनुक्षण दयोदय-मधुर दृष्टि से आप्यायित प्रोत्साहन को मैं कभी भुला नहीं सकता।

विद्वज्जनों से विशेष अनुरोध है कि दृष्टिदोष या मुद्रण दोष से जो त्रुटियाँ रह गई हों उन्हें क्षमा करते हुए यथासमय सूचित करने का कष्ट करेंगे। इति शम्।

'तद्विद्वांसोऽनुगृह्णन्तु चित्तश्रोत्रैः प्रसादिभिः।
सन्तः प्रणयवाक्यानि गृह्णन्ति ह्यनसूयवः॥
न चात्रातीव कर्त्तव्यं दोषदृष्टिपरं मनः।
दोषे ह्यविद्यमानेऽपि तच्चित्तानां प्रकाशते॥
निर्दोषत्वैकवाक्यत्वं क्व वा लोकस्य दृश्यते।
सापवादा यतःकेचिन्मोक्षस्वर्गावपि क्वचित्॥'

इत्यादिसूक्तयो ह्यत्र स्मरणीया सुधीवरैः। व्याख्यामेनां समादाय विषमामपि चेतसि॥

जन्माष्टमी
सं० २०१३

विनीत—
कृष्णमोहन ठाकुर

॥ श्रीः ॥

कादम्बरी

चन्द्रकला-विद्योतिनी-टीकाद्वयोपेता

मङ्गलाचरणम्

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमःस्पृशे ।
अजाय सर्गस्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥ १ ॥

ध्यायेत्सत्यं परमगहनं शुद्धमद्वैततत्त्वं मायातीतं सुरवरनुतं सर्वलोके विभान्तम् ।
स्थूलं मूलं सकलमहसां सच्चिदानन्दरूपं सृष्ट्यारम्भे गुणगणयुतं तत्त्वबोधैकगम्यम् ॥
या चैतन्यस्वरूपिणी भगवती नारायणी मायया विश्वं कृत्स्नमिमं विधाय समये तत्पालयन्ती तया ।
लोकाँश्चैव तयैव नूनमखिलान् संहारयन्ती शिवा सा मन्मातृस्वरूपिणी सुजयदा पायादपायात्सदा ॥
भूताधिपाय सकलार्थसुसिद्धिदाय संरक्षकाय मुनिभिश्च सुपूजिताय ।
संसेविताय विबुधैश्च नमोऽस्तु तस्मै प्रत्यूहव्यूहशमनाय गजाननाय ॥
सरस्वतीं तां भुवने विभास्वतीं वीणां समादाय सुवादयन्तीम् ।
भासा समन्ताच्च प्रकाशयन्तीं नमामि नित्यं प्रणतार्थदात्रीम् ॥
श्रीलोकनाथशर्माणं तातं दैवज्ञभूषणम् । यशसा द्योतितं शश्वत् प्रणमामि महाशयम् ॥
साहित्यतत्त्ववेत्तारं विद्वत्कुलविभूषणम् । भट्टाचार्यं सद्गुरुं तं 'ताराचरण' संज्ञकम् ॥
ग्रन्थग्रन्थिविभेदाय व्याख्याने सुलभाय च । सत्तत्त्वाधिगमायापि नमामि ब्रह्मरूपिणम् ॥
कादम्बर्याश्च व्याख्यानं हृद्यं 'चन्द्रकला'न्वितम् । 'कृष्णमोहन' शर्माहं यथामति करोमि तत् ॥
गुणगुम्फितबह्व्यस्तु टीकाः सन्ति मनोरमाः । ग्रन्थस्यास्य न सन्देहस्तथाप्यभ्यर्थना मम ॥
कदाचित्किं न लोकैस्तु कटुरास्वाद्यते मुदा । व्याख्यानं च तथैवैनं जिघृक्षिष्यन्ति किन्न हि ? ॥

अथ तत्रभवान् ग्रन्थकारः निर्विघ्नपूर्वकं प्रारिप्सितपरिसमाप्तिकामः 'समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्' इति शिष्टाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्त्तव्यताकं जगत्कारणसगुणब्रह्मनमस्कारात्मकं मङ्गलं शिष्यशिक्षायै ग्रन्थादौ निबध्नाति—रजोजुष इति । प्रजापदमत्र 'प्रजायन्त' इति व्युत्पत्त्या अनित्यपदार्थमात्रोपलक्षकम् । एवञ्च प्रजानां संसाराणां जन्मनि प्रादुर्भावसमये रजोजुषे रजोगुणावलम्बिने हिरण्यगर्भाय विरञ्चिरूपिणे, स्थितौ प्रजानां परिपालनकाले सत्त्ववृत्तये सत्त्वगुणयुक्ताय विष्णुरूपिणे, तथा प्रलये प्रजानां संहारसमये तमःस्पृशे तमोगुणयुक्ताय रुद्ररूपिणे, सर्गः सृष्टिः, स्थितिः पालनं, नाशः संहारः तेषां हेतवे निमित्तकारणाय, त्रयी ऋग्यजुःसामरूपाणां वेदानां त्रयी तत्स्वरूपाय, यथा मृद उत्पन्नेऽपि घटे मृन्मय इति व्यवहारस्तथा त्रयाणां ब्रह्मण उत्पादकत्वेऽपि त्रयीमयत्वव्यवहार इति केचित् । त्रिगुणात्मने त्रिगुणं माया आत्मनि स्वस्मिन् यस्य तस्मै मायावते, अजाय जन्मादिषड्विकाररहिताय नित्याय कूटस्थाय परब्रह्मण इत्यर्थः, नमः नमस्कारः अस्त्विति शेषः ।

संसारके उत्पत्तिके समय रजोगुणवाले ब्रह्मा तथा परिपालनके समय सत्त्वगुणवाले विष्णु और इन दोनोंके विनाशके समय तमोगुणवाले रुद्र, सृष्टि स्थिति प्रलयके कारण, स्वयं जन्मरहित वेदमय मायाशाली जो है उस परब्रह्मको (निर्विघ्नपूर्वक ग्रन्थ समाप्तिके लिये) मैं (बाणभट्ट) प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

जयन्ति बाणासुरमौलिलालिता दशास्यचूडामणिचक्रचुम्बिनः ।
सुरासुराधीशशिखान्तशायिनो भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसवः ॥ २ ॥

यथैकस्मिन् स्फटिके नीलपीतादिगुणयोगान्नीलः पीत इति व्यपदेशस्तथैकस्मिन्नपि परब्रह्मणि सृष्टि-समये रजोगुणयोगात्प्रजापतिरिति स्थितिसमये सत्त्वगुणयोगाद्विष्णुरिति विनाशसमये तमोगुणयोगाद् रुद्र इति व्यपदेशः। ननु परब्रह्म तु निर्गुणं तदा तस्य त्रिगुणात्मकत्वं यदुक्तं तत्कथमिति चेत्? सत्यम्,—

'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम्।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः॥' इति श्रुत्या,
मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्। अस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥

इति स्मृत्या च मायायुक्तसमये तस्य त्रिगुणात्मकत्वाऽभ्युपगमात्। ब्रह्मणः सृष्ट्यादिनिमित्तत्वे बीजन्तु—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म इति श्रुतिः,

'ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् विष्णुत्वे पालयत्यपि। रुद्रत्वे संहरत्येव तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः॥' इति स्मृतिश्च।

तथा श्रीमद्भागवतेऽपि—

'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो महान् धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥'

इति स्कन्धारम्भ एव निरूपितम्। अमीषां गुणानां लक्षणन्तु सांख्यकारिकायाम्—

'सत्त्वं लघुप्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च रजः। गुरुवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः'॥

'चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादाः द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्यांम् आविवेश', इति श्रुत्या 'वेद एव परं ब्रह्म' इति स्मृत्या च त्रयीमयत्वं ब्रह्मणो वेदितव्यम्।

अत्र प्राचा तु केवलमनेन प्रजापतिनमस्कार एव योजयित्वा व्याख्यातम्, तत्तु 'विधेः सृष्टिमात्रकर्तृत्वेन केवलं रजोगुणस्यैव सम्बन्धात्त्रिगुणात्मकत्वमतिविरुद्धम्' इति भानुचन्द्रेणैव समाहितम्। युक्तञ्चैतत्, अन्यथा पौराणिकानां 'गुणभेदेनैव मूर्त्तिभेद' इति सिद्धान्तो व्याकुप्येत।

अत्र रजोजुषे सर्गहेतवे, सत्त्ववृत्तये स्थितिहेतवे, तमःस्पृशे नाशहेतवे, इति यथासङ्ख्येन सम्बन्धसंभवात् यथासङ्ख्यमलङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे-- 'यथासङ्ख्यमनूद्देश उद्दिष्टानां क्रमेण यत्'।

इतः प्रभृतिषु निखिलपद्येषु वंशस्थं छन्दस्तल्लक्षणन्तु—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'॥ १॥

'ज्ञानमिच्छेत्तु शङ्करात्' इति स्मृत्या चिकीर्षितकाव्यविधानोपयोगिज्ञानप्राप्तये पादरज उत्कर्षप्रतिपादनमुखेन महेश्वरस्मरणमाचरति—जयन्तीत्यादिना। बाणासुरस्य बाणाख्यपरमशिवभक्तस्य दैत्यस्य मौलिना मुकुटेन मूर्ध्ना वा लालिताः प्रणामकाले आदरेण स्वीकृताः, दशास्यो रावणस्तस्य चूडामणयः किरीटरत्नानि तेषां चक्रं समूहं चुम्बन्ति नमस्कारकाले स्पृशन्ति ये ते तथोक्ताः, सुष्ठु परब्रह्मणि रमन्ते ये ते सुरा देवाः तद्भिन्ना असुरा दैत्याः तेषामधीशाः स्वामिनः तेषां शिखाः चूडास्तासाम् अन्तेषु अग्रभागेषु शयितुं नमनकाले स्थातुं शीलं येषां ते तथोक्ताः, तथा भवच्छिदः संसारनिवर्त्तकाः, मोक्षोपयोगितत्त्वज्ञानोत्पादनद्वारा भवदुःखविच्छेदिन इत्यर्थः, त्रीणि अम्बकानि नयनानि यस्य तस्य तथोक्तस्य शिवस्य 'अम्बकं नयनं दृष्टिः' इति हलायुधः, त्रयाणां लोकानामम्बकस्य पितुरिति वा, यद्वा त्रीन् वेदान् अम्बते शब्दायते 'अबि शब्दे' इत्यस्मात् कर्मण्यणि 'संज्ञायाम्' ५।३।८७ इत्यनेन के कनि वा तस्येति विग्रहो विधेयः, पादपांसवः चरणरेणवः जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्त्तन्त इत्यर्थः। 'जि जये अस्माल्लटि रूपम्। अत्र जय उत्कर्षप्राप्तिः, एवञ्चोत्कर्षप्रतिपादनेन नमस्कारो व्यञ्जनयाऽवगम्यते, तथाहि—उत्कर्षो हि विशेषानुपादानात्सर्वप्रतियोगिको लभ्यत इति त्र्यम्बके सर्वोत्कृष्टत्वज्ञाने तुल्यवित्तिवेद्यत्वन्यायेन प्रकारान्तरेण वा त्र्यम्बकापेक्षया सर्वस्यापकृष्टत्वज्ञाने सर्वान्तःपाति स्वस्मिन्नप्याराध्यापेक्षयापकृष्टत्वज्ञानं भवति, तथा च 'अपकृष्टत्वज्ञानबोधानुकूलो व्यापारः स्वरादिपठितनमः शब्दार्थः, इति मञ्जूषोक्तदिशा नमस्कारमत्र स्फुटमेव प्रतीयत इति।

जो दैत्यराज बाणासुरद्वारा श्रद्धापूर्वक मस्तकसे परिगृहीत, राक्षसराज रावणके मुकुटको स्पर्श करनेवालीं, देवाधिपति और असुराधिपतिगणके केशसमूहवर्त्तिनीं एवं संसाररूपी बन्धनको मिटानेवालीं शङ्करकी चरणधूलियाँ सबको अतिक्रमण कर विद्यमान हैं उनकी जय हो। यहाँ जय कहनेसे नमस्कारका आक्षेप होता है [अर्थात् उनके प्रति मेरा नमस्कार है]॥ २॥

जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्ध-लक्ष्ययाँ।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम् ॥ ३ ॥
नमामि भर्वोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौखरिभिः कृतार्चनम्।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिका-विटङ्कपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलि ॥ ४ ॥

अत्र उत्कर्षकथनकार्यं प्रति बाणासुरमौलिलालनादिहेतुचतुष्टयप्रदर्शनेन समुच्चयालङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे—'समुच्चयोऽयमेकस्मिन् सति कार्यस्य साधके।

खले कपोतकन्यायात् तस्करः स्यात्परोऽपि चेत्। गुणौ क्रिये वा युगपत् स्यातां यद्वा गुणक्रिये ॥'

तथा अनेकलकार-चकार-शकारादिव्यञ्जनवर्णानां स्वरूपतः क्रमतश्च साम्यात् वृत्त्यनुप्रासश्च तदुक्तं दर्पणे—'अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाऽप्यनेकधा। एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते ॥' एवञ्चानयोर्मिथोऽनपेक्षत्वात्संसृष्टिरलङ्कारः ॥ २ ॥

इष्टदेवताध्यानेन सकलकामनासिद्धिर्भवतीति नरसिंहरूपं विष्णुं ध्यायति—जयतीत्यादिना। स विख्यातः अनुजत्वेन इन्द्रमुपगत इत्युपेन्द्रः। 'कुगतिप्रादयश्च' इत्यनेन समासः, नृसिंहरूपधारी विष्णुः जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। यो नृसिंहो बिभित्सया भेत्तुमिच्छया दूरतः दूरात् क्षणं क्षणकालं लब्धं प्राप्तं लक्ष्यं तदेव वक्षःस्थलं यया तया क्षणं तदुरःस्थलमवलोकयन्त्या इत्यर्थः, अत एव कोपेन क्रोधेन अरुणया लोहितरूपया दृशैव दृष्ट्वैव न तु नखद्वारा भेदनेनेत्येवकारार्थः, रिपोः वैरिणो हिरण्यकशिपोः उरो वक्षःस्थलं भयात् नृसिंहत्रासात् स्वयम् आत्मना भिन्नमिव विदीर्णमिव अस्रपाटलं स्वीयारुणलोचनरश्मिनिपातेन शोणितवत् श्वेतरक्तं चकार कृतवान् 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः। अनेन ग्रन्थकारस्येष्टदेवो नृसिंह आसीदित्यवगम्यते। इह हिरण्यकशिपूरःस्थलस्य स्वीयश्यामगुणराहित्यात् श्वेतरक्तगुणोपादानेन तद्गुणालङ्कारः तदुक्तं दर्पणे—'तद्रूपाननुहारस्तु हेतौ सत्यप्यतद्गुणः' इति।

तथा अस्रपाटलमित्यत्र लुप्तोपमा। तथा भावाभिमानिनी क्रियोत्प्रेक्षा, सा च भयात् स्वयं भिन्नमिवेत्यनेन वाच्या, इत्येतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः। यद्यप्यत्रापाततो यच्छब्दस्य पूर्वमनुपादानाद्वाक्यगतविधेयाविमर्शदोषः प्रतीयते तथाप्यत्र तच्छब्दस्य प्रसिद्धपरामर्शित्वेन यच्छब्दस्य तूत्तरवाक्यगतत्वेन तच्छब्दापेक्षाभावान्न दोष इति विभावनीयम् ॥ ३ ॥

अथ गुरुनमस्कारं विदधाति—नमामीत्यादिना। शेखरैः शिरःस्त्रग्भिः वा मुकुटैः सह वर्त्तमानाः इति सशेखराः तैः, मौखरिभिः प्राचीन-भारतीय-राजवंशिभिः यद्वा मुखरस्य वेदाद्युच्चारणेन शब्दायमानस्य भावो मौखरं तदेषामस्तीति मौखरिणः 'अत इनि ठनौ' इतीन्प्रत्ययः तैः वेदादिध्वनिविधायिभिः छात्रैः, आसीच्च ई० पञ्चमशतकान्तादष्टमशतकमध्ये प्राचीनभारतीयक्षत्रियराजवंश इत्यैतिहासिकानां मतम्। कृतम् अनुष्ठितम् अर्चनं पूजनं यस्य तत्। समस्ताः सकला ये सामन्ता अधिकृता नृपतयः तेषां किरीटानि मुकुटान्येव वेदिकाः परिष्कृतभूमयः तासु यानि विटङ्कपीठानि कपोतपालिकाभूमयः मध्यगतोन्नतभागा इत्यर्थः, तेषु उल्लुठिता अभिवादनकाले संलग्नाः, अरुणाः मुकुटरत्नरश्मिसम्पर्कात् स्वभावाच्च लोहितवर्णाः अङ्गुलयः करशाखा यस्य तत्, भर्वोः भर्वुसंज्ञकगुरोः चरणाम्बुजद्वयं पादकमलयुगलं नमामि अभिवादयामि। एतेन प्रतिदिनाध्यापकत्वं चक्रवर्तिनृपामात्यत्वञ्च द्योत्यते।

उपेन्द्र भगवान्की जय हो, जिन्होंने—विदीर्ण [टुकड़े] करनेकी इच्छासे क्षणभरमें लक्ष्यपर पहुँचानेवाली तथा क्रोधसे रक्तवर्ण हुई दृष्टिसे दूरसे ही हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको इसप्रकार शोणितके समान रक्तवर्ण कर दिया मानो भयके मारे वह अपने आप (स्वयं ही) फट गया हो ! ॥ ३ ॥

जिनके शिरपर फूलोंकी मालाओंको चढ़ानेवाले तथा हर समय मौखरी=प्राचीन भारतीय राजवंश, [जिनका शासनकाल ई० ५ के अन्तसे लगभग ई० ८ वीं शताब्दी तक था। इस वंशका राज्य पूर्वमें मगध दक्षिणमें मध्यप्रान्त और आँध्र तक, उत्तरमें नेपाल तक, तथा पश्चिममें थानेश्वर और मालवा तक था] अथवा वेदध्वनि करनेवाले छात्रगण पूजा किये थे, एवं सब छोटे-छोटे अपने अधीन राजाओंके मुकुटरूपी परिष्कृतिभूमिके उन्नतस्थानके संस्पर्शमें जिनकी अँगुलियाँ रक्तवर्ण हो जाती थीं, उन 'भर्वु' नामक गुरुदेवके दोनों चरणकमलको [मैं] नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

---

१ बद्धः। २ लक्ष्यया। ३ भत्सोः, भर्त्सोः।

सज्जनदुर्जनयोः स्तुतिनिन्दे—

अकारणाविष्कृतवैरदारुणादसज्जनात् कस्य भयं न जायते ।
विषं महाहेरिव यस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निहितं सदा मुखे ॥ ५ ॥
कटु क्वणन्तो मलदायकाः खलास्तुदन्त्यलं बन्धनशृङ्खला इव ।
मनस्तु साधुध्वनिभिः पदे पदे हरन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव ॥ ६ ॥
सुभाषितं हारि विशत्यधो गलान्न दुर्जनस्यार्करिपोरिवामृतम् ।
तदेव धत्ते हृदयेन सज्जनो हरिर्महारत्नमिवातिनिर्मलम् ॥ ७ ॥

नन्वत्र 'कपोतपालिकायान्तु विटङ्कं पुन्नपुंसकम्' इत्यमरोक्तदिशा विटङ्कशब्दस्य कपोताधारभूतकाष्ठवाचित्वेन किरीटमध्यगतोन्नतभागार्थे कथं प्रवृत्तिरिति चेत्? सत्यम्, तत्रार्थे अत्युन्नतत्वप्रतिपादनाय लक्षणया प्रयोगात्, अतो नात्र नेयार्थत्वदोषः । यद्यपि—

'आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च । श्रेयस्कामो न गृह्णीयात् ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः ॥'

इति स्मृत्या गुरोर्नामग्रहणनिषेधात् प्रकृते कथं तन्नामग्रहणमित्याक्षेपः समापतति तथाप्ययं निषेधो राशिनामोच्चार एवेति शास्त्रकारैरुक्तत्वेन क्षत्यभावात् । अत्र गुरोरेकवचनमेकस्मादेव सर्वविद्यालाभ इति द्योतनार्थमित्यवधेयम् । पद्येऽस्मिन् समन्तात् समानताद्योतनाय किरीटेषु वेदिकात्वारोप इति यथाकथञ्चित् निरङ्गं केवलरूपकमलङ्कारः । तदुक्तं दर्पणे—'निरङ्गं केवलस्यैव रूपणम्' इति ॥ ४ ॥

अथ सज्जनदुर्जनयोः स्तुतिनिन्दे प्रतिपादयति—अकारणेति । अकारणम् अनिमित्तमेव आविष्कृतम् उद्भावितं यद्वैरं निन्दादिना विरोधः तेन दारुणात् भीषणस्वभावात् असज्जनात् दुष्टपुरुषात् कस्य सज्जनस्य भयं त्रासो न जायते नोत्पद्यते अपि तु सर्वस्यैवोत्पद्यत इत्यर्थः । महाहेः महासर्पस्य विषं गरलमिव यस्य दुर्जनस्य मुखे वदने सुदुःसहम् अतीवोद्वेगजनकत्वेन सहनीयं दुर्वचः कटुवाक्यं सदा निरन्तरं सन्निहितं समीपस्थं विद्यमानं विद्यते । एवञ्च करिष्यमाणकाव्येऽस्मिन् कादाचित्कोऽपि दुर्जनो मह्यं द्रुह्येत तस्मान्मे भयं भवतीत्याशयः । इह पूर्वार्द्धे अर्थापत्तिः, उत्तरार्द्धे चोपमालङ्कारः । तदुक्तं दर्पणे—

'दण्डापूपिकयाऽन्यार्थागमोऽर्थापत्तिरिष्यते ।' इति । 'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः ।' इति ।

एवञ्चानयोर्मिथोऽनपेक्ष्यत्वात् संसृष्टिरलङ्कारः ॥ ५ ॥

कट्विति कटु दुःश्रवत्वं यथा स्यात्तथा क्वणन्तः रटन्तः कुत्सितं शब्दायमानाश्च मलदायकाः मिथ्याकलङ्काविष्कारिणः स्वसंसक्तदेशे मलोत्पादकाश्च खला दुर्जनाः, बन्धनशृङ्खला इव मनुष्यादेर्बन्धनलोहनिगडा इव 'शृङ्खला पुंस्कटीवस्त्रबन्धे च निगडे त्रिषु' इति मेदिनी । अलम् अत्यर्थं तुदन्ति चित्तं बन्धनदेशञ्च पीडयन्ति 'तुद् व्यथने' अस्माल्लटि बहुवचनम् । एवं पूर्वार्द्धेन दुर्जनान् सन्निन्द्योत्तरार्द्धेन सज्जनान् स्तौति—मनस्त्विति । तु किन्तु सन्तः सज्जनाः मणिनूपुरा इव रत्नखचितमञ्जीराणीव पदे पदे शब्दे शब्दे सर्वत्रैवेत्यर्थः प्रतिपदक्षेपे च साधुध्वनिभिः सन्तोषदायिवचनैः मनोहारिशब्दैश्च मनश्चित्तं हरन्ति आकर्षन्ति । एवञ्च मम काव्यनिन्दया दुर्जनचित्तव्यथा सज्जनस्य तत्प्रशंसया चानन्दो भविष्यतीति सम्भावयामीति कवेराशयः । एतेन स्वकाव्योत्तमत्वं विज्ञापयति । इह पूर्वार्द्धे तथोत्तरार्द्धे च पूर्णोपमालङ्कारः, उभयोश्चापि परस्परनैरपेक्ष्यात् संसृष्टिरलङ्कारः ॥ ६ ॥

सुभाषितमिति । हारि मनोहरं सुभाषितं प्रशस्तसन्दर्भं सुकाव्यादि (कर्तृ) अर्करिपोः राहोः अमृतं

अब आगेके पद्योंसे सज्जन और दुर्जनकी क्रमिक स्तुति-निन्दा कीजाती है—

किसी कारणके बिना जो अपनी शत्रुता प्रगट करे तथा भयङ्कर सर्पके मुखस्थ-विषके समान जो अपने मुखमें निरन्तर अत्यन्त असह्य दुर्वचनोंको उपस्थित रखे ऐसे क्रूरस्वभाववाले दुर्जनसे किसे भय उत्पन्न नहीं होता है? (अर्थात् सभी ऐसे लोगोंसे अवश्य डरते रहते हैं) ॥ ५ ॥

कडुवे वचन बोलनेवाले एवं दूसरेके छिद्रको ढूंढ़नेवाले दुर्जनलोग कर्कशशब्द करनेवाली और कालिमाको उत्पन्न करनेवाली बन्धनशृङ्खला (बाँधनेकी जञ्जीर) के समान अत्यन्त कष्टको पहुँचाते हैं; परन्तु रत्नोंसे जड़ा हुआ मणिनूपुर जिस प्रकार प्रत्येक पादक्षेपमें सुननेसे मधुरशब्दद्वारा (झनझनाहटसे) हृदयको आकर्षण करता है उसी प्रकार सज्जनगण मधुरवचनोंसे हृदयको आकर्षित करते हैं ॥ ६ ॥

जिस प्रकार चन्द्रमाका अमृत राहुके कण्ठके नीचे प्रवेश नहीं करता, उसी प्रकार आह्लादजनक मनोहरवचन

कथाप्रशंसा

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥ ८ ॥
हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥ ९ ॥

पीयमानं पीयूषमिव दुर्जनस्य असज्जनस्य गलात् कण्ठात् अधो न विशति प्रवेशं न प्राप्नोति । यथा राहोः गलादधः स्थानाभावेन पीयमानस्याऽपि चन्द्रस्यामृतं न क्वचित्तिष्ठति तथा दुर्जनस्यापि हृदयशून्यत्वेन परिश्रमेण पाठ्यमानमपि सुकाव्यादि वोधयोग्यो न भवतीति स्पष्टार्थः । किन्तु तद्वैपरीत्यं सज्जने दर्शयति—तदेवेति । सज्जनः गुणग्राहकः पुरुषः हरिः विष्णुः अतिनिर्मलम् अतिस्वच्छं महारत्नं कौस्तुभमणिमिव तदेव हारि सुभाषितं हृदयेन चेतसा धत्ते गृह्णाति, स हृदयगतत्वान्न कदाचिदपि विस्मरतीत्याशयः । एवञ्च ममाप्येतत्काव्यमज्ञायमानो दुर्जनस्त्यजेदपि किन्तु सज्जनस्त्वामूलं ज्ञायमानमवश्यमेवं सत्क्रियेतेति ग्रन्थकर्त्तुराशयः । इहापि मिथो निरपेक्षतया पूर्ववदेवालङ्कारः ॥ ७ ॥

कथाकाव्ये जनमनः प्रवेशयितुं पूर्वं तत्प्रशंसामाचरति—स्फुरदित्यादिना । स्फुरन्तः प्रकाशमानाः स्फुटं प्रतीयमाना ये कलालापा गीतावाद्यादिचतुःषष्टिविद्यासम्बन्धिवचनानि तेषां विलासेन विन्यासेन कोमला मृद्वी संग्रामवर्णनादिवदौद्धत्यरहितेत्यर्थः, पक्षे स्फुरन्तौ द्योतयन्तौ कलालापविलासौ मधुरवचनव्यापारौ ताभ्यां कोमला हृदयाकर्षिणी, 'कोमलं मृदुसुन्दरे' इति विश्वः । तथा रसेन शृङ्गारादिना शय्यां शब्दगुम्फं स्वप्राकरणिकत्वेनाऽवान्तरप्रवन्धानां सम्बन्धमिति तात्पर्यम् । स्वयम् आत्मना अभ्युपागता सान्निध्यं प्राप्ता, पक्षे—रसेन आश्लेषप्रेम्णा स्वयम् आत्मनैव शय्यां तल्पं शयनीयमिति यावत् । 'शय्या तल्पं शब्दगुम्फे' इत्यनेकार्थः, अभ्युपागता प्राप्ता, अभिनवा नवीना कथा गद्यपद्यमयप्रवन्धः अभिनवा वधूरिव युवती भार्येव जनस्य पुंसः हृदि चेतसि कौतुकं कुतूहलम् अधिकं वहुलं रागं श्रवणस्य आश्लेषस्य च प्रीतिं करोति जनयति । एवञ्च मद्रचिताऽपीयं कादम्बरी कथा जनस्य श्रवणानुरागं करिष्यतीत्यभिप्रायः । इह साधारणधर्मादिसद्भावात्पूर्णोपमालङ्कारः ।

यद्यप्यत्र 'रसस्योक्तिः स्वशब्देने'त्यादिदर्पणोक्तदिशा रसशब्दस्य साक्षादुपादानेन 'तामुद्वीक्ष्य कुरङ्गाक्षीं रसो नः कोऽप्यजायत' इत्यादाविव दोषः प्रतीयते तथापि स्वरूपेणानुभूयमानस्यैव रसस्य तत्तच्छब्देन प्रतिपादने तद्दोषस्वीकारेणात्र तथात्वाभावात् ॥ ८ ॥

हरन्तीति । उज्ज्वलाः प्रकटाः दीपकालङ्कारविशेषा उपमालङ्कारविशेषाश्च येषु तैः तथोक्तैः, नवैः स्वमनीषयैव निर्मितत्वेनापूर्वैः पदार्थैः शब्दानामभिधेयैः, उपपादिता विनिर्मिताः निरन्तरेण अव्यवधानेन प्रतिपदेन वा प्रायेण सर्वत्रैव वर्त्तमानेन श्लेषेण तदाख्यालङ्कारेण घना बहुलतराः दुर्बोधा इत्यर्थः, सुष्ठु शोभना जातिः छन्दोविशेषो यासु ताः सुजातयः कथा गद्यपद्यादिप्रबन्धाः, उज्ज्वला दीपकाः प्रदीपा

दुर्जनके कण्ठके नीचे प्रवेश नहीं कर पाता, परन्तु भगवान् विष्णु जिस प्रकार अत्यन्त स्वच्छ कौस्तुभमणिको हृदयमें धारण किये हैं, गुणग्राही साधुगण भी उसी प्रकार मनोहर वचनोंको हृदयमें धारण करते हैं [एक बार देव और दैत्यगण मन्दराचलको रई तथा वासुकि नागको रस्सी बनाकर समुद्रमन्थन किये । उन्हें अनेक रत्नों के साथ अमृत भी प्राप्त हुआ । देव और दैत्य दोनों पङ्क्तिबद्ध हो बैठे । विष्णु अपनी मोहिनी स्त्रीका रूप धारण कर देवों की ओर से अमृत बाँटने लगे । उस समय एक राक्षस देव पङ्क्तिमें ही जा घुसा, जिसे देखकर सूर्य-चन्द्रने विष्णुसे कह दिया । विष्णुने उसका शिर चक्रसे काट दिया तबसे शिरोभाग राहु कहलाया जो समय-समयपर चन्द्र और सूर्यको ग्रसित करता है । थोड़ा अमृत पीजानेके कारण उसका शिर अमर हो गया । गलेके नीचेका भाग केतु कहलाया] ॥ ७ ॥

अनायासगम्य कलाविलासम्बन्धी वाक्यरचनाओं द्वारा सुननेमें रमणीय शृङ्गारादि किसी एक रसको अनुसरण कर अवान्तर कथाओंसे युक्त अच्छे अर्थक कथावाक्य लोगोंके हृदयमें कौतुकवश अत्यधिकप्रेम उसी प्रकार उत्पन्न करता है जिस प्रकार मधुरालाप करने में अत्यन्त स्पष्ट हावभावमें अधिक मनोहर एवं प्रेमवश अपनेसे ही पलङ्गपर उपस्थित हो युवती स्त्री अपने पति के हृदय में प्रेम उत्पन्न करती है ॥ ८ ॥

अनायास अर्थ को देनेवाली दीपक तथा उपमालङ्कारयुक्त अपूर्व पदार्थोंके समावेशसे बनायी हुई एवं

कविवंशवर्णनम्

बभूव वात्स्यायनवंशसम्भवो द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम् ।
अनेकगुप्तार्चितपादपङ्कजः कुबेरनामांश इव स्वयम्भुवः ॥ १० ॥
उवास यस्य श्रुतिशान्तकल्मषे सदा पुरोडाशपवित्रिताधरे ।
सरस्वती सोमकषायितोदरे समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुरे मुखे ॥ ११ ॥

उपमाः सादृश्यानि येषां तैः, उज्ज्वलप्रदीपसदृशैरित्यर्थः; नवैर्नूतनैः अम्लानैरित्यर्थः, पदार्थैः उपादेयपदार्थभूतैः चम्पककुड्मलैः हेमपुष्पकमुकुलैः उपपादिताः सम्पादिता ग्रथिता इत्यर्थः, निरन्तरम् अव्यवधानं यः श्लेषः संयोगस्तेन घनाः सान्द्राः, तथा सुष्ठु शोभना जातयः जातीपुष्पाणि यासु ताः तथोक्ताः, महास्रजो महामाला इव कं जनं न हरन्ति न वशीकुर्वन्ति अपि तु सर्वमेवेत्यर्थः। एवञ्च मामकीनाऽप्येषा कथा समस्तमेव लोकं वशीकुर्यादित्याशयः। इह पूर्णोपमा अर्थापत्तिश्च, अनयोरङ्गाङ्गिभावेनैकाश्रयानुप्रवेशरूपः सङ्करालङ्कारः ॥ ९ ॥

इत्थं कथां प्रशंसयित्वा कीर्त्यनुवृत्त्यर्थं स्वकुलजान्निर्दिशति—बभूवेत्यादिना। वत्सस्यापत्यं पुमान् वात्स्यः स अयनं कुलप्रवर्त्तकत्वेन आश्रयः यस्य स तथोक्तो यो वंशः कुलं तत्र सम्भवः समुत्पन्नः, वत्सवंशीय इत्यर्थः। जगति संसारे गीता जनैः गानविषयीकृताः गुणाः दयादाक्षिण्यादयो यस्य सः तथोक्तः, सतां सज्जनानाम् अग्रणीः अग्रेसरः तन्मध्ये उत्तम इत्यर्थः। अनेकैः अधिकैः गुप्तैः गुप्तनामाङ्कितैः वैश्यैः, तदुक्तम्—'शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु। गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥'

यद्वा गुप्तैः ईस्वीयपञ्चमषष्ठशतकमध्यवर्तिप्राचीनराजवंशिभिरित्यर्थः। अर्चिते पूजिते पादपङ्कजे चरणकमलयुगले यस्य सः। तथा स्वयंभुवः प्रजापतेः अंश अंशावतार इव अतिवैदिकत्वादित्याशयः, कुबेरनामा कुबेराभिधेयः द्विजो विप्रो बभूव आसीत् 'दन्ता विप्राण्डजा द्विजाः' इत्यमरः, अत्रोत्कृष्टद्विजत्वद्योतनाय द्विजपदोपादानम्, हस्तिमात्रस्य दन्तवत्त्वेऽपि उत्कृष्टदन्ते दन्तीति पदस्य यथा प्रयोगस्तद्वदिव। इह भावाभिमानिनी द्रव्योत्प्रेक्षा, सा च स्वयम्भुवोंऽश इव इत्यनेन वाच्या ॥ १० ॥

उवासेति। श्रुतिभिः वेदैः तदध्ययनैरित्यर्थः 'श्रुतिस्तु वेद आम्नायः' इत्यमरः, शान्तं विलीनं कल्मषं पापं यस्य तस्मिन्, नित्यवेदाध्ययनेन वाचनिकपापरहित इत्यर्थः। पुरोडाशेन अग्निहोत्रादौ देवेभ्यो हुतहविरवशिष्टेन हविषा 'पुरोडाशो हविर्भेदे हुतशेषे च कीर्त्तितः' इति विश्वः, पवित्रितौ भक्षणसमये संबन्धेन पावनीकृतौ अधरौ ओष्ठौ यस्य तस्मिंस्तथोक्ते। सोमेन सोमयागे सोमनामकलतारसपानेन कषायितं किञ्चित्कटुकीभूतम् उदरम् अभ्यन्तरं यस्य तस्मिन् तथोक्ते। तथा समस्तानि सकलानि यानि शास्त्राणि व्यासादिरचितब्रह्मसूत्रादीनि स्मृतयश्च मन्वादिरचितनिबन्धाः तैः तदध्ययनैः बन्धुरं मनोहरं तस्मिंस्तथोक्ते। यस्य कुबेरद्विजस्य मुखे वदने सरस्वती वाग्देवी सदा सर्वस्मिन् काले उवास वासं करोतिस्म। अनेनास्य महात्मनः प्रत्यहं वेदाध्ययनत्वं नित्याग्निहोत्रादिकर्मानुष्ठापकत्वं समग्रशास्त्रज्ञातृत्वञ्च स्पष्टीकृतम्।

निरन्तर श्लेषालङ्कार होनेसे दुर्बोध्य मनोहर कथा, देदीप्यमान दीपक (प्रकाश) के समान अभिनव वस्तुके ग्रहण करनेमें योग्य चम्पाके फूलोंकी कलियोंद्वारा गुँथी हुई चमेलीके फूलोंसे युक्त एवं आपसमें संघन मिली हुई महामालाके तुल्य किस व्यक्तिको आकर्षण नहीं करती है ? ॥ ९ ॥

वात्स्यायन वंशमें सज्जन लोगोंमें अग्रगण्य संसारके लोगोंद्वारा गुणगान किये जाने वाले एवं अनेक धनीमानियोंने अथवा मगध देशमें राज्य स्थापित करके समस्त उत्तर भारतमें अपना साम्राज्य फैलाए हुए ई० ४ या ६ शतकवर्त्ती प्राचीन गुप्त-राजवंशियोंने जिनके चरणकमलका पूजन किया था ऐसे कुबेरनामक एक ब्राह्मण, ब्रह्माके अंशावतारके समान उत्पन्न हुए ॥ १० ॥

नित्य वेदपाठ करनेसे जहाँ वाचनिक पाप नष्ट हो गया है तथा यज्ञके हुतावशिष्ट द्रव्यभक्षणसे जहाँ दोनों ओष्ठ पवित्र हो गये हैं एवं यज्ञसमयमें सोमरस पान करनेसे मध्यभाग सुगन्धयुक्त हो गया है और समस्त शास्त्रोंके उच्चारण करनेके समयमें देखनेमें अत्यन्त सुन्दर ऐसे उनके मुखमें सरस्वती देवी सतत वास करती थी ॥

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्त्तिभिः शुकैः ।
निगृह्यमाणा वटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यस्य शङ्किताः ॥ १२ ॥
हिरण्यगर्भो भुवनाण्डकादिव क्षपाकरः क्षीरमहार्णवादिव ।
अभूत् सुपर्णो विनतोदरादिव द्विजन्मनामर्थपतिः पतिस्ततः ॥ १३ ॥
विवृण्वतो यस्य विसारि वाङ्मयं दिने दिने शिष्यगणा नवा नवाः ।
उषस्सु लग्नाः श्रवणेऽधिकां श्रियं प्रचक्रिरे चन्दनपल्लवा इव ॥ १४ ॥

जगुरिति । यस्य कुबेरद्विजस्य गृहे भवने वटवः छात्रभूता ब्रह्मचारिणो ब्राह्मणशिशवः, अभ्यस्तं बहुधा श्रवणाज्जिह्वाग्रवर्ति समस्तं सम्पूर्णं वाङ्मयं चतुर्दशविद्यात्मकं शास्त्रं यैस्तैः तथोक्तैः, पञ्जरवर्त्तिभिः लोहशलाकानिर्मितपक्षिगृहे विद्यमानैः, सारिकाभिः सहेति ससारिकैः शुकैः कीरपक्षिभिः पदे पदे प्रतिपदाभ्यासे निगृह्यमाणाः 'भवद्भिरशुद्धमभ्यस्यते अत्रैवं भवितव्यम्' इत्थं निर्भर्त्स्यमानाः, अत एव शङ्किताः यद्यशुद्धं स्यात्तदा पुनरपि मम दोषप्राकट्यं नूनं शुकाः करिष्यन्तीति भययुताः सन्तः, यजूंषि यजुर्वेदान् सामानि सामवेदांश्च जगुः अपठन् । अतिर्यग्योनीनां शुकानामपि समस्तविद्यापारङ्गतत्वमिति दर्शनादद्भुतमेतन्माहात्म्यमिति द्योतितम् । इह तथाविधशुकैः तादृक्पराभवासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्त्यलङ्कारः ॥ १२ ॥

हिरण्येति । भुवनस्य भूर्भुव इत्यादि-चतुर्दशजगतः अण्डकं ब्रह्माण्डं तस्मात् द्विजन्मनां ब्राह्मणानां पतिः अधिपतिः हिरण्यगर्भः प्रजापतिरिव, क्षीरमहार्णवात् दुग्धसागरात् द्विजन्मनां पतिः द्विजराजः क्षपाकरः सुधांशुरिव, विनतायाः तन्नामिकायाः कश्यपपत्न्या उदरात् कुक्षेः द्विजन्मनां पतिः पक्षिराजः सुपर्णः गरुड इव, ततः कुबेरद्विजात् द्विजन्मनां ब्राह्मणानां पतिः श्रेष्ठः अर्थपतिः अर्थपतिसंज्ञकः कश्चित् पुत्रः अभूत् उत्पन्नः । इह हिरण्यगर्भसादृश्येन वेदपारगामित्वम्, क्षीरसमुद्रोत्थचन्द्रतुलनया सकलजनाह्लादकत्वम्, गरुडोपमया च नारायणपरायणत्वं द्योतितम् । चतुर्दशभुवनपदेन—

भूर्भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यमित्येते सप्त उपरितना लोकाः, अतलं वितलं सुतलं तलातलं रसातलं महातलं पातालमित्येते सप्त अधस्तना लोका ज्ञेयाः । तदुक्तमग्निपुराणे—

'चतुर्दशविधं ह्येतद् भूतवृन्दं सुकीर्त्तितम् । भूर्भुवस्स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च ॥
सत्यलोकश्च सप्तैते लोकास्तु परिकीर्त्तिताः । अतलं वितलञ्चैव सुतलञ्च रसातलम् ।
महातलं रसातलं पातालं सप्तमं स्मृतम्' ॥ इति ।

ब्रह्माण्डतः प्रजापतेरुत्पत्तौ प्रमाणं यथा मनुः—

'तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

इहालङ्कारश्च मालोपमा ॥ १३ ॥

विवृण्वत इति । दिने दिने प्रतिदिनम् उषस्सु प्रातःसमयेषु नवा नवा नूतना नूतना उत्तरोत्तरं धीमन्त इति तात्पर्यम्, एवंविधाः शिष्यगणाः छात्रसमूहाः चन्दनपल्लवाः मलयजवृक्षकिसलयानि इव 'पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' इत्यमरः, श्रवणे शास्त्रविचाराकर्णने योषितां कर्णे च लग्ना आसक्ताःसन्तः, विसारि विस्तृतं वाङ्मयं चतुर्दशविद्यात्मकं शास्त्रं विवृण्वतः व्याख्यानेनार्थं स्पष्टीकुर्वतः पाठयत इत्यर्थः यस्य अर्थपतेः गुरोः अधिकाम् अत्यर्थां श्रियं शोभां प्रचक्रिरे वितेनिरे । इह वाच्योपमाऽलङ्कारः ॥ १४ ॥

अनेकवार श्रवण करनेसे जिन सबोंको समस्त शास्त्र अभ्यस्त हो गया था इस प्रकारके पिंजरेमें रहनेवाले शुक तथा सारिकागणद्वारा प्रत्येकपदमें त्रुटिको दिखाये जानेके कारण सब ब्राह्मण बालक भयभीत मन होकर यजुर्वेदका पाठ एवं सामवेदका गायन किया करते थे ॥ १२ ॥

ब्रह्माण्डद्वारा हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) के समान क्षीरसागरद्वारा चन्द्रमाके समान तथा विनताके उदरद्वारा गरुड़के समान उस कुबेरसे ब्राह्मणश्रेष्ठ 'अर्थपति' उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥

सुन्दरी स्त्रियोंके कानके ऊपर रखा हुआ चन्दनपल्लव जिस प्रकार शोभा सम्पादन करता है उसी प्रकार प्रतिदिन प्रातःकालमें नये-नये शिष्य लोगोंके शास्त्रार्थ सुननेमें तत्पर होकर विशाल शास्त्रसमूहके अध्ययन करानेमें व्यस्त हुए अर्थपति अत्यधिक शोभाको प्राप्त किये ॥ १४ ॥

---

१ ग्रस्त""।

विधानसम्पादितदानशोभितैः स्फुरन्महावीरसनाथमूर्त्तिभिः ।
मखैरसंख्यैरजयत् सुरालयं सुखेन यो यूपकरैर्गजैरिव ॥ १५ ॥
स चित्रभानुं तनयं महात्मनां सुतोत्तमानां श्रुतिशास्त्रशालिनाम् ।
अवाप मध्ये स्फटिकोपलामलं क्रमेण कैलासमिव क्ष्माभृताम् ॥ १६ ॥
महात्मनो यस्य सुदूरनिर्गताः कलङ्कमुक्तेन्दुकलामलत्विषः ।
द्विषन्मनः प्राविविशुः कृतान्तरा गुणा नृसिंहस्य नखाङ्कुशा इव ॥ १७ ॥

विधानेति । यः अर्थपतिः विधानेन वेदप्रतिपादितमार्गेण सम्पादितं विहितं यद्दानं विप्रेभ्यः सुवर्णादिवितरणं तेन शोभितैः मण्डितैः, अन्यत्र तु विधानेन मदाविर्भावार्थं दीयमानभक्ष्यग्रासेन सम्पादितं निष्पन्नं यद्दानं मदजलं तेन शोभितैः भूषितैः । स्फुरन्तो देदीप्यमाना ये महावीरा हवनवह्नयः तैः सनाथा युक्ता मूर्तयः स्वरूपाणि येषां तैः 'होमाग्निस्तु महाज्वालो महावीरः प्रवर्गवत्' इति भानुचन्द्रोद्धृतकोशः, अन्यत्र स्फुरन्तः सक्रियाः ये महावीरा महाशूराः तैः सनाथा अधिष्ठिता मूर्तयः शरीराणि येषां तैः। यूपा यज्ञे पशुबन्धनाय स्थाणुविशेषाः त एव करा हस्ता येषां तैः, अन्यत्र तु यूपा इव कराः शुण्डादण्डा येषां तैः । गजैः करिभिरिव असंख्यैः अगण्यैः मखैः यज्ञैः सुखेन अक्लेशेन सुरालयं स्वर्गम् अजयत् स्ववशमकरोत् स्वर्गप्राप्तीच्छया विहितानेकयज्ञैरनायासेन तत्प्राप्तिमवश्यंभाविनं कृतवानिति निष्कर्षः। इह कार्येण हस्तिसैन्यैरन्यदेशविजयिनः कस्यचिद्राज्ञो व्यवहारसमारोपात् समासोक्त्यलङ्कारः, स च पूर्णोपमयानुप्राणितेति भावुकाः॥१५॥

स इति । सः अर्थपतिः क्रमेण सुतोत्पत्तिपरम्परया क्ष्माभृतां पर्वतानां मध्ये स्फटिकोपलैः स्फटिकमणिभिः अमलं स्वच्छं कलङ्करहितमित्यर्थः कैलासं हिमालयमिव क्षमाभृतां क्षान्तिगुणयुक्तानां महात्मनां जितेन्द्रियाणां महामनीषिणां श्रुतिशास्त्रशालिनां वेदशास्त्राध्यापकानां सुतोत्तमानाम् उत्कृष्टात्मजानां मध्ये चित्रभानुं चित्रभानुनामानं तनयम् आत्मजम् अवाप लब्धवान् । 'क्षितिक्षान्त्योः क्षमाः' 'आत्मजस्तनयः सूनुः' इति चामरः । इहोपमा ।

अर्थपतेरेकादश पुत्रा आसन्निति हर्षचरिते ग्रन्थकृता स्वयमेवोल्लिखितम्, तथाहि—'सोऽजनयद् १. भृगुं २. हंसं ३. शुचिं ४. कविं ५. महीदत्तं ६. धर्मं ७. जातवेदसं ८. चित्रभानुं ९. त्र्यक्षम् १०. अहिदत्तं ११. विश्वरूपञ्चेत्येकादशरुद्रानिव सोमामृतेरसशीकरच्छुरितमुखान् पवित्रान् पुत्रान्' इति । एष्वष्टमश्चित्रभानुरिति स्फुटमवगम्यते ॥ १६ ॥

महात्मन इति । सुदूरनिर्गता अधिकदूरदेशव्यापिनः, पक्षे आधिक्येन नखराग्राद्बहिर्भूताः कलङ्केन मृगलाञ्छनेन मुक्ता वर्जिता या इन्दुकला चन्द्रषोडशांशः, तद्वत् अमला स्वच्छा त्विट् छविर्येषां ते, पक्षान्तरेऽप्येवमेव । तथा कृतं स्वप्रभावान्निष्पादितम् अन्तरं प्रवेशावकाशो यैस्ते, पक्षे तु कृतम् अन्तरं भेदः यैस्ते 'अन्तरमवकाशावधिपरिधानान्तर्भेदतादर्थ्ये' इत्यमरः । यस्य महात्मनः महाबुद्धिमतः चित्रभानोर्गुणाः दयादाक्षिण्यादयः अपिपदाध्याहारेण पितुस्तुल्या अपि नृसिंहस्य नृसिंहस्वरूपधारिणो विष्णोः नखाङ्कुशा सृणिवद्वक्रवृत्ताः 'अङ्कुशोऽस्त्री सृणिः स्त्रियाम्' इत्यमरः, नखराः पुनर्भवा इव द्विषतां शत्रूणां मनोऽपि पक्षे द्विषतो वैरिणो हिरण्यकशिपोः मनोऽन्तःकरणं वक्षश्च प्राविविशुः प्रवेशं विदधुः । यद्गुणा वैरिणामपि चित्ताकर्षकाः, तत्प्रभावः कथं वर्णनीयः ? इत्याशयः । साधारणधर्मादिसद्भावात्पूर्णोपमालङ्कारः ॥ १७ ॥

शास्त्रानुकूल द्रव्य देनेसे अत्यन्त शोभित, देदीप्यमान होमाग्निसे सम्पन्न एवं पशुबन्धन-स्तम्भरूपी सूँड़वाले हाथी, चारा भक्षण करनेपर निकले हुए मदजलसे जिस प्रकारकी शोभा प्राप्त करता है, लड़नेके उत्साहमें बड़े-बड़े योद्धालोग जिसके ऊपर चढ़ते हैं, उसी हाथीके समान असंख्य यज्ञद्वारा जिन्होंने विना प्रयत्नके ही स्वर्गको अपने वशमें कर लिया था ॥ १५ ॥

उन्होंने पर्वतोंके बीच स्फटिकमणितुल्य अतिस्वच्छ कैलाशपर्वतके समान बड़े बुद्धिमान्, क्षमाशील एवं वेदशास्त्रको जाननेवाले सब लड़कोंके बीच उत्कृष्ट 'चित्रभानु' नामक लड़केको प्राप्त किया ॥ १६ ॥

महात्माके दिगन्तव्यापी तथा कलङ्करहित चन्द्रकलाके समान निर्मल कान्तिवाले गुणसमूह अपने प्रभावसे प्रवेशमार्गको पाकर शत्रुओंके हृदयमें भी इसप्रकार प्रवेश कर गये जैसे नृसिंहके नखाङ्कुर हिरण्यकश्यपुके हृदयमें प्रवेश कर गये थे ॥ १७ ॥

---

१ स्फटिकोपलोपमम् । २ नखाङ्कुरा ।

दिशामलीकालकभङ्गतां गतस्त्रयीवधूकर्णतमालपल्लवः ।
चकार यस्याध्वरधूमसञ्चयो मलीमसः शुक्लतरं निजं यशः ॥ १८ ॥

सरस्वतीपाणि-सरोजसम्पुट-प्रमृष्टहोमश्रमशीकराम्भसः ।
यशोंऽशुशुक्लीकृतसप्तविष्टपात्ततः सुतो बाण इति व्यजायत ॥ १९ ॥

द्विजेन तेनाक्षतकण्ठकौण्ठ्यया महामनोमोहमलीमसान्धया ।

दिश मिति । दिशां पूर्वादीनां वधूस्वरूपाणामिति यावत्, अलीकेषु ललाटदेशेषु 'अलीकमप्रिये भाले' इति हैमः, ये अलकाश्चूर्णकुन्तलाः तेषां भङ्गतां रचनाविशेषत्वंगतः प्राप्तः । त्रयी वेदत्रयी ऋग्यजुःसामरूपे· त्यर्थः सैव वधूः स्नुषा: तस्याः कर्णे श्रवणे तमालपल्लवः तापिच्छद्रुमकिसलयस्वरूपः, स्थलद्वयेऽपि प्राकृतिकश्यामरूपत्वादित्याशयः 'तापिच्छोऽपि तमालः स्यात्' इत्यमरः। मलीमसः प्राकृतिकमलिनो यस्य चित्रभानोः अध्वरधूमसञ्चयः यज्ञधूमराशिः निजं स्वीयं यशः प्राकृतिकस्वच्छां सुकीर्तिं शुक्लतरम् अतिशयेनोज्ज्वलं चकार विदधे। इह प्रथमचरणेनाजस्रं यज्ञसमूहसम्पादनेन धूमस्य दिगन्तव्यापित्वं ध्वनितम् । एवञ्च नियतक्रतुविधानात् धर्माचारतत्परताया अपि द्योतने गुणजनिता सुकीर्त्तिरधिका सञ्जातेति निष्कर्षः ।

इह दिशासु वधूत्वारोप आर्थः, अध्वरधूमसञ्चये केशरचनाविशेषत्वारोपस्तु शाब्द इत्येकदेशविवर्त्तिरूपकम्, धूमसञ्चये तमालपल्लवत्वारोपः, त्रय्यां वधूत्वारोपो निमित्तमिति परम्परितरूपकम् , तथा मलिनधूमसञ्चयेन शुक्लतरयशसो जननात् कारणगुणविपरीतकार्यगुणोत्पत्तेर्विषमालङ्कारश्च इति परस्परमेतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कार इति तत्त्वविदः ॥ १८ ॥

सरस्वतीति । सरस्वत्या भारतीदेव्याः पाणिसरोजसम्पुटेन करकमलद्वयेन मृष्टानि प्रमार्जितानि होमश्रमस्य होमादिकर्मसम्बन्धिक्लेशस्य शीकराम्भांसि प्रस्वेदजलानि यस्य तस्मात्, तथा यशसः सुकीर्त्तेः अंशुभिः मयूखैः शुक्लीकृतानि शुभ्रीकृतानि सप्त विष्टपानि भूप्रभृतीनि सप्त भुवनानि येन तस्मात् 'विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः, ततः चित्रभानोः सकाशात् 'बाण' इति बाणनामधेयः सुतः पुत्रः व्यजायत अभवत् । इह भारत्याः करकमलयुगलेन स्वेदजलबिन्दूनां प्रोञ्छनासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनात् प्रथमातिशयोक्त्यलङ्कारः, तथा कीर्त्तिराशिभिः सप्तभुवनानां शुभ्रीकरणासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनाद् द्वितीयातिशयोक्त्यलङ्कारश्चेत्युभयोः परस्परमपेक्षाभावेन संसृष्ट्यलङ्कार इत्यवधेयम् ॥ १९ ॥

सम्प्रति स्वाहङ्कारं परिहरति—द्विजेनेति । तेन द्विजेन ब्राह्मणेन बाणेन, अक्षतम् अविनष्टं कण्ठकौण्ठ्यं वचनव्यापारे गलस्य मान्द्यं यस्याः सा तया, महान् उत्कृष्टो यो मनोमोहः शिशुत्वेन चित्तवैकल्यं

दिग्वधूगणके भालप्रदेशमें अलकोंके समान तथा त्रयी (ऋग् यजुः साम) रूप वधूके कानमें तमालपल्लवके समान, उनके यज्ञोंके धूमकी पङ्क्तिने मलिन होनेपर भी उनके यशको अत्यधिक उज्ज्वल किया ॥ १८ ॥

सरस्वती देवी अपने करकमलद्वारा जिनके हवनपरिश्रमसे उत्पन्न पसीनेकी जलबिन्दुओंको पोंछ देती थी, तथा जिनकी कीर्तिराशिने समस्त संसारको उज्ज्वल कर दिया उन चित्रभानुसे 'बाण' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥

जिसके कण्ठकी जड़ता नष्ट नहीं हो सकी एवं चित्तके महामोहरूपी अन्धकारसे अन्धी अर्थात् सदसद्विवे-

---

१ मलीमसम् ।

लब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा ॥ २० ॥

—ooःoःoo—

तेन मलीमसा मलिना प्रशंसितुमयोग्या अत एव अन्धा सदसत्प्रतिपादनासमर्था तया, तथा अलब्धोऽप्राप्तो यो वैदग्ध्यविलासः वैदुष्यचातुर्यं तेन हेतुना मुग्धा मूढा तया वैदुष्यचातुर्यासत्त्वेनात्यन्तकोमलयेत्यर्थः 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इत्यमरः, धिया प्रज्ञया इयं मंदबुद्धिस्था कादम्बरीरूपा, गर्हितत्वे द्वयीं बृहत्कथां वासवदत्तां च अतिक्रान्तेति अतिद्वयी अधमत्वे अद्वितीया (अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीया) इत्यनेन समासः, व्यङ्ग्यार्थस्तु—उत्तमत्वे अद्वितीया कथा गद्यपद्यादिप्रबन्धः निबद्धा ग्रथिता; पूर्वमपरिणतबुद्ध्या विषयीकृत्य पश्चाद्विनिर्मितेत्यर्थः, एतेन शैशवचापल्यजातदोषा धीधनैर्मनीषिभिः शोधनीया इत्यभिप्रायः ।

इह—'छेको व्यञ्जनसङ्घस्य सकृत्साम्यमनेकधा । अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाप्यनेकधा ।
एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते ॥'

इति साहित्यदर्पणोक्तदिशा प्रथमचरणे छेकानुप्रासः, शेषे तु वृत्त्यनुप्रास इत्यनयोर्मिथोऽनपेक्ष्य स्थितत्वात् संसृष्टिरलङ्कारः ॥ २० ॥

—ooःoःoo—

चनारहित और वैदुष्य चातुर्य्यको नहीं प्राप्त करनेसे जो अत्यन्त मुग्ध हुई बुद्धि है उसी बुद्धिके अनुसारसे बाङ्ग० वाणभट्टने इस अद्वितीय काव्य कथाकी रचना की है ॥ २० ॥

—ooःoःoo—

कथा-मुखम्

शूद्रकवर्णनम्

आसीदशेष-नरपति-शिरः-समभ्यर्चित-शासनः पाकशासन इवापरः, चतुरुदधि-माला-मेखलाया भुवो भर्त्ता, प्रतापानुरागावनत-समस्त-सामन्तचक्रः, चक्रवर्त्तिलक्षणोपेतः, चक्रधर

अथ सम्प्रति कथां (१) प्रस्तौति—आसीदिति। आसीदिति भूतक्रियापदस्य 'राजा शूद्रको नाम' इति दूरस्थेन कर्त्तृपदेन सम्बन्धः। राजानं विशिनष्टि—अशेषेति। अशेषैः समग्रैः नरपतिभिर्महीपतिभिः (कर्त्तृभिः) शिरोभिरुत्तमाङ्गैः (करणैः) समभ्यर्चितं सादरतया गृहीतं शासनम् आदेशो यस्य स तादृशः। समस्तजनाज्ञापको न त्वाज्ञाकर इत्याशयः, अत एव अपरः सुरराजाद्भिन्नो द्वितीयः पाकशासन इन्द्र इव। इन्द्रो हि पाकनामानं दैत्यं हतवानिति पुराणीयवार्त्ता। पाकं शासितवानिति पाकशासनः 'विडौजाः पाकशासनः' इत्यमरः। इह शासनपदावृत्त्या यमकालङ्कारः, भावाभिमानिनी वाच्या द्रव्योत्प्रेक्षा चेत्युभयोः शब्दार्थालङ्कारयोरेकाश्रयानुप्रवेशरूपः सङ्करः। अत्र हि शासनपदावृत्त्या लाटानुप्रासो नाशङ्कनीयः, शक्यार्थाभिन्नत्वे केवलतात्पर्यतो व्यतिरेक एव तदभ्युपगमेन प्रकृते शक्यार्थस्यापि व्यतिरेकात्।

चतुरिति। चत्वारश्च भूमण्डलचतुर्दिक्षु विद्यमानास्त उदधयश्च समुद्राश्च चतुरुदधयस्तेषां माला श्रेणिः सैव मेखला काञ्ची अवधिरिति यावत् यस्यास्तथाभूतायाः, भुवो वसुधायाः भर्त्ता नायकः।

इह वसुधाशूद्रकयोर्नायकनायिकाव्यवहारसमारोपात् समासोक्तिरलङ्कारः।

प्रतापेति। प्रतापः कोशदण्डजतेजः अनुरागः प्रेम ताभ्याम् अवनतं वशीभूतं समस्तं कृत्स्नं सामन्तचक्रं स्वाधीननृपतिसमूहो यस्य स तादृशः। अन्यदपि लोहचक्रमग्निप्रतापातपादवनतं जायते। तथा च न केवलं तत्प्रभाववशाद्वशीभूताः सामन्तनृपतयः किन्तु तदीयप्रेमवशादपीति ध्वनितम्।

चक्रवर्त्तीति। चक्रवर्त्ती सार्वभौमस्तस्य लक्षणैश्चिह्नैः सामुद्रिकशास्त्रोक्तकरतललौहित्यादिभिः उपेतो युक्तः। तथा चोक्तं सामुद्रिकरहस्ये—

'अतिरक्तः करो यस्य ग्रथिताङ्गुलिको मृदुः। चामाङ्कुशाङ्कितः सोऽपि चक्रवर्त्ती भवेद् ध्रुवम्॥'

द्वितीय देवराज (इन्द्र) के समान शूद्रक नामका एक राजा था। उसकी आज्ञाको समस्त राजगण गौरवपूर्वक शिर झुकाकर सादर स्वीकार करते थे। वह चारों समुद्रोंकी मालारूप मेखलासे परिवेष्टित समस्त पृथ्वीका मालिक था। पराक्रममें अनुरागके कारण अधीनस्थ समस्त राजगण उसके वशीभूत हो गये थे। उसमें सम्राट् (शाहनशाह बादशाह) होनेके योग्य समस्त लक्षण थे। चक्रपाणि भगवान् विष्णुके समान उसके

---

(१) कथालक्षणं साहित्यदर्पणे—

'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्। क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्त्तनम्॥'

इह चतुर्विधान्येव मुक्तकादीनि गद्यानि सन्ति, किन्त्विहोत्कलिकाप्रायमेव बहुलम्। तथा च तत्रैव—

'वृत्तबन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च। भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्थकम्॥
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम्। अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तूर्यं चाल्पसमासकम्॥'

एतेन—'गद्यपद्यमयी चम्पूर्द्विधा श्लेषवती च या। राजवर्णनमादौ स्यान्नगरीवर्णनं ततः।
तया चामुकमन्यस्मिन्न तु तन्नृपु कुत्रचित्॥'

यथा—'शूलसम्बन्धो देवतायतनेषु न नृपु' इति नलचम्प्वाम्, तथात्रैवाग्रे 'चित्रकर्मसु वर्णसङ्करो न मनुष्येषु' इत्यादि चम्पूलक्षणसंयुक्तामेनां वदन्तः परास्ताः।

इव करकमलोपलक्ष्यमाण-शङ्ख-चक्र-लाञ्छनः, हर इव जितमन्मथः, गुह इवाप्रतिहतशक्तिः, कमलयोनिरिव विमानीकृतराजहंसमण्डलः, जलधिरिव लक्ष्मीप्रसूतिः, [२]गङ्गाप्रवाह इव भगीरथपथप्रवृत्तः, रविरिव प्रतिदिवसोपजायमानोदयः, मेरुरिव सकलोपजीव्यमानपाद-

पुनरपि तमेव विशिनष्टि—चक्रधर इति। चक्रमलातकं धरतीति चक्रधरो विष्णुरिव करकमले पाणिपद्मतले उपलक्ष्यमाणम् अवलोक्यमानं शङ्खचक्रलाञ्छनं शङ्खचक्राकाररेखोपरेखास्वरूपं चिह्नं पक्षे वस्तुतः शङ्खचक्रस्वरूपं चिह्नं यस्य स तादृशः। 'चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः।

इहोपमानोपमेयभावस्य साधारणधर्मस्य चोपादानात् पूर्णोपमा, चक्रपदस्यासकृदुक्तत्वाद् वृत्त्यनुप्रासश्चेत्युभयोः परस्परमनपेक्षत्वात्तिलतण्डुलवत्संसृष्टिः।

हर इवेति। हरति प्राप्तं[१] यः स हरो महेश्वरः तद्वदिव जितं पराभूतं मन्मथं कन्दर्पं येन स तथोक्तः एकत्र भाललोचनाग्निना नामशेषकरणात्, अपरत्रात्यन्तलावण्यवत्त्वादित्याशयः। उभयोः पूर्णसाम्यात्पूर्णोपमालङ्कारः।

गुह इवेति। गुहः कार्त्तिकेय इव 'सेनानीरग्निभूर्गुहः' इत्यमरः, अप्रतिहता केनाप्यकुण्ठिता शक्तिः प्रभावोत्साहमन्त्रजनितं सामर्थ्यम् आयुधविशेषश्च यस्य स तथोक्तः। उभयोः साम्यात् पूर्णोपमालङ्कारः।

कमलेति। कमलं भगवतः श्रीमहाविष्णोर्नाभिपद्मं योनिरुद्गमस्थानं यस्य स कमलयोनिर्विधातेव, विमानं देवयानं तत्स्वरूपीकृतं नभसि वाहनीकृतमित्यर्थः राजहंसानां चञ्चुचरणैरतिलोहितानां पक्षिविशेषाणां मण्डलं समूहो येन स तादृशः, 'व्योमयानं विमानोऽस्त्री' इति, 'राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैरतिलोहिताः' इति चामरः। राजपक्षे—विगतः पराजयेन विनष्टः मानोऽहङ्कारो यस्य तद्विमानं तथाभूतं कृतं राजहंसानाम् अत्युत्तममहीपतीनां मण्डलं गणं येन स तादृशः। अस्मिन् पक्षे राजहंसपदे राजानो हंसा इवेति 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे' इत्युपमितसमासः 'स्युरुत्तरपदे व्याघ्र' इत्याद्यमरात्तस्यात्युत्तराजवाचकत्वमिति बोध्यम्। उभयोः साम्यात् पूर्णोपमालङ्कारः।

जलधिरिवेति। जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति जलधिः समुद्र इव लक्ष्म्या रमायाः शोभाया वा प्रसूतिर्निर्गमस्थानं देवासुरैः समुद्रमन्थने चतुर्दशरत्नेष्वस्या अपि तस्मादेव निर्गमात् तया च जगदलङ्कृतमिति शोभाजनकत्वमित्याशयः। राजपक्षेऽपि लक्ष्मीर्धनसम्पत्तिः शोभा वा 'लक्ष्मीश्छाया च शोभायाम्' इति हैमः, तस्याः प्रसूतिरुद्भवस्थानम्, नीतिचातुर्यादित्याशयः। उभयोः साम्यात्पूर्णोपमालङ्कारः।

गङ्गेति। गङ्गायाः स्वर्धुन्याः प्रवाह ओघ इव भगीरथस्य तन्नामकसूर्यवंशीयभूपतिविशेषस्य पन्थाः स्वपितृणामुद्धाराय रथचक्रकृतमार्गः सदाचारसरणिश्च तत्र प्रवृत्तो लग्नः। उभयोः साम्यात्पूर्णोपमालङ्कारः।

पुरा किल सगरो नाम राजाश्वमेधयज्ञं यष्टुमश्वं मुमोच तच्च सुरराजोऽपहृत्य पाताले कपिलाश्रमे बबन्ध। ततश्च तमन्विष्यन्तः सगरसुताश्चतुर्दिक्ष्वनवलोक्य नखेन भुवो मृद उत्खन्य पातालं प्रविश्य तमृषिं भर्त्सितवन्तः। कुपितेन तेन मुनिनाभिशप्तास्ते भस्मीभूता अभूवन्। तत्सुतो भगीरथो हि तानुद्दिधीर्षुः गङ्गामानेतुं तपस्तप्तवान्। तेन तुष्टा हि सा हिमालयान्निर्गत्य भूमण्डले तद्रथचक्रनिर्मितमार्गे च प्रसरन्ती पातालं प्रविश्य तांस्तारयामास। राजा भगीरथो हि परमसदाचारवानासीदिति च पौराणिकी कथानुसन्धेया।

रविरिवेति। रविर्दिवाकर इव प्रतिदिवसं प्रतिदिनम् उपजायमान उत्पद्यमान उदय उदयगिरि-

करकमलमें शङ्ख और चक्र चिह्न देखनेमें आरहे थे। वह शङ्करके समान कामविजयी और कार्तिकेयके समान अप्रतिहत शक्तिवाला था। ब्रह्माने राजहंसोंको विमान अर्थात् अपना वाहन बनाया था, शूद्रकने श्रेष्ठ राजाओंको विमान-विशिष्ट सम्मान किया था या विपक्षीय राजा लोगोंको पराजित कर सबोंको अहङ्कार रहित किया था। जिस तरह समुद्र लक्ष्मी देवीका उत्पत्तिस्थान है, उसी तरह शूद्रक सम्पत्तियोंका उत्पत्तिस्थान था। गङ्गाजीकी

१. ...उपचीयमानोदयः। २. सकलभुवनो, सकलभुवनतलो...। 'बृहस्पतिरिव सकलशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः' इत्यधिकः पाठः क्वचित्।

१. हरस्पृष्टम्भुवनम्

च्छायः, दिग्गज इवानवरतप्रवृत्तदानार्द्रीकृतकरः, कर्त्ता महाश्चर्य्याणाम्, आहर्त्ता ऋतूनाम्, आदर्शः सर्व्वशास्त्राणाम्, उत्पत्तिः कलानाम्, कुलभवनं गुणानाम्, आगमः काव्यामृतरसानाम्, उदयशैलो मित्रमण्डलस्य, उत्पातकेतुरहितजनस्य, प्रवर्त्तयिता गोष्ठीबन्धानाम्, आश्रयो

सम्बन्धः सम्पत्तेरुद्रेकश्च यस्य स तथोक्तः। पूर्णोपमालङ्कारः।

मेरुरिवेति। मेरुः सुमेरुगिरिरिव, सकलैः समस्तैरर्थादेवैर्लोकैश्च उपजीव्यमाना सेव्यमाना पादानां प्रत्यन्तपर्वतानां छाया आतपाभावः, पादयोश्छाया कान्तिश्च यस्य स तथोक्तः। 'पादाः प्रत्यन्तपर्वताः' 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इति चामरः।

'एकविंशत्यमी स्वर्गा निर्मिता मेरुमूर्धनि'

इति साम्बपुराणात् मेरुसन्निकटगिरीणां छायासु सुराः सञ्चरन्तीति पौराणिकी वार्त्ता। पूर्णोपमालङ्कारः।

दिग्गज इति। दिग्गज ऐरावतप्रभृतिको दिङ्नाग इव 'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥' इत्यमरः।

अनवरतं सततं प्रवृत्तं जातं यद्दानं मदजलं जलसहितं धनादिदानञ्च तेनार्द्रीकृतः क्लिन्नीकृतः करः शुण्डो हस्तश्च यस्य सः। 'मदो दानं प्रवृत्तिश्च' 'आर्द्रं सार्द्रं क्लिन्नं तिमितं स्तिमितं समुन्नमुत्तं च' इति चामरः। पूर्णोपमालङ्कारः।

कर्त्तेति। महाश्चर्याणाम् अतिप्रबलरिपुपराजयाद्यद्भुतावहानन्यकृतकार्याणां कर्त्ता निष्पादकः। ऋतूनां यज्ञानाम् आहर्त्ता अनुष्ठाता। सर्वशास्त्राणां सकलवाङ्मयवेदादीनाम् आदर्शो दर्पणः, 'दर्पणे मुकुरादर्शौ' इत्यमरः, यथा हि दर्पणे संक्रान्ताः पदार्थाः समवलोक्यन्ते तथा तस्मिन्नपि राजनि सर्वेषां सच्छास्त्राणां निरन्तराभ्यासवशाज्जनैः समवलोक्यन्ते स्मेत्याशयः। कलानां (१) नृत्यगीतादिचतुष्षष्टिकलाविद्यानाम् उत्पत्तिः शिक्षाप्रदानाज्जन्मस्थानम् कलापदेन द्विसप्ततीनां ग्रहणमिति व्याख्यानं हेयमेव। गुणानां दयादाक्षिण्यगाम्भीर्यादीनां कुलभवनं वंशपरम्परागताश्रयस्थानम्, तस्मिन्नेव तेषां स्थिरेण विद्यमानत्वादित्यभिप्रायः। काव्यानां दृश्यश्रव्यादीनां ये अमृतरसाः सुधातुल्यशृङ्गारादिरसास्तेषाम् आगम उद्भवस्थानम्, कविराजत्वेनोत्कृष्टकाव्यसम्पादनादित्याशयः। इह एकस्य महीपतेर्विषयभेदेन बहुविधोल्लेखादुल्लेखालङ्कारः।

उदयेति। मित्राणि सखायस्तेषां मण्डलं समूहस्तस्य उदयशैलोऽभ्युन्नतेः स्थानम्। अन्यत्र मित्रमण्डलस्य सूर्यबिम्बस्य उदयशैलः पूर्वाद्रिः। दिवाकरो यथा पूर्वाद्रौ उदयं प्राप्नोति तथा मित्रगणस्तदाश्रिते सत्यभ्युन्नतिं प्राप्नोति भावः। इह श्लेषालङ्कारः।

उत्पातेति। अहितजनस्य वैरिजनस्य उत्पातकेतुः विनाशव्यञ्जको धूमकेतुः। तत्प्राकट्य एव तेषां क्षयारम्भादित्याशयः। इह नृपतौ केवलोत्पातकेतुत्वारोपात् केवलं निरङ्गं रूपकमलङ्कारः।

धारा जिस तरह भगीरथ (सगरपौत्र) के रथचक्रमार्गमें प्रवाहित हुई, शूद्रक उसी तरह भगीरथसे आचरित धर्ममार्गमें चलता था। जिस तरह भगवान् सूर्यका नित्य उदय होता है, उसी तरह शूद्रकका नित्य अभ्युदय होता था। देवता लोग जिस तरह सुमेरुपर्वतके समीपवर्त्ती दूसरे-दूसरे पर्वतकी छाया आश्रयण करते थे, वहाँकी प्रजायें भी उसी तरह शूद्रकके चरणोंकी छाया आश्रित करती थीं। दिग्गजोंके शुण्ड (सूँड़) जिस तरह कपोलच्युत मदजलसे आर्द्र रहता है, शूद्रकका हाथ भी उसी तरह हर समय दानजलसे आर्द्र (गीला) रहता था। वह अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य और यज्ञानुष्ठान करता था। इस तरह समग्र शास्त्रोंका आदर्श, नृत्यगीतादि कलाविद्याओंका शिक्षा देनेवाला, हर समय दयादाक्षिण्यादि गुणोंका आधार और अमृततुल्य काव्यरसोंका उत्पत्तिस्थान था। जैसे उदयाचल सूर्यका उदयस्थान है, वैसे वह मित्रगणका उत्पत्तिस्थान एवं विपक्षियों के लिए धूमकेतु (अशुभसूचक

(१) नृत्यगीतादिचतुःषष्टिकलानां नामानि अस्मत्संपादितसाहित्यदर्पण 'लक्ष्मी' टीकायाः प्रथमसंस्करणस्य प्रथमपरिच्छेदेऽवगन्तव्यानि, विस्तरभयाच्च नेहोपन्यस्तानि।

रसिकानाम्, प्रत्यादेशो धनुष्मताम्, धौरेयः साहसिकानाम्, अग्रणीर्विदग्धानाम्, वैनतेय इव विनतानन्दजननः, वैन्य इव चापकोटिसमुत्सारितसकलारातिकुलाचलो राजा शूद्रको नाम।

नाम्नैव यो निर्भिन्नारातिहृदयो विरचितनरसिंह-रूपाडम्बरम्, एकविक्रमाक्रान्तसकलभुवनतलो विक्रमत्रयायासितभुवनत्रयं जहासेव वासुदेवम्।

प्रवर्तयितेति। गोष्ठीबन्धानां मधुरकथापरिषत्स्थापनानां प्रवर्त्तयिता प्रवर्त्तकः। प्रतिस्थानं मधुरकथापरिषत्स्थापक इत्यर्थः। रसिकानां विदग्धजनानां रसज्ञातॄणामित्यर्थः, आश्रयः अवलम्बनस्थानम्।

प्रत्यादेश इति। धनुष्मतां धनुर्धारिणां प्रत्यादेशो निराकृतिः प्रशस्तधनुर्धरश्रेष्ठ इत्यर्थः। 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' इत्यमरः।

धौरेय इति। साहसिकानां संग्रामादौ हठविधायिनां मध्ये धौरेयो धुरन्धरो मुख्य इति यावत्। 'धुरो यड्ढकू' इति ढकि धौरेय इति रूपम्।

अग्रेति। विदग्धानां पण्डितानां मध्ये अग्रणीरग्रगण्यः। वैनतेयो गरुड इव विनतेभ्यः कृतप्रणामेभ्य आनन्दस्य हर्षस्य जननः सम्पादकः। सोऽपि विनतायाः स्वमातुः आनन्दजननः हर्षकारकः। वैन्यो वेनराजात्मजः पृथुरिव चापकोट्या कोटिसंख्यककार्मुकैः अगणितधनुर्धरसैनिकैरित्यर्थः, पक्षे—चापो धनुस्तस्य कोटिरग्रभागस्तेन समुत्सारिता विनाशिताः स्थानान्तरं प्रापिताश्च सकलारातयः समग्ररिपवः कुलाचलाः महेन्द्रादयः कुलपर्वता इव येन स तथोक्तः। कुलपर्वताश्च—'महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः॥' उभयोः साम्यात्पूर्णोपमालङ्कारः। पुरा किल पृथुः पर्वताकीर्णां पृथ्वीं समवलोक्य तत्समतलीकरणप्रवृत्तो धनुःकोट्या पर्वतानुत्सारयामासेति पौराणिकी वार्त्तानुसन्धेया।

नाम्नैवेति। यः शूद्रकः नाम्नैव निजनामश्रवणमात्रेणैव निर्भिन्नानि भयोत्पादनेन विदारितानि अरातीनां शत्रूणां हृदयानि वक्षांसि येन स तादृशः। विरचितः हिरण्यकशिपुहृदयभेदनाय विहितो नरसिंहस्वरूपधारणस्य आडम्बर आटोपो दीर्घव्यापार इति यावत्, येन स तं तादृशम्। एकेनाद्वितीयेन विक्रमेण, पराक्रमेण आक्रान्तम् अधीनीकृतं सकलं समस्तं भुवनतलं विष्टपतलं येन स तादृशः 'विष्टपं भुवनत्रयम्' इत्यमरः। विक्रमः पादन्यासः तस्य त्रयं त्रितयं तेन आयासितं खिन्नं कृतं भुवनत्रयं विष्टपं येन तं तथोक्तं वासुदेवं श्रीपतिं जहासेव हसति स्मेव। अयमाशयः—महीपतिरयं निजनामश्रवणमात्रेणैव शत्रूणां वक्षो भेदितवान्, वासुदेवस्तु शत्रुवक्षोभेदनाय नृसिंहावताराडम्बरं धृतवान्, तथा महीपतिना चानेनानायासेनैकेनैव पराक्रमेण चतुर्दशभुवनानि स्वाधीनीकृतानि, वासुदेवेन तु त्रिभिरेव विक्रमैः केवलानि त्रीण्येव भुवनान्याक्रान्तानीति योऽयं महीपतिकृतो वासुदेवोपहासः स न्याय्य एवेति।

पुच्छल तारा आदि) स्वरूप था। देश और नगरमें सभा स्थापन करता था और वह रसिक लोगोंका आश्रय, धनुर्धारियोंकी उत्तेजना करने वाला, साहसिकोंके बीच प्रधान और चतुर लोगोंके बीच अग्रगण्य था, इस प्रकार गरुड़ जैसे अपनी माता विनताका आनन्ददायक था, वैसे वह वशीभूत लोगोंका आनन्ददायक था और राजा पृथुने जिस तरह धनुषके अग्रभागसे महेन्द्रादि कुलपर्वतोंको उखाड़ा था, [पहले पृथ्वी पर्वतोंसे घिरी हुई थी और उसपर शस्यादि उत्पन्न नहीं होते थे। तब राजा पृथुने पर्वतोंको हटाकर उन्हें समतल कर पूर्ण समृद्धिशाली बना दिया] उसी तरह उसने अगणित धनुर्धर सेनाद्वारा समस्त विपक्षियोंको उखाड़कर पृथ्वीको समृद्ध और सुशान्त कर दिया था।

राजा शूद्रकने केवल अपने नामसे ही भयोत्पादनपूर्वक विपक्षियोंका हृदय विदीर्ण कर डाला था और इस तरह केवल एक पराक्रममें ही समस्त पृथ्वीको अपने अधीन कर लिया था, इसलिए हिरण्यकशिपुके हृदय विदारण करनेवाले नरसिंहका आडम्बर करनेवाले और तीन पादक्षेपसे त्रिभुवन नापनेवाले वामनावतार वासुदेव पर वह मानो उपहास करता था।

---

१. वैन्यः, पृथुः। २. समुत्सारितारातिं'''। ३. नारसिंह'''। ४. आयासितम् आयासिमानम्। ५. हसति स्मेव।

अतिचिरकाललग्नमतिक्रान्तकुनृपतिसहस्रसम्पर्ककलङ्कमिव क्षालयन्ती यस्य विमले कृपाणधाराजले चिरमुवास राजलक्ष्मीः[२] ।

यश्च मनसि धर्म्मेण, कोपे यमेन, प्रसादे धनदेन, प्रतापे वह्निना, भुजे भुवा, दृशि श्रिया, वाचि सरस्वत्या, मुखे शशिना, बले मरुता, प्रज्ञायां सुरगुरुणा, रूपे मनसिजेन, तेजसि सवित्रा च वसता सर्वदेवमयस्य प्रकटितविश्वरूपाकृतेरनुकरोति भगवतो नारायणस्य ।

विष्णुना बलिं विजेतुं वामनरूपमङ्गीकृत्य छद्मना तं भुवनत्रयं विक्रमत्रयेणासादित इति पौराणिकी वार्त्ता । इहोपमानाद्वासुदेवादुपमेयस्य महीपतेराधिक्यवर्णनाद्व्यतिरेकालङ्कारः । जहासेवेति क्रियोत्प्रेक्षा चेति उभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

अतिचिरकालेति । अतिचिरकालो भूयानतीतवेलः तेन लग्नम् आत्मनि संयुक्तम्, अतिक्रान्तं व्यतीतं यत् कुनृपतिसहस्रं कदर्यनरपतिसमूहः तस्य सम्पर्केण सम्बन्धेन यः कलङ्को दूषितचिह्नं पापञ्च तं तथोक्तम्, क्षालयन्तीव प्रक्षालनेन प्रमार्जयन्तीव यस्य महीपतेः (शूद्रकस्य) विमले स्वच्छे कृपाणधाराजले खड्गधारारूपे जले चिरं बहुसमयं यावत् लक्ष्मीः राज्यश्रीः उवास वसतिं चक्रे अन्योऽपि लोकः पङ्कादिलग्नं शरीरं जलेन क्षालयति। खड्गबलेनैव राजा राज्यलक्ष्मीं स्वाधीनीकृतवानित्याशयः। इह क्षालयन्तीवेति क्रियोत्प्रेक्षणात् क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः, 'कृपाणधाराजल' इत्यत्र निरङ्गं रूपकञ्चेत्युभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

यश्चेति । चकारोऽत्र किञ्चेत्यर्थे । यो राजा (शूद्रकः) इति दूरस्थायाम् 'अनुकरोति' इति क्रियायामन्वेति । मनसीत्यादीनि सप्तम्यन्तपदानि दूरस्थवसतेत्यस्याधिकरणप्रतिपादकानि करणतृतीयान्तपदानि धर्मेणेत्यादीनि च वसतेत्यस्य कर्त्तृविशेष्याणि सन्तीति विभावनीयम् । वसतापदस्य च यथालिङ्गं सर्वत्र सम्बन्धो विधेयः । तथा च मनसि हृदये धर्मेण पुण्येन वसता वासं विदधता, सर्वदैव धर्मचिन्तनादिति भावः । कोपे क्रोधे यमेन धर्मराजेन, सापराधिनां तत्क्षणमेव प्राणहरणादित्याशयः। प्रसादे अनुग्रहे धनदेन कुबेरेण, परिचर्यादिना प्रसन्ने सति मनोरथाधिकसमर्पणादित्यभिप्रायः । प्रतापे कोशदण्डजे तेजसि वह्निना अग्निना, सकलवैरितापकत्वादित्याशयः । भुजे बाहौ भुवा मेदिन्या, राज्यभारवहनसमर्थत्वादिति भावः । दृशि लोचने श्रिया लक्ष्म्या, सानुरागदृष्टिमात्रेणैव तत्सम्भवादित्याशयः । वाचि वचने सरस्वत्या गीर्वाण्या 'ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती' इत्यमरः, निरन्तरगद्यपद्याद्यनेकप्रबन्धनिर्माणादित्याशयः । मुखे आनने शशिना चन्द्रेण तद्दर्शनात्सकलजनानन्दकत्वाच्चेति भावः । 'आननं लपनं मुखम्' इत्यमरः । बले शक्तौ मरुता वायुना, अतिबलशालित्वादिति भावः। प्रज्ञायां मतौ सुरगुरुणा, बृहस्पतिना अनुपमबुद्धिशालित्वादित्यभिप्रायः । 'धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः' 'बृहस्पतिः सुराचार्यः' इति चामरः । तथा रूपे सौन्दर्ये मनसिजेन अनङ्गेन, मानिनीमानापहरणादित्याशयः। तेजसि प्रतापलक्षणे सवित्रा सूर्येण, विपक्षिणां दुर्निरीक्षणत्वादिति भावः । 'तपनः सविता रविः' इत्यमरः । सर्वे च ते देवाश्च सर्वदेवास्तत्स्वरूपः सर्वदेवमयस्तस्य तथोक्तस्य । अत्र 'प्राचुर्यविकारप्राधान्यादिषु' इत्यनेनादिपदात्स्वरूपार्थेऽपि मयट् प्रत्ययो ज्ञेयः। प्रकटिता प्रकाशिता विश्वरूपा 'पश्यामि देवांस्तव देव ! देहे' इत्यर्जुनोक्ता आकृतिः स्वरूपं येन स तस्य तथोक्तस्य श्रीमद्भागवते ११ स्कन्धे-'सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किञ्चभूतं प्रणमेदनन्यः' इति । भग ऐश्वर्यादिरस्यास्तीति भगवान् तस्य भगवतः नृणां समूहो नारं तस्य जीवसमुदायस्येत्यर्थः अयनं गतिरिति

पहले अधिक दुर्वृत्त राजगण राजत्व कर गये, उन लोगोंके संसर्गमें बहुत समय तक रहनेसे जो कलङ्क अपने ऊपर लग गया था, राजलक्ष्मीने मानो उसी कलङ्कको धोनेके लिए राजा शूद्रकके खड्गधारा जलमें बहुत दिनों तक अपना निवास किया था ।

अपने हृदयमें धर्मका, क्रोधमें यमका, अनुग्रहमें कुबेरका, प्रतापमें अग्निका, भुजामें पृथ्वीका, नेत्रमें लक्ष्मीका, वचनमें सरस्वतीका, मुखमें चन्द्रमाका, बलमें वायुका, बुद्धिमें बृहस्पतिका, सौन्दर्यमें कामदेवका, एवं तेजमें सूर्यका निवास होनेके कारण वह शूद्रक सर्वदेवमय विश्वरूपधारी भगवान् विष्णुका अनुसरण करता था ।

---

१. 'विमले' इति पाठः क्वचिन्न विद्यते । २. लक्ष्मीः ।

यस्य च मदकल-करि-कुम्भ-पीठपाटनमाचरतो लग्न-स्थूलमुक्ताफलेन, दृढ-मुष्टि-निष्पीडन-निष्ठ्यूत-धाराजलविन्दु-दन्तुरेणेव कृपाणेनाकृष्यमाणा सुभटोरःकपाट-घटित-कवच-सहस्रान्धकार-मध्यवर्त्तिनी करि-करट-गलित-मदजलासार-दुर्दिनास्वभिसारिकेव समरनिशासु समीपमसकृदाजगाम राजलक्ष्मीः।

यस्य च हृदयस्थितानपि पतीन् दिधक्षुरिव प्रतापानलो वियोगिनीनामपि रिपुसुन्दरीणामन्तर्जनितदाहो दिवानिशं जज्वाल।

नारायणो महाविष्णुस्तस्य 'कृञः प्रतियत्ने' इत्यनेन कर्मणि षष्ठी। अनुकरोति तत्सादृश्यं प्राप्नोतीत्यर्थः। अत्रातीते लट्। इहौपम्यवाचकपदाभावादर्थोपमालङ्कारः।

यस्य चेति। किञ्चेति चार्थः। यस्य राज्ञः (शूद्रकस्य) समीपमित्यत्र सम्बन्धः। मदेन दानजलेन कलानि मनोज्ञानि यानि करिणां हस्तिनां कुम्भपीठानि शिरःपिण्डफलकानि तेषां पाटनं विदारणम् आचरता कुर्वता, अत एव लग्नानि संयुक्तानि स्थूलानि विपुलानि हस्तिसम्बन्धीनि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि यस्मिंस्तेन तथोक्तेन, दृढमुष्टिना यन्निपीडनं धारणं तेन निष्ठ्यूता इव निर्गता इव धारा निशितभागा एव जलविन्दवः जलकणपङ्क्तीः तैर्दन्तुरेण विषमेण उच्चावचेन कृपाणेन खड्गेन, आकृष्यमाणेव समन्ताद्गृह्यमाणेव, यद्यपि दृढमुष्टिरित्यत्र दृढशब्दस्य प्रियादिषु पाठात् पुंवद्भावनिषेधः प्राप्नोति तथापि दार्ढ्यमात्रविवक्षया तन्निषेधाभावो ज्ञेयः। तथा सुभटानां प्रशस्तसैनिकानाम् उरांसि वक्षांस्येव कपाटानि तेभ्यो विघटितानि वियोजितानि यानि कवचसहस्राणि लौहवर्मसमुदायास्तान्येव नैल्यतुल्यत्वात् अन्धकारास्तमांसि तेषां मध्यवर्त्तिनी अन्तःपातिनी, राजलक्ष्मीः शत्रुराजश्रीः, करिणां हस्तिनां करटानि कपोलस्थलानि तेभ्यो गलितं निःसृतं यन्मदजलं दानवारि तस्य आसारो धारासम्पातस्तेन दुर्दिनं मेघजनितं तमः यासु तथोक्तासु, गाढतमोऽभिव्यञ्जनायैतदभिहितम् 'मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्' इत्यमरः, समरा युद्धा निशा रात्रय इव तासु अभिसारिका ध्वान्ते दत्तसङ्केता वनितेव यस्य शूद्रकस्य समीपम् अन्तिकम् असकृत् संग्रामस्यानेकत्वात् मुहुर्मुहुः आजगाम आगतवती वशवर्त्तिनी जातेत्यर्थः। अभिसारिकालक्षणं यथा दर्पणे—

'अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा। स्वयं वाऽभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका॥'

इह 'आकृष्यमाणेव' इति क्रियोत्प्रेक्षणात् क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः, उरःकपाटेत्यत्र कवचसहस्रेत्यत्र च रूपकद्वयम्, अभिसारिकेवेत्युपमालङ्कारश्चेति परस्परमेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

यस्येति। अत्रापि चः किञ्चार्थे। किञ्च यस्य महीपतेः (शूद्रकस्य) प्रतापः कोषदण्डजं तेजस्तदेव अनलो वह्निः, वियोगिनीनामपि पूर्वमेव स्वामिमरणात् विरहिणीनामपि, स्वामिमरणशङ्कया संयुक्तवतीनां

महाराज शूद्रक युद्धमें उपस्थित हो तलवार चलाकर शत्रुगणके मतवाले हाथियोंका मस्तक विदारण कर देता था। जिससे बड़ी-बड़ी मोतियोंके दाने तलवारमें चिपक जाते थे, तब दृढ़मुष्टिसे निष्पीड़न कर जिस समय धारारूप जलविन्दु निकलनेसे तलवारकी धारा ऊँच नीच हो जाती थी उस समय मानो उससे आकर्षित की गई हो, इधर जब बड़े-बड़े योद्धाओंके कपाट (फाटक) के तरह फैले हुए वक्षःस्थल (कलेजे) में लोहेके कवचोंसे इस प्रकारकी तलवारसे आकर्षणकर वीरगणके विशाल वक्षःस्थलों पर धारण किये गये सहस्रों कवचोंमें निवास करनेवाली राज-लक्ष्मी—हाथियोंके कपोलस्थलोंमेंसे मदजलकी वर्षा होनेके कारण सघन हुए संग्राममें इस प्रकार पुनः पुनः उसके निकट आकर आत्मसमर्पण कर जाती थी, जैसे वर्षासे घनघोर हुई अँधेरी रात्रियोंमें अभिसारिका अपने प्रियतमके निकट जाती है।

जिस शूद्रक राजाकी प्रतापाग्नि विरहिणी शत्रुस्त्रीगणके हृदयमें सन्ताप उत्पन्न कर उनके हृदयमें स्थित, पतिदेवोंको जलानेकी इच्छासे ही मानो रातदिन जला करती थी।

---

१. पारन् आचरतः, विदधतः। २. दृढ। ३. 'निपीडनात् निष्ठ्यूततलः'। ४. 'जलदन्तुरेण' ५. विघटित। ६. करतट। ७. सकृदगात्। ८. धक्षुरिव। ९. दाघो।

यस्मिंश्च राजनि जितजगति परिपालयति महीं चित्रकर्म्मसु वर्णसङ्कराः, रतेषु केशग्रहाः, काव्येषु दृढबन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ताः, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः, ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः, चापेषु गुणच्छेदाः, गवाक्षेषु

किं वक्तव्यमित्याशयः, रिपुसुन्दरीणां वैरिवनितानाम् अन्तर्मनसि जनित उत्पादितः दाहो दग्धियेन स तथोक्तः, हृदयस्थितानपि ताभिर्निरन्तरध्यानेन अन्तवर्त्तिनामपि भर्तॄन् पतीन् दिधक्षुर्दग्धुमिच्छुरिव दिवानिशं रात्रिन्दिवं जज्वाल प्रदीप्तो बभूव। वियोगिनीनामपीत्यनेन दाहायोग्यत्वं व्यञ्जितम्। एतेन यत्प्रतापो हृदयवर्त्तिनमपि रिपुगणं सोढुमसमर्थं इति तत्प्रतापातिशयवर्णनेन महीपतेरतिशयवर्णनम्, तथा च राजायं महाप्रतापशालीति निष्कर्षः। दिधक्षुरिति दधातेः सन्नन्तात् 'सनाशंसभिक्ष उः' इति उः।

इह 'प्रतापानल' इत्यत्र केवलं निरङ्गं रूपकमलङ्कारः, 'दिधक्षुरिव' इत्यनेन क्रियोत्प्रेक्षणात् क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारश्चेत्युभयोः परस्परमङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

पुनस्तदतिशयमेव वर्णयति-यस्मिंश्चेति। यस्मिन् महीपतौ (शूद्रके) जितजगति निर्जितसंसारे महीं भुवं पालयति रक्षणं विदधति शासति सतीत्यर्थः, एते विषया एतेषु स्थलेषु विद्यमाना आसन् न प्रजानामित्यग्रिमेण सर्वत्र सम्बन्धः। तान्येव दर्शयति-चित्रेत्यादि। चित्रकर्मसु आलेख्यनिर्माणेषु वर्णानां नीलपीतादीनां सङ्कराः परस्परसम्बन्धाः, न तु जनतासु अनुलोमविलोमेन वा ब्राह्मणादिभ्यः क्षत्रियादीनां तद्वैपरीत्येन वोत्पत्तिरूपा वर्णसङ्कराः दुराचरणाद्यभावादिति भावः। रतेषु मैथुनेषु केशग्रहाः सुगमविधानाय कचाकर्षणानि, न तु कलहेषु तदनुपलम्भात्। काव्येषु कविकर्मसु दृढबन्धाः समासाधिक्यादिना पदानां प्रगाढसन्निवेशाः, न तु कारागृहेषु दृढबन्धा अपराधाभावात्। शास्त्रेषु वेदोपबृंहितधर्मशास्त्रादिषु सिद्धान्तेषु चिन्ता मनोव्यापारः, न तु उदरपोषणादिषु समस्तविषयविद्यमानत्वात्। स्वप्नेषु स्वप्नदशायां विप्रलम्भाः दृष्टवस्तूनां झटिति तिरोधानात् वञ्चनाः, न तु अन्यकालेषु सर्वत्र यथार्थज्ञानात्। छत्रेषु आतपत्रेषु कनकदण्डाः सुवर्णयष्टयः, न तु जनेषु कनकदण्डाः दण्डेन सुवर्णपरिग्रहः, स्वकीययथापद्धत्या तेषां विद्यमानत्वेनापराधाभावादित्याशयः। ध्वजेषु पताकासु प्रकम्पाः प्रकर्षेण चाञ्चल्यम्, न तु जनस्वान्तेषु भीतेरसत्त्वादिति भावः। 'ध्वजं चिह्नं पताकायां ध्वजः शौण्डिकशेफसोः। खट्वाङ्गे च'.....इति विश्वः। गीतेषु गानेषु रागाः वसन्तादिरागाः शास्त्रीया धनाश्रीप्रभृतयो देशीयाश्च तेषां विलसितानि व्यवहाराः, न तु जनेषु रागा मात्सर्यादयस्तेषां विलसितानि द्वेषाद्याचरणानि समेषामेव अत्यन्तसदाचरणसम्पन्नत्वादिति तात्पर्यम्। 'रागः क्लेशादिके रक्ते मात्सर्ये लोहितादिषु' इति त्रिकाण्डकोशः। करिषु गजेषु मदो दानं तस्य विकारः तेजोजनितविकृतयः, न तु लोकेषु मदो रागोऽहङ्कारो वा तस्य विकारा विचेष्टितानि सर्वस्मिन्समये आप्तोपदेशामृतपानमनस्कत्वेन तेषामनुपलम्भादिति भावः। चापेषु धनुःषु गुणस्य मौर्वीरूपस्य रज्जोः छेदः कर्त्तनम्, न तु जनेषु गुणानां दयादाक्षिण्यादीनां छेदा विलोपाः, तथाविधगुणानां सर्वदोपलम्भत्वादित्याशयः। गवामक्षीवेति विग्रहे 'अक्ष्णोऽदर्शनात्' ५।४।७६ इति पा० सूत्रेणाच्। गावो जालानि किरणा वाक्षन्ति व्याप्नुवन्ति एनमनेन वेति विग्रहे 'अक्षू व्याप्तौ' इत्यस्माद्धातोः अकर्त्तर्यर्थे घञि सति गवाक्ष इति 'वातायनं गवाक्षः'

जिस समय राजा शूद्रक संपूर्ण जगतको जीतकर पृथ्वीका परिपालन करता था; उस समय प्रजावर्गका चित्रकर्ममें ही वर्णसङ्कर (नील-पीतादिरूपोंका संमिश्रण) था, न कि समाजमें कोई वर्णसङ्कर होता था। केशोंका खीचना सम्भोगकाल ही में था, न कि संग्राममें; दृढ़बन्धन (प्रगाढ़ खड्गबंध आदिकी रचना) काव्यके अन्दर ही था, न कि कारागार (जेल) का दृढ़बन्धन था; शास्त्रोंमें ही चिन्ता बनी रहती थी, न कि उदर पोषणादिमें चिन्ता रक्खी जाती थी; स्वप्न समयमें ही प्रतारण (ठगना) होता था, न कि दूसरे समयमें; सोनेका दण्ड छत्रमें ही रहता था, न कि किसीको अर्थदण्ड होता था; कम्पन (धड़कन) पताकामें ही होती थी, न कि लोगोंका मन कम्पित होता था; गीतमें ही वसन्तादिरागोंके व्यवहार होते थे, न कि किसीके प्रति कोई राग (द्वेषाचरण वा इन्द्रिय-विकार) करता था; हाथियोंमें ही मद-विकार उत्पन्न होता था, न कि किसीके हृदयमें अहङ्काररूप-विकार होता था; धनुषसे ही गुण (रज्जु) छेद होता था, न कि लोगोंमें दया दाक्षिण्यादि गुणोंका लोप होता था; गवाक्ष (खिड़की) में ही जाल रन्ध्र रहता था, न कि दूसरे जगह जालरन्ध्र (वञ्चना पद्धति) रहता था, ... और लोहेके कवचोंमें ही कलङ्क रहता था, न कि किसी व्यक्तिका चरित्र कलङ्कित रहता था ...

१. पालयति। २. चिन्ता।



जालमार्गाः, शशिकृपाणकवचेषु कलङ्काः, रतिकलहेषु दूतसम्प्रेषणानि,[1] सार्य्यद्येषु शून्यगृहाः न प्रजानामासन् ।

यस्य च परलोकाद्भयम्, अन्तःपुरिकालकेषु[2] भङ्गः, नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु करपीडनम्,[3] अनवरतमखाग्निधूमेनाश्रुपातः,[4] तुरगेषु[5] कशाभिघातः, मकरध्वजे चापध्वनिरभूत्[6] ।

तस्य च राज्ञः कलिकाल-भयपुञ्जीभूत-कृतयुगानुकारिणी[7] त्रिभुवनप्रसवभूमिरिव

इत्यमरः, तेषु जालमार्गा वातागमनाय क्षुद्रक्षुद्रपथाः, न तु जनेषु जालमार्गाः छद्मकल्पनामार्गाः समेषामेव सम्प्रकृतिकत्वादिति भावः। शशी चन्द्रः, कृपाणम् असिः, कवचो लोहनिर्मितवर्म्म एतेषां द्वन्द्वः एषु कलङ्काश्चिह्नानि, तत्र चन्द्रे कलङ्को मृगलाञ्छनरूपः स्वाभाविकः, कृपाणकवचयोस्तु अधिकदिनपर्य्यन्तं व्यवहाराभावे मालिन्यरूपौ कलङ्कौ, न तु जनाचरणेषु कलङ्का कुलमालिन्यादिजनका दुराचरणादिदूषितव्यवहाराः सर्वेषामेव सदाचरणशीलत्वादित्याशयः। रतिकलहेषु कामविषयकविवादेषु दूतसम्प्रेषणानि सञ्चारकगमनानि, न तु युद्धेषु प्रबलविपक्षिणोऽविद्यमानत्वादिति भावः। सारयः क्रीडिन्य, अथवा विभीतकाः तेषु गुटिकाक्षेत्रेष्वित्यर्थः शून्यगृहाः गुटिकारहितस्थानानि, न तु ग्रामेषु लोकशून्यसदनानि केनापि प्रकारेण राजदेयकरजनितबाधाद्यभावादित्यभिप्रायः। इह 'वर्णसंकरा' इत्यारभ्य 'शून्यगृहाः' इत्येतेषु चतुर्दशसु श्लेषानुप्राणितार्थपरिसंख्यालङ्कारस्य मिथोऽनपेक्षत्वेन विद्यमानत्वात् संसृष्टिः।

यस्य चेति। यस्य च महीपतेः (शूद्रकस्य) परलोकात् जन्मान्तरादेव भयम्, न तु शत्रुवर्गात् तस्मात् स्वस्यातिशयबलशालित्वमिति तात्पर्यम्। भयमित्यादेर्हि अभूदित्यग्रिमक्रियया सर्वत्र सम्बन्धोऽवसेयः। अन्तःपुरे भवा आन्तःपुरिकाः भवार्थे ठक् प्रत्ययः, तासाम् अन्तःपुरवासिनीनां कामिनीनां कुन्तलेषु अलकेषु चूर्णकुन्तलेषु 'अलकाश्चूर्णकुन्तलाः' इत्यमरः, भङ्गः कुटिलता, न तु समरेषु भङ्गः पराजयः अतिप्रबलसैन्ययुक्तत्वादिति भावः। नूपुरेषु हंसकेषु मुखरता शब्दायमानता, न तु लोकेषु मुखरता वाचालता समेषामेव प्रियम्वदित्वादित्याशयः, विवाहेषु उपयमनेषु करपीडनं पाणिग्रहणं न लोकेषु करो राजदेयद्रव्यं तेन पीडनं तद्ग्रहणाय बाधनं जनानां समृद्धिशालित्वेन यथोचितसमय एव तत्समर्पणात् नृपतेश्च परिस्थित्यनुकूलेन कार्यविधानादित्याशयः। अनवरतं निरन्तरं मखाग्निधूमेन क्रतुवह्निधूमेन अश्रुपातो नेत्रजलनिःसरणं न तु शोकादिना असमयप्राणवियोगाद्यभावादिति भावः। तुरगेषु घोटकेषु कशाभिघातः चर्मदण्डप्रहारः, न तु दस्युप्रभृतिषु तेषामसद्भावात्। मकरध्वजे कामदेवे चापस्य धनुषो ध्वनिः जनमानसवशीकरणाय टङ्कारः, न तु सैनिकजने प्रायेण सङ्ग्रामाद्यभावादित्यभिप्रायः। इहापि पूर्ववदेव ससार्थपरिसंख्यालङ्काराः, अपि च 'मकरध्वजे चापध्वनिः' इत्यत्र असम्बन्धे सम्बन्धरूपातिशयोक्तिरित्येतेषां परस्परनैरपेक्ष्येण संसृष्टिः।

तस्य चेति। तस्य च राज्ञो महीपतेः (शूद्रकस्य) विदिशा अभिधानं नाम यस्याः सा विदिशाभिधाना राजधान्यासीदिति क्रियायामन्वयः। तामेव विशेषयति—कलीत्यादिना। तत्र प्रथमान्तं विदिशायाः, तृतीयान्तञ्च वेत्रवत्या विशेषणमिति बोध्यम्। कलिकालात् कलियुगस्थापनाद् यद्भयं भीतिस्तस्मात् पुञ्जीभूतम् एकत्रीभूतम् अवयवसङ्कोचेन सङ्कुचितमिव कृतयुगं सत्ययुगं तदनुकर्तुं शीलं स्वभावं यस्याः

प्रणयकलहमें ही दूतप्रेषण होता था, न कि युद्धकलहमें; और शतरञ्ज आदि खेलमें ही प्रकोष्ठ शून्य रहता था, न कि गाँवमें किसीका घर अर्थसे शून्य रहता था।

जिस राजाके राज्यमें केवल परलोकसे ही भय था, अन्तःपुर (हवेली) में रहनेवाली सुन्दरीजनोंके केशसमूहमें ही कुटिलता थी, न कि राज्यमें किसी प्रकारकी कुटिलता थी। एवं नूपुर (पायजेव) में ही वाचालता थी न कि प्रजावर्गमें व्यर्थ वागाडम्बर था। विवाहमें ही करपीड़न (पाणिग्रहण) होता था, न कि राज्यमें किसी प्रकारका राजाद्वारा कर (राजदेयद्रव्य) वसूल होता था। निरन्तर यज्ञाग्नि धुएँसे ही अश्रुपात होता था, न कि किसीके असमयमें मरणादिजनितशोकसे अश्रुपात होता था, (इस प्रकार सभीको निरपराधी होनेके कारण) घोड़ेमें ही कशा (चाबुक) का आघात होता था तथा किसी जगह लड़ाई न होनेके कारण धनुषका टंकार कामदेवके ही धनुषमें होता था।

विदिशा नाम नगरी राजा शूद्रक की राजधानी थी। वह इतनी विस्तीर्ण थी कि तीनों भुवन उससे ही उत्पन्न हुए प्रतीत होते थे। प्रजा के धर्मपरायण होने से ऐसा अवभासित होता था मानो कलिकाल के भय से

---

१. दूतप्रेषणानि। २. अन्तःपुरिकाकुन्तलेषु। ३. करग्रहणम्। ४. अनवरतप्रवृत्त। ५. तुरङ्गेषु। ६. उदभूत ७. अनुसारिणी।

विस्तीर्णा मज्जन्मालवविलासिनीकुचतटास्फालन-जर्जरितोर्म्मिमालया[1] जलावगाहनावतारित-जयकुञ्जर-कुम्भ-सिन्दूर-सन्ध्यायमान-सलिलया उन्मद-कलहंस-कुल-कोलाहल-मुखरित[2]-कूलया वेत्रवत्या[3] परिगता विदिशाभिधाना नगरी राजधान्यासीत् ।

स तस्याञ्च[4] विजिताशेष-भुवनमण्डलतया विगतराज्यचिन्ताभारनिर्वृतः, द्वीपान्तरागतानेक-भूमिपाल-मौलिमाला-लालित-चरणयुगलः, वलयमिव लीलया भुजेन भुवनभारमुद्वहन् , अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिरनेककुलक्रमागतैरसकृदालोचित-नीतिशास्त्रनिर्म्मलम-

सा तादृशी, अनेनातिशयपुण्यस्थानमेतदिति व्यञ्जयति । त्रयाणां भुवनानां जगतां समाहारस्त्रिभुवनम् 'तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च' इति समाहारे तत्पुरुषः, तस्य प्रसवभूमिरिव उत्पत्तिस्थलमिव विस्तीर्णा विपुला । मज्जन्त्यः स्नानाय अवगाह्यमानाः मालवविलासिन्यो मालवदेशीयकामिन्यः तासां कुचतटानि वक्षोजस्थलानि तेषाम् आस्फालनेन अतिशयवक्षोजाघातेन जर्जरिताः क्षीणीकृता ऊर्मीणां तरङ्गाणां मालाः पङ्क्तयो यस्याः सा तया तथोक्तया । 'भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा' इत्यमरः, 'माला तु पङ्क्तौ पुष्पादिदामनि' इति हैमः । एतेन कुचानामतिकर्कशत्वं व्यञ्जयति । जलावगाहनाय पानीयावलोडनाय अवतारिता स्वकैः प्रवेशिता जयकुञ्जराः विपक्षिदलनसमर्थहस्तिनः तेषां कुम्भाः शिरःपिण्डाः तेषु शोभमानं यत्सिन्दूरं नागसम्भवं रक्तचूर्णकमिति यावत् 'सिन्दूरं नागसम्भवम्' इत्यमरः 'सिन्दूरं तरुभेदे स्यात् सिन्दूरं रक्तचूर्णके' इति मेदिनी, तेन सन्ध्यायमानं सन्ध्यावदाचरन्तं रक्तीभूतं सलिलं जलं यस्यास्तया तथोक्तया । उन्मदानाम् उत्कटमदानां कलहंसानां कादम्बानां कुलस्य सङ्घस्य यः कोलाहलोऽनभिव्यक्तरवः तेन मुखरितं शब्दायमानीकृतं कूलं तटं यस्यास्तया तथोक्तया । वेत्रवत्या तन्नामिकया नद्या परिगता परिवेष्टिता ।

अत्र कलिकालेत्यादिविशेषणे पुञ्जीभूतस्वोत्प्रेक्षालङ्कार आर्थी उपमालङ्कारश्च, त्रिभुवनेत्यादिविशेषणे द्रव्योत्प्रेक्षालङ्कारः, कुचतटास्फालनेन ऊर्मिमालाया जर्जरितत्वासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्त्यलङ्कारः, सन्ध्यायमानेति क्यङ्लुप्तोपमा चेत्येतेषां परस्परापेक्षाभावेन तिलतण्डुलवत् संसृष्टिः ।]

स तस्यामिति । स राजा (शूद्रकः) तस्यां विदिशानगर्याम् अतिचिरं बहुसमयं प्रथमे आद्ये वयसि प्राणिनां कालकृतावस्थाविशेषे सुखम् आनन्दं यथा स्यात्तथा उवास वसतिं चक्रे इति सम्बन्धः । वयसः केचित् कुमारादिभेदेन व्यवस्थां मन्यन्ते तथाहि—

'पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥' इति दर्शनात् । केचिच्च चतुरवस्थां मन्यन्ते, तथाहि—

'आद्ये वयसि नाधीतं द्वितीये नार्जितं धनम् । तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति ॥'

अत्र प्रथमान्तपदानि राजविशेषणानि, तृतीयान्तपदानि च सचिवानां राजपुत्राणाञ्च विशेषणानि । तत्र राजविशेषणं—विगतेति । विगतो दूरीभूतो यो राज्यचिन्ताभारस्तेन निर्वृतः सुनिश्चिन्तः । तत्र कारणमाह—विजितेति । विजितानि स्वाधीनीकृतानि अशेषाणि सकलानि भुवनमण्डलानि चतुर्दशभुवनानि येन तस्य भावस्तया तथोक्तया । एकस्माद्द्वीपाद्भिन्ना ये द्वीपास्ते द्वीपान्तराणि तेभ्य आगतानां समायातानाम् अनेकभूमिपालानां बहुतरमहीपतीनां मौलयो मुकुटानि शिरांसि वा तेषां मालाः स्रजः श्रेणयो वा ताभिर्लालितं सादरेण संस्पृष्टं चरणयुगलं पादयुग्मं यस्य स तादृशः । वलयं कटकमिव 'कटकं वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, लीलया अनायासेन । भुवनभारं संसारवीवधम् उद्वहन्नुत्पाटयन् । प्रज्ञया धिया 'धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः' इत्यमरः, अमरगुरुं बृहस्पतिमपि उपहसद्भिः उपहासं कुर्वद्भिः, अनेककुलक्रमागतैः वंशप-

सतयुग ने वहीं आकर निवास किया है । उसके चारों ओर वेत्रवती नाम की नदी बह रही थी । स्नान करने के लिए उतरे जय-कुञ्जरों के कुम्भस्थल में लगे सिन्दूर के धुल जाने से उसका जल सन्ध्याकाल के समान (रक्तवर्ण) देख पड़ता था । मालव की सुन्दरियाँ उसमें स्नान करती थीं—उनके कठोर स्तनों पर टकराने से उसकी तरंगें छिन्न भिन्न हो जाती थीं । किनारे पर मद से मतवाले हंस कोलाहल किया करते थे ।

राजा शूद्रकने समस्त भुवन-मण्डलको अधीनमें कर रक्खा था, इसलिए उसे राज्यके भारकी कुछ चिन्ता नहीं थी । देश-देशान्तरसे आकर अनेक नरपति अपने मुकुटोंसे उसके चरणोंकी आराधना करते थे । वह समस्त संसारका भार अपनी भुजा पर एक कंकण (कङ्गना) के समान अनायासमें धारण करता था । अपनी बुद्धिके प्रभावसे बृहस्पति (सुरगुरु) का भी उपहास करनेवाले, वंश-परंपरागत विद्वान मन्त्री उसकी

१. आयात, आगत । २. मुखरीकृत । ३. वेत्रवत्या सत्या, वेत्रवत्या सरिता । ४. तस्यामवजिताशेष ।

नोभिरलुब्धैः स्निग्धैः प्रबुद्धैश्चामात्यैः परिवृतः, समानवयोविद्यालङ्कारैरनेकमूर्द्धाभिषिक्त-पार्थिवकुलोद्गतैरखिल-कलाकलापालोचन-कठोरमतिभिरतिप्रगल्भैः कालविद्भिः प्रेमानुरक्तहृदयैरग्राम्यपरिहासकुशलैरिङ्गिताकारवेदिभिः काव्य-नाटकाख्यानकाख्यायिकालेख्य[1]व्याख्यानादि-क्रियानिपुणैरतिकठिन-पीवर-स्कन्धोरु-बाहुभिरसकृदवदलित-समद-रिपुगज-घटा-पीठबन्धैः केशरिकिशोरकैरिव, विक्रमैकरसैरपि विनयव्यवहारिभिरात्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रैः सह रममाणः प्रथमे वयसि सुखमतिचिरमुवास ।

तस्य चातिविजिगीषुतया महासत्त्वतया च तृणमिव लघुवृत्ति स्त्रैणमाकलयतः प्रथमे

रम्परया अमात्यपदारूढैर्न त्वाधुनिकैरित्यर्थः, असकृद् वारंवारम् आलोचितैः अनुशीलितैः नीतिशास्त्रैः राजोचितव्यवहारबोधकग्रन्थैः निर्मलानि स्वच्छीकृतानि मनांसि येषां तैस्तथोक्तैः । अलुब्धैः लोभशून्यैः, अन्यथा प्रच्छन्नरूपेण· द्रव्यग्रहणादिना राज्ञः क्षतिमपि विदध्येयुरित्याशयः । स्निग्धैः वत्सलैः 'स्निग्धस्तु वत्सलः' इत्यमरः, प्रबुद्धैः जागरितैः कार्यज्ञैर्वा । अनेके बहवो ये मूर्धाभिषिक्ताः ब्राह्मणेभ्यः क्षत्रियासु समुत्पन्ना मूर्धाभिषिक्तास्तेषाम्, पार्थिवानां महीपतीनाञ्च कुलानि वंशास्तेभ्य उद्गता उत्पन्नास्तैस्तथोक्तैः, अखिलानां समग्राणां कलानां नृत्यगीतादीनां कलापस्य समुदायस्य आलोचनेन विमर्शेन कठोराः शास्त्रे परिपक्वा मतयो धियो येषां तैस्तथोक्तैः, अतिप्रगल्भैः प्रतिभान्वितैः 'प्रगल्भः प्रतिभान्विते' इत्यमरः, कालविद्भिः अवसरज्ञैः, प्रभावेन माहात्म्येन अनुरक्तानि आसक्तानि हृदयानि मनांसि येषान्तैस्तथोक्तैः, अग्राम्येषु नागरिकेषु अश्लीलादिरहितेष्विति यावत्, य उपहासो नर्मवचोविलासस्तत्र कुशलैः अभिज्ञैः 'कुशलश्चतुरोऽभिज्ञः' इत्यमरः । इङ्गितं चेष्टितम् आकारो भ्रूनेत्रादिसङ्कोचादिरूपो रचनाविशेषः तौ विदन्तीति तस्तथोक्तैः, काव्यं रसात्मकं वाक्यं पद्यमयमहावाक्यं वा, नाटकं रूपकविशेषः अवस्थानुकृतिरिति यावत्, आख्यानकानि चूर्णकानि, आख्यायिका गद्यकाव्यविशेषो वासवदत्तादिः, आलेख्यानि चित्रनिर्माणानि व्याख्यानानि अर्थपल्लवितकरणानि इत्यादिका याः क्रियाः कार्याणि तासु निपुणैः निष्णातैः 'निष्णातो निपुणो दक्षः' इत्यमरः।अतिकठिना नितान्तदृढाः पीवराः पुष्टाश्च स्कन्धोरुबाहवो येषान्तैस्तथोक्तैः,असकृन् मुहुर्मुहुः अवदलिता विमर्दिता समदा मदयुक्ता या रिपुगजघटाः शत्रुकरिसमूहाः ता एव पीठबन्धाः पृष्ठस्थितासनानि यैस्तैस्तथोक्तैः। केशरिणां सिंहानां किशोरकैः शिशुभिरिव विक्रमे पराक्रमे एकोऽद्वितीयो रस आसक्तिर्येषान्तैस्तथोक्तैः । विनयेन सारल्येन व्यवहारो वृत्तिरस्ति येषां तैस्तथोक्तैः, एतेन सामर्थ्ये सत्यपि विनयातिशयं व्यञ्जितम् । आत्मनः स्वस्य प्रतिबिम्बैरिव अनेनात्यन्ततुल्यत्वं दर्शितम् । रममाणः क्रीडमाणः। अन्वयस्तु पूर्वमेव प्रदर्शितः। इह 'वलयमिव' इत्यत्रोपमालङ्कारः, स च वाच्य एव 'अमरगुरुमपि प्रज्ञयोपहसद्भिः' इत्यत्र त्वार्थोपमालङ्कार आक्षिप्यते···, 'रिपुगजघटापीठबन्धः' इत्यत्र रूपकमलङ्कारः, 'केशरिकिशोरकैः' इत्यत्र 'प्रतिबिम्बैः' इत्यत्र च वाच्योपमालङ्कार इत्येतेषां मिथोऽपेक्षाभावेन संसृष्टिरलङ्कारः ।

तस्य चेति । अतिशयेन विजेतुमिच्छुर्विजिगीषुस्तस्य भावस्तत्ता तया तथोक्तया परमोत्कर्षप्राप्तेच्छया व्युपसर्गाज्जयतेः सन्नन्तात् 'सनाशंसभिक्ष उः' इत्युः । महासत्त्वमतिशायि धैर्यं तस्य भावस्तया तथोक्तया च । तृणमिव घासमिव लघ्वी विशेषोत्कर्षजनकत्वाभावात् तुच्छा निःसारमिति यावत्, वृत्तिः व्यवहारो यस्य तत्तथोक्तम्, स्त्रैणं स्त्रीगणम् आकलयतः निश्चिन्वतः, अनेन तासामकिञ्चित्करत्वं द्योतितम् । प्रथमे

सेवामें उपस्थित रहते थे । वे लोभरहित तथा हितचिन्तक थे और निरन्तर नीतिशास्त्रोंका पर्यालोचन करनेसे उनका हृदय निर्मल हो गया था । राजा शूद्रकने अपने बराबर ही वय, विद्या और आभूषणवाले, अनेक क्षत्रिय-राजकुलोंमें उत्पन्न राजकुमारोंके साथ क्रीड़ा करते-करते अपनी युवावस्था बहुत काल तक सुखमें बिताई । इन राजकुमारोंकी बुद्धि समस्त कला (६४) विद्याओंके अभ्याससे तीक्ष्ण हो गई थी और ये हृदयमें प्रताप से अनुराग करते थे । अत्यन्त चतुर तथा अवसर जाननेवाले, सभ्यता-पूर्वक परिहास करनेमें दक्ष, मनके भाव और चेष्टा-मुद्राको समझनेवाले, काव्य, नाटक, कहानी, कथा, चित्रकर्म, व्याख्यानादि क्रियाओं में प्रवीण, अत्यन्त कठिन और पुष्ट कंधे, जंघा तथा भुजावाले—ये राजकुमार मानो राजा शूद्रकके ही प्रतिबिंब थे । इन्होंने सिंहके बच्चोंकी तरह अनेकवार विपक्षियोंके मतवाले हाथियोंके कुम्भस्थल विदीर्ण कर डाले थे और ये पराक्रम दिखाने के बड़े इच्छुक होने पर भी नम्र-भावसे रहते थे ।

परन्तु, विजय प्राप्त करनेकी उत्कट अभिलाषा और बड़े भारी पराक्रमके कारण, राजा शूद्रक स्त्री-जाति

---

१. आख्यानकालेख्य.

वयसि वर्त्तमानस्यापि[1] रूपवतोऽपि सन्तानार्थिभिरमात्यैरपेक्षितस्यापि सुरतसुखस्योपरि द्वेष इवासीत्।

सत्यपि रूपविलासोपहसित-रतिविभ्रमे लावण्यवति विनयवत्यन्वयवति[2] हृदयहारिणि चावरोधजने, स कदाचिदनवरतदोलायमान-रत्नवलयो घर्घरिकास्फालन-प्रकम्पमान-झणझणायमान-मणिकर्णपूरः स्वयमारब्धमृदङ्गवाद्यः सङ्गीतकप्रसङ्गेन, कदाचिदविरल-विमुक्त-शरासार-शून्यीकृतकाननो मृगयाव्यापारेण, कदाचिदाबद्धविदग्धमण्डलः काव्यप्रबन्धरचनेन, कदाचिच्छास्त्रालापेन, कदाचिदाख्यानकाख्यायिकेतिहासपुराणाकर्णनेन, कदाचिदा-

---

वार्द्धक्यापेक्षया आद्ये तारुण्ये वयस्यवस्थायां वर्त्तमानस्यापि, रूपवतोऽपि परमसौन्दर्यवतोऽपि तस्य राज्ञः (शूद्रकस्य)। सन्तानमपत्यं तदेवार्थः प्रयोजनमस्ति येषान्तैस्तथोक्तैः अमात्यैर्मन्त्रिभिः अपेक्षितस्यापि आकाङ्क्षितस्यापि, एतेनामात्यस्यानुकूल्यमुपपादितम्। सुरतसुखस्य आश्लेषजनितानन्दस्योपरि द्वेष इवासीत्। इह सुरतसुखे द्वेषहेतोरसत्त्वेऽपि तदुत्पत्तेः किं विभावना आहोस्वित् विद्यमानेष्वपि सुरतहेतुषु तारुण्यादिषु तदनुत्पत्तेर्विशेषोक्तिरित्यनयोः सन्देहसङ्करः, सोऽयं तृणमिवेत्यत्रोपमया च सङ्कीर्णः।

सुरतसुखस्योपरि विद्वेषमुपपादयितुमन्यविधकार्यासक्तिमुपपादयति—सत्यपीति। रूपं सौन्दर्यं विलासः 'धीरा दृष्टिर्गतिश्चित्रा विलासे सस्मितं वचः।' इति लक्षणलक्षितः ताभ्याम् उपहसितो हास्यास्पदीकृतः, रतेः कामदेवपत्न्याः विभ्रमो विलासो येन स तस्मिंस्तथोक्ते। विनयो वल्लभागमने आसनादुत्थानादिरूपस्तद्वति तद्युक्ते, अन्वयः कुलमस्यास्तीति तस्मिंस्तथोक्ते, अत्र 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' इत्यनेन प्रशंसायां मतुप्, सत्कुलप्रसूत इत्यर्थः अत्र प्रशस्तकुलोत्पन्नत्वेन रूपलावण्याधिक्यं प्रतीयते। हृदयस्य चित्तस्य हारिणि आकर्षणविधायिनि, एतेनाखिललोकस्पृहणीयत्वं व्यञ्जितम्। अवरोधजने स्त्रीसमूहे सत्यपि। स राजा (शूद्रकः) दिवसम् अनैषीत् वासरमगमयदिति वक्ष्यमाणक्रिया सर्वत्र सम्बध्यते। प्रथमान्तपदानि राजविशेषणानि, तृतीयान्तपदानि च दिवसनयनक्रियाकरणानीत्यवगन्तव्यानि। कदाचित् कस्मिंश्चित्प्रकरणे, अनवरतम् अजस्रम् दोलायमाने वादने हस्तविधूननात् स्पन्दमाने रत्नवलये उभयहस्तस्थितरत्नमयकङ्कणद्वयं यस्य स तादृशः, तथा घर्घरिका वाद्यविशेषो वीणा तस्या आस्फालनेन हस्तेन वादनेन यः प्रकम्पः शरीरकम्पनात् शिरःकम्पनं तेन झणझणायमानौ 'झण झण' एवं शब्दं कुर्वाणौ मणिकर्णपूरौ मणिमयकर्णभूषणे यस्य स तादृशः स्वयमात्मनैव आरब्धं कृतं मृदङ्गवत् वाद्यं वादित्रं येन स तादृशः। गीतनृत्यवाद्यत्रयं दर्शनार्थं कृतं सङ्गीतकमभिधीयते, तस्य प्रसङ्गः सम्बन्धस्तेन तथोक्तेन, तथा च सङ्गीतरत्नाकरे—'गीतं नृत्तं च वाद्यं च त्रयं सङ्गीतमुच्यते' इति। अविरलं सान्द्रं यथा स्यात्तथा विमुक्ता विक्षिप्ता ये शरा इषवस्तेषाम् आसारो धारासम्पातः तेन शून्यीकृतं हिंस्रजन्तुरिक्तीकृतं काननं वनं येन स तादृशः 'गहनं काननं वनम्' इत्यमरः। मृगयाव्यापारेण आखेटकक्रियया। आबद्धम् अनुष्ठितं विदग्धानां विदुषां मण्डलं समूहो येन स तादृशः। काव्यं पूर्ववर्णितस्वरूपं, प्रबन्धाः कथास्तेषां रचनेन निर्माणेन,अनेन विद्वज्जनानुरागित्वं व्यञ्जयति। शास्त्रालापेन न्यायाद्यापृच्छनेन 'आपृच्छालापसंलाप' इत्यमरः। आख्यानकं स्फुटकथा, आख्यायिका वासवदत्तादिका, इतिहासः पुरावृत्तम्, पुराणं 'मद्वयं भद्वयं च' इत्यादिनाष्टादशं मत्स्यादि, तेषाम् आकर्णनेन श्रवणेन।

को तृण (तिनके) के समान तुच्छ समझता था। यद्यपि वह यौवनसम्पन्न और अत्यन्त सुन्दर था तथा मन्त्रियों को उससे सन्तान होनेकी अभिलाषा बनी थी, तथापि उसे स्त्री-सम्भोग सुख (काम-क्रीडा) से कुछ द्वेष सा था।

सौन्दर्य और विलास में काम-पत्नी रति के भी हाव-भाव का उपहास करनेवाली, लावण्य-मयी, विनय-सम्पन्न कुलीन एवं मनोहर स्त्रियाँ उसके अन्तःपुर (रन-वास) में थीं, परन्तु उनके होने पर भी वह किसी समय अपने से ही संगीत में मृदंग बजाता, कभी वीणाको वार-वार बजानेसे उसके हाथका रत्न-जटित कंकण हिलने लगता था, कभी घुँघरू बजानेमें वह झूमने लगता, जिससे उसके रत्नजटित कर्णभूषणकी झन-झनाहट होती थी। कभी आखेट (शिकार) में असंख्य बाणोंकी वर्षासे घातक जन्तुओंको मारकर वनोंको खाली कर देता था। कभी विद्वानोंकी सभा बुलाकर काव्य-प्रबन्ध-रचनामें, कभी शास्त्रालापमें, कभी छोटी-छोटी कहानी,

---

१. वर्त्तमानस्यातिरूपवतोऽपि। २. अन्वयवत्यभिजनवति।

लेख्यविनोदेन, कदाचिद्वीणया, कदाचिद्दर्शनागत-मुनिजन-चरणशुश्रूषया, कदाचिदक्षरच्युतक-मात्राच्युतक-विन्दुमती-गूढचतुर्थपाद-प्रहेलिका-प्रदानादिभिः, वनितासम्भोगसुख-पराङ्मुखः सुहृत्परिवृतो दिवसमनैषीत्[1] ।

यथैव च दिवसमेवमारब्ध-विविध-क्रीडा-परिहास-चतुरैः[2] सुहृद्भिरुपेतो निशामनैषीत् ।

एकदा तु नातिदूरोदिते नव-नलिन-दलसम्पुट-भिदि किञ्चिन्मुक्त[3]-पाटलिम्नि भगवति

आलेख्यं चित्रनिर्माणं तस्य विनोदेन तद्दर्शनानन्देन । वीणया वीणावाद्यश्रवणेन । दर्शनार्थं प्रेक्षणार्थम् आगता आयाता ये मुनिजनाः साधुलोकास्तेषां चरणशुश्रूषया पादसेवनया । अक्षरस्य अकारादिवर्णस्य च्युतं च्युतिर्यत्र तदक्षरच्युतकं काव्यम् । यथा—

'कुर्वन् दिवाकराश्लेषं दधच्चरणडम्बरम् । देव ! यौष्माकसेनायाः करेणुः प्रसरत्यसौ ॥'

इत्यत्र करेणुपदस्य ककारच्युतौ द्वितीयार्थरेणुप्रतीतिः । मात्रायाश्च्युतिर्यत्र तन्मात्राच्युतकम् । यथा—

'मूलस्थितिमधः कुर्वन् पात्रैर्जुष्टो गताक्षरैः । विटः सेव्यः कुलीनस्य तिष्ठतः पथिकस्य सः ॥'

अत्र विटपदादिकारमात्राच्युतौ द्वितीयार्थवटवृक्षस्यावगमः । पद्यवर्णसंख्याया विन्दुमात्रनिवेशनेन तत्तद्वर्णोपलब्धिर्विन्दुमती । यथा—

'ि०००००ू०ा००ं ि०ं ि००ः ु००ु०ो०ंु: ।

००ु०००ि ु०ू०ा ु०००००ी०००ो००ं०ू ॥ एतत्पद्यं यथा—

'त्रिनयनचूडारत्नं मित्रं सिन्धोः कुमुद्वतीबन्धुः । अयमुदयति घुसृणारुणरमणीवदनोपमश्चन्द्रः ॥'

यत्र प्रथमद्वितीयतृतीयचरणेषु तुरीयपादस्य वर्णा गुप्तास्तिष्ठन्ति स गूढचतुर्थपादः । यथा—

'दयावान् प्रयत्तः शुद्धः प्रबुद्धकमलेक्षणः । पापापहास्त्रिभुवनं बुद्धः पायादपायतः ॥'

इह चतुर्थः पादः पादत्रयगतानामेकाद्यङ्काङ्कितानामक्षराणां यथाक्रमं योजनया समुल्लसति । अर्थस्तु सुगम एव । प्रहेलिकालक्षणम्—

'व्यक्तीकृत्य कमप्यर्थं स्वरूपार्थस्य गोपनात् । यत्र बाह्यान्तरावर्थौ कथ्येते सा प्रहेलिका ॥'

सा द्विधार्थी च शाब्दी च विख्याता प्रश्नशासने । आर्थी स्यादर्थविज्ञानाच्छाब्दी शब्दविभागतः ॥'

तत्रार्थी यथा—'तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः । गुरूणां सन्निधानेऽपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥'

अत्र 'पानीयकुम्भः' इत्युत्तरम्, न तु वल्लभः । शाब्दी यथा—

'दुर्वारवीर्यसरुपि त्वयि का प्रसुप्ता श्यामा सपत्नहृदये सुपयोधरा च ।

तुष्टे पुनः प्रणतशत्रुसरोजसूर्ये सैवाद्यवर्णरहिता वद नाम का स्यात् ? ॥'

अत्र 'शस्त्री' (छुरिका) प्रथमप्रश्नोत्तरम्, न तु स्त्री । 'स्त्री' इति द्वितीयप्रश्नोत्तरम् ।

यथैवेति—यथैव येन प्रकारेणैव दिवसं वासरमनैषीत्, एवं तथैव निशां रात्रिमप्यनैषीद्गमयदिति सम्बन्धः । आरब्धाः प्रवर्त्तिताः विविधा नानाप्रकाराः क्रीडापरिहासाः खेलोपहासास्तेषु चतुरैः कुशलैः, सुहृद्भिर्मित्रैः उपेतः संयुतः । अतएव सम्भोगसुखस्योपरि द्वेष इव आसीदित्याशयः ।

एकदेति । एकदा एकस्मिन् दिने प्रतीहारी द्वारदेशे नियुक्ता स्त्री समुपसृत्य समीपदेशमागत्य आ-

---

वासवदत्ता आदि विस्तृत कथा, इतिहास और पुराणोंके सुननेमें, कभी चित्र-कर्ममें, कभी केवल वीणा वाद्य सुननेमें कभी दर्शनके लिए आए मुनियोंकी चरण-सेवामें; और कभी अक्षरच्युतक (जिस छन्द का एक अक्षर निकाल देनेसे दूसरा अर्थ हो वह), मात्राच्युतक (जिस छन्दमें एक मात्रा परिवर्त्तित हो जाने से दूसरा अर्थ हो जाय वह), विन्दुमती (जिस पद्य अथवा गद्यमें अक्षरोंके स्थानमें केवल विन्दु रख दिये जायँ वह), गूढ़-चतुर्थ-पाद (जिस पद्यके चतुर्थ-पादके अक्षर पहले तीन पादोंमें छिपे हों वह) और पहेलियों के करने-कराने में लगा रहता था तथा स्त्री-सम्भोग-सुख में मन नहीं लगाता था ।

इस प्रकारवह मित्रमण्डली द्वारा परिवेष्टित हो पूरा दिन व्यतीत करता था और इसी प्रकार से अनेक प्रकार की क्रीड़ा और परिहास (मज़ाक) में निपुण मित्र-मण्डलीके साथ रात भी व्यतीत होती थी ।

एक दिन कमलोंकी नई कलियोंके खिलानेवाले भगवान् सूर्यनारायणके उदयके थोड़ी देर बाद—

---

१. अनयत् । २. चतुरः । ३. उन्मुक्त''' ।

सहस्रमरीचिमालिनि, राजानमास्थानमण्डपगतमङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वावलम्बिना कौक्षेयकेण सन्निहितविषधरेव चन्दनलताभीषणरमणीयाकृतिः, अविरलचन्दनानुलेपनधवलितस्तनतटा उन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी, चूडामणिसंक्रान्तप्रतिबिम्बच्छलेन राजाज्ञेव मूर्त्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना, शरदिव कलहंसधवलाम्बरा, जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृतसकलराजमण्डला, विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती, राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी, प्रतीहारी समुपसृत्य क्षितितल-निहित-जानु-करकमला सविनयमब्रवीत्—

स्थानमण्डपगतं सभागृहस्थितं राजानं सविनयं विनयेन सह वर्त्तमानम् अब्रवीदवोचदित्यन्वयः। अत्र प्रथमान्तपदानि प्रतीहारीविशेषणान्यवगन्तव्यानि। सूर्यवर्णनाव्याज उक्त्यवसरं विशेषणेन दर्शयति—नातिदूरेति। नातिदूरं स्वल्पकालीनम् उदितम् उद्गमनं यस्य स तस्मिन् तथोक्ते आकाशस्य किञ्चिद्दूरोदिते सतीत्यर्थः, नवानि नूतनानि यानि नलिनानि पद्मानि तेषां दलानि पर्णानि 'पत्रं पलाशं छदनं दलः पर्णं छदः पुमान्' इत्यमरः, तेषां सम्पुटं मुकुलीभावं भिनत्ति दूरीकरोतीति स तस्मिंस्तथोक्ते, किञ्चिन्मुक्तः किञ्चिद्दूरोदयात् ईषत् परित्यक्तः पाटलिमा श्वेतरक्तत्वं येन स तस्मिंस्तथोक्ते, 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः दूरोदितेत्यारभ्य विशेषणत्रयैः प्रत्यूषकालो ध्वन्यते। भगवति ऐश्वर्यशालिनि, सहस्रसंख्याः ये मरीचयो रश्मयस्तैर्मालते शोभते तान् धारयतीति वा यः स तस्मिंस्तथोक्ते सूर्ये सतीत्यर्थः। अङ्गनाजनः प्रमदाजनः तस्य विरुद्धेन सङ्ग्रामोपकरणत्वाद्व्यवहारप्रतिकूलेन। वामपार्श्वे सव्यप्रदेशेऽवलम्बतेऽवतिष्ठत इत्येवंशीलेन, कौक्षेयकेण तरवारिणा, 'तरवारिर्मण्डलाग्रः खड्गकौक्षेयकोऽसिः' इति कोशः। अयन्तु भीषणत्वे हेतुः। सन्निहितः पार्श्ववर्त्ती विषधरः सर्पो यस्याः सा तथोक्ता 'सर्पः''''''आशीविषो विषधरः—' इत्यमरः, चन्दनलतेव भीषणा भयानका स्वभावतो रमणीया मनोहरा च आकृतिः स्वरूपं यस्याः सा तथोक्ता तथा च यथा चन्दनलतायाः स्वभावतो रमणीयत्वेऽपि सन्निहितविषधरत्वेन भीषणत्वम्, तथैतस्याः प्रतिहार्या अपि निसर्गतो मनोहरत्वेऽपि वामपार्श्वस्थितखड्गत्वेन भीषणत्वमित्याशयः। पूर्णोपमा।

अविरलं निविडतरं यच्चन्दनस्य मलयजस्य अनुलेपनमुद्वर्त्तनं तेन धवलितं शुभ्रीकृतं स्तनतटं कुचतटं यस्याः सा तथोक्ता, अतएव उन्मज्जत् जले प्रविश्य स्नानं कुर्वन् य ऐरावत इन्द्रहस्ती तस्य कुम्भमण्डलं शिरस्थमांसपिण्डो यस्यां सा तादृशी, मन्दाकिनी शुभ्रजला वियद्गङ्गेव। चन्दनशुभ्रकुम्भोपमानेन स्तनतटस्य काठिन्यं ध्वन्यते। उपमालङ्कारः।

चूणामणिषु सन्निहितराजमस्तककिरीटरत्नेषु संक्रान्तं पतितं यत् प्रतिबिम्बं प्रतीहार्य्याः प्रतिच्छायस्तस्य छलेन व्याजेन, राजभिः सन्निहितसामन्तनृपैः शिरोभिर्मस्तकैः उह्यमाना धार्यमाणा मूर्त्तिमती विग्रहवती, राज्ञः शूद्रकस्य आज्ञेव आदेश इव इह सापह्नवोत्प्रेक्षा। शरदिव विगतवर्षा समय इव, कलहंसः कादम्ब इव धवलं स्वच्छम् अम्बरं वस्त्रं यस्याः सा, पक्षे कलहंसा एव धवलम् अम्बरम् आकाशं यस्यां सा तादृशी। पूर्णोपमा। जमदग्नेर्गोत्रापत्यं पुमान् जामदग्न्यः परशुरामस्तस्य परशुः कुठारः तस्य धारा निशितांश इव, वशीकृतं स्वायत्तीकृतं पक्षे दर्शनेनाकृष्टं क्रूरत्वेन व्यामोहेन वा सकलराज्ञां निखिलभूपतीनां मण्डलं चक्रवालं यया सा तथोक्ता। पूर्णोपमा। विन्ध्यस्य विन्ध्याचलस्य वनं काननं तस्य भूमिः पृथिवीव वेत्राणां वेतसानां लताः सरलद्रुमा यत्र सा, पक्षे वेत्रलता वेत्रयष्टिः हस्ते इति शेषः, यस्याः सा तथोक्ता। उपमा। राज्यस्य अधिदेवता आधिपत्याधिष्ठात्री देवतेव विग्रहिणी मूर्त्तिमती इह द्रव्योत्प्रेक्षा। क्षितितले

जब (उनका) गुलाबी रंग कुछ कुछ कम हो गया था उस समय—शरीर धारण करके आई हुई राजकुल-देवीके समान प्रतीहारी सभा-मण्डपमें स्थित महाराज शूद्रकके समीप उपस्थित हुई। स्त्रियोंके अयोग्य खड्ग (तलवार) वामभागमें धारण करनेसे उसका स्वरूप सर्पयुक्त चन्दन-लताके समान भीषण एवं रमणीय लगता था। चन्दनके सघन अनुलेपसे स्तन-तट शुभ्र होनेके कारण वह इस प्रकार देखनेमें आती थी मानो ऊपर तैर आए ऐरावतके कुम्भस्थल-सहित आकाशगङ्गा हो। वह परशुरामके परशुकी धारके समान समस्त राज-मण्डलको वश करनेवाली (परशुरामके परशुकी धारने सब राजाओं को अधीन कर लिया था; प्रतीहारीने समस्त राजाओंको मोहित कर लिया), शरद् ऋतुके समान कलहंस-श्वेत अम्बरवाली

---

१. मलयजानुलेपन'''। २. चूडामणिप्रतिबिम्ब'''। ३. समुपसृत्य। ४. कमलम्।

'देव ! द्वारेस्थिता सुरलोकमारोहतस्त्रिशङ्कोरिव कुपितशतमखहुङ्कार-निपातिता राजलक्ष्मीर्दक्षिणापथादागता चण्डाल-कन्यका पञ्जरस्थं शुकमादाय देवं विज्ञापयति—'सकल-भुवनतल-सर्वरत्नानाम् उदधिरिवैकभाजनं देवः, विहङ्गमश्चायमाश्चर्य्यभूतो निखिल-भुवन-तलरत्नमिति कृत्वा देवपादमूलमेनमादायागताहमिच्छामि देवदर्शनसुखमनुभवितुम्—इति । एतदाकर्ण्य देवः प्रमाण' मित्युक्त्वा विरराम ।

भूमितले निहितौ स्थापितौ जानू तलकीलौ, अथ च करौ तावेव कमले पद्मे यया सा तथोक्ता ।

किमब्रवीत्तमेव दर्शयति—देवेति । हे देव ! हे स्वामिन् ! द्वारे स्थिता वर्त्तमाना, सुराणां देवानां लोकं स्वर्गं 'स्वरव्ययं स्वर्गनाक' इत्यमरः, आरोहत आरोहणं विदधतस्त्रिशङ्कोरयाज्यस्य सूर्यवंशीयराजविशेषस्य, राज्यलक्ष्मीरिव, त्रिशङ्कोः सूर्यवंशीययाज्यस्य राजविशेषस्य देवयागात् स्वर्गे वासो न भवतीत्यतः कुपितः क्रुद्धो यः शतमखो देवराजः तस्य हुङ्कारः क्रोधेन निषेधव्यञ्जकध्वनिः तेन निपातिता अधः क्षिप्ता, दक्षिणापथाद्दक्षिणमार्गात् आगता समुपस्थिता चण्डालानां दिवाकीर्त्तीनां कन्यका कुमारी पञ्जरे पक्षिणामाधारे तिष्ठतीति तं तथोक्तम् 'सुपि स्थः' इति कः, शुकं कीरम् आदाय गृहीत्वा देवं स्वामिनं भवन्तं विज्ञापयति स्वरहस्यं निवेदयति ।

पुरा किल त्रिशङ्कुर्नाम कश्चन सूर्यवंशीयो नरपतिः अनेनैव देहेन यज्ञविशेषं विधाय देवलोकं जिगमिषुर्कुलगुरुमहर्षिवशिष्ठेन प्रत्याख्यातः । तदनन्तरं तदर्थमेव तत्सुतान् प्रति प्राप्तः परन्तु सर्वं तत्त्वतोऽवबुध्य तैरेवमभिशप्तः-'यतो भवान् कुलगुरुं परित्यज्यास्मान् सम्प्राप्तस्ततो भवान् चण्डालो भवतु' इति । ततो राजा विश्वामित्रं प्राप्य स्वाशयं निवेदितवान् । तदाशयमविज्ञाय विश्वामित्रो यज्ञं कारयित्वा देवलोकमारोढुं तमादिदेश । त्रिशङ्कुस्तु यज्ञं कृत्वा देवलोकमारोहन् कुलगुरुपरित्यागात्तत्पुत्राणामभिशापेन चण्डालभावापन्नत्वात् अयाज्यत्वाच्च सुराधिपेनाधः पातित इति रामायणीया कथाऽनुसन्धेया । एतच्च स्फुटमन्यत्रापि ।

प्रतीहारी चण्डालकन्यकायाः सामान्यतो विज्ञापनाविषयं दर्शयति—सकलेति । सकलभुवनतलेषु समग्रभुवनतलेषु यानि रत्नानि तेषां तथोक्तानाम्, उदधिः समुद्र इव एकभाजनम् एकमुत्कर्षस्थानम्, यथा समुद्रः सर्वरत्नानां भाजनं तथा देवो भवानपीत्याशयः । अयं विहङ्गमः विहायसा आकाशेन गच्छतीति विहङ्गमः पक्षी शुकः विहायसुपपदाद् गमेः खचि 'अरुर्द्विषदजन्तस्ये'ति मुमागमः, विहायसो विहादेशश्च, आश्चर्यभूतः अद्भुतावलोकनविषयः अतस्तथाविधविशेषत्वादेव निखिलानि समग्राणि यानि भुवनतलानि तेषां रत्नमुत्कृष्टम् 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते' इति स्मरणात्, तं शुकम् आदाय गृहीत्वा देवस्य राज्ञो भवतः पादमूलं चरणमूलमहमागता संप्राप्ता देवदर्शनसुखं महाराजावलोकनानन्दम् अनुभवितुम् साक्षात्कर्त्तुम् इच्छामि अभिलषामि । एतदाकर्ण्य एतच्छ्रुत्वा 'देवः प्रमाणम्' य एव अस्य भवत आदेशः स एव मया कर्त्तव्यः' इत्युक्त्वा विरराम मौनमाश्रितवती ।

(शरद् ऋतुमें कलहंसोंके उड़नेसे गगन-मण्डल शुभ्रवर्ण हो जाता है; प्रतीहारीका कलहंसोंके समान शुभ्र-वस्त्र था) और विन्ध्याचलकी वन-भूमिके समान वह वेत्रलतासे (विन्ध्याचलकी वन-भूमिमें बेंतकी बेलें लगी रहती हैं; प्रतीहारीके हाथमें बेंतकी छड़ी थी) युक्त थी । समीप-वर्त्ति उपस्थित राजाओंके मुकुट-मणियोंमें जब प्रतीहारीका प्रतिबिंब पड़ा तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो राजा शूद्रककी आज्ञाको उन्होंने शिर पर धारण कर लिया हो । वह अपने घुटने तथा हाथ भूमि पर टेक कर विनय-पूर्वक कहने लगी :—

महाराज ! एक चांडाल-कन्या दक्षिण दिशासे आकर द्वारदेश पर खड़ी है । वह क्रुद्ध हुए इन्द्रके हुङ्कारसे नीचे गिरी, स्वर्गारोहणकारी राजा त्रिशङ्कुकी राजलक्ष्मीके समान प्रतीत होती है । एक तोतेको पिंजरेमें रख कर लाई है और महाराजसे प्रार्थना कर रही है कि—पृथ्वीतल पर, महाराज ! (आप) समुद्रके समान सब रत्नोंके आकर हैं और मेरा पक्षियोंमें आश्चर्य-जनक यह तोता भी सब भुवनोंका एक रत्न है । यह समझ इस समय महाराजके दर्शनका सुख अनुभव करनेकी इच्छासे मैं उसे लेकर महाराजके चरणोंमें आई हूँ । इसे सुन कर आप ही प्रमाण हैं (महाराजकी क्या आज्ञा है ?) यह कह कर वह चुप हो गई ।

---

१. द्वारि स्थिता । २. निपतिता । ३. चाण्डाल···। ४. काचित् इत्यधिकः क्वापि । ५···तलरत्नानाम् । ६. आश्चर्य्यभूता निखिल···। ७. मूलमादाय···।

उपजातकुतूहलस्तु राजा समीपवर्त्तिनां राज्ञामवलोक्य[1] मुखानि 'को दोषः, प्रवेश्यताम्' इत्यादिदेश ।

अथ प्रतीहारी नरपतिकथनानन्तरमुत्थाय तां मातङ्गकुमारीं प्रावेशयत् ।

प्रविश्य च सा नरपतिसहस्र-मध्यवर्त्तिनमशनिभय-पुञ्जित-कुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेक-रत्नाभरण-किरण-जालकान्तरितावयवमिन्द्रायुध-सहस्र-सञ्छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधरदिवसम्[2], अवलम्बित[3]स्थूलमुक्ताकलापस्य कनकशृङ्खला-नियमित-

उपजातेति । उपजातम् उत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य स तथोक्तः, 'कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम्' इत्यमरः समीपवर्त्तिनां निकटस्थितानां राज्ञां सामन्तनृपतीनां मन्त्रिणां च मुखानि आननानि आलोक्य निरीक्ष्य तेषामपि तद्दिदृक्षेति विज्ञायेत्यर्थः । अत्र राज्ञां मुखनिरीक्षणन्तु चण्डालत्वेनात्र तत्प्रवेशे तेषां विरोधोऽस्ति न वेत्यवबोधार्थम्, सति तु विरोधे नयनेङ्गितेनापि तत्प्रतिषेधसूचनसम्भवादित्याशयः । को दोषो न काप्यापत्तिः प्रवेश्यताम् इति एवम् आदिदेश आज्ञापितवान् ।

अथेति । अथ राज्ञः आदेशदानानन्तरम् उत्थाय उत्थानं विधाय प्रतीहारी द्वारपालिका तां मातङ्गकुमारीं चण्डालकन्यकां प्रावेशयत् प्रवेशमकारयत् ।

प्रविश्य चेति । सा चण्डालकन्यका प्रविश्य प्रवेशं कृत्वा राजानमद्राक्षीत्पश्यदिति दूरस्थक्रियया सम्बन्धः । अत्र सर्वाणि द्वितीयान्तपदानि क्रियाविशेषणानीत्यवधेयानि । अशनेरिन्द्रायुधाद्वज्रात् यद्भयं पक्षच्छेदनरूपमातङ्कस्तेन पुञ्जिता एकत्र मिलिता ये कुलशैलाः क्षेत्रसीमाकारिभूधरास्तेषां मध्यगतं तदन्तर्वर्तिनं कनकशिखरिणं सुमेरुपर्वतमिव नरपतीनां नृपाणां यत्सहस्रं तन्मध्यवर्त्तिनं तदन्तःस्थितमित्यर्थः । अत्रोपमालङ्कारः ।

पुरा पक्षधारिणो भूधरा यथा पक्षिण अन्यस्माद्देशादुड्डीय देशान्तरे निपतन्ति तथैव निपतन्तश्चैते यं देशं सम्प्राप्तास्तं तत्क्षणमेव सञ्चूर्णयामासुः । ततः सुरेशः कुलिशेन तेषां पक्षान् कर्त्तितुं प्रवृत्तस्तदा त्रस्तास्ते स्वस्वरक्षणोपायविचारणाय एकत्र मिलिता आसन्निति रामायणीया कथा ।

भूयो राजानं विशिनष्टि—अनेकेति । अनेकानि नानाविधानि रत्नाभरणानि मणिखचितालङ्काराः तेषां यानि किरणजालकानि रश्मिसमूहाः स्वार्थे कप्, तैरन्तरिता आवृता अवयवा अङ्गानि यस्य तं तथोक्तम्, अत एव इन्द्रायुधसहस्रेण शक्रधनुःसमूहेन 'इन्द्रायुधं शक्रधनुः' इत्यमरः, सञ्छादिता अन्तरिता अष्टौ दिग्भागा दिशां प्रदेशा यस्मिंस्तत्तादृशम्, जलधरदिवसमिव मेघावृतदिनमिव (वर्तमानम्) अनेन राजा मेघवर्णं आसीदित्यवधार्यते । इहाऽप्युपमाऽलङ्कारः ।

पुनस्तमेव राजानं विशेषयितुं प्रथमं वितानं विशिनष्टि—अवलम्बितेति । अवलम्बिताः शिल्पिभिरधोलम्बितत्वेन आश्रिताः स्थूलानां स्थविष्ठानां मुक्तानां रसोद्भवानां कलापाः पङ्क्तयो यत्र तस्य तथोक्तस्य, कनकं सुवर्णं तस्य याः शृङ्खला बन्धनगभस्तयस्तैर्नियमिताः चतुर्षु कोणेषु बद्धा मणिदण्डिका रत्नखचिता यष्टयस्तासां चतुष्टयं यस्मिंस्तस्य, गगनसिन्धोर्मन्दाकिन्याः फेनपटलवत् अब्धिकफसमूहवत् 'डिण्डीरोऽब्धिकफः फेनः' इति कोशः, पाण्डुरं शुभ्रवर्णं यस्य एतानि षष्ठ्यन्तानि वितानविशेषणानि ।

प्रतीहारीके वचन सुन लेने पर राजाको भी उसे देखनेका अत्यधिक कौतुक उत्पन्न हुआ और समीपमें उपस्थित सब राजाओंके मुखकी ओर देख कर (उन लोगोंकी रुचि समझ कर) उसने प्रतीहारीको आज्ञा दी—क्या दोष है ? अन्दर आने दो ।

इसके अनन्तर राजाका वचन सुनते ही प्रतीहारी उठ कर उस चाण्डाल-कन्याको अन्दर ले आई। आते ही कन्याने सहस्रों राजाओंके बीचमें विराजमान राजा शूद्रकको देखा। वह ऐसा प्रतीत होता था। मानो वज्राघातके भयसे इकट्ठे हुए कुलपर्वतोंके मध्यमें सुमेरु बैठा हो। अनेक रत्नमय आभूषणोंके किरणजालमें अवयवोंके आच्छादित हो जानेसे वह ऐसा शोभायमान लगता था मानो सहस्रों इन्द्र-धनुषसे व्याप्त आठ दिशावाला मेघाच्छन्न (वर्षा ऋतुका) दिन हो। वह चन्द्रकान्त-मणिके सिंहासन पर विराजमान था। उसमें बड़े-बड़े मोतियोंकी झालर (मालाएँ) लटक रही थीं और उसके चारों कोनेके मणि-दण्ड सोनेकी जंजीरोंसे

१. आलोक्य । २. जलधरसमयदिवसम् । ३. आलम्बित''।

मणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगन-सिन्धु-फेन-पटल-पाण्डुरस्य[1] नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तमणिपर्य्यङ्किकानिषण्णम्[2], उद्धूयमान-कनकदण्डचामरकलापम्[3], उन्मयूख-मुख-कान्तिनिचय-पराभवप्रणते[4] शशिनीव स्फटिकपादपीठे[5] विन्यस्तवामपादम्, इन्द्रनील-मणि-कुट्टिम-प्रभासम्पर्क-श्यामायमानैः प्रणत-रिपु-निश्वास[6]मलिनीकृतैरिव चरण-नखमयूखजालै[7]रुपशोभमानम्, आसनोल्लसित-पद्मराग-किरण-पाटलीकृतेनाचिरमृ[8]दितमधु-कैटभ-

अथ राजानं विशिनष्टि—नातीति। नातिमहतः किञ्चिद्बृहतः स्थानोचितप्रमाणस्य दुकूलवितानस्य क्षौमवसननिर्मितोल्लोचस्य 'उल्लोचो वितानं कदकोऽपि' इति कोशः, तस्य अधस्तात् निम्नप्रदेशे इन्दुकान्तमणिपर्यङ्किका चन्द्रकान्तमणिरचितमञ्चिका तत्र निषण्णम् उपविष्टम्। 'फेनपटलपाण्डुरे'त्यत्र लुप्तोपमा।

भूयो राजानं विशिनष्टि—उद्धूयेति। उद्धूयमानो भृत्यैः संवीज्यमानः सुवर्णदण्डः कनकाऽवलम्बनयष्टिर्यस्मिन् तथाविधश्चामरकलापः प्रकीर्णकसमूहो यस्य तं तादृशम्।

उन्मयूखेति—उत् उर्ध्वं गता मयूखा रश्मयो यस्य तथाविधस्य मुखस्य यः कान्तिनिचयो दीप्तिसमूहस्तेन यो विजयो जयः पराभवः पराजयस्तेन प्रणते चरणतलसंलग्ने शशिनि चन्द्रमसीव। इह 'शशिनीव' इति द्रव्योत्प्रेक्षा।

अथ राज्ञश्चरणकिरणं विशेषयितुमाह—इन्द्रनीलेति। इन्द्रनीलमणीनां या कुट्टिमप्रभा वेदिकाकान्तिः तस्याः सम्पर्केण मिश्रणेन श्यामायमानैः श्यामवदाचरमाणैः, अत्रोपमानादाचारे क्यङ् अत एव क्यङन्तोपमा। कीदृशैरिव इत्यत आह—प्रणतेति। प्रणतानां पराजयेन स्वाधीनानां रिपूणां वैरिणां ये निश्वासाश्चेतनाः तैर्मलिनीकृतैर्मालिन्यमुपगतैरिव। मूलोक्तोपमालङ्कारेण क्रियोत्प्रेक्षा सङ्कीर्यते। चरणनखानां पादपुनर्भवाणां ये मयूखा रश्मयस्तेषां जालानि समूहास्तैरुपशोभमानं विराजमानम्।

राज्ञ ऊरुयुगलं विशिनष्टि—आसनोल्लसितेति। आसन उपवेशनस्थले उल्लसिताः प्रकाशमाना ये पद्मरागकिरणाः लोहितमणिरश्मयस्तैः पाटलीकृतेन श्वेतरक्तीकृतेन 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः, अत एव अचिरमृदितयोः तत्कालमर्दितयोः सद्यः कृत्तकण्ठयोरित्यर्थः, मधुकैटभयोः तन्नामकयोरसुरविशेषयोः रुधिरेण शोणितेन अरुणं रक्तवर्णं तेन तथोक्तेन, ऊरुयुगलेन जङ्घाद्वयेन विराजमानं शोभमानं हरिं मधुसूदनमिव। उपमालङ्कारः।

पुरा क्षीरशायिनो भगवतः श्रीविष्णोः कर्णमलोत्पन्नौ मधुकैटभाख्यौ असुरविशेषौ भगवत एव नाभिकमलसम्भूतं ब्रह्माणं हन्तुं समुद्यतौ जातौ। ततः आत्मरक्षणाय व्याकुलः कमप्यलभमानः योगनिद्रया स्थितां जगद्धात्रीं तुष्टुवे, प्रसन्ना सा नारायणमुत्थापितवती उत्थाय च भगवान् ताभ्यां सह पञ्चवर्षसहस्राणि युयुधे तन्मायया मोहितौ तौ तस्मै वरं दित्सू आस्ताम्। नारायणो हि तयोर्वधं याचितवान्। ततो जलमग्नां भूमिमालोक्य आहतुस्तौ 'यत्र सलिलेन परिप्लुता पृथिवी न विद्यते तत्रावां जहि' इति। भगवांस्तु पार्थिवांशसंयुक्ते निजोरौ संस्थाप्य तयोर्मूर्धनी चक्रेणाच्छिनदिति मार्कण्डेयपुराणीयकथा प्रायः सर्वत्र प्रसिद्धैव।

बँधे हुए थे। उसके ऊपर आकाशगङ्गाके फेन-समूह (झाग) के समान शुभ्रवर्ण रेशमी वस्त्रका चँदोवा टँगा हुआ था। राजा शूद्रक पर सुवर्णदण्डयुक्त चामरसमूह आन्दोलित हो (झूल) रहे थे और स्फटिक-मणिके चरणपीठ (पायदान) पर उसका वामचरण रखा हुआ था। वह चरणपीठ ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके चारों ओर फैलती हुई किरणोंवाले मुखकी कान्तिसे पराजित होकर नम्र हुआ चन्द्रमा हो। उसके चरण-नखोंकी किरणें नीलकान्तिमणि-निर्मित आसनवेदिका (फर्श) की प्रभाके संपर्कसे कुछ श्यामवर्ण हो गई थीं। वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानो स्वाधीनीभूत शत्रुओंके निःश्वाससे मलीन हो गई हों। सिंहासनमें से फैलती हुई पद्मराग-मणिकी किरणोंसे उसकी दोनों जंघाएँ लाल-लाल हो गई थीं, जिनसे वह-कुछ समय पहले मारे गए मधु-कैटभ दैत्यके शोणितसे लाल हुई जङ्घाओंवाले—विष्णुके समान प्रतीत होता था। वह अमृत फेन (झाग) के समान

१. पाण्डरस्य। २. इन्दुकान्तपर्य्यङ्किका। ३. सुवर्णदण्ड'''। ४. उन्मयूखमुखविजयपराभवप्रणते, उन्मयूखमुखकान्तिविजिते पराभवप्रणते। ५. स्फाटिके पादपीठे। ६'''निःश्वास'''। ७. जालकैः। ८'''मृत'''।

रुधिरारुणेन हरिमिवोरुयुगलेन विराजमानम्, अमृतफेन-धवले गोरोचना-लिखित-हंसमिथुन-सनाथ-पर्य्यन्ते चामर-पवनप्रनर्त्तितान्तदेशे दुकूले वसानम्, अति-सुरभि-चन्दनानुलेपन-धवलितोरःस्थलम्, उपरि-विन्यस्त-कुङ्कुम-स्थासकम्, अन्तरानिपतितबालातपच्छेदमिव कैलासशिखरिणम्, अपर-शशि-शङ्कया नक्षत्रमालयेव हारलतया कृतमुखपरिवेशम्[1], अति-चपल-राज[2]-लक्ष्मी-बन्ध[3]ननिगढ-शङ्कामुपजनयतेन्द्रनील[4]-केयूरयुगलेन मलयज-रस-गन्धलुब्धेन भुजङ्गद्वयेनेव वेष्टितबाहुयुगलम्[5], ईषदालम्बि[6]-कर्णोत्पलम्, उन्नतघोणम्, उत्फुल्लपुण्डरीक-

---

पट्टवसनद्वयं विशिनष्टि—अमृतेति। अमृतस्य पीयूषस्य यः फेनस्तद्वत् धवले श्वेतवर्णे गोरोचनया गोपित्तनामकपदार्थेन लिखितानि चित्रितानि यानि हंसमिथुनानि सितच्छद्मयुगलानि तैः सनाथाः सहिताः पर्यन्ताः प्रान्तप्रदेशा ययोस्ते, तथा चामराणां बालव्यजनानां 'चामरा चामरं बालव्यजनं रोमगुच्छकम्' इति रभसः, पवनेन वायुना प्रनर्त्तितौ आन्दोलितौ अन्तदेशौ प्रान्तभागौ ययोस्ते दुकूले पट्टवसने वसानं दधानम्। इह 'अमृतफेनधवले' इत्यत्र लुप्तोपमा।

अतीति। अतिसुरभिचन्दनस्य अतिसुगन्धिमलयजस्य अनुलेपनेन अङ्गरागेण धवलितं शुभ्रीकृतम् उरःस्थलं वक्षःस्थलं यस्य तं तादृशम्।

उपरीति। उपरि तच्चन्दनलेपनोपरि विन्यस्ता विहिताः कुङ्कुमस्य केसरस्य स्थासका हस्तबिम्बा यस्य तम् 'स्थासकं हस्तबिम्बम्' इति कोशः, अपरे तु 'चर्चा तु चार्चिक्यं स्थासकम्' इति। अत एव अन्तरान्तरा मध्ये मध्ये निपतिताः पर्यस्ता बालातपच्छेदा अभिनवोदितसूर्यमयूखखण्डा यस्य तं कैलासशिखरिणं हिमाचलमिव (वर्तमानम्) इहोपमा।

भूयस्तमेव प्रकारान्तरेण विशिनष्टि—अपरेति। अपरोऽन्यो यः शशी चन्द्रस्तस्य शङ्कया भ्रान्त्या प्राप्ता या नक्षत्रमाला तारापङ्क्तिस्तयेव हारलतया लतावल्लम्बमानया मुक्तास्रजा कृतो मुखस्य वदनस्य परिवेषः परिधिः परिवेष्टनमिति यावत्, यस्य स तम्, 'परिवेषस्तु परिधिः' इत्यमरः।

इह मुखे शशिभ्रान्त्या भ्रान्तिमानलङ्कारः, 'नक्षत्रमालयेवे'त्युत्प्रेक्षा, अङ्गाङ्गिभावेन चानयोः सङ्करः तेन च मुखस्य चन्द्रसाम्यं हारलताया अत्यन्तनैर्मल्यं च ध्वनितमित्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः।

अतीति। अतिचपला अत्यन्तं चञ्चला या राजलक्ष्मीराधिपत्यश्रीः तस्या बन्धो बन्धनं नियमनमिति यावत् तदर्थं यो निगडः शृङ्खला तस्य शङ्कां भ्रान्तिम् उपजनयता कुर्वता, एवम्भूतेन इन्द्रमणिर्नीलकान्तमणिः तेन युक्तं खचितं यत्केयूरयुगमम् अङ्गदद्वयं तेन तथोक्तेन, अत एव मलयजश्चन्दनसक्तो यो द्रवस्तस्य गन्धेन परिमलेन लुब्ध आसक्तस्तेन तादृशेन भुजङ्गद्वयेन सर्पयुगलेनेव वर्तमानेन वेष्टितं परिक्षिप्तं बाहुयुगलं भुजद्वयं यस्य तं तादृशम्। इह राज्यलक्ष्मीस्थिरीकरणाय शृङ्खलाशङ्कामुपजनयतीति भ्रान्तिमानलङ्कारः, 'भुजङ्गद्वयेनेवे'त्युत्प्रेक्षा च, अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

ईषदिति। ईषत्किञ्चित् आलम्बिनी लम्बमाने कर्णोत्पले पङ्कजाकारकर्णभूषणे यस्य तं तथोक्तम्, उन्नता उच्चा घोणा नासिका यस्य स तम्, 'घोणा नासा च नासिका' इत्यमरः, उत्फुल्लं विकसितं यत्पुण्डरीकं

शुभ्र दो पट्टवस्त्र धारण किया हुआ था। उनके प्रान्तभाग (कोर) पर गोरोचनसे हंसोंके जोड़े चित्रित थे और उनके अञ्चल-प्रदेश (पल्ले) चमरकी हवासे उड़ रहे थे। अत्यन्त सुगन्धित चन्दन-रसके लेपसे उसका वक्षःस्थल (कलेजा) गौरवर्ण हो गया था और उस पर उसने कुङ्कुम (केशर) छिड़क ली थी, जिससे—प्रातःकालकी धूप जिस पर कहीं-कहीं पड़ी हो—ऐसे कैलास पर्वतके समान वह शोभायमान हो रहा था। मोतियोंकी मालाने उसके मुखको इधर-उधर परिवेष्टित (घेर) कर रखा था। वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो उसके मुखको दूसरा चन्द्र समझकर नक्षत्र-माला उपस्थित हो गई हो। दो नीलकान्ति-मणियोंसे खचित केयूर (बाजूबन्द) उसकी भुजाओंमें बँधे थे। वे चन्दन-रसकी सुगन्धके लोभसे आए हुए दो सर्पोंके समान प्रतीत हो रहे थे और उन्हें देखकर अत्यन्त चञ्चल राजलक्ष्मीको बाँधनेकी शृङ्खलाओं (जंजीरों) का भय हो रहा था। उसका कर्ण-कमल कुछ लटक रहा था, नासिका ऊँची थी, खिले हुए श्वेत-कमलके समान आँखें थीं, चन्द्रमा के आधे टुकड़ेके

---

१. परिवेषम्। २. राज्य। ३. बन्ध। ४. क्वापि 'मणि' इत्यधिकः पाठः। ५. बाहुशिखरम्। ६. आलम्बित।

लोचनम्[1], अमलकलधौतपट्टायतम्[2], अष्टमीचन्द्र-शकलाकारम्, अशेष-भुवन-राज्याभिषेक-सलिलपूतम्[3], ऊर्णासनाथं ललाटदेशमुद्वहन्तम्, आमोदितमालतीकुसुम-शेखरम् उषसि शिखर-पर्य्यस्त-तारकापुञ्जमिव पश्चिमाचलम्, आभरण-प्रभापिशङ्गिताङ्गतया[4] लग्न-हर-हुताशमिव मकरध्वजम्, आसन्नवर्त्तिनीभिः सेवार्थमागताभिरिव[5] दिग्वधूभिर्वारविलासिनीभिः परिवृतम्, अमल-मणिकुट्टिमसंक्रान्त-सकल-देह-प्रतिबिम्बतया[6] पतिप्रेम्णा वसुन्धरया हृदयेनेवोह्यमानम्, अशेषजनभोग्यतामुपनीतयाप्यसाधारणया राजलक्ष्म्या समालिङ्गितम्[7],

सिताम्भोजं तद्वत् लोचने नयने यस्य स तम्, इह लुप्तोपमा। अमलं स्वच्छं यत् कलधौतं कनकं तस्य यः पट्टः फलकं तद्वत् आयतं विस्तीर्णम्, अष्टमीचन्द्रस्य अष्टमीतिथावुदितसुधांशोः यत् शकलं तदर्धभागस्तद्वदाकार आकृतिर्यस्य तम्। इह द्वे अपि लुप्तोपमे। अर्धभागत्वन्तूभयोरपि अष्टम्यामष्टावेव कलाभागित्वमित्यभिप्रेत्येत्यवधेयम्। अशेषाणि समस्तानि यानि भुवनानि भूमण्डलानि तेषां राज्यम् आधिपत्यं तस्य अभिषेकसलिलं मङ्गलस्नानजलं तेन पूतं पवित्रम्, तथा ऊर्णा भ्रूयुग्ममध्यवर्ती लोमावर्त्तः तेन सनाथं युक्तम्, 'ऊर्णा मेषादिलोम्नि स्यादावर्त्तस्त्वन्तरा भ्रुवोः' इत्यमरः, 'ऊर्णा भ्रूमध्यगावर्त्ते मेषादीनाञ्च लोमनि' इति हेमचन्द्रश्च अयञ्च चक्रवर्त्यादीनामेव न त्वतिरिक्तस्य कस्याऽपि। तदुक्तम्—'भ्रूद्वयमध्ये मृणालतन्तुसूक्ष्मं शुभ्रायतमेकं प्रशस्तावर्त्तं महापुरुषलक्षणम्' इति।

अथ पुनस्तमेव विशिनष्टि—आमोदेति आमोदितानि सुरभीणि यानि मालतीकुसुमानि जातीपुष्पाणि तैर्विरचितः शेखरः शिरोभूषणं यस्य स तं तथोक्तम्, अत एव उषसि प्रातःकाले शिखरे शृङ्गे पर्यस्ताः पतित्वा समवेता तारकाणां नक्षत्राणां पुञ्जा राशयो यत्र तं तथोक्तम्, पश्चिमाचलम् अस्ताद्रिमिव (वर्तमानम्)। अत्र शैलशिखरराजोत्तमाङ्गयोः पुष्पपुञ्जनक्षत्रयोश्च स्फुटमेवोपमानोपमेयभावादुपमालङ्कारः।

कामदेवतुल्यत्वं प्रकटयति—आभरणेति। आभरणानाम् अलङ्काराणां या प्रभा दीप्तिस्तया पिशङ्गितानि पिङ्गलवर्णीकृतानि अङ्गानि अवयवा यस्य तस्य भावस्तत्ता तया तथोक्तया हेतुना, लग्नः संसक्तः हरस्य महेश्वरस्य हुताशस्तृतीयनेत्रवह्निर्यत्र तं तादृशं मकरध्वजं जलजन्तुविशेषचिह्नं कामदेवमिति यावत् इव (वर्त्तमानम्)। इहापि आभरणप्रभाहरनयनोत्पन्नानलयोर्नृपमकरध्वजयोश्चोपमानोपमेयभावादुपमालङ्कारः।

आसन्नेति। आसन्नवर्त्तिनीभिः समीपस्थायिनीभिः सर्वतश्चतुर्दिक्षु सेवार्थं परिचर्यार्थम् आगताभिः प्राप्ताभिः अत एव व्यापकत्वाद्दिश एव वध्वः स्त्रियो दिग्वध्वस्ताभिरिव वारविलासिनीभिर्गणिकाभिः परिवृतं परिवेष्टितम्। इह 'दिग्वधूभि' रित्यत्र रूपकस्योत्प्रेक्षायाश्च सत्त्वादेकाश्रयानुप्रवेशसङ्कररूपः सङ्करालङ्कारः।

अमलेति। अमला अतिनिर्मला ये मणयश्चन्द्रकान्ताद्यास्तैर्षां बद्धभूमिकास्तत्र सङ्क्रान्तं सञ्चरितं यत्सकलदेहप्रतिबिम्बं समस्तशरीरप्रतिच्छायस्तस्य भावस्तत्ता तया हेतुना, पतिप्रेम्णा स्वामिप्रीत्या वसुन्धरया भूम्या हृदयेन चेतसा उह्यमानं वहमानमिव वर्त्तमानम्। इह हृदयेनेवेत्युत्प्रेक्षा।

अशेषेति। अशेषजनानां समग्रलोकानां भोग्यतां दानादिना भोगयोग्यताम् उपनीतया प्रापयापि सर्वसाधारणयेति यावत्, असाधारणया साधारणभोग्यताशून्यया इति विरोधः, अन्येषामेतादृशी

आकार ललाट था—वह स्वच्छ सुवर्ण-पट्टके समान विस्तृत था और समस्त भुवनोंके राज राज्याभिषेकके जलसे पवित्र हुआ था; भौओंके मध्यमें रोमावलियोंका भँवर था। उसने सुगन्धित चमेलीके फूलोंका मुकुट पहन लिया था, जिससे वह शिखर (चोटी) पर प्रातःकाल एकत्रित हुए तारों-सहित अस्ताचलके समान शोभायमान हो रहा था। आभूषणोंकी ज्योतिसे उसके सब अंग पीले हो रहे थे, जिससे वह—शङ्करके तृतीय नेत्रमें से निकली हुई अग्निसे जलते हुए—कामदेवके समान देख पड़ता था। उसके समीपवर्त्ती, दिशा-रूप-स्त्रियोंके समान, वाराङ्गनाएँ सेवाके लिए उपस्थित थीं। स्वच्छ मणिमय-बद्ध-भूमि (फर्श) में उसका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वयं पृथ्वीने अपने पतिको अनुरागपूर्वक हृदयसे लगा लिया हो। उसका तेज अन्य राजाओंके समान साधारण नहीं था, इसलिए—अनेक पुरुषोंसे उपभुक्त हुई भी—असाधारण राज-लक्ष्मीने उसके शरीरका आलिंगन किया था।

१ नेत्रम्। २. पट्टायितम्। ३. अभिषेकपूतम्। ४. अङ्गरागतया। ५. सेवासङ्गताभिरिव। ६. संक्रान्तप्रतिबिम्बतया, संक्रान्तदेहप्रतिबिम्बतया। ७. समालिङ्गितदेहम्।

अपरिमित-परिवारजनमप्यद्वितीयम्, अनन्त-गज-तुरग-साधनमपि खड्गमात्रसहायम्, एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, [1]आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादिताशेषद्विषदिन्धनमपि[2] ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्,[3] महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्,[4] अविरत-प्रवृत्त-दानमप्यमदम्, अतिशुद्ध-[5]

राजलक्ष्मीर्न विद्यत इत्यतः सर्वोत्कृष्टयेति तत्परिहारः, राजलक्ष्म्या राज्यश्रिया समालिङ्गितम् उपगूढं देहं शरीरं यस्य तं तादृशम्। इह साधरणाऽसाधारणयोर्विरुद्धधर्मत्वेऽपि तत्परिहाराद्विरोधाभासोऽलङ्कारः। एवमग्रे सर्वस्मिन्नपि द्वितीयान्ते विरोधाभासोऽलङ्कारः।

अपरिमितेति। अपरिमिता अगणिताः परिवारजनाः सेवकलोका यस्य तं तथाभूतमपि अद्वितीयं द्वितीयजनरहितमिति विरोधः, स्वतुल्य-द्वितीयरहितमिति तत्परिहारः।

अनन्तेति। अनन्तानि अपरिमितानि गजा हस्तिनस्तुरगा अश्वास्तेषां साधनानि उपकरणानि सहाया यस्य तम् 'निर्वर्तनोपकरणानुव्रज्यासु च साधनम्' इत्यमरः, एवम्भूतमपि खड्गमात्रसहायमिति विरोधः, युद्धे सर्वविधसैन्यानपेक्षत्वेन केवलतरवारिसहायेनैव विजयिनमिति तत्परिहारः।

एकदेशेति। एकदेशः सभामण्डपादिस्तत्र एकस्मिन् जनपदे वा स्थितमपि वर्तमानमपि व्याप्तं समाक्रान्तं भुवनमण्डलं मर्त्यभुवनं येन तमिति विरोधः, व्याप्तं ख्यातं भुवनमण्डले येन तमिति तत्समाधानम् 'व्याप्तं ख्याते समाक्रान्ते' इति विश्वः।

आसन इति। आसने राजसिंहासने स्थितं निषण्णमपि धनुषि चापे निषण्णं स्थितमिति विरोधः, धनुषि विजयविश्वासिनमिति यद्वा धनुःसंज्ञके स्थितमिति परिहारः 'धनुः संज्ञा प्रियालाद्रौ' इति विश्वः।

उत्सादितेति। उत्सादितानि व्यापादितानि अशेषाणि समग्राणि द्विषन्तो रिपव एव इन्धनानि काष्ठानि येन तं तथाविधमपि ज्वलनप्रतापः प्रभाव एवानलो वह्निः यस्य तं तादृशमिति इन्धनाभावे कथं ज्वलनमिति विरोधः, ज्वलद् दीप्यत सर्वत्र प्रबलभावेन वर्त्तमान इति तत्समाधानम्। शत्रुषु काष्ठत्वारोपः प्रतापे अनलत्वारोपस्य कारणमिति परम्परितरूपसङ्कीर्णो विरोधाभासः।

आयतेति। आयते विस्तीर्णे लोचने चक्षुषी यस्य तं तथाविधमपि सूक्ष्मेऽविपुले दर्शने लोचने यस्य तमिति विरोधः, सूक्ष्मे अध्यात्मविषये दर्शनं ज्ञानं यस्येति परिहारः। 'सूक्ष्मं स्यात्कैतवेऽध्यात्मे पुंस्यणौ त्रिषु चाल्पके। दर्शनं नयन-स्वप्न-बुद्धि-धर्मोपलब्धिषु'॥ इति विश्वः। महान् बहुः दोषोऽवगुणो यस्मिन् स तं तादृशमपि सकलगुणाधिष्ठानं समस्तगुणाश्रयमिति विरोधः, महान्तौ दीर्घौ बाहू यस्य तमिति परिहारः 'दोर्दोषा च भुजो बाहु'रिति धनञ्जयः। कुत्सितो निन्दितश्चासौ पतिर्भर्त्ता चेति कुपतिरेवम्भूतमपि कलत्रवल्लभं स्त्रीजनप्रियमिति विरोधः, कुः पृथिवी तस्याः पतिः स्वामीति परिहारः 'गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी' इत्यमरः। अविरतं निरन्तरं प्रवृत्तं दानं मदजलं यस्य तमेवम्भूतमपि अमदं मदजलशून्यमिति विरोधः, अयञ्च विरोधो हस्तिसादृश्ये, अविरतं सन्ततं दानम् अर्थिभ्यो द्रव्यादिवितरणं यस्य तं तादृशमपि अमदं गर्वशून्यमिति तत्परिहारः। 'दानं गजमदे त्यागे पालनच्छेदशुद्धिषु' इति विश्वः, 'मदे रेतसि कस्तूर्यां गर्वे हर्षेभदानयोः' इति च मेदिनी। अत्यन्तमतिशयेन शुद्धः स्वच्छः स्वभावः प्रकृतिर्यस्य

परिवार अगणित होने पर भी, वह अद्वितीय—जिसका कोई दूसरा साथी न हो;—(विरोध) अप्रतिम—अपने सदृश दूसरा नहीं, था—(विरोध परिहार)। असंख्य हाथी घोड़ोंका साधन होने पर भी (संग्राममें) केवल खड्ग उसका सहायक था। एक ही स्थान पर बैठे रहने पर भी सब पृथ्वी उससे—उसके प्रतापसे—व्याप्त थी। आसनमें स्थित होने पर भी धनुषमें स्थित रहता था—धनुषमें ही विजयका विश्वास था। समस्त शत्रुरूपी काष्ठको भस्म करडालने पर भी उसका प्रतापानल प्रज्वलित ही रहता था। नेत्र विस्तृत होने पर भी वह सूक्ष्मदर्शन—छोटी आँखोंवाला—आध्यात्मिक दृष्टिवाला था। महादोष=बड़े-बड़े अवगुण, विशाल बाहुयुक्त होने पर भी वह समस्त गुणोंका आश्रय था। कुपति=निन्दित पति, पृथ्वीपति होने पर भी वह समस्त स्त्रियोंका प्रिय था। निरन्तर दान=मदजल, त्यागसे भी उसमें मदविकार नहीं था। स्वभाव अत्यन्त शुद्ध होने पर भी

---

१. आसनगतम्, आसनस्थितम्। २. उत्सादितद्विषदिन्धनमपि। ३. सूक्ष्मदर्शिनम्। ४. कलत्रवल्लभम्। ५. अत्यन्तशुद्ध।

स्वभावमपि कृष्णचरितम्, अकरमपि हस्तस्थित-सकल-भुवनतलं राजानमद्राक्षीत् ।

आलोक्य च सा दूरस्थितैव प्रचलितरत्नवलयेन रक्त-कुवलयदल-कोमलेन पाणिना जर्जरितमुखभागां वेणुलतामादाय नरपतिप्रबोधनार्थं सकृत् सभाकुट्टिममाजघान; येन सकलमेव तद्राजकम् एकपदे वनकरियूथमिव तालशब्देन तेन वेणुलताध्वनिना युगपदावलितवदनमवनिपालमुखादाकृष्य चक्षुस्तदभिमुखमासीत् ।

अवनिपतिस्तु 'दूरादालोकय' इत्यभिधाय प्रतीहार्य्या निर्दिश्यमानां तां वयःपरिणाम-

---

तं तथाविधमपि कृष्णं मलिनं चरितमाचारो यस्य तमिति विरोधः, कृष्णस्य वासुदेवस्य चरितमिव चरितं यस्य तमिति तत्समाधानम् । 'कृष्णः सत्यवतीपुत्रे वायसे केशवेऽर्जुने' इति विश्वमेदिन्यौ । न विद्यते करः पाणिर्यस्य तं तादृशमपि हस्ते करे स्थितं शासनेनाधीनं समग्रं भुवनतलं यस्य तमिति विरोधः, न विद्यते चक्रवर्तित्वेन नास्ति कर अन्यस्मै भागधेयः राजग्राह्यद्रव्याद्यर्पणमिति यावत् यस्य तमिति तत्समाधानम् । 'बलिः करो भागधेयः' इति कोशः । इहाशेषजनभोग्यतामित्यादिकेषु अकरमपीत्यन्तेषु द्वादशसु श्लेषेण विरोधपरिहाराद् सर्वत्रैव विरोधाभासालङ्कारा बोध्याः ।

आलोक्येति । आलोक्य राजानं दृष्ट्वा सा चण्डालकन्यका दूरस्थितैव चण्डालजातित्वान्नृपसन्निधौ गमनं नोचितमिति दविष्ठप्रदेश एव वर्तमाना प्रचलितं पूर्वावस्थितिप्रदेशाद् किञ्चित् प्रकम्पितं रत्नवलयं मणिखचितकटकं यस्य तेन 'कटकं वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, रक्तलोहितं यत्कुवलयम् उत्पलं तद्वत् कोमलेन मृदुलेन । अनेन करस्य लक्षणोपेतत्वं व्यञ्जितम् । इह लुप्तोपमा । जर्जरितो जीर्णः मुखभाग अग्रभागो यस्याः सा तां तथोक्तां वेणुलतां वंशयष्टिम् आदाय गृहीत्वा नरपतेः राज्ञः (शूद्रकस्य) प्रतिबोधनार्थं स्वाभिमुखीकरणार्थं सभाकुट्टिमं परिषन्निबद्धभूमिं 'कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः' इति कोशः, सकृद् एकवारं पाणिना करेण आजघान आहतवती । येन आघातेन सकलं समग्रमेव तद्राजकं नृपतिसमूहः एकपदे तस्मिन्नेव क्षणे 'तत्क्षणैकपदे तुल्ये' इति हलायुधः । तालशब्देन तालवृक्षोद्भवशब्देन यद्वा तालः कांस्यकरतालो वाद्यविशेषस्तस्य शब्देन तदुत्थध्वनिना वनकरिणां वन्यहस्तिनां यूथं समूह इव, तेन पूर्वोक्तेन वेणुलता वंशयष्टिस्तस्य ध्वनिना शब्देन युगपत् एककालम्, आवलितं परावर्त्तितं मुखम् आननं येन एवम्भूतम् अवनिपालमुखात् राजमुखात् आकृष्य आकर्षणं विधाय चक्षुर्लोचनं तदभिमुखं चण्डालकन्यकायाः सम्मुखम् आसीत् अभवत् । आकस्मिकशब्दविशेषश्रवणे तदाभिमुख्यं जनानां स्वाभाविकमेव । उपमालङ्कारश्च द्वितीयवाक्ये ।

अवनीति । अवनिपतिः राजा (शूद्रकः) अनिमिषलोचनः निमेषोन्मेषवर्जितनेत्रः तां चण्डालकन्यकां ददर्श अवलोकयामासेति दूरेणान्वयः । दूरादालोकय 'हे चण्डालकन्ये ! त्वं दूराद् एव राजानं प्रेक्षस्व' नृपतेरेकान्तसमीपगमनमज्ञातस्वरूपायास्तवानुचितमित्याशयः । इत्यभिधाय इति कथयित्वा प्रतीहार्या द्वाररक्षाकारिण्या निर्दिश्यमानाम् 'इयं सा चण्डालकन्या' इति सभायां ज्ञाप्यमानाम् । वयसः परिणामेन वार्धक्येन शुभ्रं पक्वलोमतया श्वेतं शिरो मूर्द्धा यस्य स तेन, रक्तराजीववत् लोहितकमलवत् नेत्रापाङ्गौ नयन-

---

वह कृष्ण-चरित = मलिन आचार, वासुदेवके समान आचरण करता था और कर = हाथ, राजग्राह्यभाग—(टैक्स) विना भी समस्त पृथ्वी उसके हाथमें थी ।

दूरमें रहकर राजाको देखते ही चाण्डाल-कन्याने, रक्तवर्ण कमलके पत्तेके समान कोमल हाथमें फटे बाँसकी छड़ी लेकर राजाकी दृष्टि अपनी ओर करानेकी अभिलाषासे सभावेदिका (फर्श) पर एकवार आघात किया— जिससे उसका रत्न-जड़ित कङ्कण हिलने लगा । वनमें ताल-वृक्षके शब्द होनेसे जैसे वहाँके सब हाथी उसकी ओर देखने लगते हैं, उसी प्रकार उस बाँस छड़ीका शब्द सुनकर समस्त राजगण एक साथ राजाकी ओरसे सहसा दृष्टि फेर कर उसीकी ओर देखने लगे ।

प्रतिहारीने दूरसे 'देखो' यह कहकर उसे राजाको दिखलाया । राजाने अभिनव तारुण्यमें भरी हुई अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवाली उस कन्याको एकटक दृष्टि (टकटकी बाँध कर बड़े ध्यान) से देखा । उसके सम्मुख सभ्यके—

---

१. हस्तस्थितभुवनतलम् । २. प्रतिबोधनार्थम् । ३. राजन्यकम् । ४. क्वापि 'तेन वेणुलताध्वनिना' इति नास्ति ।

शुभ्र-शिरसा रक्त-राजीवेक्षणा[1]पाङ्गेनानवरत-कृत-व्यायामतया यौवनापगमेऽप्यशिथिलशरीर-सन्धिना सत्यपि मातङ्गत्वे नातिनृशंसाकृतिना अनुगृहीतार्य्यवेशेन[2] शुभ्र[3]-वाससा पुरुषेणाधिष्ठितपुरोभागाम्, आकुलाकुल-काकपक्षधारिणा कनक-शलाका-निर्म्मितमप्यन्तर्गत-शुकप्रभा-श्यामायमानं मरकतमयमिव पञ्जरमुद्वहता चाण्डालदारकेणानुगम्यमानाम् असुर-गृहीतामृतापहरण-कृत-कपट-पटु[4]-विलासिनीवेशस्य श्यामतया भगवतो हरेरिवानुकुर्वतीम्, सञ्चारिणी[5]मिवेन्द्रनीलमणिपुत्रिकाम्[6], आगुल्फावलम्बिना[7] नीलकञ्चुकेनाच्छन्नशरीराम्, उपरि-रक्तां-

---

प्रान्तौ यस्य स तेन। इह लुप्तोपमा। अनवरतं सततं कृतो विहितो व्यायामः परिश्रमः तस्य भावस्तत्ता तया यौवनस्य तारुण्यस्य अपगमेऽपि व्यतीतेऽपि अशिथिला दृढाः शरीरस्य देहस्य सन्धयो धातूनामस्थ्यादीनाञ्च वन्धा यस्य स तेन। मातङ्गत्वे चण्डालत्वे सत्यपि विद्यमानत्वेऽपि नातिनृशंसा नातिक्रूरा अभयङ्करा आकृतिः स्वरूपं यस्य तेन, अनुगृहीतः अङ्गीकृत आर्यवेशः सभ्यनेपथ्यं येन स तेन, शुभ्रवाससा धवलवस्त्रेण केनचित् पुरुषेण अधिष्ठित आश्रितः पुरो भागो यस्याः सा ताम्।

आकुलेति। आकुलाकुलः इतस्ततः संलग्नः यः काकपक्षः शिखण्डकः तं धारयितुं शीलं यस्य तेन, 'काकपक्षः शिखण्डकः' इत्यमरः 'सा वालानां काकपक्षः शिखण्डकशिखाण्डकौ' इति कोशः। कनकशलाकाः सुवर्णशलाकाः ताभिः निर्मितं रचितमपि अन्तर्गतस्य मध्यस्थितस्य शुकस्य कीरपक्षिणः प्रभया कान्त्या श्यामायमानं श्यामवर्णमिवावलोक्यमानम्, अत एव मरकतमयमिव मरकतमणिजातमिव पञ्जरं पक्षिरक्षणस्थलम् उद्वहता धारयता, केनचित् चण्डालदारकेण अन्त्यजपुत्रेण। इह श्यामायमानमिति व्यञ्जतोपमा, मरकतमयमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

असुरेति। असुरैः राक्षसैः गृहीतं स्वायत्तीकृतं यद् अमृतं सुधा तस्या अपहरणे अपहृतौ कृतो विहितो कपटो व्याजपूर्णः पटुः प्रकटो विलासिनीवेशो मोहिनीस्त्रीस्वरूपो येन तस्य भगवतः।

'उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव भूतानामागतिं गतिम्। वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति॥'

इत्युक्तलक्षणलक्षितस्य हरेः श्रीविष्णोः श्यामतया समानकृष्णवर्णतया अनुकुर्वतीमिव सादृश्यमनुभवन्तीमिव विद्यमानाम्। इहानुकुर्वतीमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

पुरा क्षीरसागरमन्थनान्निःसृतममृतं दैत्या देवाननादाय स्वयमेव गृहीतवन्तः, भगवान् विष्णुस्तु तन्निरीक्षयात्मनो मोहिनीस्वरूपं धृत्वा तान् प्रतारयन् देवेभ्यस्तदमृतं ददाविति भागवतीया कथा।

सञ्चारिणीमिति। सञ्चारिणीं गमनशीलाम् इन्द्रनीलमणिपुत्रिकां जङ्गमप्राणिरूपां नीलकान्तमणिनिर्मितपुत्तलिकामिव विद्यमानाम्। इह पुत्तलिकात्वजात्युत्प्रेक्षणात् जात्युत्प्रेक्षा।

आगुल्फेति। आगुल्फावलम्बिना घुंटिकापर्यन्तपातिना नीलकञ्चुकेन नीलवर्णकूर्पासकेन आच्छन्नम् आवृतं शरीरं गात्रं यस्याः सा ताम् उपरि ऊर्ध्वप्रदेशे शिरसीत्यर्थः, रक्तांशुकेन लोहितवर्णवस्त्रेण विरचितं कृतम् अवगुण्ठनं मुखाच्छादनं यया सा ताम्, अत एव निपतितः उपरि प्रातःसन्ध्याकालीन आतपः सूर्यकिरणो यस्यां ताम् एतादृशीं नीलोत्पलस्थलीमिव कुवलयकृत्रिमभूमिमिव। इह पदार्थहेतुककाव्यलिङ्गालङ्कारेणोपमालङ्कारः सङ्कीर्णो भवति।

वेपमें—शुभ्रवस्त्र पहने एक आदमी था। वृद्धावस्था होनेके कारण उसके शिरके वाल श्वेतवर्ण हो गए थे; नेत्रोंके प्रान्तभाग (कोने) रक्तकमलके समान थे; शरीरके बन्ध, युवावस्था न रहने पर भी वार-बार व्यायाम करनेके कारण शिथिल नहीं पड़े थे और चाण्डाल होने पर भी उसका स्वरूप क्रूर नहीं था। उस कन्याके पीछे चाण्डाल-जातिका एक वालक था, जिसकी अलकें (जुल्फें) इधर-उधर अस्तव्यस्त थीं। उसके हाथमें एक पिंजरा था, वह वह सुवर्णकी शलाकाओं वना हुआ था, किन्तु अभ्यन्तर-स्थित तोतेकी झलकसे मरकतमणि (पन्ने) का वना हुआ सा—कुछ श्यामवर्ण—देख पड़ता था। वह कन्या गमन-शक्तिवाली इन्द्रनीलमणि-रचित पुत्तलिका (पुतली) के समान लगती थी। उसका रंग श्याम था; इसलिए वह—असुरोंसे लिए गए अमृतको हरण करने के लिए मायासे मोहिनी-मूर्ति धारण करनेवाले—भगवान् विष्णुका मानो अनुकरण करती थी। गुल्फ पर्यन्त (पैरकी गाँठ तक) पहुँचते नीलवर्ण कञ्चुकसे उसका शरीर ढका हुआ था और ऊपर उसने लाल दुपट्टा ओढ़ लिया था,

---

१. नेत्रापाङ्गे। २. वेषेण। ३. धवल। ४. कपटविलासिनी,...वेषस्य। ५. सञ्चारिणीमिन्द्र। ६...पुत्रिकामिव। ७. गुल्फावलम्बिनील।

शुक-विरचितावगुण्ठनां नीलोत्पलस्थलीमिव निपतितसन्ध्यातपाम् , एक-कर्णा¹मुक्त-दन्तपत्र-प्रभाधवलितकपोल-मण्डलाम् उद्यदिन्दु²बिम्ब-च्छुरित-मुखीमिव विभावरीम् , आकपिल-गोरोचना-रचित-तिलक-तृतीय-लोचनाम् ईशानु³चरितकिरातवेशामिव भवानीम् , उरः-स्थल-निवास-संक्रान्त-नारायण-देहप्रभा-श्याम⁴लितामिव श्रियम् , कुपित-हर-हुताशन-दह्यमान-मदन-धूम-मलिनीकृतामिव रतिम् , उन्मद⁵-हलिहलाकर्षण⁶-भय-पलायितामिव

एकेति—एकस्मिन् कर्णे श्रोत्रे अवसक्तं लग्नं यत् दन्तपत्रं कर्णाभरणविशेषस्तस्य प्रभया कान्त्या धवलितं श्वेतीकृतं कपोलमण्डलं गण्डप्रदेशो यस्याः सा ताम्, अत एव उद्यत् उदयं प्राप्नुवन् य इन्दुश्चन्द्रस्तस्य किरणैः रश्मिभिः छुरितम् अन्धकारनिवृत्त्या सप्रकाशं मुखम् आद्यभागः आननञ्च यस्याः सा तां तादृशीं विभावरीं रात्रिमिव विद्यमानामिति शेषः। एतेन रात्रिनायकयोर्दन्तपत्रचन्द्रयोश्च तुल्यत्वं प्रदर्शितम्। इहापि पूर्ववदेवालङ्कारः।

आकपिलेति। आकपिलया ईषत्पीतरक्तया गोरोचनया गोपित्तेन रचितं निर्मितं यत्तिलकं पुण्ड्रं तदेव तृतीयं लोचनं नयनं यस्याः सा ताम्, अत एव ईशस्य शम्भोः अनुचरिता पश्चाद्गता चाऽसौ किरातवेषा भिल्लिनेपथ्यं यया सैवम्भूतां भवानीं पार्वतीमिव शिववत्पुरो वृद्धपुरुषावस्थानादित्याशयः। उक्तसङ्करः।

पुरा किल श्रीकृष्णप्रेरितः पार्थः पाशुपतास्त्रप्राप्तये तपस्तप्तुं गतः, ततः, वराहरूपेण तं जिघांसया यान्तं मूकदानवं मारयितुं भगवान् शिवः किरातवेशं गृहीतवान् तदनु तमेव वेशं धारयित्वा पार्वत्यपि शिवमनुययाविति महाभारतीया कथा।

उरःस्थलेति। उरःस्थले वक्षसि निवासेन निवसनेन संक्रान्ता प्रतिबिम्बिताया नारायणस्य विष्णोः देहप्रभा शरीरकान्तिः तया श्यामलितां श्यामत्वं प्राप्तां श्रियं लक्ष्मीमिव। इह लक्ष्मीचण्डालकन्ययोः साम्यध्वननादुपमालङ्कारः, तथा श्रियः स्वीयगौरकान्तिपरित्यागेन भगवतो नारायणस्य श्यामलगुणादानात् तद्गुणालङ्कारः, अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

कुपित इति। कुपितः धैर्यभङ्गकरणेन क्रोधं प्राप्तो यो हरः शङ्करः तस्य हुताशनेन तृतीयलोचनवह्निना दह्यमानः ज्वाल्यमानो यो मदनः कामदेवस्तस्य धूमेन दहनकेतुना मलिनीकृतां मालिन्यमुपगतां रतिं कामपत्नीमिव विद्यमानाम्। इहोक्तविधधूमेन मलिनीकरणसम्बन्धाऽभावेऽपि तत्सम्बन्धकथनादतिशयोक्तिरलङ्कारः, उपमा च स्पष्टैवेत्यनयोर्मिथः अङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

पुरा किल तारकासुरवधायोद्यता देवा ब्रह्माणं ययुः। पार्वत्यामुद्भूतः कार्तिकेयोऽस्य निहन्ता नान्य इति विवाहाय शिवं प्रसादनीया इति ततः श्रुत्वा तत्र कस्य साफल्यम्भवेदिति वितर्कयन्तो मदनं नियुक्तवन्तः। देवगणानुरोधेन मदनोऽपि पार्वतीसमक्षं सम्मोहनास्त्रेण महेश्वरस्य धैर्यमपहरन् तदीयभाललोचनवह्निना दग्ध इति शिवपुराणीया कथा।

उन्मदेति। उन्मदस्य प्रबलाहङ्कारिणो हलिनो बलभद्रस्य हलेन लाङ्गलेन यदाकर्षणमाकृष्टिस्तस्माद् भयेन त्रासेन पलायितां विलयं गतां कालिन्दीं यमुनामिव विद्यमानाम्। उपमालङ्कारः।

पुरा मद्यपानगर्वितो बलभद्रः जलक्रीडानिमित्तं यमुनामाहूतवान् यदा हि नागतवती तदा हलाग्रेण तामाचकर्ष सा च तदान्तर्हितेति श्रीमद्भागवतीया कथा।

इनसे वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो—सायंकाल सूर्यकी किरणें जिस पर पड़ी हों ऐसी—नील-कमलमय एक पृथ्वी हो। एक कानमें धारण किये हुए हस्ति-दन्त-निर्मित आभूषणके किरणसे उसके कपोल-स्थल गोरे दिखाई देते थे, इसलिए वह मानो—उदय होते हुए चन्द्र-बिम्बकी किरणोंसे व्याप्त मुखवाली—रात्रिकी शोभा पा रही थी। कुछ-कुछ पीतवर्णके गोरोचनसे उसने तिलकरूपी तृतीय नेत्र बना लिया था, जिससे मानो वह—शङ्करके वेषके समान ही भीलनीका वेष ग्रहण करनेवाली—पार्वती थी। नारायणके वक्षःस्थलमें निवास करनेसे लगी—उनकी देह—कान्तिके कारण काली पड़ी—मानो वह साक्षात् लक्ष्मी थी। क्रुद्ध हुए शङ्करके तृतीय लोचनाग्निसे जलते कामदेवके धुएँसे मलिनता प्राप्त की हुई मानो वह रति थी। मदमत्त—कामावेशमें आए बलरामके हलसे

१. अवसक्त, मुक्त। २. उद्यदिन्दुकिरणच्छुरित। ३. ईशानरञ्जनानुरचित, ईशानुरचित, ईशानाचरितानुरचित। ४. श्यामलतां। ५. उन्मत्त। ६. हलापकर्षणप्रपलायितां।

कालिन्दीम्, अतिबहल-पिण्डालक्तक-रस-राग-पल्लवित-पादपङ्कजाम्, अचिर-मृदित-महिषासुर-रुधिर-रक्त-चरणामिव कात्यायनीम्, आलोहिताङ्गुलि-प्रभा-पाटलित-नख-मयूखाम्, अतिकठिन-मणिकुट्टिम-स्पर्शमसहमानां क्षितितले पल्लवभङ्गानिव निधाय सञ्चरन्तीम्, आपिञ्जरेणोत्सर्पिणा नूपुरमणीनां प्रभाजालेन रञ्जित-शरीरतया पावकेनेव भगवता रूपैकपक्षपातिना प्रजापतिमप्रमाणीकुर्वता जातिसंशोधनार्थमालिङ्गितदेहाम्, अनङ्ग-वारण-शिरोनक्षत्र-मालायमानेन रोमराजि-लतालवालकेन मेखलादाम्ना परिगतजघनस्थलाम्, अति-

अतिबहलेति। अतिबहलोऽतिप्रचुरो यः पिण्डालक्तकरसः पिण्डीभूतालक्तकद्रवस्तस्य रागेण लौहित्येन पल्लविते अभिनवकिसलयवदाचरिते पादपङ्कजे चरणकमले यस्याः सा तां तादृशीम्, अत एव अचिरमृदितस्य तत्कालच्छिन्नकण्ठस्य महिषासुरस्य तन्नामकजगद्द्रुहिणो राक्षसस्य रुधिरेण शोणितेन रक्तौ रक्तवर्णौ चरणौ पादौ यस्यास्तां कात्यायनीं दुर्गामिव विद्यमानाम्। इह रुधिररक्तपदयोरर्थस्य श्रवणमात्रेणैव पुनरुक्तवदवगमाद्भिन्नाकारपदगतत्वाच्च पुनरुक्तवदाभासोऽलङ्कारः, उपमा च। अनयोरेकाश्रयानुप्रवेशरूपः सङ्करालङ्कारः।

पुरा किल ब्रह्मणो लब्धवरं महिषासुरं जगदुत्पीडयन्तं भगवती दुर्गा स्वयमाविर्भूयासिना कर्त्तयामासेति मार्कण्डेयपुराणान्तर्गतसप्तशतीया कथा।

आलोहितेति। आलोहिता अतिरक्तवर्णा या अङ्गुलयः करशाखाः तासां प्रभाभिः कान्तिभिः पाटलिताः श्वेतरक्तीकृताः 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः, नखमयूखाः पुनर्भवरश्मयो यस्यास्ताम्, तथा अतिकठिनस्य अतिकर्कशस्य मणिकुट्टिमस्य मणिमयबद्धभुवः स्पर्शं संश्लेषम् असहमानाम् अक्षममाणाम् अतिमृदुलचरणत्वादिति भावः, अत एव क्षितितले पृथिवीतले पल्लवभङ्गान् किसलयखण्डान् 'पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' इत्यमरः, निधायेव स्थापयित्वेव सञ्चरन्तीं गच्छन्तीम्, एवं सति पादव्यथा न भवेदित्याशयः। इह निधायेवेति क्रियोत्प्रेक्षणात्क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः। तथा च तथाविधनखकिरणानामेव किसलयखण्डसादृश्यप्रतीतिरिति ध्वनितम्।

आपिञ्जरेणेति। आपिञ्जरेण ईषत्पीतरक्तेन 'पीतरक्तस्तु पिञ्जरः' इत्यभिधानचिन्तामणिः, उत्सर्पिणा ऊर्ध्वंगामिना नूपुरमणीनां हंसकरत्नानां प्रभाजालेन कान्तिसमूहेन रञ्जितशरीरतया शोभितदेहतया हेतुना रूपैकपक्षपातिना केवलसौन्दर्यादरविधायिना, अत एव प्रजापतिं सृष्टिविधातारं ब्रह्माणम् अप्रमाणीकुर्वता 'स्वमेवंविधां रूपवतीं निर्माायापि अस्पृश्याम् अन्त्यजजातिमेव कृतवान् तदहमेनां शुद्धां करोमि' इत्थमनिश्चितकर्तृताकं विदधता, विधातृकृतस्यान्यथाकरणाकाङ्क्षितत्वादित्याशयः, भगवता माहात्म्यवता पावकेन वह्निना जातिशोधनार्थम् अन्त्यजत्वेनास्पृश्यायास्तस्या शुद्धित्वसम्पादनार्थमित्यर्थः, आलिङ्गितदेहाम् आश्लेषितशरीरामिव विद्यमानाम् अपवित्रं वस्तु वह्निना पवित्रं भवतीति धर्मशास्त्रे पैठीनसिवचनम्—'सर्वमग्नौ प्रतप्तं शुध्यते' इति ऊर्ध्वप्रसारी नूपुरमणीनां मयूखसमूहः सर्वतः शरीरपरिवेष्टनाद् वह्निवत् प्रतीयमान आसीदिति तात्पर्यम्। इह नूपुरमणिप्रभावह्न्योः परस्परमुपमानोपमेयभावः प्रतीयते इत्युपमा उत्प्रेक्षालङ्कारश्च स्फुट एव तथा चानयोरङ्गाङ्गिभावात्सङ्करालङ्कारः।

अनङ्गेति। अनङ्गस्य कामस्य 'कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः कामः' इत्यमरः, यो वारणो हस्ती तस्य शिरसि मूर्ध्नि या नक्षत्रमाला सप्तविंशतिसंख्यकमुक्ताग्रथितमाला तद्वदाचरता कामसम्बन्धितया कामोद्दीपकत्वादित्याशयः। 'सैव नक्षत्रमाला स्यात्सप्तविंशतिमौक्तिकैः' इत्यमरः, रोमराजिः नाभिप्रदेशात् ऋजुभावेनोर्ध्वगामिनी या लोमपङ्क्तिः 'वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिः श्रेणी लेखास्तु राजयः' इत्यमरः, सैव लतावल्ली तस्या

आकर्षित हो (खींच) जानेके भयके कारण भागी हुई मानो वह यमुना थी। "उसके चरण-कमलों पर अत्यधिक गाढ़ी लाल लाखके रंगसे फूल-पत्ते निर्मित हुए थे, इनसे वह—तत्काल मारे गए महिषासुरके शोणितसे रक्त-चरणवाली दुर्गाके समान देखनेमें आती थी। अतिरक्तवर्ण अङ्गुलियोंकी कान्तिसे उसकी नख-किरणें श्वेतरक्त (गुलाबी) हो गई थीं। उसके चरणोंमें जो फूल-पत्ते कढ़ रहे थे उनका प्रतिबिम्ब (परछाईं) भूमि पर पड़ रहा था, इससे ऐसा प्रतीत होता था मानो अतिकठिन मणि-मय भूमिका स्पर्श असह्य होनेके कारण वह फूल-पत्ते बिछाती हुई उन पर चलती है। नूपुर (पायजेब) मणियोंमें से फैलते हुए कुछ पीतवर्णके प्रकाशसे उसका शरीर रंग गया था, जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो भगवान् अग्निदेवने, केवल उसकी शोभाका पक्षपात कर और प्रजापति (ब्रह्मा)

१. यमुनाम्। २. प्रभाजालकेनानुरञ्जित"। ३. रूप एव पक्षपातिना। ४. रसनादाम्ना परिगतजघनाम्।

स्थूल-मुक्ताफल-घटितेन शुचिना हारेण गङ्गास्रोतसेव कालिन्दीशङ्कया कृतकण्ठग्रहाम्, शरदमिव विकसित-पुण्डरीक-लोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेशजालाम्, मलयमेखलामिव चन्दनपल्लवावतंसाम्, नक्षत्रमालामिव चित्र–श्रवणा–भरण–भूषिताम्, श्रियमिव हस्तस्थित–कमलशोभाम्, मूर्च्छामिव मनोहारिणीम्[2], अरण्यभूमिमिव अक्षत[3]–रूपसम्पन्नाम्, दिव्ययो-

आलवालं मूले जलदानाय आवापः स्वल्पजलाधार इति यावत् 'स्यादालवालमावालमावापः' इत्यमरः, तत्स्वरूपेण रसनादाम्ना कटिमेखलाबन्धनरज्जुना परिगतं समन्ताद् व्याप्तं जघनस्थलं कटिपुरोभागो यस्याः सा तां तादृशीम्, 'कट्याः क्लीबे तु जघनं पुरः' इत्यमरः। इह रोमराजौ लतात्वारोपः रसनादाम्नि आलवालत्वारोपे निमित्तमिति परम्परितरूपकमलङ्कारः वयःङ्गतोपमयास ङ्कीर्णः।

अतिस्थूलेति। अतिस्थूलानि अतिबृहतानि यानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तैः घटितेन निष्पादितेन शुचिना श्वेतवर्णेन हारेण चतुःषष्टिलतेन 'चतुःषष्टिलतो हारः' इत्यमरः, कालिन्दीशङ्कया चण्डालकन्यकायाः श्यामत्वात् यमुनाभ्रान्त्या गङ्गास्रोतसेव जाह्नवीप्रवाहेणेव, कृतः कण्ठग्रहो गलसंश्लेषः समीपाश्रयश्च यस्यास्तां तादृशीम्। इह चण्डालकन्यायां तुल्यश्यामत्वेन कालिन्दीभ्रमाद् भ्रान्तिमानलङ्कारः, हारे गङ्गाप्रवाहोत्प्रेक्षणाद्द्वयोत्प्रेक्षा चोभयोः परस्परमङ्गाङ्गिभावेन सङ्करात् सङ्करालङ्कारः।

शरदमिवेति। विकसिते विस्फारिते पुण्डरीके सिताम्भोजद्वयमिव 'पुण्डरीकं सिताम्भोजम्' इत्यमरः, लोचने नयने यस्यास्ताम्, अतएव शरदिव घनात्ययमिव तत्र पक्षे विकसितानि प्रस्फुटितानि पुण्डरीकाणि लोचनानि चक्षूंषीव यस्यास्तां तादृशीम्।

प्रावृषमिति। प्रावृषं वर्षासमयमिव, घनाः सान्द्राः ये केशाः शिरोरुहास्तेषां जालानि समूहा यस्यास्ताम्, प्रावृट्पक्षे तु—घना मेघाः केशजालानि यस्यां ताम्।

मलयेति। मलयस्य तदाख्यपर्वतस्य मेखलां मध्यभागमिव, चन्दनस्य पल्लवाः किसलयानि तेषामवतंसा भूषणानि यस्यास्ताम्, पक्षे–चन्दनपल्लवास्त एव अवतंसः शेखरो यस्यास्ताम्।

नक्षत्रेति। नक्षत्रमालामिव तारकापङ्क्तिमिव, चित्रैर्विविधप्रकारैः श्रवणाभरणैः कर्णभूषणैः भूषितां शोभिताम्, पक्षे—चित्राश्रवणाभरणीसंज्ञकैर्नक्षत्रविशेषैर्भूषिताम्।

श्रियमिति। श्रियं लक्ष्मीमिव हस्ते पाणितले स्थिता न्यस्ता कमलस्य किञ्जल्कस्य शोभा श्रीर्यस्या सा ताम्, पक्षे—हस्ते करे स्थितं यत्कमलं पद्मं तेन शोभा यस्याः सा ताम्।

मूर्च्छामिति। मूर्च्छां मोहमिव, मनोहारिणीं सौन्दर्यातिशयेन हृदयाकर्षिणीम्, पक्षे—चेतनालोपकरणेन मनोवृत्तिभ्रंसिनीम्।

अरण्येति। अरण्यभूमिं काननभुवमिव 'अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमरः, अक्षतं केनाऽप्यसम्भुक्तं यद् रूपं लावण्यं तेन सम्पन्नां संयुक्ताम्, पक्षे–अक्षतरुभिः रुद्राक्षवृक्षैः यद्वा विभीतकवृक्षैः उपसम्पन्नां संयुक्ताम् 'रुद्राक्षे रावणौ सर्पे विभीतकतरावपि' इति हैमः।

दिव्येति। दिव्या स्वर्गलोकसम्बन्धिनी या योषित् स्त्री तामिव, अकुलीनाम् अन्त्यजत्वान्नीचकुलोत्प-

के आदेशको न मान कर, उस जातिको पवित्र करनेके लिए, उसके शरीरका आलिंगन किया है। उसके कटिप्रदेशमें करधनी (तागड़ी) की लड़ं पड़ी थी, वह कामदेव-रूपी हाथीके मस्तक-स्थित मुक्ताओंकी माला और रोमावली-रूप लताके आलवाल (क्यारी) के समान लगती थी। बड़े-बड़े मोतियोंकी निर्मल माला उसने गलेमें धारण कर रखी थी, वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो उसे यमुना समझ कर गंगा मिलनेके लिए आई हो?

शरद् ऋतुमें जिस प्रकार कमलरूपी नेत्र खिले होते हैं उसी प्रकार उस कन्याके बड़े-बड़े कमल-नेत्र खिले थे। वर्षाऋतुमें जिस प्रकार मेघरूपी केश होते हैं, उसी प्रकार उस कन्याके घने केश थे। मलयाचलका मध्यभाग चन्दनके पत्तोंसे जिस प्रकार शोभित रहता है, उसी प्रकार यह कन्या भी चन्दनके पत्तोंके आभूषणोंसे शोभित थी। नक्षत्र-मालामें जिस प्रकार चित्रा, श्रवण तथा भरणी नक्षत्र होते हैं, उसी प्रकार वह कन्या भी कानोंके आभूषणोंसे युक्त थी। लक्ष्मी जिस प्रकार अपने हाथमें लिए कमलकी शोभासे युक्त है, उसी प्रकार वह भी हाथोंमें लिये कमलकी शोभासे युक्त थी। मूर्च्छा जिस प्रकार चेतनाको हर लेती है, उसी प्रकार वह कन्या भी चित्तको हर लेती थी। वन-भूमि जिस प्रकार अक्षके वृक्षोंसे युक्त होती है, वह कन्या भी अक्षतरूप—निर्दोष-

१. शुचिहारेण। २. मनोहराम्। ३. क्वापि 'अक्षत' पदं न विद्यते, क्वचिच्च अन्याक्षतबहुशोभिरूपाम् इति पाठो विद्यते।

षितामिवाकुलीनाम्, निद्रामिव लोचनग्राहिणीम्, अरण्यकमलिनीमिव मातङ्गकुलदूषिताम्, अमूर्त्तामिव स्पर्शवर्जिताम्, आलेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलाम्, मधुमास-कुसुम-समृद्धिमिव अजातिम्, अनङ्ग-कुसुम-चाप-लेखामिव मुष्टिग्राह्यमध्याम्, यक्षाधिपलक्ष्मीमिवाल-

---

ताम्, पक्षे—कौ पृथिव्यां लीना स्थिता या भवति सा कुलीना एवं रूपा या न भवतीत्यकुलीना ताम्, पृथिवीतलस्पर्शाविधायिनीमित्यर्थः। देवयोनीनां पृथिवीतले स्पर्शो न भवतीति पौराणिकाः।

निद्रामिति। निद्रां प्रमीलामिव, लोचनग्राहिणीं सौन्दर्यातिशयेन कामुकानां नेत्राकर्षिणीम्, पक्षे—अक्षिसंकोचविधानेन निमेषोन्मेषावरोधिनीम्।

अरण्येति। अरण्यकमलिनीं वनपद्मिनीमिव, मातङ्गकुलेन चण्डालान्वयेन तत्कुलोत्पन्नत्वेनेत्यर्थः, दूषितां निन्दिताम्, पक्षे—मातङ्गकुलेन हस्तिसमूहेन दूषितां विमथिताम्। 'मातङ्गः श्वपचे गजे' इति मे०।

अमूर्त्तामिति। अमूर्त्ता इयत्तावच्छिन्नपरिमाणरहिता बुद्धिः तामिव, स्पर्शवर्जितां शरीरस्पर्शत्यक्ताम्—

दिवाकीर्त्तिमुदक्यां च पतितं सूतिकां तथा। शवं तत्स्पृष्टिनञ्चैव स्पृष्ट्वा स्नानेन शुद्ध्यति॥

इति मनुवचनादन्त्यजस्पर्शे स्नानप्रतिपादनादित्याशयः। पक्षे तु—स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यो गुणस्तेन वर्जितां शून्यां वैशेषिकमते चतुर्विंशतिगुणेषु बुद्धेरपि पाठाद् गुणत्वेन गुणादीनां निर्गुणत्वान्निष्क्रियत्वाच्चेत्याशयः।

आलेख्यगतामिति। आलेख्यगतां चित्रस्थितां पुत्रिकामिव दर्शनमात्रं चण्डालत्वेन सम्भोगाभावात् केवलावलोकनमेव फलं प्रयोजनं यस्यास्ताम्, पक्षे आकृत्यभावेन तत्संश्लेषाद्यसम्भवाद् दर्शनमात्रफलाम्।

मधुमासेति। मधुमासस्य वसन्तसमयस्य कुसुमसमृद्धिं पुष्पसम्पत्तिमिव, अजातिं नं विद्यते मन्वादिपरिगणितब्राह्मणत्वादिर्यस्यां सा ताम्, तथा च—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः॥

इति मनुनोक्तत्वादन्त्यजादीनां जातिहीनत्वमेव प्रतीयते। पक्षे न विद्यते जातिर्मालती यस्यां सा ताम्। 'न स्याज्जाती वसन्ते' इत्यादिसाहित्यदर्पणदिशा वसन्ते मालतीपुष्पस्य वर्णनमप्रसिद्धम्। 'जातिश्छन्दसि सामान्ये मालत्यां गोत्रजन्मनोः' इति मेदिनी।

अनङ्गकुसुमेति। अनङ्गस्य कन्दर्पस्य 'कन्दर्पो दर्पकोऽनङ्गः' इत्यमरः, कुसुमचापस्य पुष्पधनुषो या लेखा लता तामिव, मुष्टिना संपीडिताङ्गुलिना 'सम्पीडिताङ्गुलिर्मुष्टिः' इति हलायुधः, ग्राह्यो ग्रहीतुं शक्यः मध्यः कटिदेशो मध्यप्रदेशश्च यस्याः सा ताम्। अनेन कटिदेशस्यात्यन्तकार्श्यमतिमृदुलत्वञ्च प्रत्याय्यते।

यक्षाधिपेति। यक्षाधिपस्य गुह्यकेश्वरस्य कुबेरस्येत्यर्थः, लक्ष्मीः सम्पत् तामिव, अलकैश्चूर्णकुन्तलैः उद्भासते शोभते इत्येवंशीला या सा ताम्, पक्षे—अलकायां तन्नामिकायां पुर्याम् उद्भासते या सा ताम्।

इह 'शरदमिव' इत्यारभ्य 'यक्षाधिपलक्ष्मीमिव' इत्यन्तं पूर्णोपमालङ्कारः। केचित्तु श्लेषोपमां प्रतिपादयन्ति।

सौन्दर्यसे युक्त थी। देवाङ्गना जिस प्रकार अकुलीन—पृथ्वीकी नहीं स्वर्गीय—होती है (उसका सबसे स्पर्श नहीं होता), उसी प्रकार वह भी नीचकुल की थी (अतः सत्पुरुषसे वह स्पर्श योग्य नहीं थी)। निद्रा जिस प्रकार नेत्रवृत्तिको रोकती है, वह भी कामियोंके नेत्रोंका आकर्षण करती थी। वन-कमलिनीको जिस प्रकार मातङ्गकुल दूपित करते हैं (हाथियोंके यूथ मसल डालते हैं), उसी प्रकार वह भी चाण्डाल-कुलमें जन्म होनेसे दूषित थी। उसका स्पर्श नहीं किया जा सकता था, इसलिए वह मानो निराकार थी (निराकारका स्पर्श नहीं किया जा सकता, कन्याके साथ संपर्क नहीं किया जा सकता)। उसका केवल दर्शन ही हो सकता था इसलिए मानो चित्रस्थित के समान थी। चैत्रमासमें जिस प्रकार जाति (चमेली) नहीं खिलती इसीलिए चैत्रकी पुष्प-समृद्धि नहीं होती है, उसी प्रकार वह उपजाति=हीनजातिकी थी। कामदेवके पुष्प-धनुषकी डोरीके समान उसका कटिप्रदेश (कमर) मुट्ठीमें आने योग्य थी और कुबेरकी लक्ष्मीसे जिस प्रकार अलका नगरी शोभायमान है, उसी प्रकार वह कन्या अलकों-लटोंसे शोभायमान थी।

---

१. विजातिम्।

कोद्भासिनीम् , अचिरोपरूढयौवनाम् , अतिशयरूपांकृतिम् , अनिमिषं-लोचनो ददर्श ।

दृष्ट्वा च तां समुपजातविस्मयस्याभून्मनसि महीपतेः—'अहो ! विधातुरस्थाने रूप-निष्पादनप्रयत्नः । तथाहि, यदि नामेयमात्मरूपोपहसिताशेषरूपसम्पदुत्पादिता, किमर्थमप-गत-स्पर्श-सम्भोग-सुखे कृतं कुले जन्म ।'

मन्ये च 'मातङ्ग-जाति-स्पर्श-दोष-भयादस्पृशतेयमुत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य । नहि करतल-स्पर्श-क्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः ।

सर्वथा धिग्विधातारम् असदृशसंयोगकारिणम् । अतिमनोहराकृतिरपि क्रूरजाति-

---

अचिरेति । अचिरं शीघ्रम् उपारूढम् उपगतं यौवनं तारुण्यं यस्याः सा ताम्, सञ्जातयौवनामित्यर्थः । अतिशयं बाहुल्यं तेन रूपं लावण्यं यस्याः सा एवम्भूता आकृतिः स्वरूपं यस्याः सा ताम् ।

अनिमिषेति । अनिमिषे निमेषोन्मेषवर्जिते लोचने नयने यस्यैवम्भूतो राजा ददर्श अवलोकयामास । अत्यन्तसुधास्पदं जनयन्त्यपि वर्णनेयं वास्तविकं किञ्चित् प्रकृतसन्दर्भे चोपयोगाभावात् सहृदयहृदयावर्जनाय न भवतीति सहृदयैरेव विचारणीयम् ।

दृष्ट्वेति । दृष्ट्वा अवलोक्य च तां चण्डालकन्यकाम्, जातः उत्पन्नः विस्मयः आश्चर्यं यस्यैवम्भूतस्य महीपतेः शूद्रकस्य राज्ञः, मनसि चित्ते (एवं वृत्तिः) अभूत् उत्पन्ना । तामेव मनोवृत्तिमुपपादयति—अहो ! इति । अहो ! इति वितर्के 'आहो उताहो किमुत' इत्यमरः । विधातुर्ब्रह्मणः अस्थाने अपात्रे सौन्दर्यस्य अद्भुतरूपस्य निष्पादने निर्माणे प्रयत्न आयासः । अथ स्पष्टीकरोति—तथाहीत्यादिना । नामेति मृदुलामन्त्रणे । यदि वात्मरूपेण स्वीयसौन्दर्येण उपहसिता न्यक्कृता अशेषा समग्रा रूपसम्पत् सौन्दर्यसमृद्धिः यया सा तादृशी, इयं चण्डालकन्यका उत्पादिता निर्मिता, (तर्हि) किमर्थं किन्निमित्तम्, अपगते दूरीभूते स्पर्शसम्भोगसुखे संश्लेषसुरतसुखे यस्मात् एवम्भूते कुले अन्त्यजवंशे जन्म उत्पत्तिः कृतं विहितम् तथा च यथेयं सौन्दर्यराशिर्विधिना निर्मिता तथा उच्चकुले जन्मकरणमपि योग्यमासीदित्यभिप्रायः ।

राजा एवं विमृश्य निश्चिनोति—मन्ये इति । अत्राहमित्यध्याहार्यः मातङ्गजातेः चाण्डालगोत्रस्य 'मातङ्गः श्वपचे गज' इति मेदिनी 'जातिश्छन्दसि सामान्ये मालत्यां गोत्रजन्मनोः' इति विश्वः, 'जातिः स्त्री गोत्रजन्मनोः' इति मेदिनी च, स्पर्शेण संश्लेषेण (जनितः यः) दोषः अपवित्रता तस्माद् यद्भयं त्रासः तस्मात्, अस्पृशता अस्या देहस्पर्शमकुर्वता प्रजापतिना ब्रह्मणा, इयं चण्डालकन्यका, उत्पादिता मरीच्यादिसप्तर्षिवन्मनःसङ्कल्पमात्रेण निष्पादिता इति (अहं) मन्ये जाने इत्यर्थः । अन्यथा उक्तवैपरीत्ये स्पर्शयोग्यत्वे सतीति भावः, इयमेवम्भूता, लावण्यस्य सौन्दर्यस्य अक्लिष्टता अक्षतता कथं स्यात् ? कथमपि नेत्यर्थः । एतदेवोपपादयति—न हीत्यादिना । करतलस्पर्शक्लेशितानां पाणितलसंश्लेषमर्दितानाम् अवयवानां स्तनादीनाम्, ईदृशी एवम्भूता, कान्तिः कमनीयता, न हि भवति न स्यात्, अपक्वमृन्मयभाजनमिव क्षुण्णता स्यादित्यभिप्रायः ।

सर्वथेति । असदृशयोः दीर्घव्यधिकरणत्वेन मिथो विरुद्धयोश्चण्डालत्वात्यन्तमनोहराकृत्योः संयोगम्

उसे देखकर राजा बहुत आश्चर्यान्वित हुआ और मनमें विचार करने लगा—अहो ! अयोग्य स्थानमें सौन्दर्यनिर्माण करनेका विधाताका यह प्रयत्न कैसा है ? यदि उसने इसे अपने सौन्दर्यसे सब मनोहर वस्तुओंको उपहास करने योग्य बनाया तो—जिसमें स्पर्श तथा सम्भोगका आनन्द न मिले—ऐसे कुलमें क्यों उत्पन्न किया ?

मेरा यह ध्यान है कि चाण्डाल-जातिके स्पर्श दोषके भयसे विधाताने इसे स्पर्श किये बिना ही निर्माण किया है, नहीं तो इतना अक्षुण्ण (निर्दोष) लावण्य कैसे हो सकता है ? हाथ के छूनेसे दूषित अवयवोंकी ऐसी कमनीयता कभी नहीं हो सकती ।

विधाताको सर्वथा धिक्कार है, जिसने ऐसा अघटित संयोग किया और ऐसी रमणीय मूर्तिको भी दूषित

---

१. उपारूढ''' । २. अनिमेष''' । ३. क्वापि 'दृष्ट्वा च ताम्' इति पाठो नोपलभ्यते । ४ जात''' । ५. सौन्दर्य'''रूपनिष्पादनप्रयत्नः । ६. अस्या जन्म । ७. मनसोत्पादिता । ८. तथाहि । ९. धिग्धिग्विधातारम् । १०. मनोहरा''' ।

तथा येनेयमसुरश्रीरिव सतत-निन्दित-सुरता रमणीयाऽप्युद्वेजयति' इति ।

एवमादि चिन्तयन्तमेव राजानमीषदवगलित-कर्णपल्लवावतंसा प्रगल्भवनितेव कन्यका प्रणनाम ।

कृतप्रणामायाञ्च तस्यां मणिकुट्टिमोपविष्टायाम् , स पुरुषस्तं विहङ्गमादाय पञ्जरगतमेवं किञ्चिदुपसृत्य राज्ञे न्यवेदयदब्रवीच्च—

'देव ! विदितसकलशास्त्रार्थः, राजनीतिप्रयोगकुशलः, पुराणेतिहासकथालापनिपुणः, वेदिता गीतश्रुतीनाम् , काव्य-नाटकाख्यानक-प्रभृतीनामपरिमितानां सुभाषितानामध्येता

एकत्र सम्बन्धं कर्त्तुं शीलं यस्य तं विधातारम् अस्या निर्माणकर्त्तारं ब्रह्माणं धिक् निन्दामि 'धिक् धिक्' इति पाठे अत्यधिकं निन्दामीत्यर्थः, येन असदृशसंबन्धविधानेन हेतुना इयं चण्डालकन्यका मनोहरा चित्ताकर्षिणी आकृतिः स्वरूपं यस्याः सा एवम्भूताऽपि असुरश्रीरिव दैत्यलक्ष्मीरिव सततं निरन्तरं निन्दितं धर्मशास्त्रकृद्भिर्जुगुप्सितं सुरतसम्भोगो यस्यां सा, पक्षे—सततम् अजस्रं निन्दिता तिरस्कृता सुरता देवसमूहो यया सा, एवम्भूता रमणीयाऽपि सुरतयोग्याऽपि क्रूरजातितया नृशंसान्त्यजजातितया उद्वेजयति वैचित्र्यमुत्पादयति' इति 'महीपतेर्मनसि अभूत्' इति पूर्वेण सम्बन्धः । इह पूर्णोपमा ।

एवमिति । ईषत् अल्पम् अवगलितौ अधःप्रसृतौ कर्णयोः श्रोत्रयोः पल्लवावतंसौ किसलयभूषणे यस्याः सा, कन्यका चण्डालदारिका प्रगल्भवनितेव सम्प्रत्यप्राप्तयौवनत्वादप्रगल्भापि धृष्टनायिकेव तथाविधराजसभायामपि त्रपाद्यभावादित्याशयः । एवमादि पूर्वोक्तप्रकारादिकम्, चिन्तयन्तमेव विचारं कुर्वन्तमेव राजानं महीपतिं प्रणनाम प्रणाममकरोत् ।

कृतेति । कृतो विहितः प्रणामो नमस्कारो यया सा तथा तस्याम् , मणिकुट्टिमं रत्नबद्धभूमिस्तत्र उपविष्टायां वर्त्तमानायां तस्यां चण्डालकन्यकायाम् , स अग्रगामी पूर्वोक्तो धवलवासाः वृद्धः पुरुषः, पञ्जरगतमेव पक्षिरक्षणस्थलप्राप्तमेव न तु ततः पृथक्कृत्वेत्यर्थः, तं विहङ्गमं पक्षिणं शुकं कीरम् आदाय गृहीत्वा किञ्चिद्विनयेन (पुरः) उपसृत्य आगत्य राज्ञे भूपतये न्यवेदयत् उपहृतवान् अब्रवीत् अगादीच्चेत्यर्थः ।

देवेति । देव हे राजन् ! 'राजा भट्टारको देवः' इत्यमरः, 'विदितसकलशास्त्रार्थः' इत्यादीनि प्रथमान्तानि शुकविशेषणान्यवगन्तव्यानि । तत्र विदितः ज्ञातःसकलशास्त्राणां षडङ्गसहितवेदानाम् अर्थोऽभिधेयो येन सः, राजनीतिप्रयोगे कामन्दक्युक्तशिक्षायां कुशलो निपुणः, पुराणं पञ्चलक्षणम्, इतिहासः, पुरावृत्तम्, तेषां कथायां वार्तायां य आलापः सम्यग्भाषणं तदर्थप्रतिपादकवाक्यनिर्माणं वा तत्र निपुणः प्रवीणः, गीतं गानं श्रुतयः स्वरारम्भकावयवीभूताः शब्दविशेषा द्वाविंशतिविधाः तासां वेदिता बोद्धा । श्रुतीनां द्वाविंशतिविधत्वे प्रमाणम्—

'सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छाश्चैकोनविंशतिः । ताना एकोनपञ्चाशद्द्व्यधिका विंशतिः श्रुतिः ॥ इति ।

अन्यत्र तु—

'नान्दी चालनिका रसा च सुमुखी चित्रा विचित्रा घना मातङ्गी सरसामृता मधुकरी मैत्री शिवा माधवी ।
बाला शार्ङ्गरवी कला कलरवा माला विशाला जया मात्रेति श्रुतयःपुराणकविभिर्द्वाविंशतिः कीर्त्तिताः ॥'इति ।

काव्यम् अदोषत्वे सति गुणालङ्कारवत्कविकर्म, नाटकम् अभिनयः, आख्यायिका वासवदत्तादिः,

कुलमें उत्पन्न किया, जिससे दैत्य-लक्ष्मीके समान अत्यन्त सुन्दरी और कोमलाङ्गी होने पर, भी—निन्दित सुरता—(दैत्य-लक्ष्मी देवताओंकी निन्दा करती है, चाण्डालके साथ सम्भोग गर्हित है) होनेके कारण उद्वेग उत्पन्न करती है ।

राजा इस प्रकार चिन्तन कर ही रहा था कि उसी समय उस कन्याने धृष्टनायिकाके समान प्रणाम किया, जिससे उसके कानका पल्लवाभूषण थोड़ा अवनत हो गया । प्रणाम करके मणिमय-भूमि पर उसके बैठते ही उस वृद्ध पुरुषने तोतेके पिंजरे को लाकर, कुछ आगे आकर और राजाको उपहार (भेंट) समर्पण कर कहा—महाराज! यह शुक (तोता) समस्त शास्त्रोंका अर्थ जानता है, राजनीतिके प्रयोगमें निपुण है, पुराण, इतिहास आदि की कथा कहनेमें बहुत कुशल है, गान-विद्याके स्वरोंको समझता है । काव्य, नाटक, प्राचीन और अर्वाचीन कथा

१. क्रूरजातिजा । २. विहङ्गमादाय, विहङ्गमं शुकमादाय । ३. गतं किञ्चित्, ४. नाटकाख्यायिकाख्यानक··· ।

स्वयञ्च कर्त्ता, परिहासालापपेशलः, वीणा–वेणु–मुरजप्रभृतीनां वाद्यविशेषाणामसमः श्रोता, नृत्यप्रयोगदर्शननिपुणः, चित्रकर्म्मणि प्रवीणः, द्यूतव्यापारे प्रगल्भः, प्रणयकलह–कुपित–कामिनी-प्रसादनोपायचतुरः, गज–तुरग–पुरुष–स्त्री–लक्षणाभिज्ञः, सकलभूतल–रत्नभूतोऽयं वैशम्पायनो नाम शुकः। सर्वरत्नानाञ्च उदधिरिव देवो भाजनमिति कृत्वैनमादायास्मत्स्वामिदुहिता देवपादमूलमायाता, तदयमात्मीयः क्रियता' मित्युक्त्वा नरपतेः पुरो निधाय पञ्जरमसावपससार।

अपसृते च तस्मिन् स विहङ्गराजो राजाभिमुखो भूत्वा समुन्नमय्य दक्षिणं चरणमतिस्पष्ट–वर्ण–स्वर–संस्कारया गिरा कृतजयशब्दो राजानमुद्दिश्यार्य्यामिमां पपाठ—

आख्यानकं साम्प्रतिकराजवृत्तम्, एतत्प्रभृतीनां सामुद्रिकादीनाम् (तथा) अपरिमितानाम् अगणितानाम् सुभाषितानां शृङ्गारनीतिवैराग्यबोधकानां च अध्येता पाठकः, कर्त्ता स्वयमेव निर्माता च। परिहासोऽन्येषां प्रियवचनैर्हसनं तस्य आलापेषु रसबोधकपदप्रयोगेषु पेशलः दक्षः। वीणा शब्दसमभिव्याहाराात्ततम्, वेणुः सुषिरम्, मुरजम् आनद्धम्, आदिपदाद्घनं कांस्यतालादि परामृश्यते, एतेषाम् असमः निरुपमः अद्वितीय इत्यर्थः, श्रोता आकर्णनेन तारतम्यगुणदोषविवेचक इत्यर्थः नृत्यं तालळयाश्रितं तस्य प्रयोगदर्शने प्रारम्भावलोकने निपुणः पेशलः अवलोकनेनोत्कृष्टापकृष्टनिर्वाचक इत्यर्थः।

चित्रकर्मणि आलेख्यकलायां प्रवीणो निपुणः। द्यूतव्यापारे दुरोदरव्यापारे प्रगल्भः कुशलः प्रतिभायुत इत्यर्थः। प्रणयकलहेन स्नेहविषयकविवादेन कुपितानां क्रोधं प्राप्तानां कामिनीनां प्रमदानां प्रसादनोपायेषु सान्त्वनानिमित्तभूतप्रपञ्चेषु चतुरोऽभिज्ञः। गजा भद्रजातीयाः तुरगाः शालिहोत्रप्रतिपादितादेवमण्यादयः, पुरुषा धीरोदात्तादयः, स्त्रियः पद्मिन्यादयः तासां लक्षणेषु सामुद्रिकोक्तेषु अभिज्ञो निपुणः। सकलभूतलेषु समस्तपृथिवीतलेषु रत्नभूतः अत्युत्कृष्टमणिः। अयं पुरोऽवलोक्यमानः वैशम्पायनो नाम वैशम्पायनेति संज्ञकः शुकः कीरः सर्वरत्नानां सर्वोत्कृष्टवस्तूनाम् उदधिः सागर इव देवो भवान् भाजनमाश्रयः कृत्वा एतन्मनसि विचार्य, अस्मत्स्वामिनो वक्ष्यमाणस्य पत्युः दुहिता एषा कन्यका एनं शुकम् आदाय गृहीत्वा देवपादमूलं भवच्चरणान्तिकम् आयाता आगता, तत् तस्मात् कारणात् अयं शुकः आत्मीयो ग्रहणेन स्वीयः क्रियतां विधीयताम् इति पूर्वोक्तम् उक्त्वा अभिधाय नरपतेः राज्ञः (शूद्रकस्य) पुरः अग्रे निधाय स्थापयित्वा पञ्जरं पक्षिरक्षणस्थानम्, असौ पुरुषः अपससार दूरीभूतः।

अपसृत इति। तस्मिन् पुरुषे अपसृते दूरीभूते सति स पूर्वप्रतिपादितो विहङ्गराजः पक्षिराजः राज्ञः शूद्रकनृपतेः अभिमुखः सम्मुखो भूत्वा, दक्षिणम् सव्येतरं चरणं पादम् उन्नमय्य उत्तोल्य। दृश्यते हि लोके ब्राह्मणा आशीर्वादप्रदाने दक्षिणहस्तोत्तोलनं कुर्वन्ति पूर्वमयञ्च पुण्डरीकनामा ब्राह्मण आसीदिति तत्संस्कारानुसारेण जयशब्दोच्चारणे दक्षिणचरणोत्तोलनं कृतवान् चरणपादोपादानन्तु एकस्यैव करचरणोभयरूपत्वं पक्षिणामिति नासङ्गतिः। अतिस्पष्टाः सुव्यक्ताः, वर्णा अक्षराणि स्वरा उदात्तादयः तेषां संस्कारः परिपाकः व्याकरणशुद्धिरिति यावत् यासां सा तथा तया। एतेनान्यशुकाद्यपेक्षयाऽस्य वैलक्षण्यं प्रदर्शितम्।

अपरिमित सुभाषित पढ़ा हुआ है और स्वयं भी रचना करता है, परिहास करनेमें चतुर है, वीणा, वेणु (वंशी), मृदङ्ग आदि वाद्योंको सुनकर उनके गुण-दोष और तारतम्य करनेमें अद्वितीय है, नृत्यप्रयोग देखनेमें निपुण है, चित्र कर्ममें प्रवीण है, द्यूत व्यवहार—(पाशा आदि से जूआ खेलने)—में चतुर है, प्रेमपूर्वक कलहसे कुपित हुई स्त्रियोंको प्रसन्न करनेके उपायमें चतुर है, हाथी, घोड़े, पुरुष और स्त्री—इनके लक्षणोंको जानता है, समस्त पृथ्वीका यह एक रत्न है और इसका नाम वैशम्पायन है। आप, समुद्रके समान समस्त रत्नोंके आकर हैं—यह जानकर हम लोगोंके मालिककी कन्या इसे लेकर आपके चरणोंमें उपस्थित हुई है। अतः आप इसे अङ्गीकार करने का अनुग्रह करें। इतना कह राजाके सामने पिंजरा रख कर वह दूर हट गया।

उसने दूर हट जाने पर पक्षिश्रेष्ठ तोते ने राजाकी ओर देख, दाहिना चरण उठा, अत्यन्त स्पष्ट वर्ण स्वरयुक्त वाणीसे 'जय' कहकर, राजा ही को उद्देश्य कर इस आर्या छन्दका उच्चारण किया—

---

१. मुरजादीनाम्। २. नृत्त। ३. प्रणयकुपित। ४. कामिनीजन। ५. सर्वरत्नानामुदधिरिव। ६. आत्मायत्तः। ७ पञ्जरमपससार। ८. तस्मिन् विहङ्गमराजः। ९. उन्नमय्य। १०. वर्णसंस्कारया।

'स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्त्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥'

राजा तु तां श्रुत्वा¹ सञ्जात²-विस्मयः सहर्षमासन्नवर्त्तिनम् अतिमहार्घहेमासनोपविष्टम्³ अमरगुरुमिवाशेषनीतिशास्त्रपारगम् अतिवयसमग्रजन्मानमखिलमन्त्रिमण्डलप्रधानममात्यं⁴ ⁵ कुमारपालितनामानमब्रवीत्—

'श्रुता भवद्भिरस्य विहङ्गमस्य स्पष्टता वर्णोच्चारणे, स्वरे च मधुरता? प्रथमं तावदिदमेव महदाश्चर्य्यम्⁶, यदयमसङ्कीर्णवर्णप्रविभागामभिव्यक्तमात्रानुस्वार-स्वर⁷-संस्कारयोगां⁸

एवम्भूतयां गिरा वाचा राजानमुद्दिश्य नृपं निमित्तीकृत्य कृतजयशब्दः विहित'जय'इति, शब्दः, इमाम् अग्रे प्रतिपाद्यमानाम्, आर्याम् आर्यासंज्ञकच्छन्दोबद्धं वाक्यम्, पपाठ पठितवान्—

स्तनेति। अश्रुभिर्लोचनजलैः स्नातं कृतस्नानम्, हृदये चित्ते स्वपतिवियोगजनितः शोक एव अग्निर्वह्निः तस्य, समीपवर्ति अत्यन्तसन्निहितस्थायि तथा विगतः पतिविनाशात् दूरं गतः मुक्ताहारो मौक्तिकमाला यस्मात्तत् भवतस्तव रिपुस्त्रीणां शत्रुवनितानां स्तनयुगं कुचयुग्मं व्रतं नियमं चरतीव अनुतिष्ठतीव। अन्योऽपि यो व्रती स कालत्रये स्नाति होमाग्निसमीपस्थायी भवति शास्त्रविहितमुपवासञ्च करोति। अत्र विमुक्ताहारमिति सभङ्गश्लेषः। हृदयशोकाग्नेरिति निरङ्गं केवलरूपकम्, तथा वाच्याभिमानिनी क्रियोत्प्रेक्षा चेति समुदिते संसृष्टिरलङ्कारः। आर्या चात्र छन्दः।

राजेति। राजा तु नृपोऽपि तामार्यां गाथां श्रुत्वा निशम्य सञ्जातः समुत्पन्नो विस्मयः आश्चर्यं यस्य सः, सहर्षः सानन्दं यथा स्यात्तथा आसन्नवर्तिनं निकटस्थायिनम्, अतिमहार्घम् अतिबहुमूल्यं यत् हेमासनं सुवर्णपीठं तत्र उपविष्टं वर्त्तिनम्, अमरगुरुर्बृहस्पतिस्तमिव अशेषाणि समस्तानि यानि नीतिशास्त्राणि सांसारिककृत्यविवेकाविवेकबोधकानि तन्त्राणि तेषां पारगं तत्त्वज्ञातारम्। अत्यधिकं वयः अवस्था यस्य तम्, वृद्धमित्यर्थः, अग्रजन्मानं ब्राह्मणम्, सर्ववर्णेषु प्रथमो ब्राह्मणः। अखिलमन्त्रिमण्डले समस्तधीसचिवसमुदाये प्रधानं मुख्यम् 'कुमारपालित' इति नाम यस्यैवम्भूतम् अमात्यं सचिवम् अब्रवीत् अवोचत्।

श्रुतेति। भवद्भिर्युष्माभिः अस्य पुरो वर्त्तमानस्य विहङ्गमस्य शुकस्य वर्णोच्चारणे कादिवक्तव्यतायां स्पष्टता स्फुटता श्रुता आकर्णिता किमिति काक्वा व्यज्यते, तथा च श्रुता किमित्यर्थः। तथा च पुनः स्वरे उदात्तादिस्वरविषये मधुरता माधुर्यम्। प्रथमं पूर्वं तावत् इदमेव प्रत्यक्षगतमेव महदाश्चर्यम् अतिकौतूहलम्, यदयं शुकः असङ्कीर्णः मिथो वैलक्षण्येन श्रूयमाणो वर्णप्रविभागः अक्षरपार्थक्यं यस्यां सा ताम् अभिव्यक्तः स्फुटमवगम्यमानः, मात्रा ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतरूपाः अनुस्वारा अनुनासिकाः, संस्कारो व्याकरणशुद्धिश्च एतेषां योगः सम्बन्धो यस्यां सा ताम्। विशेषेण श्लेषाद्यलङ्कारेण संयुक्तां सहिताम्। अतिपरिस्फुटानि अत्यन्तस्पष्टानि अक्षराणि वर्णा यस्यां ताम्, गिरं वाणीम् उदीरयति उच्चारयति। यद्यपि 'असङ्कीर्णप्रविभागाम्' 'अतिस्फुटाक्षराम्' इत्यनयोरनर्थान्तरमिवाभाति तथापि पूर्वेण तालव्यशकारदन्त्यसकारादीनामुच्चारणभेद उच्यते उत्तरेण तु सर्वविधाक्षराणामेव स्फुटोच्चारणमुच्यत इति स्पष्टं भेदः।

जिस प्रकार कोई साधक अपने इष्टसिद्धिके लिए जब व्रत करता है तो बार-बार स्नान करता है, अग्निके समीप (हवन करने के लिए) बैठता है और आहारसे रहित हो जाता है, ठीक इसी प्रकार आपके शत्रुओंकी स्त्रियोंके स्तनोंने मानों साधक बन व्रत किया है, क्योंकि वे बार-बार आँसुओंसे स्नान करते हैं, हृदयस्थित शोकाग्निके समीपवर्ती हैं और शृंगार-रति न होनेके कारण मोतियोंके हारको उतार दिया है।

इस आर्याको सुन कर राजा बहुत आश्चर्यान्वित हुआ और एक बहुमूल्य-आसन पर समीप ही बैठे हुए—बृहस्पतिके समान समस्त नीति-शास्त्रोंमें प्रवीण और समस्त मन्त्रियोंमें प्रधान कुमारपाल नामक वृद्ध ब्राह्मणसे आनन्द-पूर्वक कहने लगा—

इस पक्षीके वर्णोच्चारणकी स्फुटता और स्वरकी मधुरता आपने सुनी! पहले तो यही एक बड़ा आश्चर्य है कि यह तोता पृथक्-पृथक् वर्ण-विभाग, मात्रा, अनुस्वार, शब्द-शुद्धि सहित, अलंकार-युक्त अत्यन्त स्फुट वाणी बोल

---

१. तामार्यां श्रुत्वा। २. जात॰॰। ३. महार्हासनोपविष्टम्, अतिमहार्हहेमासनोपविष्टम्। ४. अतिपरिणतवयसम्। ५. अखिलमन्त्रिमण्डले प्रधानम्। ६. महत्तरमाश्चर्य्यम्, महाश्चर्य्यम्। ७. असङ्कीर्णं। ८॰॰स्वरसंयोगविशेषयुक्ताम्, स्वरसंयोगाम्।

विशेषयुक्ताम् अतिपरिस्फुटाक्षरां गिरमुदीरयति। तत्र पुनरपरम् अभिमतविषये तिरश्चोऽपि मनुजस्येव संस्कारवती[3] बुद्धिपूर्वा प्रवृत्तिः[4]। तथाहि—अनेन[5] समुत्क्षिप्तदक्षिणचरणेनोच्चार्य्य जयशब्दमियमार्य्या मामुद्दिश्य परिस्फुटाक्षरं[6] गीता। प्रायेण हि पक्षिणः पशवश्च भयाहार-मैथुन-निद्रा-संज्ञामात्र[7]-वेदिनो भवन्ति। इदन्तु महच्चित्रम्।'

इत्युक्तवति भूभुजि कुमारपालितः किञ्चित् स्मितवदनो नृपमवादीत्[8]—'देव[9]! किमत्र चित्रम्? एते हि शुकशारिकाप्रभृतयो विहङ्ग[10]-विशेषा यथाश्रुतां[11] वाचमुच्चारयन्तीत्यधिगतमेव देवेन। तत्राप्यन्यजन्मोपात्त[12]संस्कारानुबन्धेन वा पुरुषप्रयत्नेन वा संस्कारातिशय उपजायत इति नातिचित्रम्। अन्यच्च[13], एतेषामपि पुरा पुरुषाणामिवातिप[14]रिस्फुटाक्षरा वागासीत्,

---

तत्रेति। तत्र उच्चारणविषये पुनः अपरमन्यदाश्चर्यमित्यर्थः। किं तदित्युपपादयति—अभिमतेति। अभिमतविषये उपादेयेऽर्थे तिरश्चोऽपि तिर्यग्जातेः पक्षिणोऽपि मनुजस्येव मानवस्येव संस्कारवती तत्तदर्थविषयानुभवजन्यः संस्कारस्तद्वती बुद्धिपूर्वा बुद्धिपूर्विका प्रवृत्तिः कथनप्रवर्तनम्। एवं कथं ज्ञातमित्युपपादयति—तथाहीत्यादिना। समुत्क्षिप्त उत्थापितः दक्षिणचरणः सव्येतरपादो येन स तेन अनेन शुकेन जयशब्दं जयजयेति पदम् उच्चार्य अभिधाय इयं पूर्वप्रतिपादितार्या मामुद्दिश्य मामभिलक्ष्य परिस्फुटानि स्पष्टानि अक्षराणि वर्णा यत्र तद्यथास्यात्तथेति क्रियाविशेषणम्, गीता उच्चारिता। एवञ्च आशीर्वादसमये दक्षिणहस्तोत्तोलनं ब्राह्मणाः कुर्वते तथैवायमपि प्राक्तनवासनावशेन जयशब्दाभिधानकाले दक्षिणपादमुत्थापितवान्, तथा नृपतेः पूर्वं स्तुतिरेवार्याच्छन्दसाभिहितेति सैषा बुद्धिपूर्वाप्रवृत्तिरित्यतः परं किमाश्चर्यमित्याशयः। प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येन पक्षिणः खगाः पशवो मृगाद्याः, भयम् अनिष्टकारणबोधः आहारो भोजनं क्षुन्निवृत्त्युपाय इति यावत्, मैथुनं स्त्रीसम्भोगः, निद्रा बाह्येन्द्रियशमः, संज्ञा लोकव्यवहारजनकसङ्केतः नाम वा एतन्मात्रवेदिनो भवन्ति एतत्केवलमेवावबुद्ध्यन्ति नातिरिक्तम्, इदन्तु तद्विलक्षणज्ञातृत्वं महच्चित्रम् अत्याश्चर्यम्।

इत्युक्तेति। इत्युक्तवति इति कथितवति भूभुजि नृपे कुमारपालितः एतन्नामकः पूर्वोक्तसचिवः किञ्चित्स्मितवदनः ईषद्धास्यमुखः अवादीत् अवोचत्। आश्चर्यशङ्कां निराकरोति—किमत्रेति। अत्र अस्मिन्विषये किं चित्रमाश्चर्यम्, हि यतः एते शुकाः कीरपदवाच्या विख्याताः सारिकाः पीतचरणा एतत्प्रभृतय एतदाद्याः विहङ्गविशेषाः पक्षिविशेषा यथाश्रुताम् अर्थप्रतीतिरहितां वाचं वाणीम् उच्चारयन्ति उद्गिरन्ति, इति पूर्वोक्तं देवेन स्वामिना अधिगतमेव ज्ञातमेव। तत्रापि पूर्ववक्तव्यतायाम् अन्यजन्मनि जन्मान्तरे उपात्तस्य गृहीतस्य संस्कारस्य वासनाया अनुबन्धेन अस्मिन् जन्मनि अनुवृत्त्या वा अथवा पुरुषप्रयत्नेन परिपालकजनपाठनाद्युद्योगेन वा संस्कारे शुकादीनां वासनायाम् अतिशयो दार्ढ्यम् उपजायते उपपद्यते ताभ्यां कारणाभ्यां वाग्व्यापारयुक्ता जायन्त इत्याशयः। इति हेतोः नातिचित्रम् अस्यैवंविधोच्चारणं नातीवाश्चर्यम्। अन्यच्च हेत्वन्तरञ्चास्ति, एतेषामपि शुकादीनां पुरा पूर्वं पुरुषाणां परिपालकजनाना-

---

सकता है; और दूसरा यह कि अभिमत विषय में, पढ़े लिखे मनुष्योंके समान पक्षियोंकी प्रवृत्ति भी बुद्धि-पूर्वक संस्कारवती होती है, क्योंकि इसने जय शब्द कहनेके समय अपने दाहिने चरणको ऊँचा उठा कर, मेरे सम्बन्ध में ही इस आर्याको परिस्फुट अक्षरोंसे गाया। प्रायः पशु-पक्षियोंको केवल भय, आहार, मैथुन और निद्राके संकेतोंका ही ज्ञान होता है, यह तो बहुत ही आश्चर्य है!

इस प्रकार राजाके कहने पर कुमारपालित मन्त्री जरा मुस्कुरा कर बोला—महाराज! इस विषयमें अद्भुतता क्या है? आपने सुना होगा कि तोता मैना आदि कितने ही पक्षी जिस प्रकार सुनते हैं उसी प्रकार बोलते हैं। पूर्व जन्मके संस्कारसे अथवा पालनेवालेके उद्योगसे उनमें अधिक चातुर्य आ जाय तो क्या विस्मय है? पशुपक्षियोंकी वाणी भी मनुष्योंके समान, पहले ऐसी थी कि वे अत्यन्त स्फुट उच्चारण कर सकते थे किन्तु अग्निदेवके

---

१. यदयमति''', यदयमति परिस्फुटम्। २. पुनर्यदियम्। ३. संस्कारवतः। ४. वाक्प्रवृत्तिः, ५. एतेन। ६. स्फुटाक्षरम्, परिस्फुटाक्षराम्। ७. 'निद्रामात्र' इत्येव पाठः क्वापि विद्यते। ८. वदनोऽवादीत्। ९. 'देव' इति क्वचिन्नास्ति। १०. विहङ्गम। ११. यथाश्रुतं। १२. तत्राप्यत्रान्यजन्म। १३. अन्यत्। १४. अतिपरिस्फुटाभिधाना।

अभिशापाद्स्फुटालापता शुकानामुपजाता, करिणांच जिह्वापरिवृत्तिः ।'

इत्येवमुच्चारयत्येव तस्मिन्नशिशिरकिरणमम्बरतलस्य मध्यमारूढमावेदयन्, नाडिकाच्छेद-प्रहत-पटु-पटह-नादानुसारी मध्याह्न-शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत्। तमाकर्ण्य च समासन्नस्नानसमयो विसर्जितराजलोकः क्षितिपतिरास्थानमण्डपादुत्तस्थौ।

अथ चलति महीपतावन्योन्यमतिरभस-सञ्चलन-चालिताङ्गद-पत्रभङ्ग-मकरकोटि-पाटितानेकपटानाम्, आक्षेप-दोलायमान-कण्ठदाम्नाम्, अंसस्थलोल्लसित-कुङ्कुम-पट-

---

मिव अतिपरिस्फुटानि अत्यन्तस्पष्टानि अभिधानानि नामानि यस्यामेवम्भूता वाक् वचनम् आसीत्, तु किन्तु अग्निशापात् अस्फुटः अस्पष्ट आलापो वाक्यं यत्र तस्य भावः तत्ता, शुकानाम् उपजाता। करिणां गजानां च जिह्वायाः रसनायाः परिवृत्तिः वैपरीत्येनावस्थितिः उपजातेति सम्बन्धः।· भाग्यवशादयं शुकस्तच्छापमतिक्रम्य स्पष्टाक्षरमुच्चरतीति नाश्चर्यमित्याशयः।

पुरा तारकासुरपीडिताः सुराः प्रजापतिशरणं प्राप्ताः। प्रजापतिस्तु 'अग्नेः पुत्रः कार्तिकेयो भविता स एव तमसुरं नाशयिष्यति अतोऽग्निं मार्गयित्वा तत्पुत्रं प्रार्थयन्तु' इत्युवाच। अग्निं गवेषयन्तः सुराः क्वाऽपि तमलभमानाः महान्तं हस्तिनमेकमवलोक्य क्वाग्निर्विद्यत इति पप्रच्छुः। स च गजः 'अश्वत्थवृक्षेऽन्तर्हितोऽग्नि'रित्युक्तवान्। अथाग्निस्ततो निर्गत्य 'तव जिह्वापरिवृत्तिर्भवतु' इति शप्त्वा पुनः शमीगर्भे प्रच्छन्नः, तदा च सुरैः पृष्टः शुकः 'शमीमध्येऽन्तर्हितोऽग्नि'रित्युवाच। ततस्ततोऽप्यग्निर्निष्क्रम्य 'त्वं वाग्विहीनो भव' इति तं शशाप इति महाभारतीयात्र कथाऽवगन्तव्या।

इत्येवमिति। तस्मिन् प्रधानामात्ये कुमारपालिते एवं पूर्वोक्तप्रकारेण उच्चारयत्येव भाषयत्येव, अशिशिराणि उष्णानि किरणानि रश्मयो यस्य तं सूर्यमित्यर्थः, अम्बरतलस्य आकाशस्य मध्यं मध्यभागम् आरूढं प्राप्तम् आवेदयन् संसूचयन्, तथा नाडिका सभाभङ्गघटिका तस्याः छेदे समाप्तौ तत्समय इत्यर्थः, प्रहतः करतलादिना ताडितः यो विविधयन्त्रादिरित्यर्थः, यः पटुर्महान् पटहो दुन्दुभिस्तस्य नादः शब्दस्तमनुसर्तुमनुगन्तुं शीलमस्येति स, मध्याह्नशङ्खध्वनिः मध्याह्नद्योतकजलजशब्दः उदतिष्ठत् उत्पन्नोऽभूत्। तं ध्वनिम् आकर्ण्य निशम्य, समासन्नः समीपवर्ती स्नानसमयः आप्लवनकालः यस्य सः, विसर्जितः निवर्त्तितः राजलोकः परिजनजनो येन सः, क्षितिपतिः शूद्रकः आस्थानमण्डपात् सभास्थानात् उत्तस्थौ उत्थितवान्।

अथेति। अथ उत्थानानन्तरं महीपतौ राजनि शूद्रके चलति सभाभवनात्प्रस्थातुमारभमाणे सति उत्तिष्ठताम् उत्थानं विदधतां महीपतीनां सामन्तनृपाणाम् अन्योन्यं परस्परम् अतिमहान् अतिबहुः सम्भ्रमः सम्मर्द आसीदिति सम्बन्धः। अत्र यानि षष्ठ्यन्तपदानि तानि महीपतिविशेषणानि। अतिरभसेन अतिवेगेन यत् सञ्चलनं प्रस्थानं तेन चालितानां स्वस्थानात्प्रच्यवितानाम् अङ्गदानां केयूराणां पत्रभङ्गानां भूषणविशेषाणां मकराणां मकराकृतिकर्णभूषणानां कोटिभिः अग्रप्रदेशैः पाटिताश्छिन्ना अनेकपटाः गर्भसूत्रनिर्मितवसनानि येषां तेषाम्। आक्षेपेण परस्परशरीरसञ्चलनेन दोलायमानानि चञ्चलानि कण्ठदामानि कण्ठहाराः येषां तेषाम्, अंसस्थलेभ्यः स्कन्धभागेभ्यः उल्लसितानि उत्थितानि यानि कुङ्कुमानि केसराणि पटवासः सुगन्धचूर्णविशेषः तयोर्धूलिपटलं परागसमुदायः तेन पिञ्जरीकृताः पीतरक्तीकृता दिश आशाः यैस्ते-

---

अभिशापसे तोतोंकी वाणीकी स्फुटता जाती रही और हाथियोंकी जीभ उलटी परिवर्तित हो गई है। यह बात हो ही रही थी कि इतने में आकाशके मध्यस्थानमें सूर्य नारायणके आ पहुँचनेकी सूचना देने के लिए मध्याह्न-द्योतक शंख बजा और पहरके अन्तकी दुन्दुभि (नौबत) भी उसीके साथ बजी। उसे सुनकर स्नानका समय उपस्थित हो गया है ऐसा समझ, समस्त राजाओंको विदाकर, राजा शूद्रक सभा-मण्डपमें से उठ खड़ा हुआ।

इसके बाद राजाके उठते ही अन्य राजगण भी उठ खड़े हुए और उस समय आपसमें बड़ी खलबली मच गई। चलनेकी शीघ्रतामें कम्पित हुए केयूरों (बाजूबन्दों) के ऊपर बनी हुई मछलियोंकी नोकसे अनेक वस्त्र फट गये। परस्पर संघर्ष (धक्कम-धक्का) से गलेके हार हिलने लगे। कन्धोंसे उड़ती केशर (कुंकुम) और पटवास

---

१. अभिशापादपरि··· । २. शारिकाणाञ्च । ३. मध्यमध्यारूढ । ४. चासन्न । ५. पाटितांशुकपटानाम्, पाठितांशुकानाम् । ६. मालतीकण्ठदाम्नाम् । ७. स्थलोल्लासित ।

वास–धूलि[१]–पिञ्जरित–दिशाम्, आलोल–मालती[२]कुसुम–शेखरोत्पतदलिकदम्बकानाम्, अर्द्धावलम्बिभिः कर्णोत्पलैश्चुम्ब्यमानगण्डस्थलानाम्, गमन–प्रणाम[३]–लालसानाम्, अहमहमिकया वक्षःस्थलप्रेङ्खोलित–हारलतानाम्, उत्तिष्ठतामासीदतिमहान्[४] सम्भ्रमो महीपतीनाम्।

इतश्चेतश्च निष्पतन्तीनां स्कन्धाव[५]सक्त–चामराणां चामरग्राहिणीनां कमलमधु–पान[६]–मत्त–जरत्कलहंस–नाद–जर्जरेण[७] पदे पदे रणितमणीनां मणिनूपुराणां निनादेन, वारविलासिनीजनस्य सञ्चरतो जघनस्थल[८]लास्फालनरसित–रत्नमालिकानां[९] मेखलानां मनोहारिणा झङ्कारेण, नूपुरवाकृष्टानाञ्च धवलितास्थानमण्डप–सोपानफलकानां भवनदीर्घिकाकलहंस-

---

षाम्, आसमन्तात् लोलाश्चञ्चलाः ये मालतीकुसुमानां जातीपुष्पाणां शेखराः शिरोभूषणानि तदुपरि उत्पतन्त उड्डीयमानाः अलिकदम्बका भ्रमरयूथा येषां तेषाम्. अर्धावलम्बिभिः अर्धप्रदेशलग्नैः कर्णोत्पलैः श्रवणस्थितकमलैः चुम्ब्यमानानि मस्तकनमनात् स्पृश्यमानानि गण्डस्थलानि कपोलपरभागाः येषां तेषाम्, गमने राज्ञः प्रस्थाने प्रणामाय नमस्काराय लालसानाम् अतिस्पृहाणाम् 'अहं पूर्वमहं पूर्वम्' इत्यहमहमिका तया, 'अहमहमिका तु सा स्यात् यः परस्परं भवत्यहङ्कारः' इत्यमरः। वक्षःस्थले भुजान्तरे प्रेङ्खोलिता आन्दोलिता हारलता मुक्ताफलमाला येषां तेषाम्। अन्वयस्तूक्त एव।

इतश्चेति। तत् आस्थानभवनं राज्ञः सभामण्डपं सर्वतः परितः तदा तस्मिन् काले क्षुभितमिव क्षोभमुपगतमिव अभवदभूदिति वक्ष्यमाणक्रियया सम्बन्धः। अत्र च तृतीयान्तं पदं क्षुभितमित्यस्य करणम्, षष्ठ्यन्तञ्च तत्तत्करणज्ञापकम्। इतश्चेतः संमर्दवशात्सर्वासु दिशासु निष्पतन्तीनां स्खलन्तीनाम्, स्कन्धेषु अंसस्थलेषु अवसक्तानि न्यस्तानि चामराणि वालव्यजनानि यासां तासां चामरग्राहिणीनां योषिताम्, कमलमधुपानेन पद्मरसास्वादेन मत्ताः क्षीबा ये जरन्तो वृद्धाः कलहंसाः कादम्बास्तेषां नादः कण्ठध्वनिस्तद्वत् जर्जरितेन सम्भिन्नेन पृथक्-पृथक् श्रूयमाणेनेत्यर्थः। लुप्तोपमा। पदे-पदे प्रतिपदं रणिताः शब्दायमाना मणयो वैडूर्यादयो येषु तथाविधानां मणिनूपुराणां पादकटकानां निनादेन तदुत्थनशब्देन 'शब्दे निनादनिनद' इत्याद्यमरः।

वारेति। सञ्चरतो गच्छतः वारविलासिनीजनस्य गणिकाजनस्य 'वारस्त्री गणिका वेश्या' इत्यमरः, जघनस्थलानां कटिपुरोभागानाम् आस्फालनेन नितान्तसञ्चालनेन रसिता शब्दिता रत्नमालिका मणिमाला यासामेवंविधानां मेखलानां काञ्चीनां मनोहारिणा चित्ताकर्षणेन झण-झण शब्देन।

नूपुरेति। नूपुररवैः पादकटकशब्दैः आकृष्टानां तत्र प्रापितानाम् धवलितानि निजनिजदेहप्रभाभिः श्वेतवर्णीकृतानि आस्थानमण्डपस्य सभाभवनस्य सोपानफलकानि आरोहणावल्यो यैस्तेषां भवनदीर्घिकाकलहंसकानां गृहवापीस्थकादम्बानां कोलाहलेन अव्यक्तशब्देन।

(सुगन्ध चूर्ण द्रव्य) से समस्त दिशाएँ पीत-पीत वर्ण हो गईं। मस्तक पर हिलते हुए चमेलीके फूलों के मुकुटोंमें से भ्रमरगण उड़ने लगे। आधे लटकते कर्ण कमल कपोलोंको स्पर्श करने लगे और जाते समय मैं पहले, मैं पहले प्रणाम करूँ इसके आवेगमें उनके वक्षःस्थलके हार अस्त-व्यस्त हो गये। इस समय सभा-मण्डपमें चारों ओर मानों परस्पर बड़ी गड़बड़ मच गई।

कंधे पर चमर रख कर इधर-उधर फिरतीं चमर डुलाने वाली स्त्रियोंके मणि-नूपुर प्रत्येक पादक्षेप पर झंकार कर रहे थे। इसके साथ ही कमल-रस-पानसे मत्त हुए वृक्ष कलहंसोंकी ध्वनि सुनाई दे रही थी। चलती हुई वेश्याओंके जघन-स्थल पर टकरानेसे बजती मणि-खचित मेखलाओंके मनोहर झंकार हो रहे थे। नूपुरोंकी झनझनाहट सुनकर गृहसरोवरके कलहंस दौड़ आए थे। वे सभामण्डपकी सीढ़ियों पर बैठकर कोलाहल कर रहे थे।

---

१. धूलिपटलपिञ्जरितदिशाम् धूलिपटलपिञ्जरीकृतदिशाम्, २. मालतीपुष्प। ३. प्रसरणसदालालसानाम्। ४. आसीत् सम्भ्रमः, अतिमहान् सरभः। ५. स्कन्धदेशावसक्त'''। ६'''मदमत्त'''। ७ जर्जरितेन। ८. जघनस्थलस्थलास्फालन'''। ९. मणिमेखलानां।

कानां कोलाहलेन, रसनारसितोत्सुकानाञ्च तारतर-विराविणामुल्लिख्यमान-कांस्य-केङ्कार-दीर्घेण गृहसारसानां कूजितेन, सरभसप्रचलित-सामन्तशतचरणतलाभिहतस्य चास्थान-मण्डपस्य निर्घोषगम्भीरेण कम्पयतेव वसुमतीं ध्वनिना, प्रतीहारिणाञ्च पुरः ससम्भ्रममुत्सारितजनानां दण्डिनां समारब्धहेलमुच्चैरुच्चार्यतामालोकयतालोकयतेति तारतर-दीर्घेण भवनप्रासाद-कुञ्जेपूच्चरित-प्रतिशब्दतया दीर्घतरतामुपगतेनालोकशब्देन, राज्ञाञ्च ससम्भ्रमावर्जित-मौलि-लोल-चूडामणीनां प्रणमताममल-मणिशलाकादन्तुराभिः किरीट-कोटिभिरुल्लिख्यमानस्य मणिकुट्टिमस्य निस्स्वनेन, प्रणामपर्य्यस्तानामतिकठिन-मणिकुट्टिम-निपत-

---

रसनेति । रसनानां कटिमेखलानां रसितैः शब्दितैः उत्सुकानाम् उत्कण्ठितानाम्, तारतरः अत्युच्चैस्तरः विरावः शब्दोऽस्ति येषां तेषाम्, उल्लिख्यमानस्य घर्षणं कुर्वतः कांस्यस्य विद्युत्प्रियस्य तैजसविशेषस्येति यावत्, केङ्कारः 'कें' 'कें' इत्यस्फुटध्वनिस्तद्वत् दीर्घेण विस्तृतेन, गृहसारसानां सदनस्थलचमणपक्षिणां कूजितेन अस्पष्टशब्दितेन' 'कूजितं स्याद्विहङ्गानाम्' इत्यमरः । इह 'केङ्कारदीर्घेण' इत्यत्र लुप्तोपमा ।

सरभसेति । सरभसं सवेगं प्रचलिताः गन्तुमुद्यता ये सामन्ता अधिकृतराजानस्तेषां शतं तस्य चरणतलैः पादतलैः अभिहतस्य ताडितस्य आस्थानमण्डपस्य सभाभवनस्य निर्घोषोऽव्यक्तशब्दस्तद्वत् गम्भीरेण पुष्टशब्देन तदुत्थध्वनिनेत्यर्थः, वसुमतीं मेदिनीं कम्पयतेव चोभं जनयतेव । इह 'निर्घोषगम्भीरेण' इत्यत्र लुप्तोपमा, 'कम्पयतेव' इत्यत्र वाच्यक्रियोत्प्रेक्षा चेत्यनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

प्रतीहारीति । दण्डोऽस्त्येषां ते दण्डिनस्तेषां यष्टिग्राहिणामित्यर्थः, पुरो नृपाग्रतः, ससम्भ्रमं शीघ्रं समुत्सारिता दूरीकृता जना मनुष्या यैस्तेषाम्, समारब्धा प्रवर्तिता हेला क्रीडा यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा आलोकयन्तु पृथ्वीपतिरयं गच्छतीति पश्यन्तु । इत्युच्चैः उच्चारयताम् अभिभाषमाणानां मार्गावरोधिजनसावधानतानिमित्तमुच्चस्वरेण भाषणमित्याशयः । प्रतीहारिणां द्वारपालकानाञ्च तारतरः शिरःसमुत्पन्नध्वनिस्तेन दीर्घेण अतिविस्तृतेन, भवनस्य साधारणगृहस्य प्रासादानां देवसद्मनां राजसद्मनाञ्च कुञ्जेषु लताद्यन्तरितस्थानेषु उच्चरित उत्थितः प्रतिशब्दो यस्य तस्य भावस्तया दीर्घतरताम् अत्यन्तविस्तृतत्वम् उपगतेन प्राप्तेन, आलोकशब्देन आलोक्यतामालोक्यतामित्येवंविधोच्चारणध्वनिना ।

राज्ञाञ्चेति । ससम्भ्रमेण शीघ्रेण आवर्जितेषु नमस्कारायावनमितेषु मौलिषु शिरस्सु लोलाः शिरःकम्पनेन चञ्चलाः चूडामणयः शिरोरत्नानि येषां तेषाम्, प्रणमतां शूद्रकाय नतिविदधतां राज्ञाञ्च अमला निर्मला या मणिशलाका रत्नेषीकास्ताभिः दन्तुरा विषमास्ताभिः किरीटकोटिभिः मुकुटाग्रदेशैः उल्लिख्यमानस्य घर्षणं कुर्वतो मणिकुट्टिमस्य रत्नमयबद्धभूमेः निःस्वनेन ध्वनिना ।

प्रणामेति । प्रणामे नतिसमये पर्यस्तानां स्खलितानाम्, अतिकठिने अतिकर्कशे मणिकुट्टिमे रत्नमयबद्धभूमौ निपतनेन पातेन रणरणायितानां 'रण-रण' इति ध्वनिं विदधतां मणिकर्णपूराणां तेषां राज्ञामेव

उनके बैठनेसे सीढ़ियाँ शुभ्रवर्ण हो गई थीं । करधनीके झनकारसे उत्कण्ठित हुए गृह-पालित सारस अधिक ऊँचा शब्द कर रहे थे जो घिसे हुए काँसेके शब्दके समान था । शीघ्रतामें चलते अनेक सामन्तोंके चरणोंसे ताड़न किये गये सभामण्डपकी, पृथ्वीको कँपा देने वाली—ध्वनि हो रही थी । वह वज्र घोषके समान गम्भीर लगती थी । क्रीड़ा करने और उच्च स्वरसे बोलकर—देखो, देखो—कहते प्रतिहारियोंका तीक्ष्ण शब्द हो रहा था । वे हाथमें छड़ी लेकर सामनेके रास्तेमेंसे समस्त लोगोंको हँटाते थे । उनके शब्दके साथ ही राजमहलकी कुञ्जोंमेंसे निकलते प्रतिध्वनिके साथ अत्यन्त विस्तृतरूपमें परिणत हुआ—देखो, देखो—शब्द सुनाई देता था । प्रणाम करनेके समय वेगमें शिर अवनत करनेसे कुछ भूपतियोंके चूड़ामणि हिलने लगे थे और उनके मुकुट स्वच्छ मणियोंकी शलाकासे (पैनी नोकोंसे) विषम हो गये थे । उनके मुकुटोंसे घिसी गई मणिभूमिका शब्द हो रहा था । प्रणाम

---

१. उत्सुकितानाञ्च । २'''काञ्ची । ३. निर्घातगम्भीरेण, निर्घातनिर्घोषगम्भीरेण । ४. क्वचित् , ध्वनिना' इति पाठो न विद्यते । ५. प्रतीहाराणां, ससम्भ्रमजनानां,'''जानपदानां । ६. उच्चैरुच्चरतामालोकयन्त्विति । ७ तारदीर्घे । ८. प्रतिच्छन्दतया । ९. दीर्घताम् , दीर्घतरयाताम् । १०. स्वनेन, निःस्वनेन ।

नैरणरणायितानाञ्च मणिकर्णपूराणां निनादेन मङ्गलपाठकानाञ्च पुरोयायिनां जय-जीवेति मङ्गलमधुरवचनानुयातेन पठतां दिगन्तव्यापिना कलकलेन, प्रचलित-जनचरणशत-संक्षोभभयादपहाय कुसुमप्रकरमुत्पतताञ्च मधुलिहां हुङ्कृतेन, संक्षोभादतित्वरितपदप्रवृत्तैरवनिपतिभिः केयूरकोटिताडितानां क्वणित-मुखर-रत्नदाम्नाञ्च मणिस्तम्भानां रणितेन सर्वतः क्षुभितमिव तदास्थानभवनमभवत्।

अथ विसर्जितराजलोको 'विश्रम्यता' मिति स्वयमेवाभिधाय तां चाण्डाल-कन्यकाम्, वैशम्पायनः प्रवेश्यतामभ्यन्तरम्' इति ताम्बूलकरङ्कवाहिनीमादिश्य कतिपयाप्तराजपुत्रपरिवृतो नरपतिरभ्यन्तरं प्राविशत्।

अपनीताशेष-भूषणश्च दिवसकर इव विगलितकिरणजालः चन्द्रतारकाशून्य इव गग-

---

रत्नकर्णभूषणानां निनादेन निःस्वनेन। मङ्गलेति। पुरोयायिनाम् अग्रेगामिनां पठतां यशोगानमुच्चारयतां मङ्गलपाठकानां वन्दिनाञ्च जयजीवेति यन्मङ्गलमधुरवचनं तमनुलक्षीकृत्य यातेन प्रवृत्तेन, दिगन्तव्यापिना सर्वतः प्रसारिणा कलकलेन कोलाहलेन। प्रचलितेति। प्रचलितानां गन्तुं प्रवृत्तानां जनानां मानवानां चरणशतस्य अनेकनरपादानामित्यर्थः, संक्षोभभयात् प्रहारभीतेः कुसुमप्रकरं पुष्पसमुदायं विहाय त्यक्त्वा उत्पतताम् उड्डयमानानां मधुलिहां भ्रमराणां हुंकृतेन हुंकारशब्देन। संक्षोभादिति। संक्षोभात् चक्रवर्त्तिनः प्रणामाय मनोवेगवशात् अतित्वरितपदेषु अत्यन्तशीघ्रचरणनिक्षेपेषु, प्रवृत्तैः प्रचलितैः अवनिपतिभिः भूपतिभिः (कर्त्तृभिः) केयूराणाम् अङ्गदानां कोटयः अग्रभागास्तैः (करणैः) ताडितानाम् आहितानाम्, क्वणितेन तत्ताडनोत्थशब्देन मुखराणि वाचालानि रत्नदामानि मणिरचितवेष्टनशृङ्खला येषु तेषां मणिस्तम्भानां रत्नमयस्थूणानां रणितेन क्वणितेन च, तदास्थानभवनं नृपोपवेशनमण्डपं सर्वतः परितः क्षुभितं क्षोभमुपगतमिव अभवत् अभूत्।

अथेति। अथ अनन्तरम् 'अथाथो संशये स्यातामधिकारे च मङ्गले। विकल्पानन्तरप्रश्नकात्स्न्यरिम्भसमुच्चये॥' इति मेदिनी। 'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकात्स्न्येष्वथो अथ।' इति चामरः। विसर्जिता मधुरशब्देन सम्भाष्य विसृष्टा राजलोका नृपतयो येन स तादृशो नरपतिः शूद्रकः, स्वयमेव आत्मनैव तां चण्डालकन्यकां विश्रम्यतां विश्रामं गृह्यताम् इत्यभिधाय इत्युक्त्वा, वैशम्पायनः स शुकः अभ्यन्तरं भवनमध्यं प्रवेश्यतां नीयतामिति ताम्बूलकरङ्कवाहिनीं पर्णवीटिकाधारिणीं स्त्रियम् आदिश्य आज्ञाप्य, कतिपयैः कियद्भिरल्पसङ्ख्यकैरित्यर्थः, आप्तैः विश्वस्तैः राजपुत्रैः नृपसुतैः परिवृतः परिवेष्टितः सन् अभ्यन्तरं गृहमध्ये प्राविशत् प्रवेशं कृतवान्।

अपनीतेति। अपनीतानि शरीरात् पृथक्कृतानि आभरणानि भूषणानि येन सः, अत एव विगलितानि सायङ्काले विच्युतानि किरणजालानि रश्मिसमूहाः यस्य स दिवसकरः सूर्य इव स्वतःप्रभाविस्वा-

---

करनेके समय अस्त-व्यस्त हुए मणि-कर्णपूर—अत्यन्त कठिन भूमि पर पड़नेके कारण—शब्द कर रहे थे। स्तुतिपाठकगण-महाराजकी जय हो, महाराज चिरंजीव हों इत्यादि—मधुर वचन कहते-कहते आगे चल रहे थे। उनकी कल-कल समस्त दिशाओंमें व्याप्त हो रही थी। अपने गन्तव्य स्थानमें जानेवाले मनुष्योंके अनेक पैरोंके तलेसे कुचल जानेके कारण फूलोंके समुदायमेंसे भ्रमर उड़ रहे थे। उनका गुञ्जार हो रहा था। भूपतिगण सम्भ्रममें अत्यधिक शीघ्रतासे पैर रखते थे। उनके केयूरों (बाजूबन्दों) की रगड़से रत्नहार-युत मणि स्तम्भ शब्दायमान हो रहे थे।

समस्त राजाओंको विदा करनेके बाद राजा शूद्रकने चाण्डाल-कन्यासे विश्राम करनेको कहा और ताम्बूल करङ्कवाहिनी दासी (अपने मालिकके साथ पानके डब्बेको लेकर चलने वाली) को वैशम्पायनको भीतर ले जानेकी आज्ञा दी। फिर वह कितने ही अत्यन्त प्रिय राज पुत्रोंके साथ अभ्यन्तर प्रवेश किया। वहाँ समस्त आभूषणोंको उतार कर व्यायाम स्थानमें पहुँच गया। उसमें व्यायाम करनेका सब साधन रक्खा था, आभूषण

---

१. निपतित''। २. जय जयेति। ३. मधुरवचनानुपातेन मधुरवचनानुयातेन। ४. दिगन्तर'''। ५. संक्षोभाद्विहाय। ६. त्वरितपदं प्रवृत्तैः, त्वरितपदं प्रसृतैः। ७. चण्डाल'''। ८. अभ्यन्तरं स्नानपानाशनादिना च सुखिनमेनं कारयेति, अभ्यन्तरमशनादिना चोपचर्य्यताम्। ९ कण्डर, १०. अपनीताभरणश्च

नाभोगः समुपाहृत-समुचित-व्यायामोपकरणां व्यायामभूमिमयासीत् ।

स तस्याञ्च समानवयोभिः सह राजपुत्रैः कृतमधुरव्यायामः, श्रमवशादुन्मिषन्तीभिः कपोलयोरीषदवदलित-सिन्धुवार-कुसुम-मञ्जरी-विभ्रमाभिः, उरसि निर्दयश्रम-च्छिन्न-हार-विगलित-मुक्ताफल-प्रकरानुकारिणीभिः, ललाटपट्टकेऽष्टमी-चन्द्र-शकल-तलोल्लसद-मृतबिन्दु-विडम्बिनीभिः स्वेदजल-कणिकासन्ततिभिरलङ्क्रियमाणमूर्त्तिः, इतस्ततः स्नानो-पकरण-सम्पादनसत्वरेण पुरःप्रधावता परिजनेन तत्कालं विरलजनेऽपि राजकुले समुत्सा-

दित्याशयः । तथा चन्द्रो निशापतिः तारका नक्षत्राणि तेषां समूहः समुदायस्तेन शून्यो रहितः, गगना-भोग इव आकाशविस्तार इव विस्तृतगगनवद् विशालशरीरत्वादित्याशयः । समुपाहृतानि भृत्यैरेकत्री-कृतानि समुचितानि योग्यानि व्यायामे परिश्रमे उपकरणानि उपयोगिलौहमुद्गरादिद्रव्याणि यस्यां सा ताम्, व्यायामभूमिं परिश्रमविधानयोग्यपृथ्वीम् अयासीत् अगच्छत् । इह 'दिवसकर इव' 'गगनाभोग इव' इत्युभयत्रोपमालङ्कारयोः परस्परं नैरपेक्ष्येण संसृष्टिः । आधुनिका राजपुत्रास्तु केवलं स्वेच्छया विहरन्तः प्रचुरतरमशनं विधाय स्थूलदेहाः सन्तोऽहर्निशं निद्रयैव कालं यापयन्ति परन्त्वयं राजा तादृशो नेति स्पष्टं वर्णनया प्रतीयते ।

स इति । तस्यां व्यायामभूमौ समानं तुल्यं वयः कौमारादिर्येषां तैः राजपुत्रैः राजसुतैः सह कृतो विहितो मधुरः सुदृश्यो व्यायामः परिश्रमो येन स राजा स्नानभूमिमगच्छदित्युत्तरेण सम्बन्धः । अत्र स्वेदजलकणिकासन्ततिरिति पदम्, अलङ्क्रियमाणमूर्त्तिरिति राजविशेषणस्य कर्तृ, एतद्भिन्नानि तृतीयान्त-पदानि च तस्योपमानवाचकानीति वेदितव्यम् । श्रमवशात् व्यायामवशात् कपोलयोः गल्लापरभागयोः उन्मिषन्तीभिः प्रकटं भवन्तीभिः, ईषत्किञ्चित् अवदलितं मर्दितं यत् सिन्दुवारस्य निर्गुण्ड्याः कुसुमं पुष्पं तस्य मञ्जरी वल्लरी तस्या इव विभ्रमो विलासो यासां ताभिः । उरसि वक्षःस्थले निर्दयश्रमेण क्लिष्टप्रयासेन अन्यैः कर्तुमशक्यव्यायामेनेति तात्पर्यम्, छिन्नः छेदमुपगतः यो हारो मुक्तामाला तस्माद् विगलितानां विच्युतानां मुक्ताफलानां मौक्तिकानां प्रकरं समुदायम् अनुकर्त्तुं शीलं यासां ताभिः । ललाटपट्टके भालस्थले अष्टमीचन्द्र अष्टमीतिथिसमुदितः सुधांशुरेव शकलं खण्डं तस्य तले उत्तानस्थले उल्लसन्तो द्योतयन्तो ये अमृतबिन्दवः पीयूषकणाः तान् विडम्बयितुम् अनुकर्त्तुं शीलं यासां ताभिः । अष्टमीपदप्रयोगो हि अष्टमी-तिथिसमुदितचन्द्राकार इवास्य ललाट इति व्यञ्जयितुम् । स्वेदजलस्य व्यायामजनितशरीरजलस्य कणिकाः सूक्ष्मबिन्दवः तेषां सन्ततयः श्रेणयः ताभिः तथोक्ताभिः अलङ्क्रियमाणा भूष्यमाणा मूर्त्तिः शरीरं यस्य स तथोक्तः । इह''''''कुसुममञ्जरीविभ्रमाभिः' इत्यत्र लुप्तोपमा । ''''''''मुक्ताफलप्रकरानुकारिणीभिः इत्यत्र''''''अमृतबिन्दुविडम्बिनीभिः' इत्यत्र चार्थोपमा बोध्या ।

इतस्तत इति । इतस्ततः समन्ताद् स्नानम् आप्लवस्तस्य उपकरणानां जलादीनां सम्पादने, निष्पादने सत्वरेण त्वरायुतेन, अत एव पुरःप्रधावता अग्रतः शीघ्रं व्रजता परिजनेन सेवकपुरुषेण, एतच्च 'उपदिश्यमाना' इत्यस्य कर्तृ । तथा तत्कालं तस्मिन् मध्याह्नकाल इत्यर्थः; विरलजनेऽपि स्वल्पलोकेऽपि तत्र समुत्सारणस्य प्रयोजनाभावेऽपीत्याशयः, राजकुले राजगृहे उचितं योग्यं समुत्सारणं लोकसम्मर्दनिवारणं तत्र यः अधिकारो नियोगः तम् आचरद्भिः सम्पादयद्भिः दण्डिभिः यष्टिधारिपुरुषैः,

उतार देनेसे राजा शूद्रक किरण-रहित सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्रगण-हीन आकाशके समान देखनेमें आने लगा ।

वहाँ अपने समवयस्क राज-पुत्रोंके साथ उसने कुछ व्यायाम किया । परिश्रमके कारण उसका शरीर पसीनेमें तर हो गया । पसीनेकी बूँदें उसके कपोलों पर कुछ कुछ खिले हुए शुभ्र सिन्धुवार (मौलसरी) के फूलकी मञ्जरीके समान शोभायमान थीं, कलेजे पर कठिन श्रमके कारण टूटे हारमें से गिरे मोतियोंके समान दिखलाई देती थीं और भालप्रदेशमें अष्टमीकी चन्द्रकला पर शोभायमान अमृतकी बूँदोंको मात करती थीं । पुनः स्नानकी सामग्री जुटानेकी शीघ्रतामें इधर-उधर दौड़ते परिचारकोंके साथ वह स्नान भूमिमें गया । उस समय राजमहलमें थोड़े

१'''अवगलित-सितसिन्धुवार''' । २'''रतिश्रम, रतिविभ्रम''' । ३. प्रधाविना । ४. परिजनेनानुगम्य-मानः । ५. विरलतरेऽपि ।

रणाधिकारमुचितमाचरद्भिः दण्डिभिरुपदिश्यमानमार्गः, वितत–सितवितानाम्, अनेक–चारणगण–निबध्यमानमण्डलाम्, गन्धोदक–पूर्ण–कनकमय–द्रोणी–सनाथमध्याम्, उपस्थापित–स्फाटिक–स्नानपीठाम्, एकान्तनिहितैरतिसुरभि–गन्ध–सलिलपूर्णैः परिमलावकृष्ट–मधुकर–कुलान्धकारितमुखैरातपभयान्नीलकर्पटावगुण्ठितमुखैरिव स्नानकलसैरुपशोभितां स्नान–भूमिमगच्छत्।

अवतीर्णस्य च जलद्रोणीं वारविलासिनी–कर–मृदित–सुगन्धामलकालिप्तशिरसो राज्ञः समन्तात् समुपतस्थुरंशुक–निविड–निबद्ध–स्तनपरिकराः, दूरसमुत्सारित–वलय–बाहु–लताः, समुत्क्षिप्तकर्णाभरणाः कर्णोत्सङ्गोत्सारितालकाः, गृहीतजलक–लसाः स्नानार्थमभिषेक–देवता इव वारयोषितः।

उपदिश्यमानः प्रदर्श्यमानः मार्गः स्नानभूमिगमनाध्वा यस्य स तादृशः एतच्च राजविशेषणं बोध्यम्। विततेति। अत्र द्वितीयान्तपदानि स्नानभूमेर्विशेषणानि। विततम् ऊर्ध्वं विस्तीर्णं सितं श्वेतं वितानम् उल्लोचः चन्द्रातप इति यावत् यस्यां ताम्। अनेके अगणिता ये चारणगणाः कुशीलवाः स्तुतिपाठकाः तैः निबध्यमानं निर्मीयमाणं मण्डलं मण्डलकारेणावस्थितिः यस्यां तां तादृशीम्। गन्धोदकैः सुरभिजलैः पूर्णा भृता या कनकमयी सुवर्णरचिता द्रोणी–जलकुण्डिका बृहज्जलपात्रविशेष इति तात्पर्यम्, तया सनाथो युक्तः मध्यो मध्यभागो यस्याः ताम्। उपस्थापितं न्यस्तं स्फाटिकं स्फटिकमणिरचितं स्नानपीठम् आप्लावनचतुष्किका यस्यां सा तां तादृशीम्। एकान्ते स्नानभूमेरेकस्मिन् प्रदेशे विहितैः न्यस्तैः। इतस्तृतीयान्तानि सकलानि स्नानकलसैरित्यस्य विशेषणानि। अतिशयेन सुरभिः घ्राणतृप्तिजनको गन्धो येषां तादृशैः सलिलैः जलैः पूर्णा भृतास्तैस्तथोक्तैः, अत एव परिमलेन सलिलगन्धेन अवकृष्टा आकृष्टा ये मधुकरा मधुपाः तेषां कुलानि समूहाः तैः अन्धकारितानि अन्धकारीकृतानि मुखानि वदनानि येषां तैः, अत एव आतपभयात् सूर्यकिरणसन्तापत्रासात् नीलकर्पटैः श्यामवर्णजीर्णवस्त्रखण्डैः अवगुण्ठितानि आच्छादितानि मुखानि येषां तैस्तथोक्तैरिव विद्यमानैः। स्नानकलसैः आप्लवकुम्भैः उपशोभितां विराजितां स्नानभूमिम् आप्लवस्थानम् अगच्छत् अयासीत्। इह च भावाभिमानिनी वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा।

अवतीर्णेति। जलद्रोणीं जलकुण्डिकाम् अवतीर्णस्य तन्मध्ये प्रविष्टस्य, वारविलासिनीभिः वेश्याभिः करैः हस्तैः 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्यमरः, मृदितेन घृष्टेन सुगन्धेन सुरभिणा आमलकेन धात्रीफलेन लिप्तं शिरो मस्तकं यस्य तस्य, राज्ञः शूद्रकस्य समन्तात् परितः। अंशुकैः निजनिजपरिहितवस्त्रैः निविडं दृढं यथा स्यात्तथा निबद्धा दृढभारलघूकरणाय आस्फालनावरोधाय वा संयताः स्तनपरिकराः कुचाभोगा याभिस्तास्तथोक्ताः। एवम्भूतानि प्रथमान्तानि 'वारयोषित' इत्यस्य विशेषणानि। दूरे ऊर्ध्वप्रदेशे समुत्सारितानि झणत्काराद्विघ्नदूरीकरणार्थम् उत्तोलितानि वलयानि कङ्कणानि यासु ताः तथोक्ता बाहुलता यासां ताः तथोक्ताः। समुत्क्षिप्तानि लोचनकपोलोपरिपतननिवारणार्थम् ऊर्ध्वमु-

---

लोगोंके होने पर भी यष्टिधारी परिचारकगण भीड़ हटानेका काम उचित रीतिसे कर रहे थे। उन लोगोंने उसे मार्ग बतलाया। स्नान-भूमिमें शुभ्रवर्ण कपड़ेका एक चँदोवा बँधा था; अगणित स्तुतिपाठकगण चारों दिशामें मण्डलाकारसे बैठे थे, मध्यमें सुगन्धित जलसे भरी एक सोनेकी नाँद (बड़ा कण्डाल) रक्खी थी, निकट ही स्फटिकमणिकी एक स्नान करनेकी चौकी भी रक्खी थी, उसकी एक ओर स्नान-कलश रक्खे थे, उनमें अत्यन्त सुगन्धित जल भरा था। सुगन्धके कारण आए हुए भौरोंसे उनका मुँह काला हो रहा था। वे इस प्रकार प्रतीत होते थे मानो जल गरम हो जानेके भयसे उन पर काले कपड़े बाँध दिये गये हों।

जिस समय राजा जलकी नाँदमें पहुँचा उस समय वेश्याओंने अपने अपने हाथसे सुगन्धित आँमले लगा कर उसके मस्तक पर लेप किया। पुनः कितनी ही वेश्याएँ उसके अगल-बगल खड़ी हो गईं। वे स्नान करानेके लिए आई हुई अभिषेक देवियोंके समान लगती थीं। उन्होंने पहनने वाले कपड़े (अंचल) द्वारा स्तन और कमर

---

१. समाचरद्भिः। २. आबध्यमानमण्डलाम्। ३. जलद्रोणीं। ४. अभिसुरभि। ५. कलशैः। ६. क्वचित् चकारो न विद्यते। ७. उपलिप्त। ८. परितः,। ९. समुत्तस्थुः,। १०. अंशुकविनिबद्ध···। ११···चरणाभरणाः।

ताभिश्च समुन्नत-कुचकुम्भ-मण्डलाभिर्वारिमध्यप्रविष्टः करिणीभिरिव वनकरी परिवृतस्तत्क्षणं रराज राजा ।

द्रोणीसलिलादुत्थाय च स्नानपीठममलस्फटिक-धवलं वरुण इव राजहंसमारुरोह ।

ततस्ताः काश्चिन्मरकत-कलस-प्रभाश्यामायमाना नलिन्य इव मूर्तिमत्यः पत्रपुटैः, काश्चिद्रजतकलसहस्ता रजन्य इव पूर्णचन्द्रमण्डलविनिर्गतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण, काश्चित् कलसोत्क्षेप-श्रम-स्वेदार्द्र-शरीरा जलदेवता इव स्फाटिकैः कलसैस्तीर्थजलेन, काश्चिन्मलयस-

त्विप्य वद्धानि कर्णाभरणानि श्रवणालङ्कारा याभिस्ताः तथोक्ताः। कर्णोत्सङ्गात् श्रोत्रान्तिकात् उत्सारिताः लोचनोपरिपतननिवारणाय अपसार्य उपरिन्यस्ता अलकाः चूर्णकुन्तला याभिस्ताः। गृहीता आत्ता जलकलशाः सलिलपूर्णघटा याभिस्ताः। अभिषेकदेवताः स्नानाधिष्ठात्र्यो देव्य इव स्नानार्थं राज्ञः आप्लवविधानार्थं समुपतस्थुः सम्यक्प्रकारेण उपस्थिता आसन्। इह वाच्या जात्युत्प्रेक्षा स्वभावोक्तिश्च अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

ताभिश्चेति। वारिमध्ये जलद्रोणीमध्ये प्रविष्टः कृतप्रवेशो राजा शूद्रकः समुन्नतम् अत्यन्तोच्चं कुचकुम्भमण्डलं स्तनकलशसमूहो यासां ताभिः, तादृशीभिः, ताभिः वारयोषिद्भिः, करिणीभिः हस्तिनीभिः परिवृतः परिवेष्टितः वनकरी वन्यहस्तीव तत्क्षणं तस्मिन् काले रराज शुशुभे। तथा च यथा हस्तिनीभिः समं मज्जनं कुर्वन् वनकरी शोभते तथैवायमपीत्यर्थः। एवं सति नात्र कालभेदेऽपि 'काऽप्यभिख्या तयोरासीत् व्रजतोः शुद्धवेशयोः' इत्यादिवदुपमागतभग्नप्रक्रमत्वदोष इत्यवधेयम्। इहालङ्कारश्चोपमा।

द्रोणीसलिलेति। ततो द्रोणीसलिलात् जलकुण्डिकास्थानात् उत्थाय बहिर्निर्गत्य अमलो मलरहितो यः स्फटिकस्तदाख्यो मणिविशेषः तद्वद् धवलं स्वच्छं स्नानपीठम् आप्लवनचतुष्किकां वरुणः प्रचेताः राजहंसं कलहंसमिव आरुरोह आरूढवान् वरुणो यथा राजहंसमारोहति तथैवायमप्यारुरोहेत्यर्थः। एवं सति कालभेदे सत्यप्यत्र न पूर्ववद् भग्नप्रक्रमतादोषः।

तत इति। ततः आरोहणानन्तरं ताः वाराङ्गना राजानम् अभिषिषिचुरित्यग्रिमेण सम्बन्धः। वाराङ्गना एव विविधप्रकारेण विशेषयति—काश्चिदित्यादिना। काश्चित् काश्चन मरकतमणिनिर्मितो यः कलशो घटस्तस्य प्रभया दीप्त्या श्यामायमानाः अश्यामा अपि श्यामवदाचरन्त्यः, अत एव पत्रपुटैः पर्णसम्पुटैः मूर्त्तिमत्यः श्यामत्वसाम्यात्तत्स्वरूपधारिण्यो नलिन्यः पद्मिन्य इव (दृश्यमानाः सत्यः) राजानं शूद्रकम् अभिषिषिचुः अभिषेकं चक्रुः। इह नलिनीवाराङ्गनानां मरकतकलश-पत्रपुटानाञ्च कृष्णवर्णत्वात् सादृश्यम्। वाराङ्गनासु नलिनीत्वजात्युत्प्रेक्षणादुत्प्रेक्षा व्यञ्जितोपमा च, अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

काश्चिदिति। काश्चन अन्या वारयोषितो रजतकलशः रूप्यनिर्मितघटः हस्ते करे यासां तास्तथोक्ताः, पूर्णचन्द्रमण्डलात् समस्तशशिबिम्बात् विनिर्गतेन निःसृतेन ज्योत्स्नाप्रवाहेण चन्द्रिकारयेण शोभमाना रजन्यः क्षपा इव। रजनीभिर्वाराङ्गनानाम्, पूर्णचन्द्रेण रजतकलशस्य, ज्योत्स्नाप्रवाहेण तत्स्थसलिलस्य सादृश्यमत्राभिमतं वेदितव्यम्। इह वाराङ्गनासु रजनीत्वजात्युत्प्रेक्षणाज्जात्युत्प्रेक्षा।

काश्चिदिति। अन्याः काश्चन कलशस्य घटस्य उत्क्षेपणात् ऊर्ध्वमुत्थापनाद् यः श्रमः आयासस्तेन ये स्वेदा घर्मसलिलानि तैरार्द्राणि स्विन्नानि शरीराणि वपूंषि यासां ताः, स्फाटिकैः तदाख्यमणिविशेषस-

बाँध लिए थे, हाथोंके कङ्कण बहुत ऊँचे चढ़ा लिए थे, कानोंके आभूषण उतार दिये थे, ललाट पर पड़े हुए केशोंकी लटोंको कानकी ओर मोड़ दिया था और हाथोंमें जलकी कलशें उठा लिए थे। उठे हुए कुच-कुम्भवाली वेश्याओंके मध्यमें, जलमें प्रविष्ट हुआ राजा ऐसा प्रतीत होता था मानो शुभ्र राजहंस पर वरुण चढ़ा हो। यहाँ कितनी ही वेश्याएँ—उस पर जलकी धारा डालनेमें—मरकत-मणि-जटित कलशोंकी प्रभाके कारण कुछ श्याम हो गई थीं। वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानों प्रत्यक्ष कमलिनियोंका समूह अपने पत्तोंसे स्नान कराता हो। कितनी ही वेश्याएँ रजत-कलस (चाँदीके कलशे) हाथमें लेकर स्नान कराती थीं। वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानो पूर्ण चन्द्र-मण्डलमें से निकलते प्रकाशसे रात्रियाँ स्नान कराती हों। कितनी ही वेश्याएँ कलश उठानेके श्रमसे पसीनेमें तर हो गई थीं। वे जल देवियोंके समान लगती थीं। उन्होंने स्फटिक-मणिके कलश लेकर उसे तीर्थोदकसे स्नान कराया।

१. जलद्रोणि। २. काञ्चन। ३. मरकतशकल...।

रित इव चन्दनरसमिश्रेण सलिलेन, काश्चिदुत्क्षिप्त-कलस-पार्श्व-विन्यस्त-हस्तपल्लवाः प्रकीर्य्यमाण-नख मयूख-जालकाः प्रत्यङ्गुलि-विवर-विनिर्गत-जलधाराः सलिलयन्त्रदेवता इव, काश्चिज्जाड्यमपनेतुमाक्षिप्त-बालातपेनेव दिवसश्रिय इव कनककलसहस्ताः कुङ्कुमजलेन वाराङ्गनाः क्रमेण राजानमभिषिषिचुः।

अनन्तरमुदपादि च स्फोटयन्निव श्रुतिपथमनेक-प्रहत-पटु-पटह-झल्लरी मृदङ्ग-वेणु-वीणा-गीत-निनादानुगम्यमानो वन्दिवृन्द-कोलाहलाकुलो भुवन-विवरव्यापी स्नानशङ्खानामापूर्य्यमाणानामतिमुखरो ध्वनिः।

म्बन्धिभिः कलशैः कुम्भैः तीर्थजलेन तीर्थपयसा च सहिताः, अत एव जलदेवता जलाधिष्ठात्र्य इव, तासामपि सलिलान्निःसरणेन सलिलबिन्दुन्यासदेहत्वात् साहश्यम्। इहापि वाराङ्गनासु जलदेवतात्वजात्युत्प्रेक्षणाज्जात्युत्प्रेक्षा।

काश्चिदिति। काश्चन अन्या वाराङ्गनाः चन्दनस्य मलयजस्य रसेन द्रवेण मिश्रं संयुक्तं तेन तथोक्तेन, सलिलेन पयसा मलयसरितः मलयाचलनद्य इव ता अपि चन्दनमिश्रजलान्याद्धते। तस्मिन् समये मलयसरित्सु स्नानासम्भवेन तदारोपणादुत्प्रेक्षा।

काश्चिदिति। अन्याः काश्चन उत्क्षिप्ता उत्तोल्य कक्षं नीता ये कलशाः कुम्भास्तेषां पार्श्वेषु वामदक्षिणेषु विन्यस्ता उत्तानभावेन स्थापिताः हस्तपल्लवाः करकिसलयानि याभिस्ताः, 'पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' इत्यमरः, प्रकीर्यमाणानि इतस्ततो विपर्यस्तानि नखानां पुनर्भवानां मयूखजालानि दीप्तिचया यासां ताः, तथा प्रत्यङ्गुलि प्रतिहस्तशाखं यानि विवराणि अन्तरालप्रदेशाः छिद्रा इति यावत् तेभ्यो विनिर्गता निःसृता जलधारा पानीयसम्पातो यासां ताः, अत एव सलिलयन्त्रदेवता जलयन्त्राधिष्ठातृदेव्य इव ता अप्येतादृश्यो भवन्तीत्यर्थः। इहापि तथाविधगणिकासु सलिलयन्त्रदेवतात्वजात्युत्प्रेक्षणाज्जात्युत्प्रेक्षा।

काश्चिदिति। काश्चन अन्या कनककलशाः सुवर्णकुम्भा हस्तेषु पाणिषु यासां ताः काश्चिद्वाराङ्गनाः, दिवसश्रिय इव दिनलक्ष्म्य इव जाड्यं जलीयशैत्यम् अपनेतुं पृथक्कर्तुम् आक्षिप्त आकर्षितो बालातपः अभिनवोदितसूर्यरश्मिः यस्मिन् तेनेव कुङ्कुमजलेन केशरमिश्रितसलिलेन यथायथं यथायोग्यं राजानं शूद्रकम् अभिषिषिचुः स्नानं कारयामासुः। इह 'दिवसश्रिय' इति जात्युत्प्रेक्षा, 'आक्षिप्तबालातपेनेव' इति क्रियोत्प्रेक्षा, अनयोश्चाङ्गाङ्गिभावात्सङ्करः।

अनन्तरमिति। अनन्तरं स्नानानन्तरं स्नानशङ्खानां ध्वनिः उदपादीत्यन्वयः। श्रुतिपथं कर्णविवरं स्फोटयन् द्विधा कुर्वन्निव, अनेकैः पुरुषैः प्रहता वादिताः पटवः वाद्यविधाने समर्थाः पटहा दुन्दुभयः झल्लयो वाद्यविशेषा (भाषायां 'झाल' इति पदवाच्याः), मृदङ्गा मुरजाः, वेणवो वंशयः, वीणा वल्लक्यः तासां गीतानां गानानाञ्च निनादैः ध्वनिभिः अनुगम्यमानः तमनुलक्ष्यीकृत्य प्रवर्तमानः, बन्दिवृन्दस्य वैतालिकसमूहस्य कोलाहलेन कलकलेन आकुलो व्याप्तः, अत एव भुवनविवरव्यापी विष्टपान्तरालप्रसारी, अतिमुखरः अतिशयेन तारतरः, आपूर्यमाणानां मुखवायुभिः वाद्यमानानां स्नानशङ्खानाम् आप्लवकालवादनीयशङ्खानां ध्वनिः शब्द उदपादि उत्पन्नोऽभूत्, 'पद गतौ' अस्माल्लुङि रूपम्। इह भुवनविवर-

---

मलयाचलकी नदियोंके समान कितनी ही वेश्याओंने चन्दन-रस मिले जलसे स्नान कराया। कितनी ही वेश्याओंने कलशे उठा कर उन्हें अपने दोनों हाथोंसे थाम लिया था। उनके हस्त-पल्लवोंके नखोंमेंसे किरणें फैल रही थीं। वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानों प्रत्येक अंगुलियोंके छिद्रोंमें से निकलती जलधारावाली जलयन्त्र-देवियाँ हों। कितनी ही वेश्याएँ सुवर्णके कलश हाथमें लेकर कुङ्कुम जल, केसरिया जल छिड़कती थीं। वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानो शीतलता (ठंढ) दूर करनेके लिए दिन भी लाल-लाल सूर्यकी धूप छिड़क रही हो। इन सबोंने क्रमशः उसका अभिषेक किया। उसी समय अधिकतर स्नानकालीन शंखोंकी गर्जना इस प्रकार समस्त भुवनोंमें व्याप्त हो गई मानो कर्ण-विदीर्ण कर डालती हो। उसीके साथ बहुतसे नक्कारे, झाँझ, मृदंग, वेणु और वीणाका शब्द और स्तुति-पाठकोंका कोलाहल सुनाई देने लगा।

---

१ ···अवनिर्गत···। २. यथायथं। ३. अस्फोटयन्निव, आस्फोटयन्निव। ४. कोलाहलो। ५. भवन···। ६ मुखरः।

एवञ्च क्रमेण निर्वर्त्तिताभिषेको विषधरनिर्मोक-परिलघुनी धवले परिधाय धौते वाससी शरदम्बरैकदेश इव जलक्षालन-निर्मलतनुः अतिधवल-जलधर-च्छेद-शुचिना दुकूलपटपल्लवेन तुहिनगिरिरिव गगनसरित्स्रोतसा कृतशिरोवेष्टनः सम्पादितपितृजलक्रियो मन्त्रपूतेन तोयाञ्जलिना दिवसकरमभिप्रणम्य देवगृहमगमत् ।

उपरचित-पशुपतिपूजनश्च निष्क्रम्य देवगृहान्निर्वर्त्तिताग्निकार्यो विलेपनभूमौ झङ्कारिभिरलिकदम्बकैरनुबध्यमानपरिमलेन मृगमद-कर्पूर-कुङ्कुमरास-सुरभिणा चन्दनेनानुलिप्तस-

व्यापनसम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्धोक्त्यातिशयोक्तिरलङ्कारः, 'स्फोटयन्निवे'ति क्रियोत्प्रेक्षा च, अनयोश्च परस्परं नैरपेक्ष्येण संसृष्टिरलङ्कारः । 'मिथोऽनपेक्षयमेतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते' इति लक्षणात् ।

एवञ्चेति । चो भिन्नक्रमे तस्य च किञ्चेत्यर्थः । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण क्रमेण परिपाट्या निवर्त्तितः कृतः अभिषेकः स्नानं येन स तादृशो राजा देवगृहमगमदिति वक्ष्यमाणक्रियया सम्बन्धः । विषधराः सर्पास्तेषां निर्मोकः कञ्चुकः तद्वत् परिलघुनी अत्यन्तसूक्ष्मे धवले स्वच्छे धौतवाससी प्रक्षालितवसने परिधाय परिधानं विधाय, देवपूजानिमित्तं वस्त्रद्वयधारणावश्यकमाह आह्निकसूत्रावल्याम्ः—

'होमदेवार्च्चनाद्यासु क्रियासु पठने तथा । नैकवस्त्रः प्रवर्त्तेत यत्नतः सर्वदा बुधैः ॥'

शरदि वर्षात्यये अम्बरैकदेश इव आकाशैकभाग इव जलक्षालनेन अभिषेचनीयसलिलद्वारा प्रक्षालनेन वर्षासलिलद्वारा प्रक्षालनेन च निर्मला अपगतमला तनुः शरीरं यस्य स तादृशः, अतिधवलः अतीव स्वच्छो यो जलधरच्छेदः मेघखण्डः तद्वत् शुचिना धवलेन दुकूलपट्टस्य क्षौमवसनस्य पल्लवेन विस्तारेण अतिदीर्घक्षौमवसनेनेत्यर्थः, 'पल्लवो विस्तरे षिङ्गे किसले विटपे वने' इति त्रि० शेषः । गगनसरित् आकाशगङ्गा तस्याः स्रोतसा प्रवाहेण तुहिनगिरिः हिमाचल इव कृतः विहितः शिरोवेष्टनः उष्णीषो येन स तादृशः । होमार्थमुष्णीषधारणमाह—

'उष्णीषेण विना राजन् ! होमं चेत् कुरुते नरः । होतुश्चक्षुर्विनाशः स्यात् होता च विकलो भवेत् ॥' इति ।

सम्पादिता निष्पादिता पितृजलक्रिया पितृतर्पणादिर्येन स तादृशः, तथा च—'स्नात्वा सन्तर्पयेद् देवान् पितॄंश्च मानवांस्तथा' इति । मन्त्रैः वेदविहितैः पूतं पवित्रं तत्तोयं जलं तस्य अञ्जलिः हस्तसम्पुटः 'अञ्जलिस्तु पुमान् हस्तसम्पुटे कुडवेऽपि च' इति मेदिनी । तेन दिवसकरं सूर्यनारायणम् अभि सम्मुखं प्रणम्य अञ्जलौ मन्त्रपूतमर्घ्यरूपं जलं सूर्यनारायणाय दत्त्वा नमस्कृत्येत्यर्थः । तदुक्तम्—

'अर्घ्यं दद्यात्तु प्रथमं भास्कराय महात्मने । ततो विष्णुं शिवं शान्तः शिवां चैव प्रपूजयेत् ॥' इति ।

देवगृहं देवमन्दिरम् अगमत् अगच्छत् । इह विषधरनिर्मोकेत्यत्र लुप्तोपमालङ्कारः । शरदम्बरैकदेश इवेत्यत्र पूर्णोपमालङ्कारः । अतिधवलजलधरेत्यत्रापि च लुप्तोपमैव । तुहिनगिरिरित्यत्र तूपमा ।

उपरचितेति । उपरचिता सम्पादिता पशुपतेः महेश्वरस्य पूजा अपचितिः 'पूजा नमस्यापचितिः' इत्यमरः, येन स तथाभूतः, तथा च—'असंपूज्य शिवं मोहाद्ये नरा भुञ्जतेऽन्वहम् । सौख्यं नैवाप्नुवन्तीह भग्नाशाः पर्यटन्ति ते ॥' इति । निवर्तितं निष्पादितम् अग्निकार्यम् अग्निहोत्रहोमादिर्येन सः, 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहुयात्' इति श्रुतेरग्निहोत्रस्यापि नित्यत्वादित्याशयः । विलेपनभूमौ अङ्गरागसम्पादनस्थाने झङ्कारिभिः 'झम्' इति शब्दं कुर्वद्भिः अलिकदम्बकैः भ्रमरगणैः अनुबध्यमानः अनुसरणं क्रियमाणः परिमलः सौरभो यस्य स तेन, मृगमदस्य कस्तूर्याः कर्पूरकुङ्कुमयोः केसरहिमवालुकयोश्च वासेन परिमलेन सुर-

इस प्रकार स्नान कर लेनेके बाद जलसे प्रक्षालित हो जानेके कारण राजाका शरीर निर्मल हो गया । वह ऐसा परिलक्षित होने लगा जैसे शरद् ऋतुमें आकाशका एक देश हो । सर्पकञ्चुक (साँपकी काँचली) के समान सूक्ष्म और स्वच्छ दो वस्त्र उसने पहन लिये और अत्यन्त शुभ्र—मेघके टुकड़ोंके समान निर्मल रेशमी वस्त्रका शिरोवेष्टन (साफा) शिर पर बाँध लिया । इससे वह ऐसा शोभायमान हुआ जैसे आकाश गंगाके प्रवाहसे हिमालय शोभित होता हो । पुनः पितृ-तर्पण कर तथा मंत्र-सहित पवित्र जलकी अञ्जलिसे सूर्यनारायणको नमस्कार करके वह देव-मन्दिरमें गया । वहाँ भगवान् शंकरका पूजन कर मन्दिरसे निकल, होम आदि करके वह विलेपन-भवनमें गया । वहाँ उसने समस्त शरीरमें चन्दनका लेप किया । वह चन्दन, कस्तूरी, कपूर और केसरसे सुगन्धित था

१. निवर्त्तिताभिषेकः । २. धौतवाससी । ३. जलक्षालनविमलतनुः । ४. उपचरित''' । ५'''पूजश्च । ६. निवर्त्तित ।

र्वाङ्गो विरचितामोदि-मालतीकुसुमशेखरः कृतवस्त्र[1]परिवर्तः रत्नकर्णपूरमात्राभरणः समुचितभोजनैः सह भूपतिभिराहारमभिमत-रसास्वाद-जातप्रीतिरवनिपो निर्वर्त्तयामास[2]।

परिपीतधूम[3]वर्त्तिः उपस्पृश्य च गृहीतताम्बूलस्तस्मात् प्रमृष्ट-मणि-कुट्टि[4]मप्रदेशादुत्थाय नातिदूरवर्त्तिन्या ससम्भ्रम-प्रधावितया प्रतीहार्य्या प्रसारितं बाहुम्[5] अवलम्ब्यानवरत[6]-वेत्रलताग्रहण-प्रसङ्गाद[7]तिजरठ-किसलयानुकारि-करतलं करेण[8] अभ्यन्तरसञ्चारसमुचितेन परिजनेनानुगम्यमानः, धवलांशुक[9]-परिगतपर्यन्ततया स्फटिक-मणिम[10]य-भित्ति-ब[11]द्धमिवोप-

भिणा घ्राणतर्पणेन 'सुरभिर्घ्राणतर्पणः' इत्यमरः, चन्दनेन मलयजेन अनुलिप्ताङ्गः लेपितसकलशरीरावयवः, विरचितः रचनाविशेषेण विहितः आमोदिभिः परिमलवद्भिः मालतीकुसुमैः जातीपुष्पैः शेखरः शिरोभूषणं येन स तादृशः, अङ्गरागादिकं यथाकालं यथावयः कार्यमित्याह्निके स्पष्टम्। कृतो विहितो वस्त्रयोः पूर्वपरिहितवसनयोः परिवर्तः परिवर्तनं येन सः परिहितान्यवसन इत्यर्थः, पूजावाससः सर्वदा धारणानौचित्यादित्याशयः। रत्नकर्णपूरमात्रं केवलं रत्नखचितं कुण्डलमेव आभरणं तत्समयालङ्कारो यस्य सः, अशनादिसमयेऽनेकभूषणपरिधानेन कष्टसम्भवादित्याशयः। समुचितं योग्यं भोजनम् एकपङ्क्तावशनं येषां तैः तथोक्तैः, आत्मतुल्यकुलसदाचारादिसम्पन्नैरित्याशयः, भूपतिभिः अन्यैः नृपतिभिः सह, अभिमता अभिलषिता ये रसा मधुरादयस्तेषाम् आस्वादेन ग्रहणेन जाता उत्पन्ना प्रीतिः सन्तुष्टिः यस्य सः, अवनिपः भूपतिः शूद्रकः आहारम् अशनं निवर्त्तयामास सम्पादयामास।

परिपीतेति। उपस्पृश्य आचमनं विधाय आस्थानमण्डपमयासीदिति वक्ष्यमाणक्रियया सम्बन्धः। 'उपस्पर्शस्त्वाचमनम्' इत्यमरः। भोजनानन्तरमाचमनस्यावश्यकर्त्तव्यत्वमुक्तं नारदेन—
'सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतं वचः। पीत्वाऽपोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत् प्रयतोऽपि सन्॥' इति

परि सामस्त्येन पीता मुखसौगन्ध्यविधानार्थं गृहीता धूमवर्त्तिः अग्निसंयोगेन धूमसंयुक्तमालकूटादिरचितद्रव्यविशेषो येन सः, गृहीतं मुखाभ्यन्तरे धृतं ताम्बूलं नागवल्लीदलं येन स तथोक्तः। प्रमृष्टः सलिलादिना संस्कृतो यो मणिकुट्टिमप्रदेशः रत्नमयबद्धस्थलं तस्मात्, उत्थाय उत्थानं विधाय, नातिदूरं वर्तते या सा तया, ससम्भ्रमं सत्रासं प्रधावितया शीघ्रं व्रजन्त्या प्रतीहार्या द्वारपालिन्या प्रसारितं विस्तारितम्, अनवरतं निरन्तरं वेत्रस्य वेतसस्य या लता मृदुयष्टिः तस्या ग्रहणं धारणं तस्य प्रसङ्गात् अभ्यासात्, अतिजरठम् अतिकठिनम् अत्यन्तपरिणतमित्यर्थः यत् किसलयं पल्लवं 'पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' इत्यमरः, तदनुकर्तुं शीलं यस्य तत्तथोक्तं करतलं हस्ताधःप्रदेशो यस्य तथोक्तम्, बाहुं भुजं 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' इत्यमरः, अवलम्ब्य तदाश्रयं कृत्वेत्यर्थः, अभ्यन्तरे बाह्यजनागम्ये गृहप्रदेशे यः सञ्चारः सञ्चरणं गमनागमनमित्यर्थः तत्र समुचितेन योग्येन परिजनेन सेवकलोकेन अनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानः।

धवलांशुकेति। धवलानि निर्मलानि यानि अंशुकानि वस्त्राणि तैः परिगताः परिवेष्टिताः पर्यन्ता प्रान्तभागा यस्य तस्य भावस्तत्ता तया कारणेन, स्फटिकमणिमयी या भित्तिः कुड्यं तया निबद्धं रचितमिव

और सुगन्धके कारण भ्रमर उसके चारों ओर गुञ्जार कर रहे थे। पुनः सुगन्धित चमेलीके फूलोंका मुकुट पहन, वस्त्र बदल कर उसने आभूषणोंमेंसे केवल रत्नोंका कर्णपूर धारण किया। तदनन्तर एक पङ्क्तिमें भोजन करने योग्य राजगणको अपने साथ बैठा लिया और उसने अभिलषित रसके स्वादसे आनन्दित होकर भोजन किया।

भोजन कर लेनेके बाद मुँह धोकर सुगन्धित धूम्रपान कर, पान लेकर, देदीप्यमान हुए मणियोंके फर्शसे उठ कर राजा ने सभा-मण्डपकी ओर प्रस्थान किया। उसके चलते ही थोड़ी दूर खड़ी हुई प्रतीहारी शीघ्रतासे दौड़ी और उसने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। राजाने भी उसके हाथकी सहायता ले ली। अभ्यन्तर प्रवेश करने योग्य सेवक राजाके पीछे-पीछे चलने लगे। उनके हाथकी हथेली अनवरत छड़ी पकड़नेके कारण बहुत कठोर पत्तेके समान हो गई थी। सभामण्डपके चारों ओर शुभ्र वस्त्रोंके परदे लगे थे, जिनसे वह स्फटिकमणिकी

१. कृताम्बरपरीवर्त्तः। २. निवर्त्तयामास। ३. धूपवर्त्तिः, धूपधूमवर्त्तिः। ४. कुट्टिमात्। ५. प्रसारितबाहुम्, प्रसारितम्। ६. 'अनवरत' इति पाठः क्वापि नोपलभ्यते। ७. प्रसङ्गानति, प्रसङ्गादनति…। ८. करतलकरेण। ९. …शुकजवनिकापरिगत…। १०. स्फटिकमय। ११. निबद्ध।

लक्ष्यमाणम्, अतिसुरभिणा मृगनाभिपरिमलेनामोदिना चन्दनवारिणा सिक्तशिशिरमणिभूमिम्, अविरलविप्रकीर्णेन विमल-मणिकुट्टिम-गगनतलतारागणेनेव कुसुमोपहारेण निरन्तरनिचितम्, उत्कीर्णशालभञ्जिकानिवहेन सन्निहितगृहदेवतेनेव गन्धसलिल-क्षालितेन कलधौतमयेन स्तम्भसञ्चयेन विराजमानम्, अतिबहलागुरु-धूप-परिमलम्, अखिल-विगलितजलनिवह-धवल-जलधर-शकलानुकारिणा कुसुमामोदवासित-प्रच्छदपटेन, पट्टोपधानाध्यासितशिरोभागेन मणिमय-प्रतिपादुकाप्रतिष्ठितपादेन पार्श्वस्थ-रत्नपादपीठेन तुहिनगिरि-शिलातल-सदृशेन शयनेन सनाथीकृतवेदिकं भुक्तास्थानमण्डपमयासीत् ।

उपलक्ष्यमाणम् अवलोक्यमानम् । अनेन वस्त्राणां शुभ्रत्वं सौक्ष्म्यातिशयत्वञ्च प्रतीयते । इह क्रियोत्प्रेक्षा, सा च वाच्या । इत आरभ्य द्वितीयान्तपदानि 'आस्थानमण्डपम्' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि ।

अतिसुरभिणेति । अतिसुरभिणा अत्यन्तघ्राणतर्पणेन 'सुरभिर्घ्राणतर्पणः' इत्यमरः, मृगनाभिपरिमलेन कस्तूरीगन्धेन 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे' इत्यमरः, आमोदिना अत्यन्तसुगन्धिना चन्दनवारिणा मलयजमिश्रितपानीयेन, सिक्ता सिञ्चिता अत एव शिशिरा शीतला मणिभूमी रत्नबद्धा भूर्यत्र तं तथोक्तम् ।

अविरलेति । अविरलं सान्द्रं यथा स्यात्तथा विप्रकीर्णेन विक्षिप्तेन, तथा विमलं निर्मलं मणिकुट्टिमं रत्नबद्धभूमिः गगनतलतारागणेन आकाशस्थितनक्षत्रमण्डलेनेव कुसुमोपहारेण पुष्पसमूहेन निरन्तरम् अनवरतं निचितं सान्द्रभावेन व्याप्तम् । इहोपमालुप्तोपमयोः परस्परमङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः ।

उत्कीर्णेति । उत्कीर्णं उत्कीर्य विहितः शालभञ्जिकानिवहः पुत्तलिकापुञ्जो यस्मिन् तथोक्तेन, अतएव सन्निहिता निकटस्था गृहदेवताः भवनाधिष्ठात्र्यो देव्यो यस्मिन् तथोक्तेनेव स्थितेन, गन्धसलिलैः सुगन्धिवारिभिः क्षालितेन धौतेन कलधौतमयेन सुवर्णनिर्मितेन, स्तम्भानां स्थूणानां सञ्चयेन समुदायेन विराजमानं शोभमानम् । इह सन्निहितगृहदेवतेनेवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा ।

अतीति । अतिबहलः अत्यन्तप्रचुरो योऽगुरुः कृष्णागुरुः तस्य धूपस्य परिमलः सौरभं यस्मिंस्तत् तथोक्तम् ।

अखिलेति । अखिलः सम्पूर्णो विगलितो निर्गतो जलनिवहः सलिलसमुदायो यस्मिन् स तादृशः, अत एव धवलो निर्मलो यो जलधरो मेघः तस्य शकलं खण्डम् अनुकर्तुं शीलं यस्य स तेन । इत आरभ्य तृतीयान्तपदानि 'शयनेन' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि । कुसुमानां पुष्पाणाम् आमोदेन सौगन्ध्येन वासितः सुगन्धीकृतः प्रच्छदपटः आस्तरणवस्त्रं यस्य स तेन । पट्टस्य क्षौमवस्त्रस्य यदुपधानम् उच्छीर्षकं तेन अध्यासितम् आश्रितं शिरोधाम मस्तकस्थापनस्थलं यस्य स तेन । मणिमयीषु रत्नरचितासु प्रतिपादुकासु आधारपीठेषु प्रतिष्ठिताः स्थिताः पादाः पल्यङ्कपादा यस्य स तेन । पार्श्वस्थं निकटस्थं रत्नपादपीठं मणिपादासनं यस्य स तेन । तुहिनगिरेः हिमालयपर्वतस्य यत् शिलातलं हिमव्याप्ततया श्वेतः प्रस्तरः, तत्सदृशेन तन्निभेन अत्यन्तधवलवर्णेनेत्यर्थः, शयनेन शय्यया, सनाथीकृता

दीवारोंका बना हुआ लगता था । चन्द्रकान्तमणिकी भूमि (फर्श) पर अत्यधिक सुगन्धित—कस्तूरीयुक्त—चन्दन-जल छिड़का गया था । उसके समीप फूलोंके ढेर फैले हुए थे । वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे आकाशमें नक्षत्रमण्डल हों । सुवर्णके खम्भ सुगन्धित जलसे धोए गये थे । उनमें उट्टङ्कित हुई पुतलियाँ गृह-देवियोंके समान प्रतीत होती थीं । अगरबत्तीकी धूपका धुआँ वहाँ अतिप्रचुर परिमाणमें भर रहा था । सभामण्डपके मध्यस्थान (चबूतरे) पर हिमालयके पाषाणखण्डके समान श्वेतवर्ण एक पलंग बिछा था । वह ऐसा प्रतीत होता था मानो समस्त जल बरस जानेके कारण शुभ्रवर्ण हुआ मेघका खण्ड (टुकड़ा) हो । उसपर फूलोंकी सुगन्धिमें सुवासित एक चादर बिछी थी । रेशमीवस्त्रका एक शिरोपधान (तकिया) सिरहाने रक्खा था । चरणतलकी ओर मणि-मय एक पादपीठ (खड़ाऊँ) रक्खे थे । दोनों ओर रत्नोंकी चौकियाँ स्थापित थीं ।

१. अतिसुरभि । २. परिगतेन । ३. शिशिरकर । ४. विमलमणिकुट्टिमं गगनतलं तारागणेनेव । ५. दैवतेनेव । ६. परिगलित''' । ७. अध्यवसित । ८.'''शिरोधाम्ना । ९. रत्नपीठेन, रत्नमयपीठेन । १०. तुहिनशिलातलसदृशशयनेन ।

तत्र च शयने[1] निषण्णः क्षितितलोपविष्टया शनैः शनैरुत्सङ्गनिहितासिलतया खड्गवाहिन्या नव-नलिन-दल-कोमलेन करसम्पुटेन संवाह्यमानचरणस्तत्कालोचितदर्शनैरवनिपतिभिरमात्यैर्मित्रैश्च सह तास्ताः कथाः कुर्वन् मुहूर्त्तमिवासाञ्चक्रे।

ततो नातिदूरवर्त्तिनीम् 'अन्तःपुराद्वैशम्पायनमादायागच्छ' इति समुपजात[2]तद्वृत्तान्त-प्रश्न-कुतूहलो राजा प्रतीहारीमादिदेश।

सा क्षितितल-निहित-जानु-करतला 'यथाज्ञापयति देवः' इति शिरसि कृत्वाज्ञां यथादिष्टमकरोत्।

अथ मुहूर्त्ताद्[3]देव वैशम्पायनः प्रतीहार्या गृहीतपञ्जरः कनकवेत्रलतावलम्बिना किञ्चिदव-

---

युक्ता वेदिका परिष्कृतभूमिर्यस्य तथोक्तम् आस्थानमण्डपं सभाभवनम् अयासीत् जगाम। इह 'धवलजलधरशकलानुकारिणा' इत्यत्र 'तुहिनगिरिशिलातलसदृशेन' इत्यत्र चार्थोपमा बोध्या।

तत्रेति। शयने आस्तरणे निषण्ण उपविष्टो राजा शूद्रकः, क्षितितले पृथ्वीतले उपविष्टया निषण्णया, तथा उत्सङ्गे क्रोडे निहिता स्थापिता असिलता लतावत् कोमलो लम्बमानश्च खड्गो यया सा तथा एवं भूतया खड्गवाहिन्या कृपाणधारिण्या कयाचित् नायिकया, नवं नूतनं यन्नलिनं पद्मं तस्य दलानि पत्राणि तद्वत् कोमलेन मृदुलेन, करसम्पुटेन हस्तद्वयेन शनैः शनैः मन्दं मन्दं संवाह्यमानौ सञ्चाल्यमानौ चरणौ पादयुगलौ यस्य सः। तत्काले शयनसमये उचितं राज्ञा स्वयमेव निश्चितत्वाद् योग्यं दर्शनं साक्षात्कारो येषां तैः तथोक्तैः। अवनिपतिभिः राजभिः अमात्यैर्मन्त्रिभिः मित्रैः सुहृद्भिश्च तास्ताः प्रस्तावोचिता नानाविधाः कथा आलापान् कुर्वन् विदधत् मुहूर्त्तं घटिकाद्वयमिव आसाञ्चक्रे अवतस्थे। वाक्यालङ्कारे इवेतिपदम्। 'नवनलिनम्' इत्यत्र लुप्तोपमा।

तत इति। ततः कथासमाप्त्यनन्तरं नातिदूरवर्त्तिनीं यत्किञ्चिद्व्यवधानेनैव स्थितामित्यर्थः, प्रतीहारीं पूर्वोक्तलक्षणाम्, समुपजातं समुत्पन्नं तस्य शुकस्य वृत्तान्तप्रश्ने प्रवृत्तिपृच्छायां 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इति, 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इति चामरः, कुतूहलं कौतुकम् आश्चर्यमित्यर्थः यस्य स तादृशः, राजविशेषणमिदम्। अन्तःपुरात् अवरोधात् तं वैशम्पायनं शुकम् आदायागच्छ गृहीत्वा व्रज इति इत्येवं रूपम् आदिदेश आज्ञापयामास।

सेति। सा प्रतीहारी क्षितितले भूमितले विहितौ स्थापितौ जानू नलकीलकौ करतले पाणितले च यया सा तथोक्ता, एतेन विनयविशेषो ध्वनितः, यथा येन प्रकारेण आज्ञापयति आदिशति देवो भवान् इत्यभिधाय शिरसि मस्तके आज्ञाम् आदेशं कृत्वा विधाय स्वमस्तके करतलं स्थापयित्वेत्याशयः, यथा येन प्रकारेण राज्ञा आदिष्टम् आज्ञापितं तथा अकरोत् विदधौ।

अथेति। अथ अन्तःपुरप्रवेशानन्तरं मुहूर्त्तादिव घटिकाद्वयविलम्बादिव। गृहीतम् आत्तं पञ्जरं लौहशलाकानिर्मितपक्षिनिलयं यस्य स तथोक्तः। कनकेन सुवर्णेन खचिता या वेत्रलता वेतसयष्टिः तामवलम्बते धारणं करोतीत्येवं शीलो यः स तेन तथोक्तेन, इतः प्रभृति तृतीयान्तपदानि कञ्चुकिनेत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि। किञ्चित् ईषत् अवनतः वार्द्धक्यवशादानम्रः पूर्वकायो नाभेरूर्द्ध्वभागो यस्य तेन तादृशेन, सितकञ्चुकेन शुभ्रकूर्पासकेन आच्छन्नम् आच्छादितं वपुर्देहो यस्य स तेन तादृशेन, जरया वृद्धा-

---

वहाँ जाकर वह पलंग पर बैठा। उसकी खड्गवाहिनी (सेविका) खड्ग गोदमें रखकर फर्शपर बैठ गई और अभिनव कमलके पत्तोंके समान कोमल हाथोंसे धीरे-धीरे उसके पैर दाबने लगी। वहाँ वह कुछ देरतक ठहरा और उस समय जिन लोगोंको मिलनेके लिए निर्देश था ऐसे सामन्तों, मन्त्रियों और मित्रोंके साथ नाना प्रकारका आलाप करता रहा। तदनन्तर वैशम्पायन (शुक) का समाचार जाननेके कौतूहलसे उसने थोड़ी दूर खड़ी हुई प्रतीहारीको अन्तःपुरसे वैशम्पायनको ले आनेका आदेश दिया। तब प्रतीहारीने पृथ्वीपर घुटने और हथेलियाँ रख कर—'जैसी महाराजकी आज्ञा'—यों कह कर आदेशको शिरोधार्य किया और उसके अनुसार कार्य किया (उसे लानेके लिए चली गयी)। एक क्षणमें ही प्रतीहारी वैशम्पायन (शुक) के पिंजरेको राजाके

१. शयनतलनिषण्णः। २. समुपयात। ३. मुहूर्त्तादिव।

नतपूर्वकायेन सितकञ्चुकाच्छन्न-वपुषा जराधवलितमौलिना गद्गदस्वरेण मन्दमन्दसञ्चारिणा विहङ्गजातिप्रीत्या जरत्कलहंसेनेव कञ्चुकिनानुगम्यमानो राजान्तिकमाजगाम ।

क्षितितल-निहितकरतलस्तु कञ्चुकी राजानं व्यज्ञापयत्—'देव ! देव्यो विज्ञापयन्ति, देवादेशादेष वैशम्पायनः स्नातः कृताहारश्च देवपादमूलं प्रतीहार्यानीतः' इत्यभिधाय गते च तस्मिन् राजा वैशम्पायनमपृच्छत्—'कच्चित् अभिमतमास्वादितमभ्यन्तरे भवता किञ्चिदशनजातम् ?' इति ।

स प्रत्युवाच—'देव ! किं वा नास्वादितम् ?, आमत्त-कोकिल-लोचनच्छविर्नीलपाटलः कषायमधुरः प्रकाममापीतो जम्बूफलरसः, हरि-नखरभिन्न-मत्तमातङ्ग-कुम्भ-मुक्त-रक्तार्द्र-

---

वस्थया धवलितः स्वच्छीकृतः मौलिः केशसमूहो यस्य तेन तादृशेन, गद्गदः अस्फुटः स्वरः कण्ठध्वनिर्यस्य स तेन तादृशेन, कञ्चुकिना—

'अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः । सर्वशास्त्रार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते ॥'

इत्युक्तस्वरूपेण सौविदल्लकेनेत्यर्थः, मन्दं मन्दं शनैः शनैः सञ्चरितुं शीलं यस्य स तेन तादृशेन विहङ्गजातिप्रीत्या पक्षित्वस्नेहेन जरत्कलहंसेनेव वृद्धराजहंसेनेव अनुगम्यमानोऽनुव्रज्यमानः 'कलहंसस्तु कादम्बे राजहंसे नृपोत्तमे' इति मेदिनी, वैशम्पायनः शुकः राजान्तिकं नृपसमीपम् आजगाम आययौ । इह 'जरत्कलहंसेनेव' इत्युपमा ।

क्षितीति । क्षितितले धरणीतले 'धरा धरित्री धरणी क्षोणी ज्या काश्यपी क्षितिः' इत्यमरः, निहितं स्थापितं करतलं हस्ततलं येन स कञ्चुकी पूर्वोक्तलक्षणः राजानं भूमिपं व्यज्ञापयत् न्यवेदयत्—'हे देव स्वामिन् ! देव्यो महिष्यः विज्ञापयन्ति सूचयन्ति, देवादेशात् भवतो नियोगात् एष पुरोऽवलोक्यमानो वैशम्पायनः शुकः स्नातः पूर्वं कृतस्नानः पश्चात् कृताहारो विहितभोजनः, देवस्य भवतः पादमूलं सन्निधिं प्रतीहार्या द्वारपालिन्या अनया आनीतः प्रापितः' इत्यभिधाय इत्युक्त्वा तस्मिन् कञ्चुकिनि गते तस्मात् स्नानात् निष्क्रान्ते सति, राजा शूद्रकः वैशम्पायनं शुकम् अपृच्छत् पृष्टवान्-अभ्यन्तरे अन्तःपुरे भवता त्वया अभिमतम् इष्टं किञ्चित् अशनजातं भक्ष्यवस्तुसमूहः आस्वादितमिति काकुः भुक्तं किमित्यर्थः ? इति कच्चित् ज्ञातुमभिलषामि 'कच्चित् कामप्रवेदने' इत्यमरः ।

स इति । स वैशम्पायनः प्रत्युवाच उत्तरं ददौ—देव नाथ ! किं वा नास्वादितमिति काकुः ? अर्थात् यन्मद्भक्ष्ययोग्यं तत्सर्वमेव भक्षितमित्यर्थः। आमत्तः मधुपानेनोन्मत्तो यः कोकिलः पिकः 'वनप्रिय-परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि' इत्यमरः, तस्य लोचनच्छविर्नयनकान्तिः सेव छविर्यस्य स तादृशः नीलश्चासौ पाटलः श्वेतरक्तश्चेति नीलपाटलः 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः, कषायोऽम्लश्चासौ मधुरो मिष्टरसश्चेति कषायमधुरः जम्बूफलानां रसोऽन्तर्भूतद्रवः प्रकामं पर्याप्तं यथा स्यात्तथा आपीतः सम्यर्यादं पानविषयीकृतः। इह '......कोकिललोचनच्छविः' इत्यत्र लुप्तोपमा ।

हरीति । हरेः सिंहस्य नखरैः पुनर्भूर्भिः भिन्ना विदारिता ये मत्तमातङ्गानाम् उन्मत्तगजानां कुम्भाः शिरःस्था मांसपिण्डाः, तेभ्यो मुक्तानि अपगतानि यानि रक्तार्द्राणि शोणितक्लिन्नानि मुक्ताफलानि मौक्ति-

---

समीप ले आई । उसके पीछे-पीछे एक वृद्ध (ब्राह्मण) कञ्चुकी आया । उसके हाथमें सुवर्ण-खचित बेंतकी छड़ी थी । उसके शरीरका पूर्व-भाग कुछ नीचे झुक गया था । वह शुभ्र वस्त्रसे आच्छादित था । वृद्धावस्थाके कारण उसका शिर शुभ्रवर्ण हो गया था, स्वर गद्गद हो गया था, गति मन्द हो गई थी और वह ऐसा प्रतीत होता था मानो वृद्ध कलहंस ही पक्षि-जातिसे प्रीति होनेके कारण वहाँ उपस्थित हुआ हो । उसने पृथ्वी (फर्श) पर अपना हाथ टेक राजासे निवेदन किया—महाराज, रानियोंने कहलाया है कि आदेशानुसार वैशम्पायनको स्नान-भोजन करा दिया और अब प्रतीहारीके साथ इसे आपके पास भेजा है । इतना कह कर वह कञ्चुकी चला गया । उसके चले जानेके बाद राजाने वैशम्पायनसे पूछा कि—क्या अन्तःपुरमें अभिलषित भोज्यपदार्थ मिले ? उसने उत्तर दिया कि महाराज, मैंने क्या नहीं खाया ? मधुपानमत्त कोकिलके नेत्रोंके समान नीली और गुलाबी (श्वेतरक्त) जम्बूफलों—जामनोंका खट-मिट्ठा रस यथेष्ट पान किया । सिंहके नखोंसे फाड़े गये

---

१. आनत... । २. अवच्छन्न, अवच्छिन्न । ३. चारिणा । ४. विहितकरतलस्तु, निहितकरस्तु । ५. व्यजिज्ञापयत् । ६. पादमूले । ७. अपगते । ८. क्वचित् । ९. स तु । १०. करखरनखरनिर्भिन्न ।

मुक्ताफलत्वींषि खण्डितानि दाडिम[1]-बीजानि, नलिनीदल-हरिन्ति द्राक्षाफल-स्वादूनि च दलितानि[2] स्वेच्छया प्राचीनामलकीफलानि। किं वा प्रलपितेन बहुना, सर्वमेव देवीभिः स्वयं करतलोपनीयमानममृतायते' इति।

एवं वादिनो वचनमाक्षिप्य नरपतिरब्रवीत्—'आस्तां तावत् सर्वमे[3]वेदम्, अपनयतु नः कुतूहलम्, आवेदयतु भवानादितः प्रभृति कात्स्न्येनात्मनः, जन्म कस्मिन् देशे ? भवान् कथं जातः ? केन वा नाम कृतम् ? का ते[4] माता ? कस्ते पिता[5] ? कथं वेदानामागमः ? कथं शास्त्राणां परिचयः ? कुतः कलाः समासा[6]दिताः ? किं[7] जन्मान्तरानुस्मरणम् ? उत वरप्र-

कानि तेषां त्विष इव त्विषः कान्तयो येषां तानि तथोक्तानि, दाडिमबीजानि दाडिमफलबीजानि खण्डितानि शकलीकृतानि चञ्चुपुटेनेत्यु मयेति शेषः। उक्तालङ्कारः।

नलिनीति। नलिनी कमलिनी तस्या दलानि पत्राणि तद्वत् हरिन्ति हरिद्वर्णानि, तथा द्राक्षाफलवत् 'मृद्वीकासस्यवत् मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा' इत्यमरः, स्वादूनि सुमधुराणि च प्राचीनामलकीफलानि क्षीरधात्रीसस्यानि स्वेच्छया स्वाधीनतया दलितानि चञ्चुपुटेन मर्दयित्वा खादितानीत्यर्थः। इह 'नलिनीदलहरिन्ति' इत्यत्र 'द्राक्षाफलस्वादूनि' इत्यत्र च लुप्तोपमा, अनयोश्च मिथो नैरपेक्ष्येण संसृष्टिः।

किं वेति। बहुना अधिकेन प्रलपितेन कथितेन किं वा फलं न किमपि प्रयोजनमित्यर्थः। देवीभिः राजदाराभिः स्वयं न त्वन्यतःकरतलोपनीयमानं हस्ततलैः मह्यं दीयमानं सर्वं निखिलमेव वस्तु अमृतायते सुधावदाचरति स्वादुत्वादित्याशयः। 'अमृतायते' इत्यत्र क्यङ्प्रत्ययत्वादात्मनेपदम्। वर्त्तमानसामीप्ये 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इत्यनेनात्र वर्त्तमानत्वम्। क्यङन्तोपमालङ्कारः। इति वाक्यसमाप्तौ 'इति हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिषु' इत्यमरः।

एवमिति। एवं पूर्वोक्तप्रकारेण वादिनः कथयतः शुकस्य वचनं वाक्यम् आक्षिप्य असमाप्तमेव निवार्य अन्यदेव ज्ञातुं नरपती राजा अब्रवीत् उवाच—इदं पूर्वोक्तं सर्वमेव तावत् आदौ आस्तां तिष्ठतु नः अस्माकं कुतूहलं कौतुकं पक्षिणः सर्वशास्त्रविषयकं ज्ञानं कथं जातमित्याश्चर्यमित्यर्थः 'कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम्' इत्यमरः, अपनयतु दूरीकरोतु। तदेवोपपादयति—आवेदयत्विति। कात्स्न्येन साकल्येन आदितः प्रभृति जन्मसमयादारभ्य सर्वम् आत्मनः स्वस्य आवेदयतु निरूपयतु। कस्मिन् देशे कुत्र, जनपदे जन्म उत्पत्तिः ? कथं केन प्रकारेण भवान् जात उत्पन्नः ? केन महात्मना नाम कृतं वैशम्पायनेत्यभिधानं विहितम् ? ते तव का माता जननी ? ते कः पिता जन्मदः ? कथं केन प्रकारेण वेदानाम् ऋग्यजुःसामाथर्वणाम् आगम उपलब्धिः प्राप्तिरिति यावत् ? कथं शास्त्राणां न्यायमीमांसाप्रभृतीनां परिचयो विशेषबोधः ? कुतः कस्मात्पुरुषात् कलाः चतुःषष्टिप्रकाराः नृत्यगीतादिविधाः समासादिताः प्राप्ताः ? किं हेतुकं किंनिमित्तकं जन्मान्तरस्य पूर्वजन्मोदन्तस्य अनुस्मरणं स्मृतिः ? उत किं वरप्रदानं कस्यचिन्महात्मनः प्रसादात् वरदानप्राप्तिः येन जन्मान्तरानुस्मरणमित्यर्थः 'आहो उताहो किमुत विकल्पे किं किमूत

मतवाले हाथीके कुम्भ-स्थलोंमेंसे निकले—रक्तमें भीगे मोतियोंके समान चमकते अनारके दाने कुतरे। कमलके पत्तेके समान हरिद्वर्ण तथा द्राक्षा (दाख) के समान स्वादिष्ट पुराने आँवलेके फल इच्छानुसार खाये। अधिक कहनेसे क्या आवश्यकता—रानियोंने जिन-जिन वस्तुओंको अपने हाथसे दिया वे अमृतके समान लगीं।

इस प्रकार कहते वैशम्पायनके वचनपर कुछ ध्यान न देकर राजाने कहा कि यह तो सब हुआ, किन्तु अब तुम हमारा कौतुक दूर करनेके लिए सर्वप्रथम आरंभसे ही विस्तार-पूर्वक यह बताओ कि—तुम्हारा जन्म किस देशमें और किस प्रकारसे हुआ ? किसने तुम्हारा नामकरण किया ? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं ? तुमने वेदाभ्यास कैसे किया ? तुम शास्त्रमें किस प्रकार निपुण हुए ? कहाँ तुमने समस्त कलायें सीखीं ? क्या जन्मान्तरीय पुण्य-बलसे इतना स्मरण है या किसी महापुरुषका वर-दान है ? क्या तुम पक्षीके वेपमें प्रच्छन्नरूपसे

१. दाडिमी''' । २. चूर्णितानि, वलितानि, समास्वादितानि। ३. सर्व्वम्। ४. का माता। ५. कः पिता। ६. आसादिताः। ७. किं हेतुकः।

दानम्, अथवा विहगवेश-धारी कश्चिच्छन्नो निवससि ? क्व पूर्वमुषितम् ? कियद्वा वयः ? कथं पञ्जरबन्धः ? कथं चण्डाल-हस्तगमनम् ? इह वा कथमागमनम् ?' ।

वैशम्पायनस्तु स्वयमुपजातकुतूहलेन सबहुमानमवनिपतिना पृष्टो मुहूर्तमिव ध्यात्वा सादरमब्रवीत्—'देव ! महतीयं कथा, यदि कौतुकमाकर्ण्यताम्—

अस्ति पूर्वापर-जलनिधि-वेलावनलग्ना मध्यदेशालङ्कारभूता मेखलेव भुवः, वन-करिकुल-मदजल-सेक-संवर्द्धितैरतिविकच-धवल-कुसुमनिकरमत्युच्चतया तारा-गणमिव शिखर-

---

च' इत्यमरः । अथवा सिद्ध एव किं वा कश्चित् कश्चन विहगवेषधारी पक्षिस्वरूपधारी छन्नो गुप्तः सन् निवससि वासं विदधासि । क्व वा कस्मिन् स्थाने अत्रागमनात्पूर्वम् उषितम् अवस्थितम् ? वा अथवा कियद् वयः वार्षिकावस्था केत्यर्थः ? कथं केन प्रकारेण पञ्जरबन्धनं पञ्जरमध्येऽवस्थानम् ? कथं चाण्डाल-हस्तगमनम् अन्त्यजहस्तप्राप्तिः ? इह अस्मिन् प्रदेशे कथं वा आगमनम् उपस्थितिः ? इति प्रश्नसमाप्ति-सूचनार्थः । उपरितना ये प्रश्नाः सन्ति तेषु कतिपया शुकस्नानाहारादिसमये तस्मादेवावगतराजपत्नीनां सेविकानां वा सकाशाद्राज्ञाऽवगताः केचिच्च स्वयमूहिता ज्ञातव्याः, अन्यथा जातिस्मरोऽयं शुक इति ज्ञानाभावे तद्विषयकप्रश्नानुपपत्तिः स्यादित्यवधेयम् ।

वैशम्पायन स्त्विति । पुनरर्थे त्विति । तदनन्तरं वैशम्पायनः शुकः सबहुमानं सादरम् उपजातं समुत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य तेन तथोक्तेन स्वयम् आत्मनैव अवनिपतिना भूपतिना पृष्टः कृतप्रश्नः मुहूर्तं घटिकाद्वयमिव ध्यात्वा चिन्तयित्वा सादरं सबहुमानं पुनः अब्रवीत् उवाच—देव नाथ ! यत्पृष्टं तद्विषयिणी महती विस्तृता इयं कथा वृत्तान्तः । यदि चेत् कौतुकं कौतूहलं तर्हि आकर्ण्यतां श्रूयताम्—

अस्तीति । अस्य दूरस्थेन विन्ध्याटवी नामेति कर्तृपदेन सम्बन्धः । तथा च विन्ध्याटवी विन्ध्यारण्यं नाम प्रसिद्धमस्तीत्यर्थः, 'अटव्यरण्यं विपिनम्' इत्यमरः । इह प्रथमान्तपदानि विन्ध्याटवीविशेषणानि बोध्यानि । पूर्वश्चापरश्च पूर्वापरौ प्राच्यप्रतीच्यदिग्वर्त्तिनौ यौ जलनिधी समुद्रौ तयोः यद्वेलावनं तटविपिनं तावत्पर्यन्तम् अवलग्ना सम्बद्धा, पूर्वसमुद्रतीरतः पश्चिमसमुद्रतीरं यावत्प्रसृतेत्यर्थः । तत्समये विन्ध्याटवी एवंविधैवासीदित्यवधेयम् । मध्यदेशस्य—

'हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि ।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः ॥'

इति मनुलक्षितदक्षिणोत्तरयोर्हिमवद्विन्ध्ययोः पूर्वपश्चिमयोश्च प्रयागकुरुक्षेत्रयोश्च मध्यवर्त्तिस्थानस्य अलङ्कारभूता अनेकप्रकारवृक्षलतासिद्धाश्रमादिपूर्णत्वेन भूषणस्वरूपा मध्यभूषणस्वरूपत्वादेव भुवो मेदिन्याः मेखला रशनादामेव 'स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा' इत्यमरः ।

वनेति । वने अरण्ये ये करिणो हस्तिनः तेषां कुलानि यूथानि तेषां मदजलस्य दानवारिणः सेकेन सिञ्चनेन संवर्द्धितैः वृद्धिमापादितैः, तथा अत्युच्चतया अत्युन्नततया शिखरदेशलग्नं शिरोभागसंयुक्तं तारागणं नक्षत्रमण्डलमिव अतिविकचानाम् अतिविकसितानां धवलानां शुभ्राणां कुसुमानां पुष्पाणां निकरं

रहते हो ? पहले तुम कहाँ रहते थे ? तुम्हारी अवस्था (उम्र) कितनी है ? किस प्रकार चाण्डालके हाथमें पड़ कर तुम पिंजरेमें बन्द हुए ? यहाँ किस अभिप्रायसे तुम्हारा आगमन हुआ ? जब राजाने इस प्रकार स्वयं कौतुकसे आदरपूर्वक पूछा तब थोड़ा सोच कर वैशम्पायनने सादर कहा—महाराज, यह वृत्तान्त बहुत विस्तृत है तथापि यदि आपको अधिक कौतुक है तो सुनिये—

विन्ध्याचलकी वनभूमि पूर्वीय एवं पश्चिमीय समुद्रके तटों (किनारों) तक चली गई है । वह मध्यप्रदेशका अलङ्कारस्वरूप है और पृथ्वीकी मानो मेखला है । उसमें जंगली हाथियोंके मद-जलके सिञ्चनसे अनेकविध

---

१. विहङ्गवेष··· । २. छन्नं । ३. कथं वा । ४. बन्धनम् । ५. चाण्डा०·· । ६. कौतूहलम् । ७.···वेलावनलग्ना । ८. तारका

देशलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता, मदकल-कुररकुल-दश्यमान-मरीचपल्लवा, करि-कलभ-करमृदित-तमालकिसलयामोदिनी, मधुमदोपरक्त-केरली-कपोल कोमलच्छविना सञ्चरद्वनदेवता-चरणालक्तक-रस-रञ्जितेनेव पल्लवचयेन संच्छादिता, शुक-कुलद-लितदाडिमीफल-द्रवार्द्रीकृत-तलैरतिचपल-कपिकुल-कम्पितैं-कम्पिल्ल-च्युतपल्लवफल-शकलैः अनवरत-निपतितैं-कुसुमरेणु-पांशुलैः पथिक-जन-रचित-लवङ्गपल्लव-संस्तरैः अतिकठोर-नारिकेलें-केतकी-करीर-वं कुल-परिगत-प्रान्तैः ताम्बूलीलतावनद्ध-पूग-षण्ड-मण्डितैर्वनलक्ष्मी-

समुदायम् उद्वहद्भिः धारणं कुर्वद्भिः पादपैः वृक्षैः उपशोभिता भूषिता। इह 'शिखरदेशलग्नं तारागणमिव' इत्यत्र जात्युत्प्रेक्षा।

मदेति। मदकलैः मदोन्मत्तैः कुरराणां मत्स्यनाशनानां कुलानि समूहाः तैः दश्यमाना चञ्चुपुटेन संदश्य आस्वाद्यमाना मरीचानां कोलकानां पल्लवाः किसलयानि यस्यां सा 'मरीचं कोलकं कृष्णभूषणं धर्मपत्तनम्' 'पल्लवोऽस्त्री किसलयम्' इत्यमरः।

करीति। करिणां हस्तिनां कलभाः त्रिंशद्वर्षीयशावकाः 'कलभः करिशावकः' इत्यमरः, तेषां करैः शुण्डादण्डैः मृदितानि मर्दितानि यानि तमालकिसलयानि तापिच्छपल्लवानि 'तमालस्तिलके खड्गे तापिच्छे वरुणद्रुमे' इति मेदिनी, तेषाम् आमोदः सुगन्धिः विद्यते यस्यां सा तादृशी।

मध्विति। मधु मद्यं तस्य यो मदः पानेन मत्तता तेन उपरक्ताः किञ्चिल्लोहितस्वरूपा ये केरलीनां केरलदेशोत्पन्नानां सुन्दरीणां कपोला गल्लप्रदेशाः तेषामिव कोमला मृद्वी छविः कान्तिर्यस्य तेन, सञ्चरन्तीनाम् इतस्ततो व्रजन्तीनां वनदेवतानाम् अरण्याधिष्ठातृदेवीनां चरणालक्तकरसैः पादस्थितयावकद्रवैः रञ्जितेनेव रक्तीकृतेनेव पल्लवचयेन वृक्षलतानां किसलयसमूहेन सञ्छादिता आच्छादिता। इह '......कपोलकोमलच्छविना' इत्यत्र लुप्तोपमा, '......रञ्जितेनेव' इत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा, अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

शुकेति। शुककुलेन कीरपक्षिसमुदायेन दलितानां चञ्चुपुटेन विदारितानां दाडिमीफलानां द्रवैः रसैः आर्द्रीकृतानि आर्द्रत्वमुपनीतानि तलानि अधोवर्त्तिस्थानानि येषां तैः। इत आरभ्य तृतीयान्तपदानि अग्रिमस्थ 'लतामंडपैः' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि। अतिचपलैः अत्यन्तचञ्चलैः कपिकुलैः वानरसमूहैः कम्पितेभ्यः आन्दोलितेभ्यः कम्पिल्लेभ्य कोशफलवृक्षेभ्यः च्युतानि पतितानि पल्लवफलानां किसलयफलानां शकलानि खण्डानि येषु तैः तथोक्तैः। अनवरतनिपतितानां निरन्तरप्रच्युतानां कुसुमानां पुष्पाणां रेणुभिः परागधूलिभिः पांशुलैः सरजस्कैः। पथिकजनैः पान्थपुरुषैः रचिता उपवेशनार्थं निर्मिता लवङ्गपल्लवानां लवङ्गवृक्षविशेषकिसलयानां संस्तरा आसनानि येषु तैः तथोक्तैः। अतिकठोरा अत्यन्तकठिनाः परिपक्वा इत्यर्थः ये नारिकेला लाङ्गलीवृक्षाः, केतक्यः क्रकचपर्णाः, पत्रविहीनाः कण्टकसहिता वृक्षविशेषाः वकुलाश्च तैः परिगताः परितो व्याप्ताः प्रान्ताः पर्यन्तप्रदेशा येषां तैः तथोक्तैः, ताम्बूलीलताभिः नागवल्लीव्रततीभिः अवनद्धं संबद्धं यत् पूगखण्डं क्रमुकवनं तेन मण्डितैः अलंकृतैः, अत एव वनलक्ष्म्या विपिनश्रियः

वृक्षोंका सम्वर्द्धन हुआ है। वृक्षोंकी चोटियोंपर अत्यन्त प्रस्फुटित श्वेत फूलोंके गुच्छे लग रहे हैं, जो ऊँचाई अधिक होनेके कारण नक्षत्रमण्डलके समान देख पड़ते हैं। वहाँ मद-मत्त कुरर (मत्स्यादन) पक्षी मिर्चके पत्तोंको दंशन करते (कुतरते) हैं, हाथीके बच्चोंकी सूँड़ोंसे मसले गए तमाल (तम्बाकू) के पत्तोंकी सुगन्ध फैल रही है और मदिराके मदसे रक्तवर्ण हुए केरलदेशीय (मलाबार) रमणियोंके गालके समान कोमल कान्तिवाले पत्तोंसे वहाँकी भूमि ढकी हुई है। वे पत्ते भ्रमण करती हुई वन-देवियोंके पैरोंकी महावरसे रँगे हुए-से प्रतीत होते हैं। वह भूमि तोतोंसे काटे गये अनारोंके रससे आर्द्र रहती है तथा उछलते-कूदते बन्दरोंसे हिलाए गए कोश-फल वृक्षोंमेंसे गिरे पत्तों और फलोंके कारण रंगबिरंगी दिखाई देती है। निरन्तर उड़ती फूलोंकी रजसे वहाँके लतामण्डप मलिन हो गए हैं, वे वनलक्ष्मीके निवास करनेके महलोंके समान प्रतीत होते हैं। उनमें सुपारीके वृक्षोंपर पानकी बेलें चढ़ रही हैं। पथिकोंने लौंगके पत्तोंके बिछौने बिछाये हैं और उनके सिरे पर अधिक पुराने नारियल, केतकी, करीर और वकुल लगे हुए हैं।

१. प्रदेशसंलग्नम्। २. 'छविना' इति पाठः क्वचिन्नास्ति। ३. पल्लवप्रचयेन। ४. कम्पित इत्यपि पाठः क्वचिन्नोपलभ्यते। ५. कत्तोल, कङ्कोल। ६. शवलैः। ७. धूलीलतावनद्धकुसुम। ८ स्रस्तरैः। ९. नालिकेर, करिकेसर। १०. 'करीरवकुल' इति पाठः क्वचित्पुस्तके नास्ति।

वासभवनैरिव[1] विराजिता[2] लतामण्डपैः, उन्मद-मातङ्ग-कपोलस्थल-गलित[3]-सलिल[4]-सिक्तेनेव निरन्तरमेला[5]लतावनेन मदगन्धिनान्धकारिता, नख-मुख-लग्नेभ-कुम्भ-मुक्ताफल-लुब्धैः शबरसेनापतिभिरभिहन्यमानकेशरिशता,[6] प्रेताधिपनगरीव सदा-सन्निहितमृत्यु-भीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणासनारोपित[7]शिलीमुखा विमुक्त[8]-सिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च, कर्णीसुतकथेव सन्निहित-विपुलाचला शशोपगता च, कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव प्रनृत्यन्नीलकण्ठा[9]

वासभवनैरिव वसतिगृहैरिव लतामण्डपैः वल्लिजनाश्रयैः विराजिता उपशोभमाना ।

इह दाडिमीफलद्रवेण मध्यभागस्य आर्द्रीकरणसम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्त्यलङ्कारः, 'वनलक्ष्मीवासभवनैरिव' इत्यत्र जात्युत्प्रेक्षा च, द्वयोरपि परस्परनैरपेक्ष्येण स्थितत्वात्संसृष्टिः ।

उन्मत्तेति । उन्मदानां मदोन्मत्तानां मातङ्गानां गजानां कपोलस्थलेभ्यो गल्लप्रदेशेभ्यो गलितैः च्युतैः सलिलैः मदजलैः सिक्तेनेव सिञ्चितेनेव सता, अत एव मदगन्धिना गजदानजलगन्ध इव गन्धो यस्मिन् तेन तथोक्तेन, एलालतानां चन्द्रबालावल्लीनां वनेन विपिनेन निरन्तरं सान्द्रं यथा स्यात्तथा अन्धकारिता आच्छादितेत्यर्थः । इह क्रियोत्प्रेक्षा ।

नखेति । नखानां पुनर्भूणां मुखेषु अग्रेषु लग्नानि आसक्तानि यानि इभकुम्भमुक्ताफलानि सिंहविदारितगजमस्तकमांसपिण्डोद्भवानि मौक्तिकानि तेषु लुब्धैः लोलुपैः शबराणां किरातानां सेनापतिभिः सैन्याध्यक्षैः अभिहन्यमानं व्यापाद्यमानं केशरिशतं मृगेन्द्रमण्डलं यस्यां सा तथोक्ता ।

प्रेतेति । प्रेताधिपस्य यमराजस्य नगरीव संयमिनीपत्तनमिव, सदा सर्वस्मिन् काले सन्निहितः समीपवर्त्ती मृत्युः यमः तेन भीषणा भयदायिनी, पक्षे—व्याघ्रादिहिंसकवर्गैराक्रमणसम्भवात् भीषणा भयकारिणी, महिषो यमस्य वाहनं तेन अधिष्ठिता सहिता, पक्षे—महिषैः वन्यसैरिभैः अधिष्ठिता व्याप्ता च 'लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः । इतः प्रभृति 'क्वचिद्गृहीतव्रतेव' इत्यन्तं यावत् साधारणधर्मादिसद्भावात्पूर्णोपमालङ्कारः ।

समरोद्यतेति । समरे युद्धे उद्यता प्रवृत्ता या पताकिनी सेना तद्वदिव बाणासनेषु चापेषु आरोपिताः संस्थापिताः शिलीमुखा लोहखण्डा शरा इत्यर्थः यया सा तथोक्ता, यथा विमुक्तः परित्यक्तः सुभटैर्विहित इत्यर्थः सिंहनादः क्ष्वेडा इव नादो यया सा, पक्षे—बाणासु नीलीझिण्टीषु असनेषु पीतशालेषु च तरुषु आरोपिताः पुष्पसौगन्ध्यात् स्थापिताः शिलीमुखा भ्रमरा यया सा तथोक्ता ।

कात्यायनीति । कात्यायनी सिंहवाहिनी दुर्गेव, प्रचलितेन हननाय चञ्चलीभूतेन खड्गेन असिना भीषणा भयानका, तथा रक्तचन्दनानुलेपनेन अलङ्कृता भूषिता इयमपि प्रचलितैः इतस्ततः सेनाप्रकर्षेण सञ्चरद्भिः खड्गैः गण्डकैः भीषणा तथा रक्तचन्दनैः तत्संज्ञकतरुभिः अलङ्कृतेत्युभयोः साम्यम् ।

कर्णीति । कर्णीसुतः चौर्यशास्त्रप्रवर्तकः क्षत्रियविशेषः तस्य कथा वृत्तान्तः तद्वदिव, सन्निहितौ निक-

उस वनमें इलायचीकी लताओंसे अन्धकार छा रहा है और मदके समान सुगन्ध निकलनेके कारण ऐसा प्रतीत होता है मानो वह मतवाले हाथियोंके गंडस्थलमेंसे झरते हुए मद-जलसे सिक्त किया गया हो । सिंहोंके नखोंके अग्रभागमें हाथियोंके कुम्भ-स्थलमेंसे निःसृत मोतियोंके दाने लगे रहते हैं । उनके लोभसे व्याध (भील) सेनापति वहाँ सिंहोंका शिकार करते हैं । यमराजकी नगरी जिस प्रकार सर्वदा यम और महिषसे भय देनेवाली है उसी प्रकार विन्ध्याटवी सर्प, सिंह आदि हिंसक जन्तुओंसे अधिष्ठित हो भय दे रही है । संग्राममें जिस प्रकार योद्धाओंके धनुषों पर तीर चढ़े रहते हैं और उनके भीषण नाद होते हैं, विन्ध्याटवीमें भी उसी प्रकार बाण तथा आसन वृक्षों पर भ्रमर बैठे रहते हैं और सिंहोंकी भीषण गर्जना होती रहती है । दुर्गादेवी जिस प्रकार तलवार चलानेके कारण भयङ्कर लगती है और रक्तचन्दनके अनुलेपसे भूषित रहती है वह भी उसी प्रकार खड्गों (गेंडे) के सञ्चारसे भीषण-मूर्त्ति एवं रक्तचन्दन वृक्षसे सुशोभित है । कर्णीसुत (चौर्यशास्त्रके प्रवर्त्तक क्षत्रिय) की कथा जिस प्रकार 'विपुल' और 'अचल' नामके दो मित्रोंसे एवं 'शश' नामक प्रधानमन्त्रीसे युक्त थी उसी प्रकार यह विपुलाचल = विशाल-पर्वत एवं शश = खरगोशसे युक्त है । महाप्रलयकालकी सन्ध्या जिस प्रकार रौद्रमूर्ति

१. वासभुवनैरिव । २ विराजितमण्डपैः । ३. स्रवण, प्रस्रवण, सलिलप्रस्रवण । ४. मदसलिल । ५. निरन्तरमेखला । ६. ...सेनेव । ७. समारोपित । ८. विविक्त । ९. प्रनृत्तनीलकण्ठा ।

पल्लवारुणा च, अमृतमथनवेलेव श्रीद्रुमोपशोभिता वारुणी-परिगता च, प्रावृडिव घनश्यामला अनेकशतह्रदालङ्कृता च, चन्द्रमूर्त्तिरिव सततमृक्षसार्थानुगता हरिणाध्यासिता च, राज्यस्थितिरिव चमरमृग-बालव्यजनोपशोभिता समदगजघटा-परिपालिता च, गिरितनयेव

टवर्त्तिनौ विपुलाचलौ तत्संज्ञकौ सखायौ यस्यां सा तादृशी तथा शशेन शशसंज्ञकेन सचिवेन उपगता विशिष्टा, तथा च बृहत्कथायाम्—

'कर्णीसुतः करटकः स्तेयशास्त्रप्रवर्तकः। तस्य ख्यातौ सखायौ द्वौ विपुलाचलसंज्ञितौ॥
शशो मन्त्रिवरस्तस्य'..............'

पक्षे—सन्निहिताः समीपवर्त्तिनः विपुला विस्तृताः अचलाः पर्वता यस्यां सा तादृशी, तथा शशैर्मृदुलोमकैः लोध्रवृक्षैर्वा उपगता सहितेत्युभयोः साम्यम्। 'शशो लोध्रे नृभेदे च पशौ' इत्यनेकार्थः।

कल्पान्तेति। कल्पान्ते युगान्ते प्रदोषो रजनीमुखं तस्य या सन्ध्या सायं समयस्तद्वदिव, प्रनृत्यन् संसारसंहारप्रमोदेन नटन् नीलकण्ठो महादेवो यस्यां सा तथोक्ता तथा पल्लवः किसलयस्तद्वत् अरुणा रक्ता, पक्षे—प्रनृत्यन्तः मदेन नटन्तो नीलकण्ठा मयूरा यस्यां सा तथा पल्लवैः अनेकविधलताकिसलयैः अरुण उपरि रक्तरूपा।

अमृतेति। अमृताय सुधायै 'पीयूषममृतं सुधा' इत्यमरः, यन्मन्थनं क्षीरसमुद्रस्य विलोडनं तस्य वेला समय इव, श्रिया लक्ष्म्या द्रुमेण कल्पद्रुमेण 'नामैकदेशे नामग्रहणं' बोध्यम्, उपशोभिता उपलक्षिता, वारुणीं सुरां परिगता सहिता, तस्या अपि तत्समये ततो जातत्वात्, पक्षे—श्रीद्रुमैः बिल्ववृक्षैः उपशोभिता, वारुणीं पश्चिमां दिशं परिगता सामस्त्येन प्राप्ता भारतवर्षस्य पश्चिमप्रान्तपर्यन्तं व्याप्तत्वात्।

प्रावृडिति। प्रावृट् वर्षासमय इव, घनैर्मेघैः श्यामला कृष्णवर्णा तथा अनेकाभिः शतह्रदाभिः तडिद्भिः अलङ्कृता मण्डिता, पक्षे—घनाः वृक्षादिभिः सान्द्रा चासौ अतएव श्यामला अत्यन्तकृष्णा तथा अनेका भिन्नाभिन्नस्वरूपाः शतह्रदा जलवालिकाः ताभिः अलङ्कृता।

चन्द्रेति। चन्द्रस्य मूर्त्तिः शरीरमिव, सततं निरन्तरम् ऋक्षाणि ताराः तेषां सार्थः समूहः तेन अनुगता परिवेष्टिता, हरिणेन मृगचिह्नेन अध्यासिता आश्रिता। पक्षे—सततम् ऋक्षा भल्लूकाः तेषां सार्थः समुदायः तेन अनुगता व्याप्ता, हरिणैर्मृगैः अध्यासिता।

राज्येति। राज्यस्थितिः राज्यमर्यादा इव, चमरमृगाणां बालाः चामराणि व्यजनानि तालवृन्तानि च तैरुपशोभिता, तथा समदाभिः मदेन सह वर्त्तमानाभिः गजघटाभिः करिमण्डलैः परिपालिता परिरक्षिता। पक्षे—चमरमृगाणां बाला लोमान्येव व्यजनानि तैः तथोक्तैः 'व्यजनं तालवृन्तकम्' इत्यमरः, अन्यत्पूर्ववदेव।

गिरीति। गिरितनया हिमाचलसुता पार्वती तद्वदिव, स्थाणुना रुद्रेण 'स्थाणू रुद्र उपापतिः' इत्यमरः, सङ्गता मिलिता, तथा मृगपतिना वाहनीभूतसिंहेन सेविता वाहनेन शुश्रूषिता, पक्षे—स्थाणुभिः शाखापत्रादिशून्यतरुभिः सङ्गता, तथा मृगपतिभिः सिंहैः सेविता आश्रिता।

नीलकंठ = महादेवके नृत्यसे युक्त एवं पल्लवके समान रक्तवर्ण समन्वित होती है उसी प्रकार वह नीलकण्ठ = मयूरके नृत्यसे युक्त एवं पल्लवोंसे रक्त है। अमृत-मन्थनकी वेला = समय जिस प्रकार लक्ष्मी और कल्पवृक्षोंसे शोभित एवं मद्यसे युक्त होती है, वह भी उसी प्रकार वारुणी = पश्चिमादिक् पर्यन्त लगातार विल्ववृक्षोंसे उपशोभित है। वर्षा जिस प्रकार मेघोंसे श्याम एवं बिजलीकी चमकसे युक्त होती है वह भी उसी प्रकार सघन वृक्षोंसे श्याम एवं असंख्य तालाबोंसे युक्त है। चन्द्रमूर्ति जिस प्रकार नक्षत्रोंसे परिवेष्ठित एवं मृगलाञ्छनसे युक्त है उसी प्रकार वह अधिकतर ऋक्ष = रीछ और मृगसे समन्वित है। राज्यस्थिति जिस प्रकर चमर मृगोंके बालोंकी बनी चौरियोंसे युक्त एवं मतवाले हाथियोंसे युक्त होती है, वह भी उसी प्रकार चमर मृगोंके बालरूपी पंखेसे एवं मतवाले हाथियोंसे युक्त है। पार्वती जिस प्रकार स्थाणु = महादेवसे संगत = सम्मिलित एवं मृगपति =

---

१. वारुण।

स्थाणुसङ्गता मृगपतिसेविता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च, कामिनीव चन्दन-मृगमदपरिमलवाहिनी रुचिरागुरु-तिलकभूषिता च, सोत्कण्ठेव विविधपल्लवानिलवीजिता समदना च, बालग्रीवेव व्याघ्रनखपङ्क्तिमण्डिता गण्डकाभरणा च, पानभूमिरिव प्रकटित-मधुकोश-शता प्रकीर्णविविधकुसुमा च, क्वचित् प्रलयवेलेव महावराह-दंष्ट्रा-समुत्खात-

जानकीति। जानकी मैथिलात्मजा सीता तद्वदिव, प्रसूतौ गर्भाद्विमुक्तौ कुशलवौ तन्नामकसुतौ यया सा तथोक्ता, निशाचरेण लङ्काधिपतिना रावणेन परिगृहीता पञ्चवटीतोऽपहृता, पक्षे—प्रसूता जनिताः कुशानां बर्हिणां लवा अङ्कुरा यस्यां सा तथोक्ता, निशाचरः उलूकादिपक्षिभिः परिगृहीता आश्रिता।

कामिनीति। कामिनी शृङ्गारनायिका तद्वदिव, चन्दनानुलेपन-मृगमदानुलेपनाभ्यां परिमलं सौगन्ध्यं वहति धारयतीत्येवंशीला, तथा रुचिरागुरुणा सुन्दरकाकतुण्डसौगन्ध्येन तिलकेन भालपट्टादौ सिन्दूरादिपुण्ड्रकेण भूषिता अलङ्कृता, पक्षे—चन्दनानां वृक्षाणां मृगमदानां कस्तूरीणाञ्च सम्बन्धात् परिमलं सौगन्ध्यं वहति खनित्वादाधारत्वाच्च दधातीत्येवं शीला, तथा रुचिराभ्यां मनोहराभ्याम् अगुरुतिलकाभ्याम् आमोदितरुविशेषपुष्पतरुविशेषाभ्यां भूषिता शोभिता।

सोत्कण्ठेति। सोत्कण्ठा कान्तप्राप्तिसमुत्सुका नायिका तद्वदिव, विविधानाम् अनेकप्रकाराणां पल्लवानां किसलयानाम् अनिलैः पवनैः वीजिता सहचरीभिः मदनव्यथापनोदाय स्पर्शिता, पक्षे—स्वभावतः स्पृष्टा च, मदनेन कामेन मदनैः तदाख्यतरुविशेषैश्च सह वर्तमाना संयुक्ता।

बालेति। बालाः स्तनन्धयाः तेषां ग्रीवा गलदेशाः तद्वदिव, व्याघ्राः शार्दूलाः तेषां नखाः पुनर्भवः तेषां पंक्तिभिः श्रेणिभिः मण्डिता भूषिता 'वीथ्यालिरावलिः पङ्क्तिः श्रेणी लेखास्तु राजयः' इत्यमरः, बालानां गलदेशेषु दैवोत्पातरक्षार्थं व्याघ्रनखपङ्क्त्यो बध्यन्त इति सम्प्रदायः; तथा च श्रीमद्भागवते—'शार्दूलदिव्यनखभूषणभूषिताय नन्दात्मजाय' इति। गण्डकः तत्तद्देशविशेषविख्यातो गण्डस्थलपर्यन्तवर्तिभूषणविशेष आभरणम् अलङ्करणं यस्यां सा, पक्षे—व्याघ्रनखपङ्क्तिभिः पर्यटनसमयोत्पन्ननखचिह्नावलीभिः मण्डिता, गण्डका वार्ध्रीणसाः त एव आभरणानि भूषणानि यस्याः सा तथोक्ता।

पानेति। पानभूमिः मद्यपानार्थस्थानं तद्वदिव, प्रकटितं पानाय द्योतितं मधु मद्यं तस्य कोशकानि पानपात्राणि यस्यां सा तथोक्ता, तथा प्रकीर्णानि पर्यस्तानि विविधानि अनेकप्रकाराणि कुसुमानि पुष्पाणि यस्यां सा, पक्षे—प्रकटितं प्रकाशितं मधूनां पुष्परसानां माक्षिकाणामित्यर्थः कोशानां तदाश्रयणाञ्च शतं यस्यां सा, अन्यत्तुल्यमेव।

क्वचिदिति। क्वचित् कस्मिंश्चित्प्रदेशे एवमग्रेऽपि। प्रलयः सर्वत्र जलमयः तस्य वेला अवसरः तद्वदिव, महावराहेन परमेश्वरतृतीयावतारेण दंष्ट्रया दन्तेन समुत्खातं जलादूर्ध्वमानीतं धरणिमण्डलं समस्तपृथ्वीमण्डलं यस्यां सा तथोक्ता, महावराहैः पृथुलशूकरैः दंष्ट्राभिः दशनैः समुत्खातं विदारितं धरणिमण्डलं भूप्रदेशो यस्याः सा 'वराहः शूकरो घृष्टिः' इत्यमरः।

सिंह वाहनसे सेवित है, वह भी उसी प्रकार स्थाणु=शाखापत्रादिरहित वृक्षोंसे एवं सिंहोंसे युक्त है। सीताने जिस प्रकार कुश और लव दो पुत्रोंसे युक्त एवं राक्षस—रावण-परिगृहीत हुई वह भी उसी प्रकार कुशके पौदे एवं निशाचर=उलूकसे युक्त है। कामिनी जिस प्रकार चन्दन और कस्तूरीके लेपसे सुगन्धित एवं मलयागरुके तिलकसे अलंकृत रहती है वह भी उसी प्रकार चन्दनवृक्ष, कस्तूरीसे सुगन्धित एवं मनोहर अगरु और तिलक वृक्षसे अलंकृत है। उत्कण्ठिता कामातुरा नायिका जिस प्रकार सखियों द्वारा अनेक प्रकारके शीतल पल्लववायुसे सञ्चालित होती रहती है, वह भी उसी प्रकार मदन=दमनक, नामक वृक्षसे युक्त अनेकविध पल्लवोंसे शीतलता युक्त हो रही है। बालकका गला जिस प्रकार बाघके नख और 'गण्डक' नामक आभूषणसे सुशोभित रहता है वह भी उसी प्रकार बाघके नखों और गैंड़ोंसे सुशोभित है। मद्य-पानभूमिमें जिस प्रकार सैकड़ों मधुकोश—शराव पीनेके गिलास रक्खे रहते हैं और भाँति-भाँतिके पुष्प फैले रहते हैं, उसी प्रकार वहाँ भी मधुकोश=मधुमक्खियोंके छत्ते और अनेक प्रकारके पुष्प बिछे हैं। प्रलय-वेलामें जिस प्रकार महावराह (शूकरा) वतारकी दंष्ट्रासे पृथ्वी समुत्खात=उठाई गयी थी उसी प्रकार कहीं-कहीं पर वहाँ बड़े-बड़े शूकरोंकी दंष्ट्रासे पृथ्वी खोदी

१. पतिगृहीता। २. कृष्णागुरु...। ३. सोत्कण्ठवनितेव। ४. पदपंक्तिमण्डिता। ५. अपान। ६. कोशकशता।

धरणीमण्डला, क्वचिद्दशमुखनगरीव चटुलवानरवृन्द-भज्यमान-तुङ्ग-शालाकुला, क्वचिदचिर-निर्वृत्त-विवाहभूमिरिव हरित-कुश-समित्-कुसुम-शमी-पलाश-शोभिता, क्वचिदुन्मत्त-मृगपति-नाद-भीतेव कण्टकिता, क्वचिन्मत्तेव कोकिलकुल-कल-प्रलापिनी, क्वचिदुन्मत्तेव वायुवेग-कृत-तालशब्दा, क्वचिद्विधवेव उन्मुक्ततालपत्रा, क्वचित् समरभूमिरिव शर-शत-निचिता, क्वचिदमरपति-तनुरिव नेत्रसहस्र-सङ्कुला, क्वचिन्नारायणमूर्त्तिरिव तमालनीला, क्वचित् पार्थ-

प्रलयसमये परमेश्वरो हि वराहमूर्तिमाश्रित्य सलिलमग्नां भुवमूर्द्ध्वमानीतवानिति पौराणिकी वार्ता।

क्वचिदिति। दशमुखस्य रावणस्य नगरी लङ्कापुरी तद्वदिव, चटुलाः चञ्चला ये वानराः शाखामृगाः तेषां वृन्देन समूहेन भज्यमानाः त्रोट्यमानाः तुङ्गा उन्नता याः शाला भवनैकदेशाः ताभिः आकुला व्याप्ता, पक्षे—चटुलवानरवृन्देन भज्यमानास्तुङ्गा उच्चशाला भवनानि ताभिः आकुला व्याकुला। रामरावणयोः संग्रामकाले कपिवृन्देन लङ्काया भवनसमूहो नाशित आसीदिति रामायणीया कथा।

क्वचिदिति। अचिरनिर्वृत्तः तत्कालनिष्पन्नो यो विवाहः परिणयः तस्य भूमिः स्थानं तद्वदिव, हरिता नीलवर्णा ये कुशा दर्भाः, समिधो यज्ञीयकाष्ठानि, कुसुमानि पुष्पाणि, शमी शिवा, पलाशा ब्रह्मवृक्षाः तैः शोभिता भूषिता, पक्षेऽपि तुल्यमेव।

क्वचिदिति। उन्मत्तो मदमत्तो यो मृगपतिः सिंहः तस्य नादेन गर्जितेन भीतेव त्रस्ता सुन्दरीव, कण्टको रोमाञ्चः सञ्जातोऽस्या इति कण्टकिता, पक्षे—कण्टकयुक्ता च।

क्वचिदिति। मत्ता मधुपानेनोन्मत्ता नायिकेव, कोकिलकुलवत् पिकसमूहवत् कलम् अस्फुटमधुरं प्रलपितुम् उन्मत्तता्वशात् अनर्थकं वक्तुं शीलं यस्याः सा, पक्षे—कोकिलकुलस्य पिकमण्डलस्य कलप्रलापोऽस्फुटमञ्जुलध्वनिरस्या अस्तीति सा तादृशी।

क्वचिदिति। उन्मत्ता उन्मादवातव्याधियुक्ता स्त्रीव, वायुवेगेन व्याधिरूपपवनबाहुल्येन कृता विहिताः तालशब्दाः करतलध्वनयो यया सा, पक्षे—वायुवेगेन पवनाधिक्येन कृताः तालानां तालतरूणां शब्दा यस्यां सा तादृशी।

क्वचिदिति। विगतो विनष्टो धवः पतिर्यस्याः सा सुन्दरीव, उन्मुक्तं स्वामिमरणात् परित्यक्तं तालपत्रं ताटङ्कः कर्णाभरणविशेषो यया सा तादृशी पक्षे—उन्मुक्तानि युगान्तपवनाधिक्येन पातितानि तालानां तालतरूणां पत्राणि पर्णानि यस्यां सा तादृशी 'पत्रं पलाशं छदनं दलः पर्णं छदः पुमान्' इत्यमरः।

क्वचिदिति। समरो युद्धस्तस्य भूमिः स्थानमिव, शराणां मुञ्जदण्डानां बाणानाञ्च शतेन समुदायेन निचिता व्याप्ता।

क्वचिदिति। अमराणां देवानाम् 'अमरा निर्जरा देवा' इत्यमरः, पतिः प्रभुः इन्द्रः तस्य तनुः शरीरमिव, नेत्राणां लोचनानां तरुमूलानाञ्च यद्वा—जटानां सहस्रं तेन सङ्कुला व्याप्ता। 'जटांशुकयोर्नेत्रम्' इत्यमरः, 'नेत्रं मन्थगुणे वस्त्रभेदे मूले द्रुमस्य च' इति मेदिनी।

क्वचिदिति। नारायणस्य श्रीकृष्णस्य मूर्त्तिः शरीरमिव, तमालं तापिच्छं तद्वन्नीला श्यामवर्णा, पक्षे—तमालैः तन्नामकवृक्षैः नीला।

गई है। रावणकी नगरीमें जिस प्रकार बन्दरोंके झुण्डसे शिखरोंसे युक्त शाल=शहर पनाह तोड़े गये उसी प्रकार वहाँ कहीं-कहीं कूदते फाँदते बन्दरोंके झुण्डसे तोड़े गये शिखरोंसे युक्त शालवृक्ष व्याप्त हैं। थोड़ी ही देर पहले मानो विवाह कार्य समाप्त हुआ हो इस प्रकार वह कहीं-कहीं हरे कुश, समिध (हवनकी लकड़ी), फूल, शमी और पलाशसे सुशोभित है। उन्मत्त सिंहके नादसे मानो भीत हुई कामिनीके समान वह कहीं-कहीं कण्टकाकीर्ण (रोमाञ्चित—काँटोंसे युक्त) है। मद-मत्त स्त्री जैसे कोकिलके समान अस्पष्ट और मधुर प्रलाप करती है वैसे कहीं-कहीं वनमें कोकिलगण अव्यक्त एवं मधुर शब्द कर रहे हैं। उन्मत्त स्त्री जैसे बातके जोरसे तालियाँ बजाती है वैसे ही कहीं-कहीं वनमें हवाके जोरसे तालवृक्षोंका शब्द होता है। विधवा स्त्री जैसे कर्णभूषण (झुमका, ढेला) आदि नहीं पहनती वैसे कहीं-कहीं वनमें पत्तोंसे रहित तालवृक्ष हैं। रण-भूमि जैसे बाणों (तीरों) से परिव्याप्त रहती है वैसे कहीं-कहीं वह सैकड़ों शरों (शरपत, 'शरकण्डा' तृणों) से निरन्तर व्याप्त है। देवेन्द्रका शरीर जैसे सहस्रनेत्रोंसे युक्त है, वहाँ किसी-किसी स्थानमें वैसे हजारों वृक्ष-मूल (जड़ें)

२. '''शृङ्ग'''उत्तुङ्ग। ३. उद्वृत्त'''। ४. क्वापि 'कल' इति पाठो नास्ति।

रथपताकेव वानरोक्रान्ता, क्वचिदवनिपति-द्वारभूमिरिव वेत्रलताशतदुष्प्रवेशा, क्वचिद्विराट-नगरीव कीचकशतावृता, क्वचिदम्बरश्रीरिव व्याधानुगम्यमान-तरल-तारक-मृगा, क्वचिद्-गृहीतव्रतेव दर्भ-चीर-जटा-वल्कल-धारिणी, अपरिमित-बहुलपत्रसञ्चयाऽपि सप्तपर्णभूषिता, क्रूरसत्त्वाऽपि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम ।

क्वचिदिति । पार्थोऽर्जुनः तस्य रथस्य पताका वैजयन्तीव 'पताका वैजयन्ती स्यात्' इत्यमरः, वानरेण हनूमता वानरैः शाखामृगैश्च आक्रान्ता अधिष्ठिता ।

क्वचिदिति । अवनिः पृथ्वी तस्याः पतिः स्वामी राजेत्यर्थः तस्य द्वारभूमिरिव, वेत्राणि वेतसा लता वल्लयश्च तासां शतं समूहं तेन द्वारपालहस्तगतवेत्रयष्टिसमूहेनेत्यर्थः दुष्प्रवेशा दुःखेन प्रवेष्टुं योग्या, पक्षेऽपि तुल्यम् ।

क्वचिदिति । विराटस्य मत्स्याधिपतेः नगरी पुरीव, कीचकशतेन स्वप्रियबान्धवकीचकसमूहेन राजश्यालकेन, पक्षे—कीचकाः सरन्ध्रवेणवः छिद्रेषु वायुप्रवेशेन शब्दायमानवंशगणा इत्यर्थः, तैः आवृता व्याप्ता 'वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः' इत्यमरः ।

क्वचिदिति । अम्बरम् आकाशं तस्य श्रीर्लक्ष्मीरिव, व्याधेन व्याधरूपधारिणा शिवेन अनुगम्यमानम् अनुव्रज्यमानम् अत एव तरलं त्रासेन चलं तारकमृगं मृगशिरोनक्षत्रं यस्यां सा तथोक्ता, पक्षे—व्याधैः भिल्लैः अनुगम्यमानाः, अत एव तरला भयेन लोलाश्चञ्चलाः तारका लोचनकनीनिका येषां ते तथोक्ता मृगा हरिणा यस्यां सा तादृशी । पुरा प्रजापतिः परमसुन्दरीं स्वतनयां सन्ध्यां निरीक्ष्य कामान्धस्तामन्वधावत्, स्वधर्मं रिरक्षयिषुः सा पुत्री तु हरिणीस्वरूपमाश्रित्य पलायन्ती महादेवशरणं गतवती, प्रजापतिरपि हरिणस्वरूपमाश्रित्य तत्राप्यनुजगाम, महादेवस्तु तन्निरीक्ष्य प्रजापतेः शिरः कर्त्तनाय स्वधनुषा बाणं मुक्तवान्, तदा तु प्रजापतिरत्यन्तं लज्जितस्त्रस्तश्च सन् मृगशिरो नक्षत्रे प्रविष्टवान् शिवस्य बाणोऽपि आर्द्रानक्षत्रस्वरूपेण तदन्वतिष्ठदिति शिवपुराणीया कथाऽनुसन्धेया ।

क्वचिदिति । गृहीतं स्वीकृतं व्रतं नियमो यया सैवंविधा सुन्दरीव, दर्भाः कुशाः, चीराणि जीर्णवसनखण्डानि जटाः संहतकेशाः 'शिफाजटे संहतौ कचौ' इत्यनेकार्थः, वल्कलानि च परिधेयानि परिधारयितुं शीलं यस्याः सा तथोक्ता, पक्षे—दर्भाः कुशाः, चीराः तृणविशेषाः, जटाः मूलानि वल्कलानि च धारयितुं शीलं यस्याः सा तादृशी 'मूले लग्नकचे जटा' इत्यमरः ।

अपरीति । अपरिमितानि सङ्ख्याक्रान्तानि बहलानि सघनानि पत्राणि दलानि तेषां सञ्चयः समूहो यस्यां सा तथोक्ताऽपि सप्तभिः पर्णैः भूषितेति विरोधः, सप्तपर्णसंज्ञकतरुभिर्विराजितेति तत्परिहारः । यत्र 'विरोध इव भासेत विरोधोऽसौ' इति लक्षणेन विरोधाभासोऽलङ्कारः । एवमग्रेऽपि । क्रूरसत्त्वेति । क्रूरं दुष्टं सत्त्वं हृदयं यस्याः सा तथोक्तापि मुनिजनसेवितेति विरोधः 'सत्त्वं द्रव्ये गुणे चित्ते व्यवसायस्वभावयोः' इत्यनेकार्थः, क्रूराः हिंस्राः सत्त्वा व्याघ्रादिप्राणिनो यस्यां सा तादृशीति तत्परिहारः । तथा पुष्पवती रजोधर्मवत्यपि पवित्रेति विरोधः, पुष्पाणि प्रसूनानि अस्याः सन्तीति तत्परिहारः ।

विद्यमान हैं। विष्णुकी मूर्ति जैसे तमालवृक्षके समान श्याम वर्ण है, वहाँ किसी-किसी स्थानमें तमालवृक्षसे श्याम वर्ण है । अर्जुनकी पताकामें जैसे हनूमान् विराजमान थे, वहाँ किसी-किसी स्थानमें वैसे वानरगण विद्यमान हैं । राजद्वारकी ड्योढ़ी पर जैसे द्वारपाल हाथोंमें बेंतकी छड़ी रखते हैं, वहाँ कहीं-कहीं वैसे बेंत लगे हुए हैं । विराट राजाकी नगरीमें जैसे उसका साला कीचक था, वहाँ किसी-किसी स्थानमें सैकड़ों कीचक (सच्छिद्र वंशसमूह) हैं । आकाशलक्ष्मीके समान वहाँ कहीं-कहीं तरल, तारक मृगके पीछे व्याध (बहेलिया) फिरता है । व्रत करने वाली स्त्री जैसे दर्भ, चीर, लटें और वल्कल (पेड़का छिलका) धारण करती है, वहाँ कहीं-कहीं वैसे दर्भ, घास, जड़ें और वल्कल विद्यमान हैं । असंख्य काले पत्ते होने पर भी वह सप्तपत्रों (सात पत्तों, सप्तपत्रवृक्षों) से शोभित है । क्रूर-सत्त्व (क्रूर प्राणियों, क्रूर-घातक स्वभाववालों) से युक्त होने पर भी मुनि-जन सेवित है और पुष्पवती (रजस्वला, फूलोंसे युक्त) होने पर भी वह पवित्र मानी जाती है ।

---

१. कम्पाक्रान्ता, कप्याक्रान्ता । २. अमरपति । ३. कीचकावृता, कीचकाकुला । ४. बहल । ५. सप्तपर्णोपभूषिता ।

तस्याञ्च दण्डकारण्यान्तःपाति सकलभुवनविख्यातम् उत्पत्तिक्षेत्रमिव भगवतो धर्मस्य, सुरपति-प्रार्थना-पीत-सकल-सागर-सलिलस्य मेरु-मत्सरादम्बरतल-प्रसारित-शिरः-सहस्रेण दिवसकर-रथगमन-पथमपनेतुमभ्युद्यतेन अवगणित-सकलसुर-वचसा विन्ध्यगिरिणाऽप्यनुल्लङ्घिताज्ञस्य, जठरानल-जीर्ण-वातापिदानवस्य, सुरासुर-मुकुट-मकरपत्र-कोटि-चुम्बि-

---

तस्याञ्चेति। तस्यां विन्ध्याटव्याम् अगस्त्यस्य कुम्भयोनेः आश्रमपदं तपोभूमिः आसीदिति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। इह प्रथमान्तानि पदानि आश्रमस्य विशेषणानि। दण्डकारण्यस्य दण्डकसंज्ञकवनस्य अन्तःपाति तन्मध्यवर्ति। अत्रेदमितिवृत्तम्—सूर्यवंशीयः कश्चन दण्डको नाम भूपतिः शुक्राचार्यगुरोः अरजाख्यां पुत्रीं बलात्कारेण धर्षणं कृतवान्, तच्छ्रुत्वातीव कुपितः शुक्राचार्यस्तं नृपमभिशशाप—'त्वं विनङ्क्ष्यसि, अद्यारभ्य सप्तदिनाभ्यन्तरे चेदं राज्यं महावनतया परिणतं यास्यती'ति। तच्च विन्ध्याचलशिखरप्रदेशस्थं राज्यं दण्डकारण्यं सञ्जातमिति रामायणे प्रसिद्धमेतत्।

सकलेति। सकलानि समस्तानि यानि भुवनानि भूर्भुव आदीनि तेषु विख्यातं प्रसिद्धम्। भगवतो माहात्म्यवतो धर्मस्य सुकृतस्य उत्पत्तिक्षेत्रमिव जन्मभूमिरिव, तत्र सर्वप्रकारधर्मोत्पत्तेरित्याशयः। अत्र जात्युत्प्रेक्षा, सा च भावाभिमानिनी वाच्येत्यवगन्तव्या।

सुरेति। सुरपतिः इन्द्रः तस्य प्रार्थनया याचनया पीतानि चुलुकीकृतानि सकलसागराणां समस्तसमुद्राणां जलानि सलिलानि येन तस्य। इत आरभ्य षष्ठ्यन्तानि पदानि ऋषेर्विशेषणानि। पुरा लोकान् पीडयितुं कालेयाख्याः केचनासुरा दिनपर्यन्तं समुद्रजलेऽन्तर्हिताः सन्तो निशि बहिरागत्य लोकद्वयमत्यन्तमुपद्रवञ्चक्रुः। तद्विनाशाय नितरां चेखिद्यमानो देवाधिपतिरगस्त्यशरणं ययौ। बहुधा प्रार्थितो भगवानगस्त्यो निखिलसमुद्रसलिलानि चुलुके कृत्वा पपाविति महाभारतीया कथात्रानुसन्धेया।

मेर्विति। मेरोः सुवर्णाद्रेः मत्सरात् उन्नतिविषयकशुभद्वेषात् 'मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः' इत्यमरः, अम्बरतले आकाशतले प्रसारितानि विस्तारितानि विकटानि बृहन्ति यानि शिरांसि मस्तकानि तेषां सहस्रं समूहं येन स तेन, दिवसकरस्य सूर्यस्य रथगमनपथं स्यन्दनगमनमार्गम् 'ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे' इत्यच् प्रत्ययः, अपनेतुं निरसितुम् अभ्युद्यतेन प्रवृत्तेन, तथा अवगणितानि अनादृतानि सकलानां समस्तानां देवानां सुराणां वचांसि दिवसाधिपतेः गतिमार्गावरोधनिषेधवाक्यानि येन तेन विन्ध्यगिरिणाऽपि जलवालकाद्रिणापि अनुल्लङ्घिता अनतिक्रान्ता सम्मानिता आज्ञा आदेशो यस्य तस्य तादृशस्य।

पुरा पर्यटन् नारदो योगी विन्ध्याचलमासादयामास, अथ तेन कृतातिथ्यो नारदस्तं गिरिं प्रत्युवाच—गिरिमणे! प्रतिदिनं सूर्यो हि सुमेरुं परिभ्रमति त्वां नेति नितरां चेखिद्यते मे चेतः, अतस्तदर्थं यतस्वेत्यभिधाय निर्गते तस्मिन् तथैवात्मानं विधातुं सूर्यमनुरुन्धन् तेन प्रत्याख्यातोऽतिकोपेन तद्गमनपथमवरोद्धुं वृद्धिमुपगच्छन् सुरैर्निवारितोऽपि नितरां ववृधे; तदैकतोऽधिकतापात् प्रज्वलन्तोऽपरत्रान्धकारावृतत्वात्किमपि कर्तुमक्षमा लोका देवान् तुष्टुवुः, ते च द्रुतमेव काश्यामगस्त्याश्रममाजग्मुः, विन्ध्यवृद्ध्यवरोधार्थं तमनुरुरुधुश्च, अथ तेषामनुरोधेन सभार्यके भगवत्यगस्त्ये तत्रोपस्थिते विन्ध्याद्रिः शिरोऽवनमय्य तं प्रणाममकरोत्, ऋषिस्तु—'प्रिय वत्स! यावदहं पुनः प्रत्यावृत्तः स्यां तावत्त्वमेवंविधमेवावनतो भूत्वा तिष्ठ' इत्युक्त्वा दक्षिणाशां प्रस्थितो नेदानीमपि प्रत्यावृत्तः, विन्ध्याद्रिरपि तदाज्ञयाऽधुनापि तथैव तिष्ठतीति स्कन्दपुराणान्तर्गतकाशीखण्डीयकथा।

जठरेति। जठरानलेन उदराग्निना जीर्णः अन्तः परिपाकं प्रापितो वातापिदानवो वातापिनामकासुरो येन तस्य तादृशस्य।

उसमें दण्डकारण्यके अन्तर्गत अगस्त्यका एक आश्रम था, वह समस्त भूमण्डल पर प्रसिद्ध था और भगवान् धर्मके उत्पत्ति-स्थानके समान प्रतीत होता था। विन्ध्याचलने 'मेरु' पर्वतकी ईर्ष्यासे अपने सहस्रों विकट शिखरोंको आकाश तक फैला दिये थे। वह सूर्यके रथका मार्ग रोकनेके लिये उद्यत हो गया था, और उसने समस्त देवताओंको भी कुछ नहीं गिना था। वह भी अगस्त्यकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सका था। अगस्त्यने ही इन्द्रकी प्रार्थनासे समुद्रका जल पी लिया था। उन्हींकी जठरानलने वातापि नामक दानवको भस्म कर डाला था। देव-

---

१. भुवनख्यातम्, भुवनतलख्यातम्। २. निपीत। ३. ···जलस्य। ४. मेरुशिखर। ५. गगनतल···। ६. ···शिखरस्थ। ७. गतिपथ। ८. ···सुरसमूह···। ९. असङ्घित। १०. मुकुटतटघट्टितमरकतमयपत्रभङ्गकोटि···।

तच्चरण-रजसो दक्षिणाशा-वधू-मुख-विशेषकस्य, सुरलोकादेकहुङ्कारनिपातित-नहुष-प्रकट-प्रभावस्य भगवतो महामुनेरगस्त्यस्य, भार्यया लोपामुद्रया स्वयमुपरचितालवालकैः करपुट-सलिलसेक-संवर्द्धितैः सुतनिर्विशेषैरुपशोभितं पादपैः, तत्पुत्रेण च गृहीतव्रतेनाषाढिना पवित्र-भस्म-विरचित-त्रिपुण्ड्काभरणेन कुश-चीवर-वाससा मौञ्ज-मेखलाकलितमध्येन गृहीत-

---

पुरा इल्वलवातापिसंज्ञकौ भ्रातरावसुरविशेषावास्ताम् । तत्रेल्वलो विप्रस्वरूपं कृत्वा मेषस्वरूप-स्थितं वातापिं मारयित्वा तन्मांसं पक्त्वा समुपस्थितान् विप्रान् भोजयामास, भक्षितवत्सु तेषु 'वातापे ! निर्गच्छ' इतील्वलेनाकारितः सुरवरप्रतापेन वातापिस्तेषामुदराणि विदार्यानिर्गच्छत्, ततश्च तौ तेषां वित्तादिकं चोरितवन्तौ । ततो देवा इत्थं निरीक्ष्य भगवतोऽगस्त्यस्य शरणमाययुः, आमन्त्र्य च प्रत्यपकर्तुं याचिताः स तेनैव रूपेण तन्मांसं भक्षयित्वा उदरे जीर्णं कृतवानिति महाभारतीया कथा ।

सुरासुरेति । देवा असुरा दानवास्तेषां मुकुटेषु किरीटेषु यानि मकरपत्राणि सुवर्णरचिता मकराकार-पत्राः 'पत्रं वाहनपक्षयोः' इत्यमरः तेषां कोटयः अग्रभागाः तैः चुम्बितानि स्पर्शितानि चरणरजांसि पद्रेणवो यस्य तस्य, देवदानवपूजितपदस्येत्यर्थः । दक्षिणा अवाची आशा दिगेव वधूः स्त्री तस्या मुखे आनने विशे-षकस्य तिलकस्वरूपस्य 'दिशस्तुः ककुभः काष्ठाः आशाश्च हरितश्च ताः' 'चित्रपुण्ड्रविशेषकाः' इत्यमरः । अत्रागस्त्ये तिलकत्वारोपस्य दक्षिणदिशि वधूत्वारोपः कारणमिति परम्परितरूपकम् । तदुक्तं साहित्यदर्पणे—

'यत्र कस्यचिदारोपः परारोपस्य कारणम् । तत्परम्परितम्'……… ॥'

सुरेति । सुरलोकात् देवनगरात् (स्वर्गात्) एकहुङ्कारेण हुङ्कृतिमात्रेण निपातिते प्रच्याविते नहुषे प्रकटः स्फुटः प्रभावो माहात्म्यं यस्य तस्य तादृशस्य, भगवतो माहात्म्यवतः महामुनेरुत्कृष्टमननशीलस्य ।

इह त्वष्टुः पुत्रे वृत्रे दधीच्यस्थिना वज्रं निर्माय हते सुराधिपे ब्रह्महत्यापापयुतेन मानससरोवरे निलीने सति सुरैः राजविहीनं स्वर्गं दृष्ट्वा चन्द्रवंशीयो राजा नहुषो निजनिजप्रभावैर्वर्द्धयित्वा स्वर्गराज्ये नियुक्तः । इन्द्रपदे चारूढो भवानिन्द्राणीं कथं न कामयते ? इति केनचिदुपदिष्टे स कदाचित्तां प्रार्थितवान् ततस्तया कथितम् 'राजन् ! महर्षिभिर्वाहिनीभूतां शिविकामारुह्य यदि भवान् मद्भवनमागन्तुं शक्नोति तदा भवन्तमहं सेवये' इति । राजा तु तदेवाभ्युपेत्य भृग्वादीन् देवर्षीन् वाहकत्वेन संयोज्य शिविकामारूढः इन्द्राणीं कामयमानो तां प्रति व्रजन् शीघ्रं चलितुम् अग्रे गच्छन्तं भृगुं मूर्ध्नि चरणेन 'सर्प सर्प' इति कथ-यन्नताडयत्, एतन्मध्ये भृगोर्जटासु प्रच्छन्नो भगवानगस्त्यः तच्चरणेन ताडितः 'त्वं सर्पो भूत्वाऽधः पत' इति शशाप, तेन च राजा सर्पो भूत्वा हिमालयकन्दरायामपतदिति महाभारतीया कथात्रानुसन्धेया ।

भार्ययेति । भार्यया पत्न्या लोपामुद्रया तन्नाम्निकया स्वयम् आत्मना उपरचितानि निर्मितानि आलवालानि आवापा मूलसलिलाधारा येषां तैः 'स्यादालवालमावापः' इत्यमरः, करपुटेन निजहस्तद्वयेन यः सलिलस्य जलस्य सेकः सिञ्चनं तेन सम्वर्द्धितैः वृद्धिं प्रापितैः, सुतनिर्विशेषैः पुत्रसदृशैः पादपैर्वृक्षैरुप-शोभितं भूषितं तदाश्रमपदं मुनिस्थानम् ।

तत्पुत्रेणेति । तस्य अगस्त्यस्य पुत्रेण सूनुना, गृहीतम् अङ्गीकृतं व्रतं ब्रह्मचारिव्रतं येन तेन, आषाढः पलाशदण्ड अस्यास्तीति तेन 'आषाढो व्रतिनां दण्डे मासे मलयपर्वते' इति विश्वः, विप्राणां पलाशदण्ड-स्यैव धारणमाह मनुः—'ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ' इति, पवित्रं पूतं यद्भस्म तेन विरचितं विहितं त्रिपुण्ड्रकं रेखात्रययुतस्तिलकविशेष एव आभरणं भूषणं येन तेन, ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रधारणमाह स्मृतिः—'ब्राह्मणानां त्रिपुण्ड्रकम्' इति । कुशा दर्भा एव चीवरं वासः वस्त्रं यस्य तेन, मौञ्ज्या मुञ्जविरचितया मेखलया कलितो

दानवोंके मुकुटोंके मरकतमणि-मय पत्र उनके चरण-धूलिका चुम्बन करते थे। वे दक्षिण-दिशारूपी वधू-मुखके तिलक थे और उन्होंने एक ही हुँकारसे नहुष राजाको स्वर्गसे भूतलपर गिरा कर अपना प्रभाव प्रकट किया था। इसी प्रकार महामुनि अगस्त्यकी पत्नी लोपामुद्राने अपने मनसे ही क्यारियाँ बनाई थीं, अपने ही हाथसे जल सिञ्चन कर वृक्षोंका संवर्धन किया था और उनको वह पुत्रके समान मानती थी। महर्षिके 'दृढ़दस्यु' नामक पुत्रसे वह स्थान पवित्र हुआ था। उसने व्रत ग्रहण किया था, पलाशका दण्ड-धारण किया था, पवित्र भस्मसे ललाटमें त्रिपुण्डका आभूषण बनाया था, कुशाका वस्त्र पहना था, मूँजकी मेखला कटिप्रदेश

---

१. दक्षिणामुखविशेषकस्य । २. निपतित । ३. प्रकटन । ४. तद्भार्यया । ५. लोपामुद्रया च । ६. आषाढिव्रतिना । ७. '''चीर । ८. वल्कल, मुञ्ज''' ।

हरितपर्णपुटेन प्रत्युटजमटता भिक्षां दृढदस्युनाम्ना पवित्रीकृतम्, अतिप्रभूतेध्माहरणाच्च यस्येध्मवाह इति पिता द्वितीयं नाम चकार, दिशि दिशि शुकहरितैश्च कदलीवनैः श्यामलीकृत-परिसरं सरिता च कलसयोनि-परिपीत-सागरमार्गानुगतयेव बद्धवेणिकया गोदावर्या परिगतमाश्रमपदमासीत्।

यत्र च दशरथवचनमनुपालयन्नुत्सृष्टराज्यो दशवदन-लक्ष्मी-विभ्रमविरामो रामो महामुनिमगस्त्यमनुचरन् सह सीतया लक्ष्मणोपरचित-रुचिर-पर्णशालः पञ्चवट्यां कञ्चित्

बद्धः मध्यः कटिभागो येन तेन, तथा च मनुः—'मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला' इति। गृहीतं याचितान्नरक्षणार्थमात्तं हरितं श्यामलं पर्णपुटं पत्ररचितपुटकं येन तेन, प्रत्युटजम् उटजमुटजं प्रति प्रतिपर्णशालमित्यर्थः 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, भिक्षाम् अटता भिक्षणार्थं भ्रमणं विदधता भिक्षामित्यत्र 'अकथितञ्च' इत्यनेन कर्मसंज्ञायां 'कर्मणि द्वितीया' इति द्वितीया। दृढदस्युरिति नाम यस्य तेन तादृशेन पवित्रीकृतं तत्र स्थित्या पूतम्।

अतीति। पिता अगस्त्यः, अतिप्रभूता अतिप्रचुरा य इध्मानः काष्ठाः तेषाम् आहरणात् आनयनात् हेतोः, इध्म वहतीति 'इध्मवाह'इत्यन्वर्थं द्वितीयम् अपरं नाम अभिधेयं चकार विदधौ। इध्मवाह इत्यत्र 'कर्मण्यण्' इत्यण्।

दिशीति। दिशि दिशि प्रत्येकदिशि 'नित्यवीप्सयोः' इति द्विर्वचनम्, शुकवत् कीरदेहवत् हरितैर्नीलवर्णैः कदलीवनैः रम्भाविपिनैः 'रम्भावृक्षेऽथ कदली' इति मेदिनी, श्यामलीकृतः कृष्णवर्णीकृतः परिसरः प्रान्तभूमिर्यस्य तत्, शुकहरितैरित्यत्र लुप्तोपमा।

सरितेति। कलसयोनिना अगस्त्येन परिपीतस्य चुलुकीकृतस्य मृतस्येत्याशयः, सागरस्य समुद्रस्य मार्गम् अध्वानम् अनुगतयेव अनुव्रजितयेव बद्धा धृता वेणिका सलिलधारा यया तया, बद्धासंकराविधानायैव संयता वेणिका केशरचनाविशेषो यया तया च, गोदावर्या तन्नामिकया सरिता नद्या परिगतं परिव्याप्तम्। अगस्त्येन चुलुकीकृततया निधनमुपगतस्य समुद्रस्य अनुव्रजनं सर्वदा केशसंयमनञ्च पतिव्रताया विधेयमेवेत्याशयः। उक्तञ्च 'न प्रोषिते तु संस्कुर्यान्न वेणीं च प्रमोचयेत्' इति। 'अनुगतयेव' इति क्रियोत्प्रेक्षा। समासोक्तिरपि व्यञ्जनया। तदुक्तं दर्पणे—

'समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः। व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥'

यत्रेति। यत्र यस्मिन्नाश्रमस्थाने दशसु दिशासु अप्रतिहतो रथो यस्य स दशरथः तस्य वचनं, वनगमनादेशम् अनुपालयन् पालनं कुर्वन् तथैवानुतिष्ठन्नित्यर्थः, उत्सृष्टं त्यक्तं राज्यं येन सः दशवदनो लङ्काधिपतिर्दशाननस्तस्य या लक्ष्मीः राज्यश्रीः तस्या विभ्रमस्य विलासस्य विरामोऽवसानं यस्मात् स तथोक्तो रामः, महामुनिं मुनिश्रेष्ठम् अगस्त्यम् अनुचरन् सेवमानः, लक्ष्मणेन सुमित्रानन्दनेन उपरचिता निर्मिता रुचिरा मनोज्ञा पर्णशाला उटजो यस्य सः, कञ्चित्कालं पञ्चवट्यां जनस्थाने सीतया जनकनन्दिन्या सह सुखम् आनन्दपूर्वकं यथा स्यात्तथा उवास निवसति स्म। 'विरामो राम' इत्यत्र यमकालङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे—

'सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः। क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥'

(कमर) में बाँधी थी और वह हरे पत्तेका दोना लेकर भिक्षा माँगनेके लिये झोंपड़ी-झोंपड़ी भ्रमण करता था तथा अधिक इन्धन लानेके कारण पिताने उसका दूसरा नाम 'इध्मवाह' रख दिया था। उस आश्रमके चारों दिशाओंकी भूमि समस्त दिशाओंमें फैले हुए—शुक (तोते) के समान हरे रंगके—कदली (केलों) के वनसे कुछ श्यामवर्ण हो गई थी। गोदावरी नदी उस आश्रमके निकट बह रही थी। वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो अगस्त्यसे आचमन किये गये समुद्रके पीछे पीछे वेणी-पंक्ति,—विधवा स्त्रियोंकी एक ही लटमें गूँथी हुई चोटी बाँध कर जाती हो (समुद्र-रूपी स्वामीके नष्ट हो जानेसे गोदावरी-रूप विधवाने मानों चोटी बाँधी थी, अर्थात् वह बड़े वेगसे एक धारामें बहती थी)।

जहाँ राजा दशरथकी आज्ञाका पालन करते हुए, राज्यको त्याग कर, रावणकी लक्ष्मीके विलास-शोभाका अन्त करने वाले रामचन्द्रजी, महामुनि अगस्त्यकी सेवा करते हुए सीताके साथ पञ्चवटीमें लक्ष्मणके द्वारा बनाई

१ हरिणकर्ण, पत्रपुटेन। २. शुककुल···। ३. श्यामीकृत। ४. कावेर्या। ५. रामो।

कालं सुखमुवास । चिरशून्येऽद्यापि[1] यत्र शाखानिलीन-निभृत-पाण्डु-कपोतपङ्क्तयो[2] लग्न-तापसाग्निहोत्र-धूमराजय इव लक्ष्यन्ते तरवः । बलिकर्म-कुसुमान्युद्धरन्त्याः सीतायाः करतलादिव सङ्क्रान्तो यत्र रागः स्फुरति लताकिसलयेषु । यत्र च[3] पीतोद्गीर्णजलनिधि-जलमिव मुनिना निखिलमाश्रमोपान्तवर्त्तिषु विभक्तं महाह्रदेषु । यत्र च दशरथ-सुत-निशित[4]-शर-निकर-निपात-निहत-रजनीचर-बल[5]-बहुल-रुधिर-सिक्त[6]-मूलमद्यापि तद्रागाविद्ध[7]-निर्गत-पलाशमिवाभाति नव-किसलय[8]मरण्यम् । अधुनापि यत्र जलधरसमये गम्भीरमभिनव[9]-जलधर-निवह[10]-निनादमाकर्ण्य भगवतो रामस्य त्रिभुवन-विवर-व्यापिनश्चापघोषस्य स्मरन्तो

चिरेति । चिरशून्ये बहोः कालात् मुनिवृन्दरहिते, यत्र यस्मिन्नाश्रमपदे अद्यापि इदानींकालपर्यन्त-मपि, शाखासु शालासु निलीना अवस्थितानिभृता निःशब्दाः पाण्डवः श्वेता ये कपोताः पारावताः तेषां पङ्क्तयो राजयः येषु ते, अत एव लग्नाः संलग्नाः तापसानां तपस्विनां यदग्निहोत्रं दैनिकयज्ञविशेषः तस्य धूमानाम् अग्निशिखानां राजयः पङ्क्तयो येषु ते तथोक्ता इव तरवो वृक्षा लक्ष्यन्ते अवलोक्यन्ते । इह पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः, तथा धूमपङ्क्तीनां संलग्नत्वस्योत्प्रेक्षणात् क्रियोत्प्रेक्षा चेत्युभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः ।

बलीति । बलिकर्मणो देवपूजनकार्यस्य कुसुमानि प्रसूनानि उद्धरन्त्याः सञ्चयं कुर्वन्त्याः सीताया वैदेह्याः करतलात् हस्ततलात् लताकिसलयेषु व्रततिपल्लवेषु सङ्क्रान्तो लग्न इव सन् रागो लौहित्यं स्फुरति दीप्तिमान् भवति । सङ्क्रान्त इवेति क्रियोत्प्रेक्षा ।

यत्र चेति । यत्र च आश्रमपदे, मुनिना अगस्त्येन पूर्वं पीतं चुलुकीकृतं पश्चादुद्गीर्णम् उत्तोलितं निखिलं समग्रं जलनिधिजलं समुद्रसलिलम् आश्रमोपान्तवर्त्तिषु आश्रमनिकटस्थायिषु महाह्रदेषु महात-डागेषु विभक्तमिव विभज्य स्थापितमिव । अत्रापि विभक्तमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा, अत एव हि तडागानाम-गाधसलिलयुक्तत्वं ध्वन्यते इत्यलङ्कारेण वस्तुव्यङ्ग्यम् ।

यत्र चेति । दशरथसुतयो रामलक्ष्मणयोः निशिताः तीक्ष्णा ये शरा बाणाः तेषां यो निकरः समूहः तस्य निपातेन वर्षणेन निहतानि घातितानि यानि रजनीचरबलानि असुरसैन्याः तत्सम्बन्धि यद्बहलानि विपुलानि रुधिराणि रक्तानि तैः सिक्तानि सिञ्चितानि मूलानि यस्य तत् , नवानि नूतनानि किसलयानि पल्लवानि यत्र तत् तथोक्तम् अरण्यं वनं (कर्तृ), अद्यापि इदानींकालपर्यन्तमपि तेषां रुधिराणां रागेण रक्तिम्ना आविद्धानि युक्तानि विद्यमानानि निर्गतानि निःसृतानि पलाशानि पत्राणि यत्र तत् तथोक्तमिव आभाति शोभते । इहापि क्रियोत्प्रेक्षा ।

अधुनीपीति । अधुनापि इदानीमपि यत्र आश्रमपदे जलधरसमये वर्षाकाले गम्भीरं मञ्जुलम् अभिनवा नूतना ये जलधरा मेघास्तेषां निवहस्य समूहस्य निनादं गर्जनम् आकर्ण्य श्रुत्वा भगवतः पूज्यस्य रामस्य दाशरथेः त्रिभुवनस्य विष्टपस्य विवराणि छिद्राणि तानि व्याप्नोति पूरयतीति स तस्य, चापघोषस्य धनुःशब्दस्य अत्र मातुः स्मरतीतिवत् कर्मणि षष्ठी, तेन धनुःशब्दमित्यर्थः, स्मरन्तः चिन्तयन्तः

गई पर्णशाला (कुटी) में कुछ समय तक सुखपूर्वक रहे थे । बहुत कालसे मुनिजनोंके न रहनेके कारण उस प्रदेशमें आज भी शाखाओंमें चुपचाप छिपे हुए कबूतरोंकी पंक्तियोंसे वृक्ष इस प्रकार देखनेमें आते हैं मानो तपस्वियोंके अग्निहोत्रके धूमकी घटासे युक्त हों । वहाँ देवपूजन करनेके लिये फूल तोड़ती हुई सीताके हाथोंसे मानो लगा हुआ लाल रंग लता और पत्तोंमें चमकता है । पहले पीकर पुनः निकाला हुआ मानो समुद्रका ही जल अगस्त्यने अपने आश्रमके समीपवर्ती बड़े सरोवरों (तालावों) में बाँट दिया है । वहाँका वन ऐसा देखनेमें आता है मानों रामचन्द्रके तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे मरे हुए राक्षसोंके गाढ़े शोणितसे जड़का सिञ्चन होनेके कारण अब उसमें उसी रंगके नये पत्ते प्रस्फुटित होते हों, सीताके पाले हुए पुराने हरिणोंके सींगोंके नोक वृद्धावस्था होनेके कारण जर्जरित हो गई हैं । वे जब वर्षा ऋतुमें नवीन मेघकी गम्भीर गर्जना सुनते हैं तब भगवान रामचन्द्रके त्रिभुवनव्यापी धनुष टंकारका आज भी स्मरण करते हैं, किन्तु अहर्निश बहती अश्रुधारासे व्याप्त दीन नेत्रोंसे दशों

१. अतिचिर । २. '''पङ्क्तयोऽमललग्न''' । ३. 'च' इति क्वचिन्न । ४. 'निशित' अयमपि क्वचिन्नोपलभ्यते । ५. बलबहल । ६. रक्त । ७. तद्रागानुविद्ध । ८. किसलम् । ९. गम्भीररवम् । १०. 'निवह' इति पाठः क्वचिन्न ।

न गृह्णन्ति शष्प-कवलमजस्रमश्रुजल-लुलित-दीनदृष्टयो वीक्ष्य शून्या दश दिशो जरा-जर्ज्जरित-विषाणकोटयो जानकीसंवर्द्धिता जीर्णमृगाः। यस्मिन्ननवरत-मृगया-निहत-शेष-वनहरिण-प्रोत्साहित इव कृतसीताविप्रलम्भः कनकमृगो राघवमतिदूरं जहार। यत्र मैथिलीवियोग-दुःखदुःखितौ दशवदन-विनाश- पिशुनौ चन्द्रसूर्याविव कबन्धग्रस्तौ समं रामलक्ष्मणौ त्रिभुवनभयं महच्चक्रतुः। अत्यायतश्च यस्मिन् दशरथसुत-शर-निपातितो योजनबाहोर्बाहुरगस्त्य-प्रसादनागतनहुषाजगर-कायशङ्कामकरोदृषिजनस्य। जनकतनया च भर्त्रा विरहविनो-

दशदिशः दशाशाः शून्याः रामलक्ष्मणसीतारहिताः, यद्वा सजातीयप्राणिरहिताः, वीक्ष्य अवलोक्य, अजस्रं निरन्तरम् अश्रुजलैः तेषां शोकजनितनयनसलिलैः लुलिता विह्वलीभूताः, दीनाः कातराः दृष्टयो लोचनानि येषां ते तथोक्ताः, तथा जरया वृद्धावस्थया जर्जरिताः विशीर्णा विषाणानां शृङ्गाणां कोटयोऽग्रभागा येषां ते तथोक्ताः, जानक्या वैदेह्या संवर्द्धिता शष्पसलिलादिप्रदानेन वृद्धिं प्रापिताः जीर्णमृगाः वृद्धहरिणाः शष्पं बालतृणं तस्य कवलं ग्रासं न गृह्णन्ति न स्वीकुर्वन्ति तेषां शोकेनेत्याशयः। अत्र गम्भीरजलदनिनादाकर्णनेन रामस्य चापघोषस्मृतेः स्मरणालङ्कारः, तथा शष्पग्रासग्रहणसम्बन्धेऽपि तदसम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्त्यलङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे—

'सदृशानुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते'। 'सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते'।

एवञ्चोभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

यस्मिन्निति। यस्मिन् विपिने अनवरतं निरन्तरं या मृगया पशुहननव्यापारः तस्यां निहतेभ्यः रामेण व्यापादितेभ्यः शेषा अवशिष्टा ये वनहरिणाः काननमृगाः तैः प्रोत्साहित इव जानकीवञ्चनापूर्वकरामदूरनयने प्रकृष्टोत्साहं प्रापित इव कनकमृगः हाटकमयहरिणरूपधारी मारीचः, कृतो विहितः सीताया जानक्या विप्रलम्भो वञ्चना येन तथोक्तः सन् राघवं रामचन्द्रम् अतिदूरम् अनतिसमीपं जहार हरणमकृत। इह क्रियोत्प्रेक्षा।

यत्रेति। यत्र पञ्चवट्यां मैथिली जानकी तस्या वियोगदुःखेन विरहजनितक्लेशेन दुःखितौ क्लेशितौ, दशवदनो रावणः तस्य विनाशपिशुनौ ध्वंसबोधकौ रामलक्ष्मणौ कौशल्यानन्दनसुमित्रानन्दनौ, चन्द्रसूर्याविव पुष्पवन्ताविव 'एकयोक्त्या पुष्पवन्तौ दिवाकरनिशाकरौ' इत्यमरः, कबन्धः राहू राक्षसाधिपतिः तेन दनुकबन्धेन च ग्रस्तौ कवलीकृतौ गृहीतौ च सन्तौ समम् एककालं त्रिभुवनस्य जगत्त्रयस्थितलोकस्य महत् उत्कृष्टं भयम् आतङ्कं चक्रतुः विदधतुः। इह चन्द्रसूर्याविवेत्युपमा।

अत्यायतश्चेति। यत्र च दशरथसुतो रामः तस्य शरेण इषुणा निपातितः कर्तयित्वा पातितः अत्यायतः अतिविस्तृतः योजनबाहोः दनुकबन्धापरनाम्नो दैत्यस्यैव बाहुर्भुजः, अगस्त्यस्य मुनेः प्रसादनाय शिविकारोहणेन इन्द्राणीं प्रति यानकाले पादप्रहारकृतक्रोधोपशान्तये आगतः प्राप्तो यो नहुषाजगरस्य अजगर-(सर्प) रूपिनहुषनृपतेः कायशङ्कां देहभ्रान्तिम् ऋषिगणस्य मुनिमण्डलस्य चकार कृतवान्। अत्र दनुकबन्धबाहौ नहुषाजगरभ्रान्त्या भ्रान्तिमानलङ्कारः तदुक्तं दर्पणे—'साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः' इति। अत्रत्येतिवृत्तन्तु रामायणस्यारण्यकाण्डतोऽवगन्तव्यम्।

जनकेति। अत्र आश्रमपदे जनकतनया वैदेही, भर्त्रा स्वामिना रामेण, विरहविनोदनार्थं जानक्याः वियोगव्यथालघुसम्पादनार्थम् उटजाभ्यन्तरे पर्णशालामध्ये 'पर्णशालोटजः स्त्रियाम्' इत्यमरः, लिखिता

दिशाएँ शून्य देख कर घासकी एक मुट्ठी भी नहीं भक्षण करते हैं। वहाँ रामचन्द्रने बार-बार शिकार खेल कर जंगलके हरिणोंको बिलकुल निर्मूल कर दिया था, इससे ही मानो उत्तेजित होकर सुवर्णके मृगने सीताको भ्रममें डालकर रामको बहुत दूर ले गया। वहाँ सीताके विरहसे दुःखी, रावणके संहारकी सूचना देते हुए तथा सूर्य-चन्द्रको जिस प्रकार राहु ग्रस लेता है,उसी प्रकार कबन्धसे ग्रस्त (घेर लिये गये)राम-लक्ष्मणने तीनो भुवनोंको भयभीत कर दिया था। रामचन्द्रके बाणसे कटकर गिरे हुए योजन (कबन्ध) की अत्यधिक लम्बी-बाहुको देख कर मुनियोंको ऐसा भ्रम होता था मानो अगस्त्यको प्रसन्न करनेके लिये अजगर देहधारी 'नहुष' आया हो। उस आश्रममें रामचन्द्रने विरह-कालमें मनोरंजनके लिये पर्णकुटीके अन्दर सीताका चित्र खींच लिया था, उसे

१. सम्यक् शष्प। २. लुलितदृष्टयः। ३. निःशेष, अशेष…। ४. प्रोत्सारित। ५. रावणविनाशसूचकौ। ६. अतिमहत्। ७. …बाण…। ८, …प्रसादेनागत…। ९. चकार ऋषिगणस्य। १०. तनयभर्त्रा।

[1]दनार्थ-मुटजाभ्यन्त[2]रलिखिता यत्र रामनिवास-दर्शनोत्सुका पुनरिव धरणीत[3]लादुल्लसन्ती वनचरैरद्याप्यालोक्य[4]ते ।

तस्य चैवंविध[5]स्य सम्प्रत्यपि प्रकटोपलक्ष्यमाण-पूर्ववृत्तान्तस्यागस्त्याश्रमस्य नातिदूरे जलनिधि-पान-[6]कुपित-वरुणोत्साहितेन अगस्त्यमत्सरात्तदाश्रमसमीपवर्त्त्यपर इव वेधसा महा[7]जलनिधिरुत्पादितः, प्रलयकाल-विघट्टि[8]ताष्ट-दिग्भाग-सन्धिबन्धं[9] गगनतलमिव भुवि निपतितम्, आदिवराहसमुद्धृत-धरामण्डल-स्थानमिव [10]सलिलपूरितम्, अनवरत-मज्जदुन्मद-शवरकामिनी-कुचकलस-लुलित-जलम्, उत्फुल्ल-कुमुद-कुवलय-कह्लारम्, उन्निद्रारविन्द-

चित्रीकृता सा रामस्य निवासोऽवस्थानभूमिः तस्य दर्शनाय अवलोकनाय उत्सुका उत्कण्ठिता सती पुनर्भूयो धरणीतलात् पातालात् उल्लसन्तीव, वनचरैः किरातैः अद्यापि इदानींकालेऽपि आलोक्यते दृश्यते। अत्र उल्लसन्तीवेति क्रियोत्प्रेक्षा। अत्र 'पुनः' शब्दोपादानेन पूर्वं वैदेह्या मिथिलायां यज्ञभूमिकर्षणकाले पातालादुत्थानम्, लङ्कां विजित्याग्निप्रवेशेन विशुद्धायामपि तस्यां लोकापवादभीत्या निर्वासिता रामेण पुनः परीक्षाप्रकरणे भूमितलप्रवेशः ततश्चेदमुत्थानमिति प्रतीयते।

तस्येति। एवंविधस्य उक्तरूपस्य तस्य च अगस्त्याश्रमस्य सम्प्रत्यपि अस्मिन् समयेऽपि प्रकटं स्पष्टम् उपलक्ष्यमाणा दर्शितदिशा ज्ञायमाना पूर्ववृत्तान्ताः पूर्वोदन्ता यस्य तस्य 'वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः। नातिदूरे समीप एव पम्पाभिधानं पम्पेतिसंज्ञकः पद्मसरः कमलकासारः 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः, विद्यत इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। इह प्रथमान्तपदानि पद्मसरोविशेषणानि। जलनिधयः समुद्राः तेषां पानेन चुलुकीकृतेन कुपितः जलाधिपतित्वात् क्रुद्धो यो वरुणः प्रचेताः 'प्रचेता वरुणः पाशी' इत्यमरः, तेन उत्साहितः अन्यं महासमुद्रं निर्मातुं दत्तोत्साहः तेन तथोक्तेन, वेधसा प्रजापतिना 'स्रष्टा प्रजापतिर्वेधाः' इत्यमरः, अगस्त्यमत्सरात् अगस्त्यं मुनिं प्रति शुभद्वेषात् 'मत्सरोऽन्यशुभद्वेषः' इत्यमरः, तस्य अगस्त्यस्य आश्रमसमीपवर्ती मुनिजनस्थाननिकटवर्ती, अपरोऽन्यो महाजलनिधिरिव महासागर इव उत्पादितः निर्मितः अतिविस्तृतत्वादित्याशयः। इह महाजलनिधिरिवेति द्रव्योत्प्रेक्षा।

प्रलयेति। प्रलयकाले कल्पान्तसमये विघटिता विश्लथिताः अष्टानाम् अष्टसंख्यकानां दिशां हरितां विभागाः प्रदेशाः तत्तत्पर्वतावधिकाः तेषां सन्धयः संयोजनानि तेषां बन्धा बन्धनानि यत्र एवम्भूतम्, भुवि पृथिव्यां निपतितं गगनतलमिव नभस्तलमिव 'नभोऽन्तरिक्षं गगनम्' इत्यमरः, स्थितं तिष्ठन्तम् अत्यन्तस्वच्छत्वादतिविस्तृतत्वाच्चेत्यभिप्रायः। अत्रापि गगनतलमिवेति द्रव्योत्प्रेक्षा।

आदीति। आदिवराहेण विष्णोस्तृतीयावतारेण महावराहरूपेण समुद्धृतं सम्यक् प्रकारेण जलाद्बहिरानीतं यत् धरामण्डलं भूमण्डलं तस्य स्थानम् अवकाशः जलपूरितमिव सलिलपूरितमिव स्थितम् अतिविस्तृतत्वादिति भावः। अत्र जलपूरितमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

अनवरतेति। अनवरतं सन्ततं मज्जन्त्यः अवगाहमानाः या उन्मदा यौवनगर्वाधिष्ठिताः शवरकामिन्यः भिल्लनार्यः तासां कुचकलसैः स्तनघटैः लुलितानि आलोडितानि जलानि सलिलानि यस्य तत्

वनेचरगण अब भी इस प्रकार देखते हैं कि रामके निवासको देखनेकी उत्कण्ठासे सीता पुनः पृथ्वीसे निकल कर आई हुई हो।

जहाँ पहलेका वृत्तान्त अब भी स्पष्ट रूपसे दीखता है ऐसे अगस्त्यके आश्रमसे थोड़ी दूर एक अगाध, अनन्त, अद्वितीय और जलसे परिपूर्ण पद्म-सरोवर है। समुद्र-पान कर लेनेके कारण कुपित हुए वरुणदेवसे उत्तेजित किये गये ब्रह्माने अगस्त्य मुनिसे विद्वेषके कारण उनके आश्रमके निकट ही मानो एक दूसरा महासमुद्र उत्पन्न किया है, प्रलयकालमें आठों दिशाओंके सन्धिबन्धन (बंद) टूट जानेके कारण पृथ्वी पर पड़ा हुआ मानो गगनतल है; महावराहसे उठाया गया जलसे पूर्ण मानों पृथ्वीमण्डलका स्थान है; उसका जल निरन्तर स्नान करती हुई मंद-मत्त शवरस्त्रियों (भीलिनियों) के कुच-कलशोंसे चंचल हो जाता है; उसके अन्दर कुमुद, कुवलय और कह्लार (श्वेत, नील, रक्त-कमल) के फूल खिले हैं; खिले हुए कमलोंमें से टपकती हुई मधुकी

१. ···विनोदार्थम्। २. आभ्यन्तरे। ३. धरणीतलादुल्लसन्तीव। ४. उपलक्ष्यते। ५. 'एवंविधस्य' इति पाठः क्वापि नोपलभ्यते। ६. कुपितवरुणप्रोत्साहितेन। ७. जलनिधि। ८. विघट्टिताष्टदिग्विभाग। ९. बन्धनं। १०. सलिलपरिपूरितम्।

मधुबिन्दु-बद्धचन्द्रकम्, अलिकुल-पटलान्धकारितसौगन्धिकम्, सारसित-समद-सारसम्, अम्बुरुह-मधुपान-मत्त-कलहंसकामिनी-कृत-कोलाहलम्, अनेक-जलचर-पतङ्गशत-सञ्चलन-चलित-वाचाल-वीचिमालम्, अनिलोल्लासित-कल्लोल-शिशिर-शीकरारब्ध-दुर्दिनम्, अशङ्कितावतीर्णाभिरम्भःक्रीडारागिणीभिः स्नानसमये वनदेवताभिः केशपाशकुसुमैः सुरभीकृतम्, एकदेशावतीर्ण-मुनिजनापूर्यमाण-कमण्डलु-कल-जलध्वनि-मनोहरम्, उन्मिषदुत्पलवन-मध्य-

---

तथोक्तम्। इह कुचा एव कलसा इति विग्रहे रूपकम्, किं वा कुचाः कलसा इवेति विग्रहे उपमेति द्वयोरपि वारयितुमशक्यत्वात् सन्देहसङ्करः।

उत्फुल्लेति। उत्फुल्लानि प्रस्फुटितानि कुमुदानि श्वेतोत्पलानि कुवलयानि नीलोत्पलानि कह्लाराणि रक्तोत्पलानि च यत्र तत् तादृशम्। 'सिते कुमुदकैरवे' 'स्यादुत्पलं कुवलयमथ नीलाम्बुजन्म च' इत्यमरः।

उन्निद्रेति। उन्निद्राणि विकसितानि यानि अरविन्दानि पद्मानि तेषां मधुबिन्दुभिः मकरन्दकणिकाभिः यद्वा सलिलोपरि विहिताः चन्द्रकाः मयूरबर्हचन्द्राकारा यत्र तत् तादृशम्।

अलीति। अलिकुलानां भ्रमरवृन्दानां पटलेन समुदायेन अन्धकारितानि आवृतानि सौगन्धिकानि कह्लाराणि यत्र तत्। सौगन्धिकं तु कह्लारम्' इत्यमरः। अत्र कुलपटलयोर्मध्ये कस्याप्येकस्यैव कथनेनेष्टसिद्धावपरस्य ग्रहणं निरर्थकमेवेति कुशलाः।

सारसितेति। सारसितेन शब्देन सह वर्तमाना अत एव समदा मदोत्कटाः सारसा लक्ष्मणाप्रभृतयः यत्र तत् 'हंसस्य योषिद्वरटा सारसस्य तु लक्ष्मणा' इति कोशः। अत्र छेकानुप्रासः, तदुक्तं दर्पणे—'छेको व्यञ्जनसङ्घस्य सकृत्साम्यमनेकधा' इति।

अम्बुरुहेति। अम्बुरुहाणि पद्मानि तेषां यन्मधु मकरन्दः तस्य पानेन मत्ताः मदोत्कटा याः कलहंसकामिन्यः वरटाः ताभिः कृतो विहितः कोलाहलः कलकलो यत्र तत् तादृशम्।

अनेकेति। अनेके सहस्रशो ये जलचरा नक्रझषादयो जलजन्तवः तेषां पतङ्गानां पक्षिणाञ्च शतस्य मण्डलस्य सञ्चलनेन गमनागमनेन चलिताः क्षोभं प्राप्ताः वाचाला मुखरायमाणा च वीचिमाला लहरिसन्ततिर्यत्र तत् तादृशम्। इह छेकानुप्रासः।

अनिलेति। अनिलेन पवनेन उल्लासिता उत्थानं प्रापिता ये कल्लोला महातरङ्गाः तेषां शिशिरशीकरैः शीतलाम्बुकणैः आरब्धं कृतं दुर्दिनं मेघाच्छन्नदिनं यत्र तत् तादृशम्, वृष्टिजलमिव तेषामपि पतनादित्याशयः। अत्र वृत्त्यनुप्रासः, तदुक्तं दर्पणे—

'अनेकस्यैकधासाम्यमसकृद्वाप्यनेकधा। एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते॥'

अशङ्कितेति। अशङ्कितं निर्जनत्वेन शङ्कारहितं यथा स्यात्तथा अवतीर्णाभिः अन्तःप्रवेशं कृतवतीभिः, अम्भःक्रीडायां जलकेल्यां रागिणीभिः अत्यधिकमनोरथयुक्ताभिः वनदेवताभिः वनाधिष्ठातृदेवीभिः स्नानसमये मज्जनकाले केशपाशानां कचसमूहानां कुसुमैः सुमनोभिः सुरभीकृतं सौगन्ध्यजनितम्।

एकेति। एकदेशे एकभागे अवतीर्णैः अन्तःप्रवेशं कृतवद्भिः मुनिजनैः तपस्विगणैः आपूर्यमाणा जलेन भ्रियमाणा ये कमण्डलवः देवादिपूजनपात्रविशेषाः तेषां कलैः अव्यक्तमधुरैः जलध्वनिभिः सलिलपूरणशब्दैः मनोहरं मनोज्ञम्।

उन्मिषदिति। उन्मिषतः प्रस्फुटत उत्पलवनस्य श्वेतकमलविपिनस्य मध्येऽन्तः चरन्तीभिः गच्छ-

---

बूँदोंसे उसके जलमें चन्द्राकार निर्मित हो रहे हैं; भौंरोंके झुण्डोंके बैठनेसे उसके शुभ्र कमलों पर अन्धकार व्याप्त हो गया है; मतवाले सारस वहाँ मधुर गान करते हैं; कमलका रस पीनेसे मत्त कलहंस-कामिनी कोलाहल कर रहीं हैं; अनेक जलचर पक्षियोंके बार-बार संचरणसे हिली हुई तरंग-पंक्तियोंका शब्द हो रहा है; वायुसे नृत्य करती जलतरंगकी बूँदोंके फर-फर उड़नेसे दिन मेघाच्छन्न (ठंढा) बना रहता है; जलमें निःसन्देह उतरी हुई और जलक्रीड़ामें मग्न हुई वन-देवियोंके स्नान करनेके समय गिरे हुए केशोंके पुष्पोंसे वह सुगन्धित हुआ है; एक ओर उतरे हुए मुनियोंके कमण्डल भरनेसे होती हुई मधुर ध्वनिसे वह मनोहर लगता है।

१'''मधुद्रव, मधुबिन्दुनिष्यन्द''', मकरन्दबिन्दुबद्ध। २. आरसित'''। ३'''पतत्रिशत'''। ४'''चञ्चलित। ५. अनिलोल्लसित'''। ६. कल्लोलशिखरशीकरारचित। ७. रन्तः। ८. केशकुसुमैः। ९. कलध्वनि। १०. उन्मिषितः'''।

चारिभिः सवर्णतया रसितानुमेयैः कादम्ब-कदम्बकैरासेवितम् , अभिषेकावतीर्ण-पुलिन्दराज-सुन्दरी-कुच-चन्दनधूलि-धवलित-तरङ्गम् , उपान्त-जात-केतकी-रजःपटल-बद्ध-कूल-पुलिनम् , आसन्नाश्रमागत-तापस-क्षालितार्द्र-वल्कल-कषाय-पाटल-तट-जलम् , उपतट-विटपि-पल्लवपुटानिल-वीजितम् , अविरल-तमाल-वीथिकान्धकारिताभिः वालिनिर्वासितेन संचरता प्रति-

न्तीभिः, अत एव सवर्णतया श्वेतकमलकादम्बकदम्बकयोः सादृश्यतया रसितेन शब्देन अनुमेयैः अनुमातुं योग्यैः न तु पार्थक्येन चाक्षुषप्रत्यक्षगम्यैरित्याशयः, कादम्बकदम्बकैः कलहंससमूहैः आसेवितं समन्तात्पर्युपासितम्। 'कादम्बः कलहंसः स्यात्' 'स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम्' इत्यमरः। इह रसितानुमेयैरित्यनेन मीलितालङ्कारो ध्वन्यते, तथाहि दर्पणे—'मीलितं वस्तुनो गुप्तिः केनचित्तुल्यलक्ष्मणा'। एवञ्च वस्तुना अलङ्कारध्वनिरिति व्याख्यातारः।

अभिषेकेति। अभिषेकाय मज्जनार्थम् अवतीर्णाः सलिलान्तःप्रविष्टा याः पुलिन्दराजस्य शबराधिपतेः सुन्दर्यः कामिन्यः तासां ये कुचा वक्षोजाः तेषां चन्दनधूलिभिः लिप्त-शुष्क-मलयजपांसुभिः धवलिताः शुभ्रीकृताः तरङ्गा ऊर्मयो यस्य तत् तादृशम्। इह शुभ्ररूपसम्पादनसम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्तिः।

उपान्तेति। उपान्ते पानीयनिकटे जातानाम् उत्पन्नानां केतकीनां मालतीपुष्पाणां रजःपटलैः धूलिसमूहैः बद्धं रचितं कूले तटसमीपे पुलिनं सैकतं यस्य तत्। इह पूर्वोऽलङ्कारः।

आसन्नेति। आसन्नाः समीपवर्त्तिनो ये आश्रमा तपस्विस्थानानि तेभ्य आगतैरायातैः तापसैः मुनिजनैः क्षालितानां धौतानां आर्द्राणां जलाविलानां तत्क्षणं कर्त्तयित्वा नयनेन निर्यासाविर्भावादित्यभिप्रायः, वल्कलानां परिधेयवृक्षत्वचां कषायैः तुवरैः 'तुवरस्तु कषायोऽस्त्री' इत्यमरः, पाटलं श्वेतरक्तं 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः, तटजलं तीरान्तिकसलिलं यस्य तत् तादृशम्, तटनिकट एव क्षालनादित्याशयः।

उपेति। तटस्य समीपमुपतटम् तत्र उपतटे तीरनिकट इत्यर्थः, ये विटपिनः पादपाः तेषां पल्लवाः किसलयानि तैः यः अनिलो वायुः तेन वीजितं तालवृन्तवायुरिवाचरितम्।

अविरलेति। अविरला सान्द्रा या तमालवीथिका तापिच्छपङ्क्तिः 'कालस्कन्धस्तमालः स्यात्तापिच्छोऽपि' इत्यमरः, तया अन्धकारिताभिः कृतान्धकाराभिः। इतोऽग्रे तृतीयान्तानि बहुवचनपदानि वनराजिभिरित्यग्रिमस्य विशेषणानि।

वालीति। वालिना इन्द्रात्मजेन वानराधिपतिना निर्वासितेन राजधानीतो निष्कासितेन, प्रतिदिनं प्रत्यहं सञ्चरता तत्रागच्छता, ऋष्यमूकाख्यो गिरिस्तत्र वासिना निवसनशीलेन, सुग्रीवेण वाल्यनुजेन अवलुप्तानि दूरीकृतानि फलानि याभ्यः ताः, अत एव लघ्व्यः फलभाररहिताः लता व्रतत्यो यासु ताभिः तादृशीभिः।

पुरा कश्चन मायावीनामासुरः वालिसुग्रीवयोः सह रणं कुर्वाणः तयोः प्रहारेणात्यन्तखिन्नः केनचिद्बिलेनाधः प्रविष्टः। तदा वाली सुग्रीवमाह—'सुग्रीव! त्वं तावत् इहैव बिलमुखे तिष्ठ यावदहं तं निहत्यागच्छामि' इति विज्ञाप्य स्वयं तं हन्तुं तद्बिलमेव प्राविशत्, परन्तु व्यतीते बहुकाले तत्प्रतीक्षया तिष्ठन्नपि सुग्रीवः किं कर्तव्यमिदानीमित्येवं यावद्विचारयति तावदेव बिलमुखादाविर्भूतः शोणितः, अथ तं निरीक्ष्य

विकसित कमलोंके वनके मध्यमें भ्रमण करने और समान रंगके कारण केवल स्वरसे ही पहचाने जाते कलहंसोंसे वह अत्यधिक व्याप्त है। स्नान करनेके लिये उतरी हुई शबर (भिल्ल) राजकी सुन्दरियोंके स्तनोंके चन्दनकी रजसे उसकी तरंगें शुभ्रवर्ण हो गई हैं। समीप ही उगे हुए केवड़ेके परागसे उसके तीर रेतीले हो रहे हैं। समीपके आश्रममेंसे आये हुए ऋषियोंके वल्कलोंके धुलनेसे उसके तीरका जल मैला और गुलाबी हो गया है। तटके समीप उगे हुए वृक्षोंके पत्तोंमें होकर आती हुई हवाके कारण उसका जल स्थिर नहीं रहता है। उसके तीरपर वृक्षोंके कुंज लगातार बने हुए हैं। उनमें तमाल वृक्षोंकी कतारोंसे अँधेरा हो रहा है। वाली द्वारा निकाले जाकर फिरते हुए ऋष्यमूकवासी सुग्रीवके प्रतिदिन फल तोड़नेके कारण उनकी डालियाँ बहुत हलकी हो गई हैं। जलमें खड़े होकर तप करते हुए तपस्वी उनके फूलोंको देव-पूजाके कार्यमें लाते हैं। उड़ते हुए जलचर

१. कादम्बैः। २...शबरी... ३...धवलिततरम्। ४. 'जात' इति पाठः क्वचिन्नास्ति। ५. वृक्षपल्लवानिल...। ६. वीथ्यन्धकारिताभिः। ७. इह 'च' इत्यधिकः पाठः क्वचित्।

दिनमृष्यमूकवासिना सुग्रीवेणावलुप्त-फल-लघु-लताभिः, उदवासितापसानां देवतार्च्चनोपयुक्त-कुसुमाभिः उत्पतज्जलचर-पतङ्ग-पक्षपुट-विगलित-जल-बिन्दु-सेक-सुकुमार-किसलयाभिः लतामण्डप-तल-शिखण्डि-मण्डलारब्ध-ताण्डवाभिः अनेककुसुम-परिमल-वाहिनीभिर्वनदेवताभिः श्वास-वासिताभिरिव वनराजिभिरुपरुद्ध-तीरम्, अपरसागरशङ्किभिः सलिलमादातुमवतीर्णैर्जलधरैरिव बहल-पङ्क-मलिनैर्वनकरिभिरनवरतपीयमानसलिलम्, अगाधमनन्तमप्रतिमम् अपां निधानं पम्पाभिधानं पद्मसरः। यत्र च विकच-कुवलय-प्रभा-श्यामायमान-पक्ष-

'प्रायो मम भ्राता बाली तेन हत' इति निश्चित्य बिलमुखे बृहन्तमेकं प्रस्तरं स्थापयित्वा किष्किन्धायामागत्य बान्धवेभ्यस्तद्वृत्तान्तं निवेद्य स्वयमतिखिन्नो बालिराज्यं शशास। अथातीते कियत्समये बाली तदसुरं निहत्य तेनैव पथा प्रत्यावृत्तो बिलमुखे प्रस्तरं वीक्ष्य कुपितः पादाघातेन तं दूरीकृत्य किष्किन्धामागत्य सुग्रीवचरितमतिक्रूरमित्यवधार्य स्वराज्याद्बहिर्निष्कासयामास। सोऽपि तद्दुःखदुःखितः ऋष्यमूकगिरौ निवासमकरोदिति रामायणीया किष्किन्धाकाण्डीया कथा।

उदवासीति। उदके जले वसन्तीत्युदवासिनश्च ते तापसास्तपस्विनश्चेति तेषां तथोक्तानाम्, 'पेषंवासवाहनाधिषु च' इत्यनेनोदकस्योदादेशो ज्ञेयः। देवतार्चनेषु देवपूजासु उपयुक्तानि आवश्यकानि कुसुमानि पुष्पाणि यासु ताभिः तथोक्ताभिः।

उत्पतदिति। उत्पतन्त उड्डीय गच्छन्तो ये जलचराः नक्रझषाद्याः पतङ्गाः पक्षिणः तेषां पक्षपुटेभ्यः विगलिता च्युता ये जलबिन्दवः सलिलकणाः तैः सेकः सिञ्चनं तेन सुकुमाराणि विशेषमृदुलानि किसलयानि पल्लवानि यासां ताभिः तथोक्ताभिः।

लतेति। लतानां व्रततीनां ये मण्डपाः आच्छादितस्थानानि तेषां तलेषु अधःप्रदेशेषु शिखण्डिमण्डलेन मयूरगणेन आरब्धं प्रवर्त्तितं ताण्डवं नृत्यं यासु ताभिः तथोक्ताभिः, 'ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तने' इत्यमरः। इह वृत्त्यनुप्रासस्तल्लक्षणञ्चोक्तं प्राक्।

अनेकेति। अनेकेषां बहुप्रकाराणां कुसुमानां पुष्पाणां परिमलान् गन्धान् वहन्तीति ताः तादृशीभिः 'विमर्दोत्थे परिमलो गन्धे जनमनोहरे' इत्यमरः, अत एव वनदेवताभिः विपिनाधिष्ठातृदेवीभिः (कर्त्रीभिः) स्वश्वासेन स्वीयश्वासवायुना वासिताभिः सुगन्धीकृताभिरिव वर्तमानाभिः, वनराजिभिः वनपङ्क्तिभिः उपरुद्धानि व्याप्तानि तीराणि तटानि यस्य तत् तथोक्तम्, सरोविशेषणमिदम्। अत्र वासिताभिरिवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

अपरेति। 'अयम् अपरो भिन्नः सागरः समुद्रः' इति शङ्कमानं भ्रमं जनयन्तीति तैः तथोक्तैः, सलिलं जलम् आदातुं ग्रहीतुम् अवतीर्णैः गगनादुत्तरितैः जलधरैः वारिदैरिव बहलपङ्कैः शरीरलग्नाधिककर्दमैः मलिनाः श्यामाः तैः तथोक्तैः, वनकरिभिः आरण्यकहस्तिभिः अनवरतं निरन्तरम् आपीयमानानि समन्तात्पानं क्रियमाणानि सलिलानि पानीयानि यस्य तत् तादृशम्। अत्र जलधरैरिवेति जातिस्वरूपोत्प्रेक्षा।

अगाधमिति। अगाधम् अप्राप्ततलम् अनन्तं शेषरहितम् अतिमहदित्यर्थः अप्रतिमं स्वसादृश्यरहितम्, अपां जलानां निधानं शेवधिस्वरूपम् अपरिमितसलिलयुक्तत्वादित्याशयः। 'पम्पा' इति अभिधानं नामधेयं यस्य तत्, पद्मानां कमलानामाकरीभूतं सरः कासारः पद्मसरः। अन्वयस्तु प्रागेवोक्तः।

यत्रेति। यत्र यस्मिन् पम्पासरसि, विकचानि विकसितानि यानि कुवलयानि नीलोत्पलानि 'नीलो-

पक्षियोंके परोंमें से गिरती हुई जलकी बूंदें पड़नेसे उनकी छोटी-छोटी शाखाएं (टहनियाँ) नरम हो गई हैं। लतामण्डपोंके नीचे मोरोंके झुण्ड नाच रहे हैं और अगणित फूलोंकी सुगन्ध निकलनेके कारण वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वन-देवियोंके श्वाससे सुगन्धित हुए हों। उस सरोवरको दूसरा समुद्र समझ कर जल लेनेके लिए आये हुए मेघके मान, घनी कीचड़से मलिन हुए जंगली हाथी उसका जल दिन रात पीते हैं। वहाँ बीच-बीचमें चकवा-चकवी घूमते हैं। विकसित नील कमलोंकी प्रभासे उनके पंख नील वर्ण हो जाते हैं, वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो साक्षात् रामके शापसे ग्रस्त हों।

१. परिलघु। २. 'पतङ्ग' इति पाठः क्वचिन्नास्ति। ३. 'स्थित' इत्यधिकः पाठः क्वापि। ४. वनदेवतानिःश्वास, वनदेवताभिः स्वश्वासः। ५. रुद्ध···। ६. आपीयमानम्। ७. अप्रतिष्ठम्। ८. 'च' इति पाठः क्वापि नास्ति।

पुटान्यद्यापि मूर्त्तिमद्रामशापग्रस्तानीव मध्यचारिणामालोक्यन्ते चक्रवाकनाम्नां मिथुनानि।

तस्यैव पद्मसरसः पश्चिमे तीरे राघव-शर-प्रहार-जर्जरित-जीर्ण-तालतरु-षण्डस्य च समीपे दिग्गज-करदण्डानुकारिणा जरदजगरेण सततमावेष्टितमूलतया बद्धमहालवाल इव तुङ्ग-स्कन्धावलम्बिभिरनिलवेल्लितैरहिनिर्मोकैर्धृतोत्तरीय इव दिक्चक्रवाल-परिमाणमिव गृह्णता भुवनान्तरालविप्रकीर्णेन शाखासंचयेन प्रलयकाल-ताण्डव-प्रसारित-भुजसहस्रमुडुप-

त्पलं कुवलयम्' इत्यमरः, तेषां याः प्रभाः कान्तयः ताभिः श्यामायमानानि निकटसञ्चरणात् श्यामवदाचरमाणानि पक्षपुटानि येषां तानि तथोक्तानि। मध्यचारिणां पम्पासरोवरान्तर्भ्रमणकारिणां चक्रवाकनाम्नां रथाङ्गसंज्ञकानां पक्षिणां पतत्रिणां मिथुनानि युगलानि, अद्यापि एतावत्समयपर्यन्तमपि मूर्त्तिमान् देदीप्यमानरूपो यो रामस्य दशरथतनयस्य शापः अभिसम्पातः तेन ग्रस्तानि गृहीतानीव आलोक्यन्ते दृश्यन्ते, तत्र विद्यमानैर्लोकैरिति शेषः।

इह रामशापश्यामायमानपक्षपुटत्वेन ग्रस्तानीवेति वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा। यद्यपि 'मालिन्यं व्योम्नि पापे' इति कविसमयप्रसिद्ध्या पापस्यैव मलिनत्वेन वर्णनं विहितं न तु शापस्य, तथापि तत्साहश्यतयैव तथा वर्णनं कृतमित्यवधेयम्। इह च 'पम्पातटे सीताविरहविह्वलं दाशरथिं वीक्ष्य चक्रवाकः हासं विदधुः ततस्तानेवं निरीक्ष्य 'यथा मां प्रियाविश्लेषः तथैव भवतामपि क्षपायां भविष्यति' इति रामः शशापेत्यैतिहासिकी वार्त्ता।

तस्यैवेति। तस्य पम्पाभिधेयस्यैव पद्मसरसः कमलकासारस्य, पश्चिमे तीरे प्रतीच्यां तटे, राघवस्य रामस्य ये शरा बाणाः तेषां प्रहारेण वेधनेन जर्जरितानां विदारितानां जीर्णानां प्राचीनानां तालतरूणां तालद्रुमाणां षण्डस्य समुदायस्य समीपे महान् महीयान् जीर्णः पुरातनः शाल्मलीवृक्षः रोचनाख्यस्तरुरस्तीत्यग्रिमेण सम्बन्धः। अत्र प्रथमान्तानि पदानि शाल्मलीवृक्षविशेषणानि बोध्यानि। दिक्षु स्थितो गज ऐरावतादिः, तथा चामरः—'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः। पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः॥' तस्य यः करदण्डः शुण्डादण्डः तमनुकर्त्तुं शीलं यस्य तेन तथोक्तेन, तत्तुल्यविशालेनेत्यर्थः, जरन् वृद्धो योऽजगरस्तन्नामकः पृथुलसर्पः तेन तादृशेन, बद्धं रचितं महत् दीर्घम् आलवालम् आवापः मूले सलिलानिर्गमनार्थखातमृत्परिवेष्टनमित्यर्थः, यस्य स तथोक्त इव। इह दिग्गजेत्यत्र समासगता आर्थी लुप्तोपमा, आलवाल इवेति वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा च, उभयोरप्यङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

पुरा हि वालिना राज्याद्बहिर्निष्काशित ऋष्यमूकगिरिस्थः वालिवधमिच्छन् हनूमद्द्वारा कृतराममैत्री सुग्रीवः वालिवधोपयोगि सामर्थ्यं भगवति रामचन्द्रेऽस्ति न वेति सन्दिहानः तत्परीक्षणार्थं स्वेन प्रेरितो रामचन्द्रः एकेनैव बाणेन पङ्क्तिबद्धान् सप्ततालवृक्षान् विदारयामास इति रामायणीया कथा।

तुङ्गेति। तुङ्गम् उन्नतं स्कन्धं प्रकाण्डभागम् अंशभागञ्च अवलम्बितुम् आधारं कृत्वा लम्बमानीभवितुं शीलं येषां तैः तथोक्तैः अनिलवेल्लितैः पवनचालितैः अहिनिर्मोकैः सर्पकञ्चुकैः धृतोत्तरीय इव गृहीतोपसंव्यानवस्त्र इव। क्रियोत्प्रेक्षा।

दिक्चक्रेति। दिशां ककुभां चक्रवालं मण्डलं तस्य परिमाणम् इयत्ता परिमितं गृह्णतेव जायमानेनेव यद्वा विदधतेव, भुवनान्तराले संसारमध्यभागे विप्रकीर्णं इतस्ततो विस्तारितः तेन, शाखासञ्चयेन लतासंदोहेन 'शिखाशाखालताः समाः' इत्यमरः, प्रलयकाले कल्पान्तसमये यत् ताण्डवम् उद्धतनृत्यं तत्र

(जब रामचन्द्र सीताके विरहमें विलाप कर रहे थे तब चक्रवाक उन पर हँसे। यह देखकर रामचन्द्रने क्रुद्ध होकर उनको अभिशाप दिया कि मेरे समान तुम्हें भी प्रियाके विरहका दुःख होगा)।

उस पद्माकर पम्पासरोवरके पश्चिम किनारे पर—रामके बाण प्रहारसे जर्जरित हुए पुराने ताल वृक्षोंके कुञ्जके समीप—एक बड़ा सेमरका वृक्ष है। उसकी जड़के आस-पास एक बूढ़ा—दिग्गजकी सूँड़के समान—अजगर (सर्प) सदा लिपटा रहता है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है मानो एक बड़ा थाँवला (कियारी) निर्माण किया गया हो। ऊँचे गुद्दों पर लटकती और वायुसे हिलती साँपकी काँचलियोंका मानोउस ने उत्तरीयवस्त्र (दुपट्टा) धारण किया है। उसकी डालियाँ अन्तरिक्षमें फैल रही हैं, वे मानो दिशाओंका मण्डल नाप रही हैं। प्रलयकालके भीषण ताण्डव नृत्यमें फैलाए गए सहस्र भुजावाले महादेवजीका मानो वह इस प्रकारकी डालियोंसे अनुकरण

१. मध्यचारिणालोक्यन्ते। २. चक्रनाम्नां। ३. तस्यैवंविधस्य सरसः। ४. बालतरुखण्डस्य।

ति शेखरमिव विडम्बयितुमुद्यतः, पुराणतया पतनभयादिव गगनस्कन्ध-लग्नः निखिल-शरीर-व्यापिनीभिरतिदूरोन्नताभिर्जीर्णतया शिराभिरिव परिगतो व्रततिभिः, जरा-तिलकबिन्दुभिरिव कण्टकैराचिततनुः इतस्ततः परिपीतसागरसलिलैर्गगनागतैः पत्ररथैरिव शाखान्तरेषु निलीयमानैः क्षणमम्बुभारालसैरार्द्रीकृतपल्लवैर्जलधरपटलैरप्यदृष्टशिखरः, तुङ्गतया नन्दनवन-श्रियमिवावलोकयितुमभ्युद्यतः, स्वसमीपवर्त्तिनामुपरि संचरतां गगनतलगमन-खेदायासितानां

प्रसारितम् इतस्ततो विपर्यस्तं भुजसहस्रं अनेकतरबाहवो येन स तं तादृशम् उडुपतिः तारापतिश्चन्द्रः शेखरो मस्तकालङ्कारो यस्य तं महादेवं विडम्बयितुम् अनुकरणं विधातुम् उद्यतः कृतप्रयत्न इव। इह गृहतेवेति उद्यत इवेति वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा, विडम्बयितुमित्यार्थी उपमा, तत्र परस्परमेषामङ्गाङ्गिभावः सङ्करः।

पुराणेति। पुराणतया पुरातनतया पतनभयादिव स्खलनशङ्कयेव वायुः पवनः स्कन्धे प्रकाण्डे लग्नः यस्य तादृशः। एतेन प्रकाण्डेषु वायुप्रवेगेन प्रकम्पो द्योतितः। इह समासोक्तिहेतूत्प्रेक्षयोः सङ्करः।

निखिलेति। निखिलं समस्तं यत् शरीरं वपुः तद् व्याप्तुं शीलं यासां तादृशीभिः, अतिदूरोन्नताभिः अतिविप्रकृष्टमुत्थिताभिः, वृद्धत्वेनातिरिक्तमुत्पन्नाभिश्च; जीर्णतया प्राचीनतया (वृद्धावस्थया) शिराभिरिव अस्थिबन्धनैरिव व्रततिभिः लताभिः 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः, परिगतः परिवेष्टितः।

जरेति। जरायां वृद्धावस्थायां ये तिलकबिन्दवः समग्रशरीरेषु उत्पद्यमाना श्यामवर्णाश्चिह्नविशेषाः तैरिव कण्टकैः क्षुद्रशत्रुभिः आचिता व्याप्ता तनुः देहो यस्य स तथोक्तः। 'कण्टकः क्षुद्रशत्रौ च' इति विश्वः।

इत इति। परिपीतानि सागराणां समुद्राणां सलिलानि तोयानि यैस्तैः इतस्ततः समन्तात् गमनागतैः विहायसपथोपस्थितैः, पत्ररथैः पक्षिभिरिव 'पतत्पत्ररथाण्डजाः' इत्यमरः। शाखानां स्कन्धानाम् अन्तरेषु मध्येषु क्षणं क्षणमात्रं निलीयमानैः गुप्ततया स्थितवद्भिः, अम्बुभारेण पीतसलिलभारेण अलसैः मन्थरगामिभिः, आर्द्रीकृतानि वर्षणेन क्लिन्नानि पल्लवानि अधःकिसलयानि यैस्ते तैः, जलधरपटलैः मेघसमूहैरपि न दृष्टम् अत्युन्नततया नेक्षितं शिखरं प्रान्तप्रदेशो यस्य स तथोक्तः। अत्र पत्ररथैरिवेति वाच्योपमालङ्कारः, जलधरपटलानां शिखरावलोकनसम्बन्धासत्त्वेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्त्यलङ्कारश्चैत्युभयोः सङ्करः। अतिशयाभिधानेन चात्युन्नतत्वं गम्यते इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः।

तुङ्गेति। तुङ्गतया उन्नततया 'उच्चप्रांशून्नतोदग्रोच्छ्रितास्तुङ्गे' इत्यमरः, नन्दनवनम् इन्द्रोद्यानम् 'अथ नन्दनम्, इन्द्रोद्याने नन्दनस्तु तनये हर्षकारिणि' इति हैमः, तस्य या श्रीः शोभा ताम् अवलोकयितुमिव वीक्षितुमिव अभ्युद्यतः तत्परः। अत्र अवलोकयितुमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

स्वसमीपेति। स्वसमीपवर्त्तिनां निजान्तिकस्थायिनाम् उपरि ऊर्ध्वं सञ्चरतां गच्छताम्, गगनतले आकाशतले गमनेन सञ्चारेण यः खेदः परिश्रमः तेन आयासितानां खेदमुपगतानां रविरथतुरङ्गमाणां सूर्यरथनियुक्ताश्वानां सृक्काभ्याम्-ओष्ठप्रान्ताभ्यां 'प्रान्तावोष्ठस्य सृक्कणी' इत्यमरः, परिस्रुतैः पतितैः, सन्देहितः'अयमेतद्वृक्षोत्पन्नः तूलसमुदायो न वा' एवमात्मनि सन्देहविषयीकृतः तूलराशिः कार्पासकपिण्डो

कर रहा है। प्राचीन होनेके कारण मानो गिर पड़नेके भयसे उसने आकाशका अवलम्बन लिया है। दूर-दूर तक फैली हुई लम्बी-लम्बी लताएँ उसके समस्त शरीर पर व्याप्त हैं। वे ऐसी प्रतीत होती हैं मानो जीर्णताके कारण शिरासमूह (नसें) दीखता हो। उसका शरीर कण्टकोंसे व्याप्त है। वे कण्टक वृद्धावस्थाके काले-काले चिह्नके समान देखनेमें आते हैं। जलके भारसे मन्द मन्द चलते मेघमण्डल उसकी शाखाओंमें क्षण भरके लिये ठहर जाते हैं और निम्नवर्ती पत्तोंको भिगो देते हैं, किन्तु उसकी चोटीतक नहीं पहुँच सकते। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो समुद्रका जल पीकर आकाशमें उतरे पक्षी हों। वह अत्यधिक उन्नत है, उसे देखकर ऐसा मालूम पड़ता है मानो वह नन्दन-वनकी शोभा देखनेका प्रयत्न करता हो। उसके शिखर (चोटी) की टहनियाँ रूईके गालोंसे शुभ्रवर्ण हो गई हैं, उनसे ऐसा सन्देह होता है मानो आकाशमें गमन करनेसे परिश्रान्त हुए—उसके

---

१. उडुपति शकलशेखरमिव। २. पवनस्कन्ध, '''वायुस्कन्ध'''। ३. निजकण्टकैः। ४. जलैः। ५. शाखान्तदेशेषु। ६'''शिखरदेशः। ७. उत्तुङ्गतया। ८. समीप। ९. अम्बरतल।

रविरथतुरङ्गमाणां सृक्कपरिस्रुतैः फेनपटलैः सन्देहित-तूलराशिभिर्धवलीकृतशिखरशाखः, वनगज-कपोलकण्डूयन-लग्नमदं-निलीन-मत्तमधुकरमालेन लोहशृङ्खलाबन्धननिश्चलेनेव कल्पस्थायिना मूलेन समुपेतः, कोटराभ्यन्तरनिविष्टैः स्फुरद्भिः सजीव इव मधुकरपटलैः, दुर्योधन इवोपलक्षित-शकुनिपक्षपातः, नलिननाभ इव वनमालोपगूढः, नवजलधरव्यूह इव नभसि दर्शितोन्नतिः, अखिलभुवनतलावलोकनप्रासाद इव वनदेवतानाम्, अधिपतिरिव

यैस्तैः फेनपटलैः श्वेतकफसमूहैः धवलीकृताः, श्वेतीकृताः शिखरशाखा अग्रस्थायिन्यः शाखा यस्य सः। इहोक्तविधफेनपटलैरग्रस्थायिशाखानां श्वेतीकरणसम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्तिः, अत एव चात्युन्नतत्वं गम्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः ।

वनगजेति । वनगजानाम् आरण्यकहस्तिनां कपोलयोः गण्डयोः कण्डूयनेन खर्जूयनेन लग्नेषु सक्तेषु मदेषु दानवारिषु निलीना अवस्थिता मत्ताः मधुपानेन क्षीवा मधुकरमाला भ्रमरपङ्क्तयो यत्र तेन तादृशेन 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' इत्युपसर्जनह्रस्वः, अत एव लोहशृङ्खलया लोहनिगडेन 'अथ शृंखला, अन्दुको निगडोऽस्त्री स्यात्' इत्यमरः, यद्बन्धनं नियन्त्रणं तेन निश्चलं स्थिरं तेनेव विद्यमानेन, कल्पस्थायिना प्रलयसमयं यावत् तिष्ठता मूलेन समुपेतः संयुक्तः । इह काव्यलिङ्गगुणोत्प्रेक्षयोः सङ्करः ।

कोटरेति । कोटराभ्यन्तरे शरीरस्थछिद्रमध्ये निविष्टैः निलीनैः स्फुरद्भिः दीप्यमानैः मधुकरपटलैः भ्रमरवृन्दैः सजीव इव श्वासादिप्राणयुक्त इव कोटरे प्राणवन्मधुकराणां निरन्तरस्पन्दनादित्याशयः । इह गुणोत्प्रेक्षा ।

दुर्योधन इति । दुर्योधनो धृतराष्ट्रप्रथमसुतः तद्वदिव, उपलक्षितो जनैर्लोचनविषयीकृतः शकुनीनां पक्षिणां पक्षैः छदैः पातः पतनं यस्मिन् स तादृशः, पक्षे उपलक्षितः जनैर्लोचनविषयीकृतः शकुनौ गान्धाराधिपतौ मातुले पक्षपातः प्रणयो यस्य स तथोक्तः । इह पूर्णोपमा ।

नलिनेति । नलिनं कमलं नाभौ यस्य स विष्णुरिव, वनमालया अरण्यपंक्त्या उपगूढ आच्छादितः, पक्षे वनमाला जानुपर्यन्तावलम्बिनी सर्वर्तुपुष्पोज्ज्वला मध्ये स्थूलकदम्बाढ्या तया स्रजा उपगूढ आश्लिष्टः इहापि पूर्ववदेवालङ्कारः । वनमालालक्षणमाह—

'आजानुलम्बिनी माला सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वला । मध्ये स्थूलकदम्बाढ्या वनमालेति कीर्त्तिता ॥'

नवेति । नवा नूतना ये जलधरा मेघाः तेषां व्यूहो मण्डलं तद्वदिव, नभसि व्योम्नि दर्शिता प्रकटिता उन्नतिः उच्चत्वं येन स तथोक्तः, पक्षे नभसि श्रावणे मासि दर्शिता प्रकटिता उन्नतिः वृद्धिर्येन स तादृशः । 'नभः खं श्रावणो नभाः' इत्यमरः । अत्रापि पूर्ववदेवालङ्कार इति केचित्, तत्त्वविदस्तु उपरितनेष्वभङ्गश्लेष एवेत्याहुः ।

अखिलेति । अखिलानि समस्तानि यानि भुवनतलानि जगन्ति तेषाम् अवलोकनं निरीक्षणं तदर्थं प्रासादो राजभवनमिव अत्युन्नतत्वादित्याशयः । वनदेवतानाम् अरण्याधिष्ठात्रीणां देवीनाम् । दण्डकारण्यस्य दण्डकाभिधवनस्य अधिपतिः स्वामी इव मुख्यत्वादित्यभिप्रायः । सर्ववनस्पतीनां पुष्पं विना फलं

समीप ही समीप ऊपर गमन करने वाले—सूर्यके रथके घोड़ेके ओठोंके प्रान्तभागमें से निःसृत हुए फेन (झाग) हों । बनैले हाथियोंके गण्डस्थल घिसनेसे उसकी जड़पर मद चिपक जाता है, उसपर मतवाले भौंरे बैठे रहते हैं : उनसे ऐसा प्रतीत होता है मानो उसकी जड़ लोहेकी शृंखला (जंजीर) बाँधनेसे निश्चल होकर कल्पस्थायिनी हो गई हो । कोटरों (खोखलों) के अभ्यन्तर प्रविष्ट हुए चञ्चल भौंरोंसे वह वृक्ष सजीव प्रतीत होता है । दुर्योधन जैसे अपने मामा शकुनिका पक्षपात करता था वैसे ही वहाँ पक्षियोंके पक्षपात (पंख द्वारा उतरना) होते थे । विष्णु भगवान् वनमालासे जैसे युक्त हैं, वैसे ही वह वनकी कतारोंसे घिरा हुआ है । नवीन मेघ जैसे श्रावणके महीनेमें उन्नत होते हैं, वैसे वह आकाशमें अपनी उच्चता दिखाता है । वन देवियोंके समस्त भुवन-तल

१. मदसलिल । २. वन्धननिश्चलेनेव । ३. पतद्भिः । ४. पद्मनाभ इवा । ५. कृतोन्नतिः ।

दण्डकारण्यस्य, नायक इव सर्ववनस्पतीनाम्, सखेव विन्ध्यस्य[1], शाखाबाहुभिरुपगुह्येव[2] विन्ध्याटवीमवस्थितो[3] महान् जीर्णः शाल्मलीवृक्षः[4]।

तत्र च शाखाग्रेषु कोटरोदरेषु पल्लवान्तरेषु स्कन्धसन्धिषु जीर्णवल्कल[5]विवरेषु च[6] महावकाशतया विश्रब्ध-विरचित-कुलायसहस्राणि दुरारोहतया विगलित[7]विनाशभयानि नाना-देशसमागतानि शुक-शकुनिकुलानि प्रतिवसन्ति स्म। यैः परिणामविरलदल[8]संहतिरपि स वनस्पतिरविरल-दल-निचय-श्यामल[9] इवोपलक्ष्यते दिवानिशं निलीनैः।

ते च तस्मिन्[10] वनस्पतावतिवाह्यातिवाह्य रजनी[11]मात्म[12]नीडेषु प्रतिदिनमुत्थायाहारा-

---

येषामेवंविधसर्वतरूणाम् 'वनस्पतिर्वृक्षमात्रे विना पुष्पफलद्रुमे' इति विश्वः। नायकः अध्यक्ष इव, अत्रापि मुख्यत्वादित्याशयः। विन्ध्यस्य जालवालकपर्वतस्य सखा सुहृत् स इव तत्तुल्योन्नतत्वादित्याशयः। इह सर्वत्र जात्युत्प्रेक्षा। शाखा स्कन्धा एव बाहवो भुजाः तैः विन्ध्याटवीं विन्ध्यभूमिम् उपगुह्येव आश्लिष्येव अवस्थितः विद्यमानः। इह निरङ्गं केवलरूपकम्, तथा क्रियोत्प्रेक्षा च अनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

तत्रेति। तत्र तस्मिन् शाल्मलीवृक्षे शाखाग्रेषु शालप्रान्तेषु कोटरोदरेषु शरीरस्थछिद्राभ्यन्तरेषु पल्लवान्तरेषु किसलयमध्येषु स्कन्धसन्धिषु प्रकाण्डबन्धेषु जीर्णानि प्राचीनानि यानि वल्कलानि त्वचानि तेषां विवरेषु छिद्रेषु, महान् अतिदीर्घः अवकाशः अन्तर्विस्तारः येषां तेषां भावस्तया तथोक्तया विश्रब्धं सविश्वासं निःसन्देहं यथा स्यात्तथा विरचितानि निर्मितानि कुलायसहस्राणि नीडसङ्घा यैस्तानि तथोक्तानि दुःखेन अत्यन्तोन्नतत्वात् क्लेशेन आरुह्यत इति दुरारोहः तस्य भावः तत्ता तया विगलितं ह्रद-याद् प्रच्युतं विनाशभयं रुजादिभ्यो मृत्युभयं येषां तानि, नानादेशेभ्यो भिन्नभिन्नप्रान्तेभ्यः समागतानि सम्प्राप्तानि, शुकाः कीराः शकुनयस्तदतिरिक्ताः पतत्त्रिणः तेषां कुलानि समूहानि प्रतिवसन्ति स्म वासं कुर्वन्ति स्म।

यैरिति। दिवानिशं रात्रिन्दिवं नीलीनैः स्थितैः यैः शकुनिकुलैः, परिणामेन पुरातनतया विरलाः स्वल्पाः दलसंहतिः पत्रसमुदायो यत्र स तथोक्तोऽपि तरुणवृक्षवदभिनवदलानां सान्द्रत्वेनोत्पन्नत्वाभावात् जीर्णदलानाञ्च यथाक्रमं ह्रासादित्याशयः, स वनस्पतिः शाल्मलीतरुः, अविरलानि सान्द्राणि यानि दलानि पर्णानि तेषां संहतिः समूहः तेन श्यामलः कृष्णवर्ण इव उपलक्ष्यते जनैरवलोक्यते, तत्र तत्र निलीनानां शुकशकुनीनां दलवत् कृष्णवर्णत्वादित्याशयः। इह श्यामलत्वं गुण इति तस्योत्प्रेक्षणाद्गुणोत्प्रेक्षालङ्कारः।

ते चेति। ते शुकशकुनयः, 'विचरन्ति स्म' इत्यग्रिमेणान्वयः। अत्र प्रथमान्तपदानि 'ते' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि। तस्मिन् शाल्मलीवृक्षे आत्मनीडेषु निजनिजकुलायेषु 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यमरः, निशां रात्रिम् अतिवाह्य अतिक्रम्य प्रतिदिनं प्रत्यहम् उत्थायोत्थाय उत्थानं विधायेत्यर्थः आहारान्वेषणाय भक्ष्यमार्गणाय नभसि आकाशे विरचिता कृता पंक्तिः श्रेणी यैस्ते तथोक्ताः। मदेन मधु-

---

देखनेका मानो वह अत्युन्नत प्रासाद (महल) है। दण्डकारण्यका मानो वह अधिपति है। समस्त वनस्पतियोंका मानो अधिनायक है। विन्ध्याचलका मानो मित्र है और अपनी शाखारूप भुजाओंसे समस्त विन्ध्य-वनको मानों आलिंगन किए हुए है।

उस वृक्षकी डालियोंके अग्रभाग पर, खोखलोंके अभ्यन्तर, पत्तोंके बीचमें, गुद्दोंकी सन्धियोंमें और पुरानी छालके छेदोंमें स्थान अधिक होनेके कारण, निःसन्देह हजारों घोंसले (पक्षियोंके वासस्थान) बना कर देश-देशान्तरसे आए हुए तोते आदि पक्षियोंके समूह रहते थे। उसपर किसीका चढ़ना अत्यन्त कठिन था, इसीलिए उनको अपने विनाशका भय किसी प्रकारका नहीं था। वहाँ दिन-रात उनके रहनेसे वह वनस्पति जीर्णावस्थाके कारण थोड़े पत्त रह जानेपर भी अनेक पत्तोंसे श्यामवर्ण सा देखनेमें आ रहा था। वे उसमें बनाये अपने-अपने

---

१. विन्ध्याचलस्य। २. उपगूह्येव। ३. स्थितः। ४. शाल्मली। ५. वल्क। ६. 'च इति पाठः क्वचिन्नास्ति। ७. विगतविनाशभयानि, विगतभयानि। ८. विरलसंहतिः, विरलदलसन्ततिः। ९. श्यामः। १०. तस्मिन् वनस्पतावतिवाह्य। ११. निशाम्। १२. आत्मनो नीडेषु।

न्वेषणाय नभसि विरचितपङ्क्तयो मदकल-हलधर[१]-हलमुखोत्क्षेप-विकीर्ण[२]बहुस्रोतसमम्बरतले कलिन्दकन्यामिव दर्शयन्तः, सुरगजोन्मूलित-विगलदाकाशगङ्गा-कमलिनीशङ्कामुपजनयन्तः[३], दिवस-कर-रथतुरग-प्रभानुलिप्तमिव[४] गगनतलमुपपादयन्तः, सञ्चारिणीमिव मरकतस्थलीं विडम्बयन्तः[५], शैवलपल्लवावलीमिवाम्बरसरसि प्रसारयन्तः, गगनवितितैः[६] पक्षपुटैः कदलीदलैरिव दिनकर-खर[७]-कर-निकर-परिखेदितान्याशामुखानि[८] वीजयन्तः[९], वियति विसारिणीं[१०] शष्पवीथीमिवारचयन्तः, सेन्द्रायुधमिवान्तरिक्षमादधाना विचरन्ति स्म[११] शुकशकुनयः।

पानेन कलो मत्तो यो हलधरो बलरामः तस्य हलमुखेन लाङ्गलप्रदेशेन य उत्क्षेपः उर्ध्वदेशे क्षेपणं तेन विकीर्णानि विक्षिप्तानि बहूनि स्रोतांसि प्रवाहा यस्याः तां तथोक्तां कलिन्दकन्यां यमुनामिव अम्बरतले गगने दर्शयन्तः दर्शनीयतां प्रापयन्तः । इह कालिन्दीद्रव्यस्वरूपोत्प्रेक्षणात् द्रव्योत्प्रेक्षालङ्कारः । अत्रत्यवृत्तान्तस्तु प्रागेव प्रतिपादितः ।

सुरगजेति । सुरगजेन देवहस्तिना ऐरावतेनेत्यर्थः उन्मूलिता उत्पाटिता अत एव विगलन्ती अधः पतन्ती या आकाशगङ्गा मन्दाकिनी 'मन्दाकिनी वियद्गङ्गा' इत्यमरः, तस्याः कमलिनी पद्मिनी तस्याः शङ्काम् स्वेषु परेषां भ्रान्तिम् उपजनयन्तः उत्पादयन्तः तुल्यकृष्णवर्णत्वादित्याशयः । एवञ्चात्र भ्रान्तिमान् नामालङ्कारः स्पष्ट एव ।

दिवसेति । गगनतलम् आकाशतलम्, दिवसकरस्य आदित्यस्य ये रथतुरगाः स्यन्दनयोजितसप्ताश्वाः तेषां प्रभाभिः श्यामरूपाभिः दीप्तिभिः अनुलिप्तं लेपनविषयीकृतमिव उपपादयन्तः विदधतः निजकान्तिभिरित्याशयः । इह अनुलिप्तमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा ।

सञ्चारिणीति । सञ्चारिणीं पर्यटनशीलां मरकतस्थलीं नीलमणिभूमिं विडम्बयन्तः अनुकुर्वन्त इव स्वकीयानामपि नीलवर्णत्वादित्याशयः । इहाऽप्युक्तालङ्कारः ।

शैवलेति । अम्बरं गगनमेव सरः स्वच्छत्वाद्विपुलत्वाच्च 'कासारः सरसी सरः' इत्यमरः, तत्र शैवलपल्लवस्य शैवालकिसलयस्य आवलीं पंक्तिं प्रसारयन्तः विस्तारयन्त इव स्वेषां शैवालकिसलयवत् श्यामरूपत्वात् ह्रस्वह्रस्वत्वाच्चेत्याशयः । इह अम्बरमेव सर इति निरङ्गकेवलरूपकम् , प्रसारयन्त इवेति क्रियोत्प्रेक्षा चेत्यनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः ।

गगनेति । कदलीदलानि रम्भापत्राणि तैरिव श्यामरूपत्वादित्याशयः । गगने आकाशे विततैः विस्तृतैः पक्षपुटैः पक्षच्छदैः, दिनकरस्य आदित्यस्य खराः तीक्ष्णाः ये करनिकराः किरणसमूहाः तैः परिखेदितानि संक्लेशितानि आशामुखानि दिग्वदनानि वीजयन्तः स्वोत्पन्नपवनस्पर्शयुतं सम्पादयन्तः । इह कदलीदलैरिवेत्युपमा ।

वियतीति । वियति अम्बरे विसारिणीं विस्तारिणीं शष्पवीथीम् अभिनवतृणपङ्क्तिम् आरचयन्तः निर्माणं कुर्वन्त इव तृणपङ्क्तिवत् निजपङ्क्तेरपि श्यामरूपत्वाद्विस्तृतत्वाच्चेत्याशयः । इह आरचयन्त इवेति क्रियोत्प्रेक्षा ।

सेन्द्रेति । अन्तरिक्षम् अम्बरं सेन्द्रायुधं शक्रधनुषा सह विद्यमानमिव 'इन्द्रायुधं शक्रधनुः' इत्यमरः, आदधानाः कुर्वाणाः, निजपङ्क्त्या विविधरूपत्वादित्याशयः । इह सेन्द्रायुधमिति गुणोत्प्रेक्षा ।

घोंसलोंमें रात बिताकर, प्रतिदिन प्रातः उठकर, आहारके अन्वेषणके लिये गगनतलमें मण्डल (गोल) बाँधकर उड़ा करते थे, और इस प्रकार प्रतीत होते थे जैसे उन्मत्त कृष्णाग्रज बलरामके हलके अग्रभागसे ऊपर फेंकी गई यमुना गगनतलमें बहुतसे प्रवाहोंमें बहती हो, ऐरावतके उन्मूलन कर (उखाड़) डालनेसे गिरी हुई मंदाकिनीकी कमलिनियाँ हों, और अम्बरतलको सूर्य-रथके घोड़ोंकी प्रभासे लीप दिया हो। वे चलती हुई मरकत-मणिकी भूमिका अनुकरण करते थे, शैवलके पत्तोंकी पंक्ति मानो गगन-रूपी सरोवरमें फैलाते थे। केलेके पत्तोंके समान अपने परोंको गगनमें फैलानेसे वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो सूर्यकी उष्ण रश्मियोंसे खिन्न हुए दिशाओंके मुखको पंखा कर रहे हों। वे उड़नेमें ऐसे देखनेमें आ रहे थे मानो आकाशमें कोई दूबका खेत उड़ा चला जाता हो और

१. बलभद्रहलमुखाक्षेप। २. विप्रकीर्ण। ३. उत्पादयन्तः। ४. अनुलिप्तगगनतलम्। ५. प्रदर्शयन्तः। ६. गगनावततैः। ७. 'खर' इति पाठः क्वचिन्न। ८. परिखेदिताशामुखानि। ९. परिवीजयन्तः। १०. विस्तारिणीं। ११. 'विचरन्ति स्म' एतावानेव क्वचिदुपलभ्यते। १२. कलमफलविकारान्।

कृताहाराश्च पुनः प्रतिनिवृत्त्यात्मकुलायावस्थितेभ्यः शावकेभ्यो विविधान् फलरसान्[1] कलममञ्जरी-विकारांश्च प्रहत-हरिण-रुधिरानुरक्त-शार्दूलनखकोटिपाटलेन चञ्चुपुटेन दत्त्वा[2] अधरीकृत-सर्वस्नेहेनासाधारणेन गुरुणापत्यप्रेम्णा तस्मिन्नेव[3] क्रोडान्तर्निहिततनयाः पाः क्षपयन्ति स्म।

एकस्मिंश्च जीर्णकोटरे जायया सह[4] निवसतः पश्चिमे वयसि वर्तमानस्य कथमपि पितुरहमेवै[5]को[6] विधिवशात् सूनुरभवम्। अतिप्रबलया[7] चाभिभूता ममैव जायमानस्य प्रसववेदनया जननी मे लोकान्तरमगमत्[8]। अभिमतजायाविनाशदुःखितोऽपि[9] खलु तातः सुतस्नेहादन्त[10]र्निगृह्य पटुप्रसरमपि शोक[11]मेकाकी मत्संवर्धनपर एवाभवत्। अतिपरिणत[12]वयाश्च कुश-

कृताहारा इति। कृतो विहित आहारो भोजनं यैस्ते तथोक्ताः, पुनः स्वभोजनानन्तरं भूयः प्रतिनिवृत्य परावृत्य, आत्मीया निजा ये कुलाया नीडानि 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यमरः, तत्र अवस्थितेभ्यः निवसितेभ्यः शावकेभ्यः शिशुभ्यः 'पृथुकः शावकः शिशुः' इत्यमरः, विविधान् अनेकप्रकारान् फलरसान् सस्यनिर्यासान्, कलमानां धान्यविशेषाणां मञ्जर्यो वल्लर्यस्तासां विकाराः परिपाकविशेषेण परिपक्वाः कणाः तांश्च, प्रहतस्य विनाशितस्य हरिणस्य कुरङ्गस्य रुधिरं शोणितं तेन अनुरक्ता रक्तवर्णीकृता या शार्दूलनखकोटिः व्याघ्रनखाग्रप्रदेशः तद्वत् पाटलेन श्वेतरक्तेन 'श्वेतरक्तस्तु पाटलः' इत्यमरः। इह लुप्तोपमा। चञ्चुपुटेन पञ्चाङ्गुलसम्पुटेन 'चञ्चुः पञ्चाङ्गुले त्रोव्याम्' इति हैमः, दत्त्वा दत्त्वा मुहुर्मुहुः तेभ्यः आहारदानं वितीर्येत्यर्थः। अधरीकृतः निम्नत्वमापादितः सर्वः स्नेहः सन्तानभिन्नवृत्तिसमस्तप्रेम येन तेन तादृशेन, अत एव असाधारणेन तन्मात्रगतेन गुरुणा महता अपत्यप्रेम्णा सन्तानस्नेहेन, तस्मिन्नेव शाल्मलीतरावेव क्रोडानाम् उरसङ्गानाम् अन्तर्निहिता मध्येषु रक्षिताः तनया अपत्यानि यैस्ते तथोक्ताः शुकशकुनयः क्षपाः त्रियामाः 'त्रियामा क्षणदाः क्षपाः' इत्यमरः, क्षपयन्ति स्म अतिवाहयन्ति स्म। इह वात्सल्यो रसः।

एकस्मिन्निति। जीर्णकोटरे दीर्घकालीननिष्कुहे जायया भार्यया निवसतः वासं कुर्वतः पश्चिमे अन्तिमे वयसि अवस्थायां वार्धक्य इत्यर्थः, वर्त्तमानस्य विद्यमानस्य कथमपि महता क्लेशेन पितुर्जनकस्य विधिवशात् दैवसंयोगात् अहमित्यात्मनिर्देशः एक एव नान्यः सुनुः तनयः 'आत्मजस्तनयः सुनुः' इत्यमरः, अभवम् अजनिषम्।

अतिप्रबलेति। मम जायमानस्यैव उत्पद्यमानस्यैव अतिप्रबलया अतिकठिनया प्रसववेदनया प्रसूतिपीडया अभिभूता आक्रान्ता सती मे मम जननी माता परलोकं लोकान्तरम् अगमत् अव्रजत्।

अभीति। अभिमताया अभीष्टाया जायायाः पत्न्याः विनाशेन लोकान्तरगमनेन दुःखितोऽपि क्लेशितोऽपि खलु निश्चयेन, तातः जनकः सुतस्नेहात् पुत्रवात्सल्यात्, पटुप्रसरमपि स्पष्टवेगमपि शोकं क्लेशम् अन्तर्निगृह्य हृदयमध्य एव निरुध्य मत्सम्वर्धनपर एव मम परिपोषणतत्पर एव अभवत् आसीत्।

अतिपरिणतेति। अतिपरिणतम् अत्यन्तपरिपक्वम् अतिवृद्धमित्यर्थः वयोऽवस्था यस्य स तादृशः,

अन्तरिक्षमें मानो इन्द्रधनुष पड़ रहे हों मारे हुए मृगके शोणितसे रक्त-वर्ण हुए सिंह-नखके अग्रभागके समान उनकी चोंचें रक्त (लाल) वर्ण थीं। समस्त पक्षीगण आहार चुगनेके बाद लौट-लौटकर अपने खोखलोंमें बैठे हुए बच्चोंको नाना प्रकारके फलोंके रस और धानकी मंजरियोंकी किनकी बार-बार भोजन कराकर, सब स्नेहोंमें श्रेष्ठ, असाधारण अपत्य-स्नेहसे उनको अपने पंखोंके नीचे रख उसी वृक्षमें रात व्यतीत करते थे।

मेरे वृद्ध पिता मेरी माताके साथ वहीं एक जीर्ण कोटरमें निवास करते थे। दैवयोगसे मैं ही अकेला उनका पुत्र था। मेरे जन्म-समय अधिक प्रसव-वेदना होनेके कारण मेरी माताका देहान्त हो गया था। अपनी धर्मपत्नीके शोकसे मेरे पिता अत्यधिक दुखी हुए, तो भी पुत्र-स्नेहके सामने शोकके फैलते हुए तीव्र वेगको अपने अन्दर दबा रक्खा और केवल वे मेरे पोषण-पालनमें ही प्रयत्न करने लगे। दर्भ-चीरके समान उनके पंख, अश्वत्थ

१. प्रसक्त। २. दत्त्वा दत्त्वा। ३. स्वस्मिन्नेव। ४. 'सुखम्' इत्यधिकः क्वचित्। ५. 'तत्र' इत्यधिकपाठः क्वचित्। ६ अहमेकः। ७ प्रवलया। ८. परलोकमगच्छत्। ९. शोकदुःखितोऽपि, दुःखदुःखितोऽपि। १०. अभ्यन्तरे निरुध्य। ११. शोकवेगम्। १२. अतिपरिणततया च।

चीरानुकारिणीमल्पावशिष्ट-जीर्ण-पिच्छजाल-जर्जराम् अवस्रस्तांशदेशशिथिलाम् अपगतोत्पतनसंस्कारां पक्षसन्ततिम् उद्वहन् उपारूढकम्पतयाँसन्तापकारिणीमङ्गलग्नां जरामिव विधुन्वन्, अकठोर-शेफालिकाकुसुम-नाल-पिञ्जरेण कलममञ्जरी-दलन-मसृणित-क्षीणोपान्तलेखेन स्फुटिताग्रकोटिना चञ्चुपुटेन, परनीडनि पतिताभ्यः शालिवल्लरीभ्यस्तण्डुलकणानादायादाय तरुमूलनिपतितानि च शुककुलावदलितानि फलशकलानि समाहृत्य परिभ्रमितुमशक्तो मह्ममदात्। प्रतिदिवसमात्मना च मदुपभुक्तशेषम् अकरोदशनम्।

एकदा तु प्रभातसन्ध्यारागलोहिते गगने च कमलिनी-मधुरक्त-पक्षसम्पुटे वृद्धहंस इव

कुशो बर्हिः चीरं जीर्णवसनखण्डं तदनुकरोति तत्सामान्यमाश्रयति या सा तां तादृशीम्। अत्रार्थी उपमा। अल्पं वार्धक्येन निःसरणात् स्तोकमात्रम् अवशिष्टम् ऊर्वरितं यत् जीर्णपिच्छजालं पुरातनबर्हसमुदायः तेन जर्जरां विशीर्णाम्। अवस्रस्ते परिणतत्वात् गलिते अंशदेशे स्कन्धस्थाने शिथिलाम् अस्थिरावयवसम्बन्धाम्। अपगतो दूरीभूत उत्पतने आकाशविहरणे संस्कारः सामर्थ्यविशेषो यस्याः सा तां तथोक्ताम्, एतादृशीं पक्षसन्ततिं पतत्रसमुदायम् उद्वहन् धारयन्।

उपारूढेति। उपारूढः परिणतवयस्कत्वेन स्वभावत एवाविर्भूतः कम्पः शरीरसञ्चलनं यत्र सा तादृशी तस्या भावस्तया, सन्तापकारिणीं दुःखदायिनीम् स्वेच्छया सञ्चालयितुमसमर्थत्वादित्याशयः, अङ्गलग्नां शरीरे विद्यमानां जरां परिणतावस्थामिव विधुन्वन् तामेव पक्षधारां कम्पयन् सञ्चालनं विधाय किञ्चिद्-व्रजन्नित्यर्थः। इह जरामिवेत्युत्प्रेक्षा।

अकठोरेति। अकठोरं मृदुलं यच्छेफालिकाकुसुमं निर्गुण्डीपुष्पं तस्य यत् नालं वृन्तं तद्वत्पिञ्जरेण पिङ्गलवर्णेन, अत्र लुप्तोपमा। कलमस्य तदाख्यधान्यविशेषस्य या मञ्जर्यः शिखाः तासां दलनेन विदारणेन मसृणिता कृतचिक्कणा क्षीणा क्षयं प्राप्ता च उपान्तलेखा प्रान्तसमीपस्थायिनी रेखा यस्य स तेन तादृशेन। तथा चञ्चुपुटेन पञ्चाङ्गुलेन परिश्रमात् स्फुटिता क्षयं प्राप्ता अग्रकोटिः अग्रिमप्रखरदेशो यस्य तेन तादृशेन।

परेति। परेषाम् अन्येषां शकुनीनां नीडानि कुलायाः तेभ्यः निपतिताः स्रस्ताः याः शालिवल्लर्यः धान्यमञ्जर्यः ताभ्यः तथोक्ताभ्यः तण्डुलकणान् आदायादाय गृहीत्वा गृहीत्वा वृक्षमूलनिपतितानि तरुमूलच्युतानि शुकानां कीराणां कुलेन समूहेन अवदलितानि विदार्य भूमौ पातितानि फलशकलानि फलखण्डानि समाहृत्य एकीकृत्य परिभ्रमितुं दूरे सञ्चरितुम् अशक्तोऽसमर्थो मह्यं वैशम्पायनाय अदात् भक्षयितुं दत्तवान्। एवं प्रतिदिवसं प्रत्यहमुक्तविधिना, आत्मना स्वयञ्च। मया उपभुक्तस्य भक्षितस्य भक्षितस्य शेषम् अवशिष्टम् अशनं भोजनम् अकरोत् कृतवानासीत्।

एकदेति। एकदा एकस्मिन् काले स्फुटतया जाते प्रत्युषसि मृगया कोलाहलध्वनिः उदचरदिति वक्ष्यमाणेन दूरेणान्वयः। प्रभातस्य प्रत्यूषस्य या सन्ध्या तत्सम्बन्धी यो रागो रक्तिमा तेन लोहिते रक्तवर्णे, विशेषणमिदं गगने चन्द्रमसि च, तदानीमुभयोरपि तथैव सम्भवात्। अत एव च गगने चेत्यत्र चका-

---

अवशिष्ट रह जानेके कारण जर्जरित और कंधेके नीचे अवनत हो (झुक) जानेके कारण शिथिल हो गये थे तथा उनमें थोड़ी भी उड़नेकी शक्ति नहीं रह गई थी। अधिक बूढ़े हो जानेके कारण उड़नेमें उनका शरीर काँपने लगता था, जिससे प्रतीत होता था मानो वे शरीरमें व्याप्त होकर सन्ताप देनेवाली वृद्धावस्थाको ही कँपाते हों। उनकी चोंच मृदुल सिंगरहारके फूलके डंठलके समान पीत-वर्ण थी और उसके मध्यमें से विदीर्ण किया (चिरा) हुआ अग्रभाग धानकी मंजरी काटनेके कारण चिकना और घिसा हुआ था। वे अपनी चोंचसे दूसरोंके घोसलोंमें से नीचे गिरी हुई धानकी लतामें से चावलोंकी किनकी बीन कर और वृक्षकी जड़के आगे पड़े, तोतोंके कुतरे फलोंके टुकड़े एकत्रित कर मुझे खिलाते थे, क्योंकि उनमें आकाशमें उड़नेकी शक्ति नहीं रह गई थी। इस प्रकार प्रतिदिन मुझे खिलाकर अवशिष्ट भाग वे स्वयं खा लेते थे।

एक दिन मैंने उस महा-वनमें सहसा शिकारियोंका कोलाहल सुना। उस समय प्रातःसन्ध्याके रंगसे

---

१. जर्जरीम्। २. स्रस्तांशदेशाम्। ३. पक्षसंहतिम्। ४. इह 'च' इत्यधिकः पाठः क्वापि। ५ कुसुमपिञ्जरेण। ६. क्षीरोपान्तलेखेन। ७. पतिताभ्यः। ८. वृक्ष···। ९. मह्यमाहारमदात्। १०. मदुपयुक्तशेषम्। ११. गगनतले, गगनतल··गगनकमलिनी। १२. मध्वनुरक्तपक्षपुटे।

मन्दाकिनीपुलिनादपर-जलनिधि-तटमवतरति चन्द्रमसि, परिणत-रङ्कु-रोम-पाण्डुनि व्रजति विशालतामाशाचक्रवाले, गजरुधिर-रक्त-हरिसटा-लोहिनीभिः प्रतप्त-लाक्षिक-तन्तु पाटलाभिरायामिनीभिः अशिशिरकिरणदीधितिभिः पद्मरागशलाकासम्मार्जनीभिरिव समुत्सार्य्यमाणे गगनकुट्टिमकुसुमप्रकरे तारागणे, सन्ध्यामुपासितुमुत्तराशावलम्बिनि मानससरस्तीरमिवावतरति सप्तर्षिमण्डले, तटगत-विघटित-शुक्ति-सम्पुटविप्रकीर्णमरुणकर-प्रेरणाधोगलितमु-

रोपादानं सार्थकमित्यवधेयम्। अत एव कमलिन्याः नलिन्याः मधुना लोहितवर्णपुष्परसेन अनुरक्तम् अनुरञ्जितं पक्षसम्पुटं पतत्रयुगलं यस्य तस्मिन्, वृद्धहंस इव पुरातनकलहंस इव, अलसगतिव्यञ्जनाय वृद्धपदम्। चन्द्रमसि हिमांशौ मन्दाकिनीपुलिनात् वियद्गङ्गासैकतात् अपरः पश्चिमो यो जलनिधिः समुद्रः तस्य तटं तीरम् अवतरति उत्तीर्णे सति। इह वृद्धहंस इवेत्युपमा।

परिणतेति। परिणतस्य पुरातनस्य रङ्कोर्मृगविशेषस्य रोमाणि लोमानि तद्वत् पाण्डुनि पीतशुभ्रे 'पाण्डुस्तु पीतभागार्धः केतकी धूलिसन्निभः' इति शब्दार्णवः। आशाचक्रवाले दिङ्मण्डले 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरिताश्च ताः 'चक्रवालं तु मण्डलम्' इत्यमरः, विशालताम् अन्धकारापगमाद्विस्तीर्णतां व्रजति गच्छति सति। अत्र लुप्तोपमा।

गजेति। गजानां हस्तिनां यद्रुधिरं शोणितं तेन रक्ता लोहितवर्णा या हरिसटाः सिंहस्कन्धकेसराः तद्वत् लोहिनीभिः रक्तवर्णाभिः, इह रुधिररक्तपदार्थयोरापाततः पौनरुक्त्येऽपि दर्शितदिशा पार्थक्यस्य स्पष्टमुपलम्भात् भिन्नाकारशब्दगतत्वाच्च पुनरुक्तवदाभासोऽलङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे—

'आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येन भासनम्। पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः॥' इति।

हरिसटावदिति लुप्तोपमा चेत्यनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः। प्रतप्ता उष्णीकृता ये लाक्षिका जतुविकारोत्पन्नाः तन्तवः सूत्राणि तद्वत् पाटलाभिः श्वेतरक्ताभिः। अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। आयामिनीभिः विस्तारवतीभिः, अशिशिरा उष्णाः किरणा रश्मयो यस्य तस्य सूर्यस्य दीधितिभिः प्रभाभिः, पद्मरागस्य लोहितमणेः याः शलाकाः इषीकाः तासां सम्मार्जनीभिः गृहादिशोधिनीभिः 'सम्मार्जनी शोधिनी स्यात्' इत्यमरः, ताभिरिव विद्यमानाभिः, अत्र जात्युत्प्रेक्षा। गगनम् आकाशमेव कुट्टिमं बद्धभूमिः (बहिर्द्वारं) तस्य कुसुमप्रकरः पुष्पसमुदायः तस्मिन् तारागणे नक्षत्रमण्डले समुत्सार्यमाणे दूरीक्रियमाणे सति। इह नक्षत्रमण्डले कुसुमप्रकरत्वारोपस्य गगने कुट्टिमत्वारोपो निमित्तमिति परम्परितरूपकमलङ्कारः, तदुक्तं दर्पणे—यत्र कस्यचिदारोपः परारोपस्य कारणम्। तत्परम्परितम्''''''॥

सन्ध्यामिति। उत्तराशा उदीचीदिक् तदवलम्बिनि तदवस्थिते सप्तर्षिमण्डले ताराभूते मरीच्यादिसप्तदेवर्षिसमूहे सन्ध्यां प्रातः सन्ध्याम् उपासितुं विधातुमिव मानससरस्तीरं मानससरोवरतटं प्रति अवतरति अवरोहति सति तत्समये सप्तर्षिगणस्य उदीच्यामस्तगमनादेवमभिधानम्। इह च सन्ध्यामुपासितुमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा। सप्तर्षिपदवाच्याश्च—

'मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। वसिष्ठश्चेति सप्तैते ज्ञेयाश्चित्रशिखण्डिनः॥' इति।

तटगतेति। पूर्वं इतरो यस्मात् तस्मिन् पश्चिमे इत्यर्थः। उदन्वति समुद्रे 'इतरस्त्वन्यनीचयोः' इत्यमरः, बहुव्रीहिसमासत्वादेव नात्र सर्वादित्वप्रयुक्तकार्यमित्यवधेयम्। तटगतानि तीरस्थितानि विघट्टितानि स्फुटितानि यानि विस्तारितभागद्वयानि तत्र शुक्तिसम्पुटेषु समुद्रमण्डूकीपुटेषु मध्ये विकीर्णम् असंयोग-

रक्तवर्ण हुआ चन्द्रमा आकाशगंगाके किनारेसे पश्चिमीय समुद्रके तटपर उतर रहा था। वह गगन-रूपी कमलिनीके रससे लाल पङ्खोंवाले वृद्ध हंसके समान प्रतीत होता था। वृद्ध रङ्कु-मृगके रोमके समान शुभ्र दिशाओंका मण्डल विस्तृत होता जाता था, सूर्यकी लम्बी-लम्बी रश्मियाँ हाथियोंके शोणितसे रक्तवर्ण हुए सिंहकी गर्दनके केशोंके समान रक्तवर्ण और तपाई हुई लाखके तारके समान गुलाबी प्रतीत होती थीं—वे गगनमेंसे तारोंको दूर कर रही थीं, जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो पद्मराग मणिकी शलाकाओं (सीकों) वाली सम्मार्जनियों (झाडुओं) से फर्शपर बिखरे हुए फूलोंको हटा कर फेंक रही हैं, सप्त ऋषियोंके सात तारे उत्तर दिशाकी ओर जाते हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानो सन्ध्या-वन्दन करनेके लिए मानसरोवरके तट पर उतर रहे हों। तट पर आकर फटे हुये

१. आतप्तलाक्षिक, सन्तप्तलाक्ष, आनन्तलाक्षा'''। २. आगामिनीभिः। ३. रत्नशलाकासंमार्जिनीभिः। ४. मानससरसः। ५. अम्बरादवतरति।

डुगणमिव मुक्ताफलनिकरमुद्वहति धवलितपुलिनं[1]मुदन्वति पूर्वेतरे, तुषारबिन्दुवर्षिणि विबुद्ध-शिखिकुले विजृम्भमाणकेशरिणि करिणी-कदम्बक-प्रबोध्यमान-समदकरिणि[2] क्षपाजलजड-केसरं कुसुमनिकरमुदयगिरि-शिखरस्थितं[3] सवितारमिवोद्दिश्य पल्लवाञ्जलिभिः समुत्सृजति[4] कानने, रासभ-रोम-धूसरासु[5] वनदेवताप्रासादानां तरूणां शिखरेषु पारावतमालायमानासु धर्मपताकास्विव[6] समुन्मिषन्तीषु तपोवनाग्निहोत्रधूमलेखासु, अवश्यायशीकरिणि लुलितक-मलवने रति[7]-खिन्न-शबरसीमन्तिनी-स्वेदजलकणा[8]पहारिणि वनमहिष-रोमन्थफेनविन्दुवाहिनि

भावेनावस्थितम् , धवलितं निजकान्त्या श्वेतीकृतं पुलिनं सैकतं येन तं तथोक्तम्, अरुणकरैः दिनकरकिरणैः या प्रेरणा नोदना तथा अधोगलितं भूमिपतितम् उडुगणं नक्षत्रमण्डलमिव मुक्ताफलनिकरं मौक्तिकसमूहम् उद्वहति धारणं कुर्वति सति । अत्र उडुगणमिवेति जातिस्वरूपोत्प्रेक्षा ।

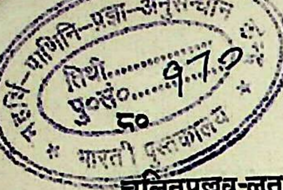
तुषारेति । अत्र काननविशेषणानि सप्तम्यन्तपदानि । तुषारस्य रात्रिपतिततुहिनस्य विन्दवः कणाः तान् वर्षति दलाग्रभागेभ्यः पातयतीति तस्मिन् तथोक्ते, विबुद्धं जागरितं शिखिकुलं मयूरगणो यत्र तस्मिन् तथोक्ते, विजृम्भमाणा तत्क्षणनिद्रात्यागेन जृम्भाविधायिनः केशरिणः सिंहा यत्र तस्मिन् तादृशे, करिणीनां हस्तिनीनां कदम्बकं समूहः तेनः प्रबोध्यमाना स्वच्छन्दक्रीडार्थं शुण्डाकर्षणेन जागरणं कुर्वाणाः समदा दानजलस्यन्दिनः करिणो गजा यस्मिन् तस्मिन् तादृशे, एतादृशे कानने वने 'काननं गहनं वनम्' इत्यमरः, क्षपायाः रात्रेः जलेन तत्सम्बन्धितुषारसलिलेन जडाः स्तिमिताः केशराः किञ्जल्काः यस्य तं तथोक्तं कुसुमनिकरं स्वोत्पन्नपुष्पसमूहम्, उदयगिरिः उदयाचलः तस्य शिखरे शृंगे स्थितं विद्यमानं सवितारं सूर्यम् उद्दिश्येव उद्देश्यं कृत्वेव पल्लवानि किसलयान्येव अञ्जलयः तैः समुत्सृजति प्रक्षिप्य समर्पयति सति । इह उद्दिश्येवेति क्रियोत्प्रेक्षा, 'पल्लवाञ्जलय' इत्यत्र निरङ्गकेवलरूपकम् , तथा समासोक्तिश्चेति परस्परमेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करात् सङ्करालङ्कारः ।

रासभेति । रासभस्य गर्दभस्य रोमाणि लोमानि तद्वत् धूसरासु धूम्ररूपासु । वनदेवतानाम् अरण्याधिष्ठात्रीणां प्रासादा उन्नतत्वाद्विपुलत्वाच्च अट्टालिकारूपाः तरवो वृक्षाः तेषां शिखरेषु अग्रप्रान्तेषु पारावतानां कपोतानां माला पंक्तिः तद्वत् आचरन्तीषु संलग्नास्विति तासु तथोक्तासु, तपोवनेषु मुन्याश्रमेषु यानि अग्निहोत्राणि 'सायं प्रातर्जुहोति' इति श्रुत्या तपस्विनाम् अग्न्याधानानि अग्निहोत्रहोमाः इत्यर्थः तेषां धूमलेखासु धूमपंक्तिषु, धर्मपताकास्विव यज्ञादौ धर्मोद्घोषणाय वैजयन्तीष्विव समुन्मिषन्तीषु समुत्सर्पन्तीषु । इह रासभरोमधूसरास्वित्यत्र लुप्तोपमा पारावतमालायमानास्वित्यत्र च क्यङ्लुप्तोपमा, धर्मपताकास्विवेत्यत्र जातिस्वरूपोत्प्रेक्षा चेति परस्परमेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करात् सङ्करालङ्कारः ।

अवश्यायेति । अवश्यायः तुषारः 'अवश्यायस्तु नीहारः तुषारः' इत्यमरः तस्य शीकरोऽम्बुकणाः ते अस्य सन्तीति तस्मिन् तथोक्ते, इत आरभ्य सप्तम्यन्तपदानि 'मातरिश्वनि' इत्यग्रिमस्य विशेषणानि बोध्यानि लुलितम् आन्दोलितं कमलवनं पद्मवनं येन तस्मिन् तथोक्ते, रतिखिन्नानां निधुवनश्रान्तानां शबरसीमन्तिनीनां किरातवधूनां यत् स्वेदजलं घर्मवारि तस्य कणा विन्दवः तेषाम् अपहारिणि निजस्पर्शेन

सीपियोंके संपुटसे तड़क कर गिरे हुए अधिकतर मोतियोंसे पश्चिमीय समुद्रका तट श्वेत हो गया था—वे मोती सूर्य-रश्मियोंकी प्रेरणासे नीचे गिरे हुए नक्षत्रमण्डल (तारों) के समान प्रतीत होते थे । पालेकी बूँदें टपक रही थीं, मयूरगण जाग चुके थे, सिंह जंभाई ले रहे थे, हथिनियाँ मत्त-गजोंको जगा रही थीं, रातको ओस पड़नेसे जिनकी केसर ठिठुर गई थी इस प्रकारके फूल सूर्योदय होनेपर वृक्षोंसे गिरने लगे थे—जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो वन, पल्लवरूपी अञ्जलियोंसे सूर्यको फूल अर्पण कर रहा हो । गधेके रोमके समान धूसर वर्ण (धुँधली) तपोवनके अग्निहोत्रकी धूम-लेखा, वन-देवताओंकी अट्टालिकाओं (महलों) के समान दीख पड़ते पेड़ोंकी चोटियों पर कबूतरोंकी पंक्ति और यज्ञादिकी धर्मपताका-सी थी । प्रातःकालीन पवन धीरे-धीरे बह रहा था—वह ओसकी बूँदोंसे शीतल था, कमल-वन कँपाता था, कामक्रीड़ासे परिश्रान्त हुई शबर-सुन्दरियोंके पसीनोंकी बूँदोंको सुखाता था, वनके भैंसोंके फेनविन्दुओं (जुगालीके भागोंकी बूँदों) को साथ लिए हुए था, कम्पित पल्लववाली लताओं

१···पुलिनतटम् , पुलिनतलम् । २···मानमदकरिणि स्पष्टे च जाते प्रभाते । ३. स्थितसवितारम् ।
४. उत्सृजति । ५. धूसरासु वनराजिषु । ६. पताकासु । ७. रत··· । ८. स्वेदजलकणिका, स्वेदकणिका··· ।



चलितपल्लव-लतालास्योपदेश-व्यसनिनि विघटमान-कमलषण्ड-मधुशीकरासारवर्षिणि कुसुमामोदतर्पितालिजाले निशावसानजातजडिम्नि मन्दमन्दसञ्चारिणि प्रवाति प्राभातिके मातरिश्वनि, कमलवनप्रबोध-मङ्गलपाठकानाम् इभगण्डडिण्डिमानां मधुलिहां कुमुदोदरेषु घटमान-दलपुट-निरुद्धपक्षसंहतीनामुच्चरत्सु हुङ्कारेषु, प्रभातशिशिरमारुताहतमुत्तप्तजतुरसाश्लिष्ट-पक्ष्ममालमिव सशेषनिद्राजिह्मिततारं चक्षुरुन्मीलयत्सु शनैःशनैरूषरशय्या-धूसर-क्रोड-रोमराजिषु वनमृगेषु, इतस्ततः सञ्चरत्सु वनचरेषु, विजृम्भमाणे श्रोत्रहारिणि

नादविधायिनि तस्मिन् तादृशे, एतेन वायोस्त्रिविधगुणवत्त्वं व्यञ्जितम्। वनमहिषाणां सैरिभाणां रोमन्थः चर्वितचर्वणं तत्र ये फेनविन्दवः कफकणाः तान् वहति धारयतीति तस्मिन् तथोक्ते। चलितानां स्ववेगेनान्दोलितानां पल्लवानां किसलयानां लतानां वल्लीनाञ्च यत् लास्यं चाञ्चल्यरूपं नृत्यं तस्य उपदेशे शिक्षणे व्यसनम् आसक्तिरस्यास्तीति तस्मिन् तथोक्ते। विघटमानानि विकाशं प्राप्यमाणानि यानि कमलखण्डानि पद्मवनानि तेषां मधु पुष्परसः तस्य शीकराणां विन्दूनाम् आसारं धारासम्पातं 'धारासम्पात आसारः' इत्यमरः, वर्षति क्षिपतीति तस्मिन् तथोक्ते। कुसुमानां पुष्पाणाम् आमोदः सौरभः तेन तर्पितं प्रीणितम् अलिजालं भ्रमरसमूहो येन तस्मिन् तथोक्ते। निशावसाने रात्रिशेषे जात उत्पन्नः जडिमा जडत्वं शीतलसलिलामोदवहनादिना भारवत्त्वं यस्य तस्मिन् तथोक्ते, अत एव मन्दमन्दसञ्चारिणि शनैः शनैः प्रवहति प्राभातिके प्रातःसमयके मातरिश्वनि सदागतौ वायावित्यर्थः प्रवाति प्रवहति सति 'मातरिश्वा सदागतिः' इत्यमरः।

कमलेति। कमलवनस्य पङ्कजवनस्य प्रबोधे जागरणे विकसने मङ्गलपाठकानां स्तुतिविधायिनां कियतां मधुलिहां भ्रमराणां नृपतीनां प्रबोध इव तदीयवन्दिजनानामित्याशयः। इभगण्डेषु दानवारिसहितहस्तिकपोलेषु डिण्डिमानां तत्संज्ञकवाद्यविशेषरूपाणाम्, विषयविशेषसूचनार्थं यथा कश्चित् डिण्डिमं वादयति तथैव भ्रमरा अपि हस्तिजागरणार्थं गुञ्जन्तीत्याशयः। तथा कुमुदोदरेषु कैरवाभ्यन्तरेषु घटमानैः सूर्योदयात् सङ्कोचं प्राप्यमाणैः दलपुटैः पत्रकोशैः निरुद्धा अवरुद्धा पक्षसंहतिः छदसमूहो येषां तथोक्तानाञ्च कियतां मधुलिहां द्विरेफाणां हुङ्कारेषु अव्यक्तशब्देषु उच्चरत्सु उत्थितेषु सत्सु। इह मधुलिट्सु मङ्गलपाठकत्वारोपः शाब्दः, पङ्कजवने नृपत्वारोपस्त्वार्थं इत्येकदेशविवर्तिरूपकम्, इभगण्डडिण्डिमेत्यत्र निरङ्गकेवलरूपकम्, तथा चानयोः परस्परमपेक्षाभावेन संसृष्टिरलङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे—'मिथोऽनपेक्ष्यमेतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते' इति।

प्रभातेति। ऊषरा तृणशून्या या शय्या शयनभूमिः तेन धूसरा मलिनवर्णा क्रोडरोमराजयः हृदयलोमपङ्क्तयो येषु तथोक्तेषु वनमृगेषु अरण्यहरिणेषु प्रभातं प्रातःकालं तस्य यः शिशिरः शीतलो वायुः पवनः तेन आहतं ताडितं कृतस्पर्शमित्यर्थः, उत्तप्तेन अग्निना उष्णीकृतेन जतुरसेन लाक्षाद्रवेण आश्लिष्टा मिथः संयोजकभावेनाश्लेषिता पक्ष्मणां लोमानां माला पंक्तिः यस्य तदिव, सशेषया किञ्चिदवशिष्टया निद्रया स्वापेन 'स्यान्निद्रा शयनं स्वापः' इत्यमरः, जिह्मिता वक्रीकृता तारा कनीनिका यस्य तत् तथोक्तं चक्षुर्नेत्रं, शनैः शनैः मन्दं मन्दम् उन्मीलयत्सु, विकासयत्सु सत्सु। इह क्रियोत्प्रेक्षा।

इतस्तत इति। इतस्ततः चतुर्दिक्षु वनचरेषु काननचारिषु जन्तुषु सञ्चरत्सु भ्रमत्सु। श्रोत्रहारिणि

(टहनियों) को अत्यधिक नचा रहा था, विकसित हुए कमलोंके रसकी बूँदोंकी वर्षा कर रहा था, पुष्पोंकी सुगन्धसे भ्रमरोंको तृप्त कर रहा था और रात्रिका शेष होनेसे शीतल हो गया था। कमलोंके विकास (जगाने) के समय मंगल-पाठ करनेवाले भ्रमर गुञ्जायमान हो रहे थे—वे हाथियोंके गण्डस्थलोंसे बाजेका काम लेते थे और मुकुलित होते हुए कुमुदकी पंखड़ियोंने उनके पंखोंको मींच लिया था, वन्यमृग अपने नेत्रोंको धीरे-धीरे खोल रहे थे—उनके नेत्र प्रातः समयके शीतल पवनसे पीड़ित थे, पुतलियाँ नींद उचट जानेके कारण कुछ टेढ़ी हो रहीं थीं, पलक ऐसे प्रतीत होते थे मानो तपाई गई लाखके रससे चिपकाए गए हों और उनके वक्षःस्थलके बाल तृणरहित भूमिपर शयन करनेके कारण धूसरित हो गए थे। वनचरगण इधर-उधर विचरण करते थे। कानोंको

१. खण्ड। २. 'वन' इति क्वचिन्नास्ति। ३. मधुलिहां पटलेषु। ४. विघटमान, वनघटमान। ५. निबद्ध...। ६. झङ्कारेषु, टङ्कारेषु। ७. वायवाहतम्। ८. पक्ष्मजालमिव। ९. जिह्मतारम्, जिह्मिततारकम्। १०. राजिषु च।

पम्पासरःकलहंस[1]कोलाहले समुल्लसति नर्त्तितशिखण्डि[2]मण्डले मनोहरे वनगजकर्णताल-शब्दे, क्रमेण च गगनतल[3]मवतरतो दिवसकरवारणस्यावचूल[4]-चामर-कलाप इवोपलक्ष्यमाणे मञ्जिष्ठारागलोहिते किरणजाले, शनैः शनैरुदिते भगवति सवितरि, पम्पासरः-पर्य्यन्त-तरु-शिखर-सञ्चारिणि[5] अध्यासित-गिरिशिखरे दिवसकरजन्मनि हृततारे पुनरिव कपीश्वरे वनमभिपतति बालातपे, स्पष्टे जाते प्रत्यूषसि, नचिरादिव दिवसाष्टमभाग[6]भाजि स्पष्टभासि भास्वति भूते, प्रयातेषु य[7]थाभिमतानि दिगन्तराणि शुककुलेषु, [8]कुलाय-निलीननिभृत-

मनोहरतया कर्णाकर्षिणि पम्पासरसः पम्पानामककासारस्य कलहंसानां कादम्बानां कोलाहले कलकले विजृम्भमाणे विस्तृते सति । नर्त्तितं नाटितं शिखण्डीनां मयूराणां मण्डलं समूहो येन तस्मिन् तथोक्ते, मनोहरे रुचिरे वनगजानाम् अरण्यकरिणां कर्णयोः श्रोत्रयोः तालवत् करतलध्वनिवत् 'तालः करतलध्वनिः' इत्यनेकार्थध्वनिमञ्जरी, शब्दे रवे समुल्लसति तेषां प्रबोधानन्तरमुत्थिते सति । तालशब्द इत्यत्र लुप्तोपमा।

क्रमेणेति । क्रमेण परिपाट्या गगनतलम् आकाशपथम् अवतरत आरोहतः, दिवसकर आदित्यः वारणो गज इव तस्य तथोक्तस्य, मञ्जिष्ठा हि औषधविशेषः, तस्या रागो लौहित्यं तद्वत् लोहिते रक्तवर्णे, किरणजाले मयूखगणे, अवनता अधोमुखीभूता चूडा अग्रदेशो यस्य स अवचूडः स चासौ चामरकलापः चामरगणः तस्मिन् तथोक्त इव उपलक्ष्यमाणे अवलोक्यमाने सति । उन्नतप्रदेशमारोहरणं विदधतो हस्तिनः श्रोत्रान्तिकलम्बिन्यवनते चामरगण इव गगनमारोहत आदित्यस्यावनते मयूखजाले अवलोक्यमाने सतीति स्पष्टार्थः । इहोपमालुप्तोपमानां परस्परमङ्गाङ्गिभावेन सङ्करात् सङ्करालङ्कारः ।

शनैरिति । शनैः शनैः मन्दं मन्दम् उदिते उदयं प्राप्ते भगवति माहात्म्यवति सवितरि आदित्ये ।

पम्पासर इति । पम्पासरसः पम्पानामकसरोवरस्य पर्यन्ततरूणां प्रान्तस्थायिवृक्षाणां शिखरेषु ऊर्ध्वप्रदेशेषु सञ्चारिणि व्याप्ते, अध्यासितं पूर्वमाश्रितं गिरेः उदयपर्वतस्य किष्किन्धापर्वतस्य च शिखरम् अग्रप्रदेशं येन तस्मिन् तथोक्ते, दिवसकरात् आदित्यात् जन्म उत्पत्तिः यस्य तस्मिन् तथोक्ते, हृता निजप्रभावेण लोपं प्रापिता अपहृता च तारा नक्षत्रं तदभिधेया बालिपत्नी च, बालातपे अभिनवादित्यलोके कपीश्वरे सुग्रीव इव पुनः वनम् अरण्यम् अभिपतति व्याप्नुवति अभिगच्छति च सति । इह पूर्णोपमा । आदित्याज्जन्म जातं सुग्रीवस्येति वाल्मीकीयरामायणस्योत्तरकाण्डतोऽवगम्यते ।

स्पष्ट इति । प्रत्यूषसि प्रातःकाले स्पष्टे व्यक्ते जाते समुत्पन्ने सति, भास्वति दिवसकरे, नचिरादिव अल्पसमयेनेव दिवसस्य वासरस्य अष्टमभागं चतुर्थघटिकात्मकं भजत इति तस्मिन् तथोक्ते, अत एव स्पष्टाः सर्वासु दिक्षु स्फुटा भासः कान्तयो यस्य तथोक्ते, भूते जाते सति । इह नचिरादिवेत्यस्य गुणपदार्थत्वात् गुणोत्प्रेक्षा ।

प्रयातेष्विति । शुककुलेषु कीरवृन्देषु यथाभिमतानि यथेप्सितानि दिगन्तराणि दिग्विभागान् प्रयातेषु आहारानयनाय गतेषु सत्सु । कुलायेषु नीडेषु 'कुलायो नीडमस्त्रियाम्' इत्यमरः, निलीनाः प्रच्छन्नाः निभृता निश्चला निःशब्दा इत्यर्थः ये शुकशावकाः कीरशिशवः तैः सनाथेऽपि संयुक्तेऽपि तस्मिन् वनस्पतौ शाल्मलीद्रुमे शून्य इव निखिलप्राणिवर्जित इव विद्यमाने सति । शून्य इवेति वाच्या क्रियोत्प्रेक्षा।

अपनी ओर खींचनेवाले पम्पासरोवरके कलहंसोंका श्रुतिमधुर कोलाहल बढ़ रहा था, हाथियोंके कानका मनोहर समान ताल-शब्द हो रहा था-हाथी अपने कान फटफटा रहे थे, उसे घनगर्जन समझकर मयूरगण नृत्य कर रहे थे, मजीठके लाल रंगकी सूर्य-किरणें थोड़ी-थोड़ी दीखने लगी थीं-वे गगन-पथमें चलते हाथीके उलटे लटकते चमरके समान प्रतीत होती थीं । भगवान् सूर्यनारायणका धीरे-धीरे उदय हो रहा था । पम्पासरोवर तक के वृक्षोंकी चोटियों पर पहुँचता, गिरि-शिखर पर निवास करता (बालातप उदयाचल पर फैलता था, सुग्रीव बालिसे निष्कासित हो किष्किन्धा पर्वतके शृंगपर भ्रमण करता था) रविसे उत्पन्न हुआ (बालातप सूर्यके उदय होनेपर बढ़ता था, सुग्रीव सूर्यसे उत्पन्न हुआ था) और तारा हारी (बालातप तारोंका हरण करता था, अर्थात् उन्हें अन्तर्हित कर देता था ; सुग्रीवने वालीकी स्त्री ताराका हरण किया था) प्रभातकालीन बालातप, पुनः मानो सुग्रीव आए हों इस

१. कलहंसकुल । २. नर्त्तितशिखण्डिनि । ३. गगनतलमार्गम् । ४. अवधूत'' ५. सञ्चारिणाम् । ६. अष्टभागभाजि । ७. इह 'च' इत्यधिकः पाठः क्वापि विद्यते । ८. कुलाय निभृतशावक ।

शुक-शावकसनाथेऽपि निःशब्दतया शून्य इव तस्मिन् वनस्पतौ, स्वनीडावस्थित एव ताते, मयि च शैशवादसञ्जातबले समुद्भिद्यमानपक्षपुटे तात-समीपवर्त्तिनि कोटरगते, सहसैव तस्मिन् महावने संत्रासितसकलवनचरः सरभसमुत्पतत्पतत्रिपक्षपुटसन्ततः भीत-करिपोत-चीत्कारपीवरः प्रचलितमत्तालिकुलक्कणितमांसलः परिभ्रमदुद्घोणवन-वराह-रव-घर्घरः गिरिगुहा-सुप्त-प्रबुद्ध-सिंहनादोपबृंहितः, कम्पयन्निव तरून् भगीरथावतार्यमाण-गङ्गाप्रवाहक-लकल-बहलो भीतवनदेवताकर्णितो मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत्।

आकर्ण्य च तमहमश्रुतपूर्वमुपजातवेपथुरर्भकतया जर्ज्जरित-कर्णविवरो भयविह्वलः समीपवर्त्तिनः पितुः प्रतीकारबुद्ध्या जराशिथिलपक्षपुटान्तरमविशम्। ✓

स्वनीडेति। ताते मम पितरि मयि वैशम्पायने च स्वनीडावस्थित एव स्वकुलाये तिष्ठत्येव शैशवात् बाल्याद्धेतोः असञ्जातम् अनुत्पन्नं बलम् उत्पतनादिशक्तिः यस्य तस्मिन् तथोक्ते, तथा समुद्भिद्यमानं यथाक्रमं द्योतमानं पक्षपुटं पतत्रद्वयं यस्य तस्मिन् तथोक्ते मयि च, पितुर्जनकस्य समीपवर्त्तिनि निकट-स्थायिनि सति कोटरगते स्वकुलायाधारतरुमध्यस्थिते सति।

सहसैवेति। तस्मिन् पूर्वोक्ते महावने महारण्ये सहसैव अकस्मादेव मृगया आखेटकः तस्याः कोला-हलध्वनिः कलकलनिनादः उदचरत् उत्पन्नोऽभूत् इत्यन्वयः। अत्र प्रथमान्तपदानि उक्तध्वनेर्विशेषणानि। संत्रासिताः त्रासं जनिताः सकलाः समस्ता वनचरा अरण्यचारिणो येन स तथोक्तः सरभसं त्रासेन सवेगं समुत्पतताम् उड्डयनं विधीयमानानां पतत्त्रिणां पक्षिणां पक्षपुटैः पतत्रद्वयशब्दैः सन्ततः सम्यग्विधिना विस्तीर्णः, भीतानां त्रासमुपगतानां करिपोतानां गजशिशूनां (कलभानां) चीत्कारैः विपुलव्यथासूचक-ध्वनिभिः पीवरः स्थूलः कृतपुष्ट इत्यर्थः। प्रचलितस्य त्रासेन स्वस्थानात् प्रयातस्य मत्तस्य पुष्परसपानेनो-न्मत्तस्य अलिकुलस्य भ्रमरसमूहस्य क्वणितेन अस्फुटशब्देन मांसलः पीवरः। परिभ्रमतां त्रासेन इतस्ततः सञ्चरताम् उद्घोणानाम् उन्नतनासिकासहितानां वनवराहाणाम् आरण्यकशूकराणां रवः आर्त्तशब्दैः घर्घरः 'घर् घर्' इत्येवंरूपशब्देन कठिनः। गिरिगुहासु पर्वतकन्दरासु सुप्ताः पूर्वं निद्रिताः पश्चात् प्रबुद्धाः आखेटकोलाहलेन उत्थिताः ये सिंहाः केसरिणः तेषां निनादेन ध्वनिना उपबृंहितः वृद्धिं गतः।

कम्पयन्निति। भगीरथेन तत्संज्ञकसूर्यवंशीयनृपतिना अवतार्यमाणः तुहिनाचलात् पृथिव्यां नीयमानो यो गङ्गाप्रवाहः जाह्नवीस्रोतः तस्य कलकल इव कल्लोल इव बहलः बहुलीकृतः, तथा भीताभिः त्रस्ताभिः वनदेवताभिः अरण्याधिष्ठातृदेवीभिः आकर्णितः श्रवणविषयीकृतः। तरून् वृक्षान् कम्पयन् चालयन्निव। अन्वयस्तूक्तः। इह लुप्तोपमाक्रियोत्प्रेक्षयोः परस्परनैरपेक्ष्येण स्थितत्वात् संसृष्टिरलङ्कारः।

आकर्ण्येति। अहं वैशम्पायनः, अश्रुतपूर्वम् अनाकर्णितपूर्वं तम् आखेटकोलाहलशब्दम् आकर्ण्य

प्रकार; वनमें प्रवेश कर रहा था। सवेरा अधिक हो गया था, थोड़ी ही देरमें एक पहर दिन चढ़ जानेसे सूर्य स्पष्ट दृष्टि-गोचर होने लगा था; तोतोंके झुण्ड अपनी-अपनी अभिलषित दिशाओंमें उड़ गये थे; नीड़ों (घोसलों) में निश्चिन्तता-पूर्वक सोते हुए बच्चोंके होने पर भी शब्दरहित होनेके कारण वह वृक्ष शून्य-सा देखनेमें आ रहा था।

मेरे पिता अपने घोसलेमें ही बैठे थे और मैं उनके समीपवाले घोंसलेमें था—बाल्यावस्थाके कारण मेरे पंखोंमें उड़नेका सामर्थ्य नहीं था। उसी समय उस महावनमें मैंने सहसा ही शिकार खेलनेवालोंकी कोलाहल-ध्वनि सुनी। उससे सब वनचर भयभीत हो गये। वह (ध्वनि)—घबराहटसे उड़ते हुए पक्षियोंके पंखोंके शब्दसे फैल गई, भयभीत हुए हाथियोंके बच्चोंके चीत्कारोंसे बढ़ गई, कम्पित होती हुई लताओं पर व्यग्र हुए मतवाले भौंरोंकी गुञ्जारसे स्थूल हो गई, ऊँची नासिकावाले जंगली शूकरोंके स्वरसे कठोर हो गई, पर्वतकी कन्दराओंमें नींदसे जागे हुए सिंहोंके नादसे घनी हो गई और वृक्षोंको हिलाती-सी प्रतीत होने लगी। वह भगीरथद्वारा नीचे लाये हुए गंगाप्रवाहके कलकलके समान प्रतीत होती थी और वन-देवता भी उसे त्रस्त होकर श्रवण करते थे। इस प्रकार अश्रुत-पूर्व शब्दको सुनते ही मैं काँपने लगा। बाल्यावस्था होनेके कारण मेरे कान जर्जरित हो गये, और डरसे

१. असञ्जातबलसमु···। २. पितुः तातस्य। ३. सततं सरभसमुत्पतत्···। ४. प्रचलितलताकुलित, प्रचलित लताकुलमत्तालिकुल···। ५. वराहघर्घरकठोरः। ६. नादबृंहितः। ७···आवार्य्यमाण···। ८. आकर्ण्य तं। ९. जरातिशिथिल।

अनन्तरञ्च 'सरभसमितो गजयूथपति-लुलित-कमलिनी-परिमलः, इतः क्रोडकुल-दृश्यमान-भद्र-मुस्ता-रसामोदः, इतः करिकलभ-भज्यमान-शल्लकी-कषाय-गन्धः, इतो निपतित-शुष्कपत्रमर्म्मरध्वनिः, इतो वनमहिष-विषाण-कोटिकुलिश-भिद्यमान-वल्मीकधूलिः, इतो मृग-कदम्बकम्, इतो वनगजकुलम्, इतो वनवराहयूथम्, इतो वनमहिषवृन्दम्, इतः शिखण्डिमण्डल-विरुतम्, इतः कपिञ्जल-कुल-कल-कूजितम्, इतः कुररकुल-कणितम्, इतो मृगपतिनखभिद्यमान-कुम्भ-कुञ्जर-रसितम्, इयमार्द्र-पङ्क-मलिना वराहपद्धतिः, इयमभिनव-

---

श्रुत्वा, उपजातवेपथुः त्रासेन समुत्पन्नकम्पः अर्भकतया शावकतया जर्जरितम् विदीर्णं कर्णयोः श्रोत्रयोः विवरं रन्ध्रं यस्य स तथोक्तः, भयेन त्रासेन विह्वलो व्यग्रः समीपवर्त्तिनः निकटस्थितस्य पितुः तातस्य प्रतीकारबुद्ध्या त्रासनिवृत्त्युपायबुद्ध्या, जरया परिणतवयसा शिथिलं श्लथं यत् पत्रपुटं पतत्रद्वन्द्वं तस्य अन्तरं मध्यम् अविशं प्रविष्टोऽभवम्।

अनन्तरञ्चेति। अनन्तरं पितुः पतत्रपुटमध्यप्रवेशानन्तरञ्च कोलाहलमश्रृणवमिति दूरस्थक्रियया सम्बन्धः। कोलाहलमेव विशेषयति—सरभसमित्यादिना। इतः अस्मिन् स्थले इत्थमग्रेऽपि। संरभसं सवेगं गजयूथपतिभिः करिकुलोत्तमैः लुलिता मर्दिता याः कमलिन्यः पद्मिन्यः तासां परिमलः विमर्दोत्थसौरभः सञ्चरतीति शेषः, अतश्चात्र करिणो विलसन्तीति सम्भाव्यत इत्याशयः। क्रोडकुलेन अरण्यशूकरसमूहेन दृश्यमाना दष्टा भक्ष्यमाणा या भद्रमुस्ता गुन्द्राः लोके 'नागरमोथा' इति प्रसिद्धाः 'गुन्द्रस्तेजनके स्त्री तु प्रियङ्गौ भद्रमुस्तके' इति मेदिनी, तासां रसस्य द्रवस्य आमोदः सौरभम्, एतेन स्पष्टमेवात्र शूकराणामवस्थितिसम्भावनेत्यभिप्रायः। करिकलभैः त्रिंशद्वर्षीयगजशिशुभिः भज्यमाना आमर्द्यमाना याः शल्लक्यः गजभक्ष्यतरुविशेषाः तासां कषायगन्धः निर्यासामोदः, अत एवात्र गजशिशूनामस्तित्वसम्भव इत्याशयः।

इत इति। निपतितानि वृक्षादधश्च्युतानि यानि शुष्कपत्राणि नीरसदलानि तेषां मर्मरध्वनिः मर्मर इत्येवं रवः 'मर्मरो वस्त्रभेदे च शुष्कपर्णध्वनौ तथा' इति कोशः, ध्रुवमत्र कोऽपि चतुष्पाद् विचरतीति ज्ञायत इत्याशयः। वनमहिषा अरण्यसैरिभाः तेषां विषाणकोटयः शृङ्गाग्राणि कुलिशानि वज्राणीव यद्वा विषाणकोटय एव कुलिशानि तैर्भिद्यमानानां छिद्यमानानां वल्मीकानाम् उधीकाकृतमृत्तिकास्तूपानां 'वल्मीक उधीकाकृतमृत्तिकास्तूपः' इति शब्दकल्पद्रुमः, धूलिः रजः दृश्यत इति शेषः, तेनेह महिषा विचरन्त इत्याशयः। इह लुप्तोपमारूपकयोः द्वयोरपि सम्भवात् सन्देहसङ्करालङ्कारः। मृगाणां हरिणानां कदम्बकं समूहः। वनगजानाम् अरण्यहस्तिनां कुलं समूहः। वनवराहाणाम् अरण्यशूकराणां यूथं मण्डलम्। वनमहिषाणाम् अरण्यसैरिभाणां वृन्दं कदम्बकम्। शिखण्डिनां मयूराणां मण्डलं समूहः तस्य विरुतं शब्दः। कपिञ्जलानां चातकपक्षिणां 'कपिञ्जलः चातकपक्षी' इति शब्दकल्पद्रुमः, कुलस्य समूहस्य कलकूजितं मधुरशब्दितम्। कुररकुलस्य मत्स्यनाशनपुत्रपौत्रादेः कणितं कूजितम्। मृगपतीनां केसरिणां नखैः पुनर्भवैः भिद्यमाना विदार्यमाणाः कुम्भाः शिरःस्थकुम्भाकृतिमांसपिण्डाः येषां तथोक्तानां कुञ्जराणां गजानां रसितम् आक्रन्दितम्।

इयमिति। इयं प्रत्यक्षदृश्यमाना, एवमग्रेऽपि। आर्द्रः क्लिन्नः शुष्करहित इत्यर्थः यः पङ्कः कर्दमः तेन

व्यग्र होकर आश्रय लेनेकी आशासे मैं समीप बैठे हुए अपने पिताके, वृद्धावस्थासे शिथिल हुए पंखोंके अन्दर प्रविष्ट हो गया।

इसके बाद शीघ्र मैंने घबराहटमें शिकारियोंके एक बड़े समूहका कोलाहल सुना। उन्होंने वृक्ष-पंक्तियों (झाड़ियों) के मध्यमें अपने शरीर अन्तर्हित कर (छुपा) लिये थे और आपसमें इस प्रकार कहते जाते थे—इस ओरसे गजेन्द्रोंसे मर्दित (कुचली हुई) कमलिनियोंकी गन्ध आती है, इधरसे शूकरोंसे काटे हुए मोथेके रसकी सुगन्ध आती है, इस ओर हाथीके बच्चोंसे तोड़ी गई सल्लकीकी गंध आती है, इस जगह वृक्षसे झड़े हुए सूखे पत्तोंकी खड़खड़ाहट सुनाई देती है, इस ओर जंगली भैंसोंके वज्रतुल्य सींगोंसे तोड़ी गई वल्मीकोंकी धूल है, इस तरफसे हिरनोंका झुंड आता है, उस ओर जंगली हाथियोंका झुण्ड दीखता है, इधर जंगली शूकरोंका झुण्ड फिरता है; यहाँसे जंगली भैंसोंका झुण्ड निकलता है, इस ओरसे मयूरोंका शब्द आता है; इस दिशासे चातकोंकी मधुर कूक हो रही है, इधर कुररपक्षियोंका गान सुनाई देता है; इस ओर सिंहोंके नखोंसे विदीर्ण हुए कुम्भवाले हाथियोंका चीत्कार सुनाई देता है। यह है गीली कीचड़से मलीन हुआ शूकरोंका मार्ग; यह देखो

---

१. इतो वराहयूथम्। २. वराहकुलपद्धतिः।

-शष्पकवल-रस-श्यामला हरिण-रोमन्थ-फेन-संहतिः, इयमुन्मद-गन्धगजगण्ड-कण्डूयन-परिमल-नि³लीन-मुखर-मधुकर-विरुतिः, एषा निपतित-रुधिरबिन्दुसिक्त-शुष्कपत्र-पाटलारुरु-पदवी; एतद्द्विरद-चरण-मृदित-विटप-पल्लवपटलम्, एतत् खड्गिकुल²-क्रीडितम्, एष नख-कोटि-विलिखितविकट-पत्रलेखो³ रुधिरपाटलः करिमौक्तिक⁴-दन्तुरो मृगपतिमार्गः; एषाप्रत्यग्रप्रसूत-वनमृगीगर्भ-रुधिर-लोहनी-भूमिः, इयमटवी वेणुकानुकारिणी⁵ पक्षचरस्य⁶ यूथपतेर्मदजल-मलिना सञ्चार-वीथी-चमरीपङ्क्तिरियमनुगम्यताम्; उच्छुष्कमृग-करीष-पांशुला त्वरित-तरमध्यास्यतामियं वनस्थली, तरुशिखरमारुह्यताम्, आलोक्यतां दिगियम्, आकर्ण्य-

वराहशरीरेभ्य एव च्युतपङ्केनेत्यर्थः मलिना श्यामवर्णा वराहपद्धतिः वनशूकरमार्गः। अभिनवानि नूतनानि यानि शष्पाणि बालतृणानि तेषां ये कवलाः ग्रासाः तेषां तथोक्तानां चर्व्यमाणशष्पाणामित्यर्थः, रसैः निर्यासैः श्यामला कृष्णवर्णा, हरिणानां मृगाणां यो रोमन्थः चर्वितचर्वणं तस्य फेनसंहतिः कफसमूहः। उन्मदा मदमत्ता ये गन्धगजाः सुरभिमदयुक्तहस्तिनः तेषां गण्डकण्डूयनेन कपोलघर्षणेन ये परिमलाः सुगन्धाः तेषु तत्सुगन्धियुक्तभूमिष्वित्यर्थः। निलीनानां प्रच्छन्नानां मुखराणां वाचालानां मधुकराणां भ्रमराणां विरुतिः झङ्कारः। एषा अवलोक्यमाना, निपतिताः पृथिव्यामस्माकमवहननेन शरीरात्स्यन्दिताः ये रुधिर-बिन्दवः शोणितपृषताः तैः सिक्तानि सिञ्चितानि यानि शुष्कपत्राणि नीरसदलानि तैः पाटला श्वेतरक्ता रुरुपदवी हरिणविशेषाध्वा।

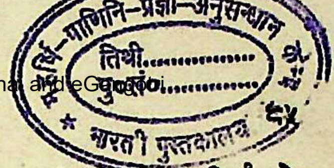
एतदिति। एतत् निकटतरस्थायि, द्विरदा गजास्तेषां चरणैः पादैः मृदितानां मर्दितानां विटपानां वृक्षस्कन्धानां पल्लवानां किसलयानाञ्च पटलं वृन्दं यत्र एवंविधं स्थलमित्यर्थः, एवञ्चानेन पथा निश्चित-मनुपदमेव द्विरदा गता इत्याशयः। एतत् अवलोक्यमानं खड्गिनां गण्डकानां कुलम् आत्मजादि तस्य क्रीडितं विहृतं पृथिव्यां क्रीडाचिह्नमवलोक्यत इत्यर्थः, तेन खड्गिनामपीदं विहारस्थानमित्याशयः। एष पुरो दृश्यमानः नखकोटिभिः पुनर्नखाग्रैः नखाग्रच्युतशोणितैरित्यर्थः, विलिखिताः चित्रीकृताः विकटा भय-ङ्कराः पत्रलेखाः पत्राकृतिलक्षणानि यत्र स तथोक्तः, रुधिरैः व्यापादितप्राणिशोणितैः पाटलः श्वेतरक्तवर्णः, तथा करिमौक्तिकैः व्यापादितहस्तिमुक्ताभिः दन्तुरः उच्चावचः, मृगपतेः केसरिणो मार्गः सञ्चरणपन्थाः, एवञ्च नूनमनेन मार्गेण मृगपतिर्गत इत्यभिप्रायः।

एषेति। प्रत्यग्रप्रसूता अभिनवप्रसूतवती या वनमृगी अरण्यहरिणी तस्या गर्भरुधिरेण भ्रूणशोणि-तेन लोहिनी रक्तवर्णा एषा भूमिः मेदिनी। वेणुकानुकारिणी केशवेणीसमा विषमेति यावत्, इयम् अटवी इदम् अरण्यम् 'अटव्यरण्यं विपिनम्' इत्यमरः। पक्षेण निजमण्डलेन चरति भ्रमतीति तस्य तादृशस्य यूथ पतेः हस्तिराजस्य मदजलेन दानवारिणा मलिना कृष्णवर्णा। तेनेह हस्तिनो भ्रमन्तीत्याशयः।

सञ्चारेति। इयं प्रत्यक्षोपलक्ष्यमाणा, सञ्चारवीथ्यां भ्रमणमार्गे चमरीपङ्क्तिः चमर्याख्यमृगराजिः अनु-गम्यतां हननायानुव्रज्यताम्। उच्छुष्कैः अत्यन्तनीरसैः मृगकरीषैः हरिणवृन्दैः पांशुला सधूलीका इयं दृश्य-माना वनस्थली अरण्यभूमिः त्वरिततरं वेगवत्तरम् अध्यास्यतां हरिणमार्गणाय अवलम्ब्यताम् प्रविश्यता-मित्यर्थः। तरोः वृक्षस्य शिखरम् ऊर्ध्वदेशम् आरुह्यताम् पक्षिहननाय आरोहविषयीविधीयताम्। इयम्

टूटी हुई ताजी घासके रससे कुछ श्यामवर्ण-सा हुआ हिरनोंके चर्वित-चर्वण (जुगाली) से गिरे हुए फेनों (झागों) का ढेर; यहाँ सुगन्धित मतवाले उन्मत्त हाथियोंके गण्डस्थल घिसनेसे निकली हुई गन्धपर आसक्त हुए वाचाल भौंरोंका गुञ्जार सुनाई देता है; देखो, यह परिस्रुत (टपकी) हुई शोणितकी बूँदोंसे आर्द्र हुए पत्तोंसे रक्तवर्ण हुआ 'रुरु' मृगका सञ्चरण मार्ग है; यह रहा हाथियोंके नीचे मर्दित (कुचले) हुए वृक्षोंके पत्तोंका ढेर; इस स्थल पर गेंडोंने खेल किया है; यह रहा सिंहका मार्ग—इसमें नखोंके अग्रभागसे निःसृत रक्त द्वारा पत्राकृति विकट चिह्न बन गये हैं; यह गजमुक्ताओंके टुकड़ोंसे सम-विषम (ऊँचा-नीचा) और शोणितसे लाल है। देखो, यह सद्यः नवप्रसूता (अभी ब्याई हुई) हिरनीके गर्भमेंसे बहते शोणितसे रक्तवर्ण हुई भूमि; यह रही—वनभूमिकी चोटीके समान लगती—यूथसे वियुक्त गजराजके पदसे मलीन हुई पंक्ति; हिरनियोंके पैरोंकी इस पंक्ति पर चलो; हिरनोंकी अत्यधिक सूखी हुई विष्ठा (मेंगनी) की धूलवाली इस वनस्थली पर शीघ्रतासे बैठ जाओ; वृक्षकी चोटी

१. आलीनः। २. शिखण्डिकुलक्रीडितम्। ३. विकटविलिखितपत्रलेखः। ४. मौक्तिकदन्तुरः। ५. वेणिकानुसारिणी। ६. एकचरस्य समीपचरस्य।



तामयं शब्दः, गृह्यतां धनुः, अवहितैः स्थीयताम्, विमुच्यन्तां श्वानः" इत्यन्योन्यमभिदधतो मृगयासक्तस्य महतो जनसमूहस्य तरुगहनान्तरित-विग्रहस्य क्षोभितकाननं कोलाहलमश्रृणवम्।

अथ नातिचिरादेवानुलेपनार्द्र-मृदङ्गध्वनिधीरेण गिरिविवर-विजृम्भित-प्रतिनाद-गभीरेण, शबर-शर-ताडितानां केशरिणां निनादेन, संत्रस्त-यूथ-मुक्तानामेकाकिनाञ्च सञ्चरतामनवरत-करास्फोटमिश्रेण जलधर-रसितानुकारिणा गजयूथपतीनां कण्ठगर्जितेन, सरभस-सारमेय-विलुप्यमानावयवानामालोल-कातर-तरलतर-तारकाणामेणकानाञ्च करुण-कूजि-

---

अभिमुखी दिक् ककुप् आलोक्यतां पशवो विद्यन्ते न वेति बोधनाय परिदृश्यताम्। अयं शब्दः आकर्ण्यतां श्रूयतां यतश्चोदेति शब्दस्तद्देशो यातव्यमिति भावः। धनुश्चापः गृह्यतां झटिति पशुवधाय आदीयताम्। अवहितैः सावधानैः भवद्भिः स्थीयताम् उपविश्यताम् अन्यथा चेत् अन्तिकादेवाविद्धगात्राः पशवः पलायिता भवेयुरित्याशयः। श्वानः कौलेयकाः विमुच्यतां परिप्रेष्यतां व्यापादितपशुमार्गणायेति भावः। स्वपालितश्वानो हि पशून् मार्गयित्वा सङ्केतविशेषेण स्वामिनं बोधयन्तीति लोकवार्ता। इति अन्योन्यम् एवं परस्परम् अभिदधतः कथयतः, मृगयासक्तस्य आखेटलग्नस्य महतो विपुलस्य अधिकदेशव्यापिन इत्यर्थः जनसमूहस्य मनुष्यसमुदायस्य। तरूणां वृक्षाणां गहनो वायुः तेन अन्तरिता आच्छादिता विग्रहा देहा यस्य तस्य तथोक्तस्य, क्षोभितकाननं सञ्चालितवनं येन तं तथोक्तं कोलाहलं कलकलम् अश्रृणवम्।

अथेति। अथ कोलाहलश्रवणानन्तरम् 'मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येष्वथो अथ' इत्यमरः, नातिचिरादेव स्वल्पसमयेनैव सर्वतः प्रचलितमिव तदरण्यमभवदिति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः। इह तृतीयान्तपदानि प्रचलितमिति क्रियायाः करणानि। अनुलेपनं पार्श्वमुखद्वये द्रवद्रव्यविशेषलेपनं तेन आर्द्रः स्विन्नो यो मृदङ्गो मुरजवाद्यः तस्य ध्वनिः शब्दः तद्वत् धीरेण गम्भीरेण। गिरिविवरेषु पर्वतकन्दरासु विजृम्भितेन विस्तीर्णेन प्रतिनादेन प्रतिशब्देन गभीरो विपुलः तेन तादृशेन। इहाद्यविशेषणे लुप्तोपमा।

शबरेति। शबराणां किरातानां शरा इषवः तैः ताडितानां व्यथितानां केसरिणां मृगपतीनां निनादेन शब्देन 'शब्दो निनादनिनदे'त्यमरः।

सन्त्रस्तेति। सन्त्रस्तेन शबराक्रमणाच्चकितेन यूथेन स्ववर्गीयसमूहेन मुक्तानां त्यक्तानाम् अत एव एकाकिनां सहायरहितानां विभिन्नरूपेणावतिष्ठतामित्यर्थः, सञ्चरतां भ्रमतां गजयूथपतीनां करिवृन्दस्वामिनाम्, अनवरतं निरन्तरं यः करास्फोटः शुण्डाघातः तच्छब्द इति यावत् तेन मिश्रं संवलितं तेन तादृशेन जलधररसितानुकारिणा वारिदगर्जनतुल्येन, कण्ठगर्जितेन कण्ठनिःसृतविस्तृतशब्देन। इह समासगतार्थी लुप्तोपमा।

सरभसेति। सरभसैः वेगवद्भिः सारमेयैः श्वानैः विलुप्यमाना दन्तैस्त्रोट्यमाना अवयवा अङ्गानि येषां तेषां तादृशानाम्, अत एव आलोलाः अश्रुव्याप्ता कातरा दीना दारुणव्यथासूचकाः, तरलतराः त्रासेनात्यन्तचञ्चलाः तारकाः कनीनिका येषां तेषां तादृशानाम्, एणकानां मृगविशेषाणां करुणकूजितेन शोकोत्पादध्वनिना। इह वृत्त्यनुप्रासः।

पर चढ़ जाओ; इस ओर दृष्टिपात करो; इस शब्दको सुनो; धनुष लो; सावधान होकर खड़े रहो; कुत्तोंको छोड़ दो इस कोलाहलसे समस्त वन क्षुभित हो गया।

इतनेमें ही वनमें अनेक प्रकारके शब्द होने लगे। भीलोंके वाणोंसे व्यथित हुए सिंहोंका नाद होने लगा। वह लेप करनेसे आर्द्र हुए मृदंगकी ध्वनिके समान गम्भीर था एवं पर्वतोंकी कन्दराओंमें से उठते हुए प्रतिध्वनिसे और भी बढ़ गया था। भयचकित अपने झुण्डोंसे विच्युत (बिछुड़े हुए) अकेले भटकते गजपतियोंकी कंठ-गर्जना हो रही थी। वह मेघ-निर्घोषके तुल्य थी। उसीके साथ बार-बार ताड़नकी गई सूड़ोंका शब्द सुनाई दे रहा था। हिरनोंके दारुण वेदनावश आर्त्तनाद हो रहे थे। इन हिरनोंके अवयव लहकाये गये वेगगामी कुत्तोंने काट डाले थे और इनके नेत्रोंकी पुतलियाँ अश्रुप्लावित, चञ्चल, कातर और क्षुब्ध थीं। मारे गये हाथियोंकी

---

१. अभिददतः। २. मृगयाप्रसक्तस्य, मृगयाप्रसक्तास्ते। ३'''दिवा'''। ४'''ध्वान। ५. प्रतिनिनादगम्भीरेण। ६. 'शबर' पदं क्वापि न विद्यते। ७. क्वापि 'कण्ठ' इति नोपलभ्यते। ८. आलोलतरलतारकाणाम् विलोलतरल'''।

तेन, निहत-यूथपतीनां वियोगिनीनामनुगत-कलभानाञ्च स्थित्वा स्थित्वा समाकर्ण्य कलकलमुत्कर्णपल्लवानामितस्ततः परिभ्रमन्तीनां प्रत्यग्र-पतिविनाशशोकदीर्घेण करिणीनां चीत्कृतेन, कतिपय-दिवस-प्रसूतानाञ्च खड्गिधेनुकानां त्रास-परिभ्रष्ट-पोतकान्वेषिणीनामुन्मुक्तकण्ठमारसन्तीनामाक्रन्दितेन, तरुशिखरसमुत्पतितानामाकुलाकुलचारिणाञ्च पत्ररथानां कोलाहलेन, रूपानुसार-प्रधावितानाञ्च मृगयूणां युगपदतिरभसपादपाताभिहताया भुवः कम्पमिव जनयता चरणशब्देन, कर्णान्ताकृष्टज्यानाञ्च मदकल-कुररकामिनी-कण्ठ-कूजितकलेन शरनिकर-वर्षिणां धनुषां निनादेन, पवनाहति-क्वणित-धाराणामसीनाञ्च कठिन-महिष-स्कन्धपीठपाति-

निहतेति। निहताः शबरैर्हिंसिताः यूथपतयः स्ववर्गीयगणस्वामिनो गजा यासां तासां तथोक्तानाम्, अत एव वियोगिनीनां स्वामिविरहिणीनाम् अनुगता पश्चात्संसक्ताः कलभाः त्रिंशद्वर्षीयशिशवो यासां तथोक्तानाम्, स्थित्वा स्थित्वा यस्मिन् कस्मिन् स्थले अवस्थाय अवस्थाय कलकलं शबराणां कोलाहलं समाकर्ण्य निशम्य उत्कर्णपल्लवानाम् ऊर्ध्वीकृतकिसलयाकृतिकर्णानाम् इतस्ततः समन्ततः परिभ्रमन्तीनां सञ्चरणं कुर्वन्तीनां करिणीनां हस्तिनीनाम्, प्रत्यग्रेण अभिनवेन पतिविनाशेन स्वामिमरणेन यः शोकः तेन दीर्घं विस्तृतं तेन तादृशेन चीत्कृतेन आर्त्तचीत्कारशब्देन।

कतिपयेति। कतिपये कियन्तो ये दिवसाः अहानि तत्र प्रसूतम् उत्पादितं याभिः तादृशीनाम्। त्रासेन भयेन परिभ्रष्टान् मण्डलाद्विश्रृङ्खलितान् पोतकान् स्वस्वार्भकान् अन्वेष्टुं मार्गयितुं शीलं यासां तासां तादृशीनाम्। अत एव उन्मुक्तकण्ठं यथा स्यात्तथा आरसन्तीनाम् शोकव्यञ्जकशब्देनारटन्तीनां खड्गधेनुकानां दुग्धवतीनां गण्डपत्नीनाम् आक्रन्दितेन आर्त्तशब्देन।

तरुशिखरेति। तरुशिखरेभ्यः वृक्षप्रान्तेभ्यः समुत्पतितानाम् उड्डीनानाम् आकुलाकुलं यथास्यात्तथा चारिणां भ्रमणविधायिनां पत्ररथानां पक्षिणां कोलाहलेन कलकलध्वनिना।

रूपेति। रूपानुसारेण मृगानुगमनेन प्रधावितानां प्रचलितानां मृगयूणां शबराणाम्, युगपत् एकस्मिन् समये अतिरभसेन वेगवत्तरेण ये पादपाताः पादन्यासाः तैः अभिहतायाः ताडितायाः भुवो मेदिन्याः कम्पमिव चलनमिव जनयता उत्पादयता चरणशब्देन पादध्वनिना।

कर्णान्तेति। कर्णान्ते श्रोत्रपर्यन्ते अकृष्टा आकर्षिता ज्या गुणा येषां तेषां तथोक्तानाम्, शरनिकरवर्षिणां बाणसमूहपातिनां धनुषां चापानाम्, मदकलानां मदोन्मत्तानां कुररकामिनीनां मत्स्यादनपक्षिणां कण्ठकूजितवत् गलनिनादवत् कलेन अव्यक्तमधुरेण निनादेन ध्वनिना। इह लुप्तोपमा। शब्दस्याव्यक्तमधुरत्वव्यञ्जनार्थं कुररकामिनीत्यत्र कामिनीतिपदमित्यवसेयम्।

पवनेति। पवनस्य वायोः आहत्या संघट्टनेन क्वणिताः शब्दिता, धाराः तीक्ष्णांशा येषां तेषाम्, कठिनः कठोरो यो महिषस्कन्धः सैरिभबाहुशिरः स एव पीठं स्थलं तत्र पातिनां पतनशीलानाम् असीनां खड्गानां रणितेन शब्देन।

विरहिणी हथिनियोंका चीत्कार (चिंघाड़) हो रहा था। यह अभिनव पतिविनाशजनित शोकसे बढ़ गया था। ये हथिनियाँ इधर उधर भ्रमण करती थीं, इनके कान खड़े हो गये थे और कोलाहल करते हुए बच्चे इनके पीछे पीछे चले आरहे थे। गद्गदकंठसे करुणापूर्वक आर्त्तनाद करती हुई गैंडोंके स्त्रियोंका विलाप हो रहा था। ये भयसे घबराये हुए और थोड़े दिनों पहले उत्पन्न हुए अपने बच्चोंको अन्वेषण कर रही थीं। वृक्षोंकी चोटियोंसे उड़कर व्याकुल फिरते पक्षियोंका कोलाहल हो रहा था। पशुओंके पीछे दौड़ते हुए व्याधोंके चरणोंका शब्द हो रहा था। वह बड़े वेगसे ताड़नाकी गई भूमिको मानो कँपा देता था। कानों तक आकर्षित की (खेंची) हुई प्रत्यञ्चावाले धनुषोंका शब्द हो रहा था। धनुषवाणोंकी वर्षा कर रहे थे और इनका शब्द मदमत्त कुररीके कंठस्वरके समान हो रहा था। पवनकी ताड़नासे खड़खड़ाती धारवाली और भैंसोंके कठिन कंधों पर गिरती हुई

१. कलभकानाम्। २. पोतान्वेषणीनाम्। ३...कण्ठकरुण, कण्ठं करुण, कण्ठमतिकरुण। ४. निनादेन। ५...प्रस्थितानाञ्च। ६. मृगयूथानां। ७. पादपातात्। ८...कूजितकलशबलितेन, कूजितकलशवलेन; कूजितकलकलेनेव;......कूजितकलकलशब्देन। ९. पवनाहत। १०...पीठपातितानां।

नां रणितेन, शुनाञ्च सरभसविमुक्त-घर्घर-ध्वनीनां वनान्तरव्यापिना ध्वानेन सर्वतः प्रचलितमिव तदरण्यमभवत्।

अचिराच्च प्रशान्ते तस्मिन् मृगयाकलकले, निर्वृष्ट-मूक,जलधर-वृन्दानुकारिणि मथनावसानोपशान्तवारिणि सागर इव स्तिमिततामुपगते कानने, मन्दीभूतभयोऽहमुपजात-कुतूहलः पितुरुत्सङ्गादीषदिव निष्क्रम्य कोटरस्थ एव शिरोधरां प्रसार्य सन्त्रास-तरल-तारकः शैशवात् किमिदमिति सञ्जातदिदृक्षः तामेव दिशं चक्षुः प्राहिणवम्।

अभिमुखमापतच्च तस्माद्वनान्तरादर्जुनभुजदण्ड-सहस्र-विप्रकीर्णमिव नर्मदाप्रवाहम्, अनिलचलितमिव तमालकाननम्, एकीभूतमिव कालरात्रीणां यामसङ्घातम्, अञ्जनशिला-

शुनामिति। तथा सरभसं वेगवत्तरं विमुक्ताः परित्यक्ताः विहिता घर्घरध्वनयः 'घर् घर्' इति निनादाः यैः तेषां तथोक्तानां शुनां सारमेयाणां वनान्तरव्यापिनां विपिनमध्यप्रसरणशीलेन ध्वानेन निनादेन सर्वतः समन्तात् प्रचलितमिव कम्पितमिव तदरण्यं तद्वनम् अभवत् अभूत्। इह प्रचलितमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

अचिरादिति। अचिरात् अल्पकालेन प्रशान्ते शान्तिं प्राप्ते तस्मिन् मृगयाकलकले आखेटकोलाहले, निर्वृष्टं निःशेषेण सम्पादितवर्षम् अत एव मूकं निःशब्दं यत् जलधरवृन्दं वारिदसमूहः तदनुकर्तुं शीलं यस्य तस्मिन् तथोक्ते कानने वने 'गहनं काननं वनम्' इत्यमरः, मथनस्य सुरासुरैर्मन्थनस्य अवसाने अन्ते उपशान्तं निजस्वरूपेणावस्थितं वारि सलिलं यस्य तस्मिन् तथोक्ते सागर इव समुद्र इव स्तिमिततां निस्पन्दताम् उपगते लब्धे सति। मन्दीभूतं मन्दतां प्राप्तं भयं त्रासो यस्य स तादृशः, उपजातम् उत्पन्नं कुतूहलं कौतुकं यस्य स तादृशश्च अहं वैशम्पायनः पितुः तातस्य उत्सङ्गात् क्रोडात् ईषदिव किञ्चिदिव निष्क्रम्य उन्नमय्य कोटरो वृक्षविवरः तत्स्थ एव शिरोधरां ग्रीवां प्रसार्य बहिः विस्तार्य, सन्त्रासेन भयेन तरले चञ्चले तारके कनीनिके यस्य स तादृशः, शैशवात् बाल्यात् इदम् आश्चर्यभूतं किमिति हेतोः संजाता समुत्पन्ना दिदृक्षा अवलोकनेच्छा यस्य स तादृशः, तामेव दिशम् आशां प्रति चक्षुर्लोचनं प्राहिणवं संप्रैषम्। इह उपमालुप्तोपमयोः परस्परनैरपेक्ष्येण स्थितत्वात् संसृष्टिः।

अभिमुखमिति। तस्माद्वनान्तरात् अभिमुखमापतत् शबरसैन्यमद्राक्षमित्यग्रिमेण क्रियया सम्बन्धः। इह द्वितीयान्तानि शबरसैन्यविशेषणानि बोध्यानि। वनान्तरात् वनमध्यात् अभिमुखं संमुखम् आपतत् आगच्छत्। अर्जुनस्य कार्त्तवीर्यस्य राज्ञो भुजदण्डसहस्रेण सहस्रसंख्यकदण्डसदृशबाहुभिः विप्रकीर्णम् इतस्ततो विक्षिप्तं नर्मदाया मेकलाद्रिजाया नद्याः प्रवाहमिव स्रोत इव, धारावाहिकपंक्तिकत्वादित्याशयः। इहोपमा। अत्रायं रामायणीयेतिहासः—पुरा किल हैहयानामधिपतिः कार्त्तवीर्यः सहस्रबाहुभिः नर्मदाप्रवाहमवरुद्ध्य जलक्रीडां सम्पादितवानिति।

अनिलेति। अनिलेन पवनेन चलितं प्रयातम् उत्पाटितं सत् स्थानान्तरप्राप्तियोग्यमित्यर्थः, तमालानां तापिच्छानां काननम् अरण्यमिव सान्द्रश्यामवर्णत्वाद्दीर्घस्वरूपत्वाच्चेत्याशयः। इहाऽप्युपमा।

एकीभूतमिति। कालरात्रीणां प्रलयक्षपानाम् अत्यन्तान्धकारत्वेन सान्द्रश्यामानामित्याशयः, एकीभूतम् एकत्रमिश्रीभूतं यामसङ्घातं प्रहरसमुदायमिव। इह जात्युत्प्रेक्षा।

तलवारोंका रणत्कार (रन रन शब्द) हो रहा था। वेगसे भोंकते कुत्तोंका शब्द समस्त वनमें व्याप्त हो रहा था। ऐसे शब्दोंके कोलाहलसे वह वन मानो कम्पित हो (थरथरा) गया।

थोड़ी देरके पीछे आखेटका कोलाहल जाता रहा और वन भी प्रशान्त हो गया। वह समस्त जल वर्षा देनेके बाद शान्त हुए मेघके समान, एवं मथनके अन्तमें स्थिर जलवाले समुद्रके समान प्रतीत होने लगा। तब मेरा भय कुछ कम हुआ और बचपनके कारण कौतुक उत्पन्न होनेसे मुझे आश्चर्य हुआ कि यह क्या है? उसे देखनेके लिए व्यग्र होकर मैं पिताकी गोदमें से कुछ बाहर निकला और घोसलेमें से ही अपनी गर्दन आगे बढ़ाकर उसी दिशाकी ओर देखने लगा। उस समय मेरी आँखोंकी कनीनिकाएँ (पुतलियाँ) भयसे चकित हो गई थीं। मैंने दूसरे वनमें से समक्ष आती हुई हजारों भीलोंकी एक सेना देखी। वह राजा कार्त्तवीर्यार्जुनके सहस्र हाथोंसे

१. तदारण्यम्। २. उपागते। इह 'तस्मिन्' इत्यधिकः पाठः क्वचिदुपलभ्यते। ३'''साध्वसोऽहम्, साध्वसः। ४. तरलतर'''। ५. किमिति। ६. समुपजातविस्मयो दिदृक्षुः, समुपजातदिदृक्षः. उपजातदिदृक्षः। ७. आपतितम्, आपतन्त्वम्। ८. अनिलबलचलितमिव, अनलवशाच्चलितमिव, अनिलबलसञ्चलितमिव।

स्तम्भ-सम्भारमिव क्षितिकम्प-विघूर्णितम्, अन्धकारपूरमिव रविकिरणाकुलितम्, अन्तक-परिवारमिव परिभ्रमन्तम्, अवदारित-रसातलोद्गतमिव दानवलोकम्, अशुभ-कर्म्म-समूहमिवैकत्र समागतम्, अनेक-दण्डकारण्यवासि-मुनिजन-शाप-सार्थमिव सञ्चरन्तम्, अनवरत-शर-निकर-वर्षि-राम-निहत-खर-दूषण-बलमिव तदपध्यानात् पिशाचतामुपगतम्, कलिकाल-बन्धुवर्गमिव सङ्गतम्, अवगाहप्रस्थितमिव वनमहिषयूथम्, अचल-शिखर-स्थित-केशरि-कराकृष्टि-पतनशीर्णमिव कालमेघपटलम्, अखिलरूप-विनाशाय-

अञ्जनेति। क्षितिकम्पेन पृथिवीकम्पेन विघूर्णितम् आन्दोलितम् अञ्जनवत् कज्जलवत् श्यामवर्णा इत्यर्थः, ये शिलास्तम्भाः पाषाणरचितस्थूणाः तेषां सम्भारं संघातमिव। इहोपमालुप्तोपमयोः सङ्करः।

अन्धकारेति। रविकिरणैः सूर्यरश्मिभिः आकुलितं सञ्चाल्य व्याकुलीभूतम् अन्धकाराणां तमसां पूरं प्रवाहमिव। अत्रान्धकारत्वजातिस्वरूपोत्प्रेक्षा। अन्धकारस्य द्रव्यत्वेनानेकत्वेन च जातित्वम्, एतच्च पूर्वोक्तरपक्षाभ्यां मुक्तावल्यादौ निर्णीतम्। तथा चोक्तम्—

'तमः खलु चलं नीलं परापरविभागवत्। प्रसिद्धधर्मवैधर्म्यान्नवभ्यो भेत्तुमर्हति'

वैशेषिकादयस्तु आवश्यकतेजोऽभावेनैव चैतस्य सिद्धिं दिशन्ति।

अन्तकेति। परिभ्रमन्तम् इतस्ततः पर्यटन्तम् अन्तकस्य वैवश्वतस्य 'वैवश्वतोऽन्तकः' इत्यमरः, परिवारं परिजनवर्गमिव निविडश्यामवर्णत्वादित्याशयः। इहापि जातिस्वरूपोत्प्रेक्षा।

अवदारितेति। अवदारितेन विदीर्णेन रसायाः पृथिव्याः तलेन तन्मार्गेणेत्यर्थः उद्भूतं पातालादुद्गतं दानवलोकं दैत्यजनमिव। इहाऽप्युक्तालङ्कारः।

अशुभेति। एकत्र एकस्मिन् स्थाने समागतं मिलितम् अशुभकर्मणाम् अधर्मकार्याणां समूहं गणमिव। उक्तालङ्कारः।

अनेकेति। अनेकेषां दण्डकवननिवासिनां मुनिजनानां तपस्विलोकानां शापसार्थम् अभिसम्पातसमूहमिव सञ्चरन्तं गच्छन्तम्। उक्तालङ्कारः। 'सार्थो वणिक्समूहे स्यादपि संघातमात्रके' इति मेदिनी।

अनवरतेति। अनवरतं सततं शरनिकरं बाणसमूहं वर्षतीत्येवंशीलो यो रामो दशरथतनयः तेन निहतं मारितं यत् खरदूषणयोः तन्नामकयोः पातालल‌ङ्काधिपत्योर्दैत्ययोः बलं सैन्यं तदिव। तस्मिन् रामचन्द्रे अपध्यानं दुश्चिन्तनमशुभचिन्तोत्पन्नपापं तस्मात् पिशाचतां भूतताम् उपगतं प्राप्तं सत् आगतमित्यर्थः। उक्तालङ्कारः। अनेन साधुजनाशुभचिन्तनेन प्रत्यवायः समुदेतीत्याशयो ज्ञेयः।

कलिकालेति। एकत्र एकस्मिन्नेव स्थाने सङ्गतं सम्मिलितम्, कलिकालस्य कलियुगस्य बन्धुवर्गं मित्रमण्डलमिव। उक्तालङ्कारः।

अवगाहेति। अवगाहो मज्जनं तदर्थं प्रस्थितं प्रयातं वनमहिषयूथमिव अरण्यसैरिभसमूहमिव। उक्तालङ्कारः।

अचलेति। अचलः पर्वतः तस्य शिखरे शृंगे स्थितो विद्यमानो यः केसरी सिंहः तस्य कराभ्यां पाणिभ्यां या आकृष्टिः आकर्षणं तया यत् पतनं पृथिव्यां भ्रंशः तेन शीर्णम् अधिकखण्डीभूतं कालमेघपटलमिव श्याममेघमण्डलमिव। उक्तालङ्कारः।

अखिलेति। अखिलानां समग्राणां रूपाणां मृगाणां 'रूपं मृगेऽपि विज्ञेयम्' इति हलायुधः, विना-

छिन्न भिन्न हुई नर्मदा धाराके समान, पवनसे इधर उधर उड़ाए गए तमाल-वनके समान, काल-रात्रियोंके प्रहरोंके एकत्र हुए समूहके समान, भूकम्पसे सञ्चालित कज्जल-शिलाके स्तम्भोंके समूहके समान, सूर्यकी रश्मियोंसे व्याकुल हुए अन्धकार-पुञ्जके समान, यमके भटकते हुए परिवारके समान, पाताल फोड़कर बाहर निकले हुए दानवोंके समान, एक स्थानमें एकत्रित अशुभ-कर्मोंके समूहके समान, दण्डकारण्यमें निवास करते हुए समस्त मुनियोंके शापसे विचरते हुए समूहके समान, बार बार बाणोंकी वर्षासे रामचन्द्रके द्वारा मारे गए खर-दूषणके रामचन्द्रकी अशुभ चिन्ताके कारण पिशाचताको प्राप्त हुए—सैन्यके समान, कलिकालके एकत्रित हुए बन्धुवर्गके समान, स्नान करनेके लिए निकले हुए जंगली भैंसोंके समूहके समान, पर्वतकी चोटी पर खड़े हुए सिंहके पंजोंद्वारा

१...पुञ्जमिव। २...आकुलम्; ३...तलोद्भूतमिव। ४. अशेष...। ५...वासित...। ६...निहतम्, इतखरदूषणनिवहमिव। ७. उपागतम्। ८. कलिकालवर्गमिव समुद्गतम्,...वर्गमिवैकत्र समागतम्। ९. अवगाहोत्थितप्रस्थितमिव। १०. अचलशिखरस्थसिंह...। ११. विशीर्णमिव। १२. कालाभ्र...।

धूमकेतुजालमिव समुद्गतम्, अन्धकारिताशेषकाननम्, अनेकसहस्रसंख्यम्, अतिभयजनकम्, उत्पात-वेतालव्रातमिव शबरसैन्यमद्राक्षम् ।

मध्ये च तस्यातिमहतः शबरसैन्यस्य प्रथमे वयसि वर्त्तमानम्, अतिकर्कशत्वादायसमयमिव, एकलव्यमिव जन्मान्तरागतम्, उद्भिद्यमान-श्मश्रुराजितया प्रथम-मदलेखा-मण्ड्यमान-गण्डभित्तिमिव गजयूथपतिकुमारम्, असित-कुवलय-श्यामलेन देहप्रभा-प्रवाहेण कालिन्दीजलेनेव पूरयन्तमरण्यम्, आकुटिलाग्रेण स्कन्धावलम्बिना कुन्तल-भारेण केश-

शाया व्यापादनाय समुद्गतं समुद्भूतं धूमकेतूनाम् उत्पातग्रहाणां जालं वृन्दमिव । उक्तालङ्कारः । 'धूमकेतुः स्मृतो वह्नावुत्पातग्रहभेदयोः' इति विश्वः ।

अन्धेति । अन्धकारितं समुत्पन्नान्धकारम् अशेषं समग्रं काननं विपिनं येन तत् तथोक्तम्, अनेकानि बहूनि सहस्राणि संख्या यस्य तत् तादृशम्, अतिभयजनकम् अत्युत्कृष्टत्रासोत्पादकम् । उत्पाताय अशुभाय यो वेतालव्रातः भूताधिष्ठितमृतकगणः तमिव शबरसैन्यं भिल्लानीकम् अद्राक्षम् अपश्यम् । उक्तालङ्कारः ।

मध्ये चेति । अतिमहतः अतिविशालस्य तस्य पूर्वोपवर्णितस्य शबरसैन्यस्य भिल्लानीकस्य मध्ये च मातङ्गकनामानं शबरसेनापतिमपश्यमित्यतिदूरेण सम्बन्धः । इह यानि द्वितीयान्तपदानि तानि शबरसेनापतिविशेषणानीत्यवगन्तव्यानि । प्रथमे वार्धकापेक्षया पूर्वे वयसि अवस्थायां वर्त्तमानं स्थितं तरुणमित्यर्थः । अतिकर्कशत्वात् अत्यन्तकठिनशरीरत्वात् आयसमयमिव लौहरचितमिव 'आयसं लौहमिति' भरतः । इह क्रियोत्प्रेक्षा ।

एकेति । जन्मान्तरे अन्यजन्मनि आगतं प्राप्तम् एकलव्यं तन्नामकं द्रोणाचार्यशिष्यं शबरमिव धनुर्वेदे निपुणत्वादित्याशयः । इह द्रव्योत्प्रेक्षा ।

अत्रेदमितिवृत्तम्—पुरा किलैकलव्यो धनुर्वेदं शिक्षितुं द्रोणाचार्यान्तिकमुपेत्याध्यापयितुं प्रार्थयामास किन्तु सो हि पार्थप्रेम्णा तन्नाङ्गीचकार, ततो निराशया तमेव हृदि ध्यायन् मृण्मयीं तन्मूर्त्तिं विधाय स्वभवने प्रतिदिनमर्चयामास । ततश्च प्राप्तमनोरथो जन्मान्तरे तच्छिष्यत्वमुपगतवानिति महाभारतीयम् ।

उद्भिद्येति । उद्भिद्यमानानि उत्पद्यमानानि यानि श्मश्रूणि मुखलोमानि तेषां राजिः पङ्क्तिर्यस्य तस्य भावस्तया हेतुना, प्रथमया नूतनया मदलेखया श्यामलमदजलरेखया मण्ड्यमाने अलङ्क्रियमाणे गण्डभित्ती कपोलदेशौ यस्य तं तादृशम्, गजयूथपतेः हस्तिनायकस्य कुमारः त्रिंशद्वर्षीयकलभः तमिव । इहोपमा ।

असितेति । असितं नीलं यत् कुवलयम् उत्पलं तद्वत् श्यामलेन कृष्णवर्णेन, देहस्य शरीरस्य प्रभाप्रवाहेण द्युतिस्रोतसा कालिन्दी यमुना तस्या जलेन सलिलेनेव अरण्यं वनं पूरयन्तं पूर्णं विदधन्तम् । कालिन्दीजलं नीलं शबरशरीरकान्तिरपि तादृशी, अत उभयोः सादृश्यम् । इह यथाक्रमं लुप्तोपमा, द्रव्योत्प्रेक्षा, तथा उक्तविधशरीरकान्तिप्रवाहेण वनपूरणसम्बन्धाभावेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपादनादतिशयोक्तिरित्येतेषां परस्परमङ्गाङ्गिभावेन सङ्करात् सङ्करालङ्कारः ।

आकुटिलेति । गजानां हस्तीनां व्यापादनलक्षणेन तन्मदेन दानजलेन मलिनीकृतेन कृष्णीकृतेन केसर-

आकर्षित करने (खींचने) से छिन्नभिन्न हुए प्रलयकालीन-मेघोंके समूहके समान, सब रूपका विनाश करनेके लिए आए हुए धूमकेतुओंके पटलके समान (धूमकेतुओंसे सृष्टिका संहार होता है; भीलोंके द्वारा पशुओंका विनाश होता है) और प्रलय-कालके वैतालवृन्द (भूताधिष्ठितमृतकगण) के समान समस्त वनमें अन्धकार एवं अत्यन्त भय उत्पन्न करती थी ।

उस अत्यन्त विस्तृत शबर-सेनाके मध्यमें मैंने युवक सेनापति को देखा । उसका नाम मातंग था और आकार भीषण था । नाम तो उसका मैं पीछे सुना था । वह अत्यन्त कठिन होनेके कारण ऐसा प्रतीत होता था मानो लोहे का निर्मित हुआ हो । वह दूसरा जन्म लेकर आए एकलव्यके समान देख पड़ता था । उसके दाढ़ी-मूँछ निकलने लगी थी, जिनके कारण वह, अभिनव मद-जलरेखासे शोभित गण्डस्थलवाले, हस्ति-शावकके समान लगता था; नीलकमलके समान श्यामवर्ण शरीर-कान्तिके प्रवाहसे वह मानो यमुनाका जल समस्त वनमें भर देता था; मस्तक पर कुछ मुँड़े तथा कंधे पर पड़े घूँघराले बालोंसे वह ऐसा देखनेमें आरहा था मानो गज-मदसे

१. अन्धकारितकाननम् । २'''जननम् । ३. तस्य महतः । ४. आयसमिव । ५. जन्मान्तरगतम् । ६'''कुमारकम् । ७. श्यामेन । ८'''पूरितारण्यम् ।

रिणमिव गजमदमलिनीकृतेन केशरकलापेनोपेतम्, आयतललाटम्, अतितुङ्ग-घोरघोणम्, उपनीतस्यैककर्णाभरणतां भुजगफणामणेरापाटलैरंशुभिरालोहितीकृतेन पर्णशयनाभ्या-साङ्क्रम-पल्लवरागेणेव वामपार्श्वेन विराजमानम्, अचिर-हत-गज-कपोल-गृहीतेन सप्तच्छ-द-परिमलवाहिना कृष्णागुरु-पङ्केनेव सुरभिणा मदेन कृताङ्गरागम्, उपरि तत्परिमलान्धेन परिभ्रमता मायूर-पिच्छातपत्रानुकारिणा मधुकरकुलेन तमाल-पल्लवेनेव निवारितातपम्, आलोलपल्लवव्याजेन भुजबल-निर्जितया भयप्रयुक्तसेवया विन्ध्याटव्येव करतलेनापमृज्य-

कलापेन सटानिकरेण उपेतं सहितं केसरिणं सिंहमिव आकुटिलाग्रेण किञ्चित्कुञ्चिताग्रेण स्कन्धावलम्बिना बाहुमूलस्थितवता कुन्तलभारेण केशसमूहेन उपेतम्। इहोपमा।

आयतेति। आयतं विस्तीर्णं ललाटं भालदेशं यस्य तं तथोक्तम्, अतितुङ्गा अत्युन्नता घोरा विशाल-छिद्रतया भयङ्करा च घोणा नासिका यस्य तं तादृशम्। 'घोणा नासा च नासिका' इत्यमरः।

उपनीतस्येति। एकस्य कर्णस्य श्रोत्रस्य आभरणताम् अलङ्करणताम् उपनीतस्य प्रापितस्य भूषण-तया सव्यश्रोत्रे स्थापितस्येत्यर्थः, भुजगस्य उरगस्य फणामणेः फणास्थितरत्नस्य आपाटलैः किञ्चिच्छ्वेत-रक्तैः अंशुभी रश्मिभिः आलोहितीकृतेन किञ्चिद्रक्तवर्णीकृतेन अत एव पर्णेषु वृक्षपत्रेषु यच्छयनं स्वापः तस्य अभ्यासात् पुनः पुनरनुष्ठानेन संस्कारातिशयात् लग्नः संसक्तः पल्लवानां किसलयानां राग आरुण्यं यत्र तेन तादृशेनेव, आस्तरणभूतपत्रेषु किसलयानामपि विद्यमानत्वादित्याशयः। वामपार्श्वेन सव्यपार्श्वेन विराजमानं द्योतमानम्। इह क्रियोत्प्रेक्षा।

अचिरेति। अचिरहतस्य तत्कालमारितस्य गजस्य दन्तिनः कपोलाभ्यां गण्डाभ्यां गृहीतेन आनी-तेन, सप्तच्छदस्य सप्तपर्णतरोः परिमलं सौरभमिव परिमलं वहति धारयतीत्येवं शीलेन कृष्णस्य श्याम-वर्णस्य अगुरोः तत्संज्ञकसुगन्धिद्रव्यस्य पङ्केनेव द्रवेणेव सुरभिणा घ्राणतर्पणसौरभवता 'सुरभिर्घ्राणतर्पणः' इत्यमरः, मदेन दानजलेन कृतो विहितः अङ्गरागः शरीरविलेपनं येन तं तादृशम्। इहोपमालुप्तोपमयोः परस्परनैरपेक्ष्येण स्थितेः संसृष्टिरलङ्कारः।

उपरीति। तस्य मदस्य यः परिमलः सौरभः तेन अन्धेन विह्वलेन, अत एव उपरि शिर ऊर्ध्वभागे परिभ्रमता सञ्चरता, मायूरं मयूरसम्बन्धि यत् पिच्छं बर्हं तस्य आतपत्रं तद्रचितच्छत्रम् अनुकर्तुं शील-मस्येति तेन तथोक्तेन मधुकरकुलेन भ्रमरगणेन निवारितः दूरीकृतः आतपः सूर्यरश्मिः यस्य तं तथो-क्तम्। इहोपमाद्वयम्, एका आर्थी अपरा च श्रौती, अनयोश्च परस्परनैरपेक्ष्येण स्थित्या तिलतण्डुलवत् संसृष्टिरलङ्कारः।

आलोलेति। भुजबलेन शबरसेनाधिपतिबाहुबलेन निर्जितया स्वाधीनीकृतया, अत एव भयेन त्रासेन प्रयुक्ता आरब्धा सेवा शुश्रूषा यया तया तादृश्या विन्ध्याटव्या, विन्ध्यवनस्थल्या कर्त्र्या, आलोलाः पवनवेगेन सम्यक् चञ्चला ये पल्लवाः किसलयानि तेषां व्याजेन स्वीयवृक्षोत्पन्नकिसलयसञ्चालनकपटेनेत्यर्थः, करतलेन हस्तेनेव अपमृज्यमाना प्रोञ्छ्यमाना गण्डस्थलयोः कपोलस्थलयोः स्वेदलेखा घर्मबिन्दुपङ्क्तिः यस्य तं तादृशम्। इहापह्नवोत्प्रेक्षा।

मलीन केसरवाला केसरी सिंह हो; उसका ललाट विस्तृत था; नासिका उन्नत एवं भयङ्कर थी; एक कानमें धारणकी हुई नागमणिकी झलकती किरणोंसे उसका वाम-भाग रक्तवर्ण हो गया था, जिसके कारण वह ऐसा प्रतीत होता था मानो पत्तों पर शयन करनेसे उनका रंग लग गया हो; थोड़ी देर पहले मारे गये हाथीके गंडस्थलमेंसे निःसृत मदका उसने लेप किया था। इस मदजलमेंसे सप्तपत्रका सौरभ निकलता था और यह मद काले अगरके लेपके समान परिमल-युक्त था; इसके सौरभसे अन्धे होकर ऊपर घूमते भौंरे मोरपंखके समान प्रतीत होते थे—उन्होंने मातङ्कके ऊपर तमालके पत्रोंकी मानो छाया कर दी थी। उसके गंडस्थलकी घर्म-विन्दु (पसीने) की रेखा हिलते हुए कर्ण-पल्लवसे प्रोञ्छित हो (पुँछ) जाती थी, जिससे ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके बाहुबलसे जीती गई

१. आयतललाटभासिनम्। २. तुङ्गघोरघोरणम्। ३. भुजङ्गफणामणेः, भुजगफणामणेः। ४. अचिरा-हत"'। ५. कृष्णगरु"'। ६. पतत्"'। ७. भ्रमता। ८. मायूरातपत्रानुकारिणा, मयूरपिच्छातपत्रानुकारिणा, मयूरपिच्छच्छत्रानुकारिणा। ९. आलोलकर्णपल्लवव्याजे।

मान-गण्डस्थल-स्वेदलेखम्, आपाटलया हरिणकुल-काल-रात्रि-सन्ध्यायमानया शोणितार्द्रयेव दृष्ट्या रञ्जयन्तमिवाशाविभागान्, आजानुलम्बिना दिक्कुञ्जर-करप्रमाणमिव गृहीत्वा निर्मितेन चण्डिका-रुधिर-बलिप्रदानार्थमसकृन्निशितशस्त्रोल्लेख-विषमित-शिखरेण भुजयुगलेनोपशोभितम्, अन्तरान्तरालग्नाश्यान-हरिण-रुधिरबिन्दुना स्वेदजल-कणिका-चितेन गुञ्जाफलमिश्रैः करिकुम्भमुक्ताफलैरिव विरचिताभरणेन विन्ध्यशिलातल-विशालेन वक्षःस्थलेन उद्भासमानम्, अविरत-श्रमाभ्यासादुल्लिखितोदरम्, इभ-मद-मलिनमालान-स्तम्भ-

आपाटलयेति। आपाटलया ईषच्छ्वेतरक्तया, अत एव हरिणकुलस्य मृगवृन्दस्य कालरात्रेः विनाशयामिन्याः सन्ध्यायमानया अरुणरश्मिलोहितीकृतसायंकालवदाचरन्त्या तथाविधदृष्टिनिक्षेपेनैव निरूप्य मृगविनाशादित्याशयः, शोणितार्द्रयेव रुधिरलिप्तयेव दृष्ट्या नेत्रेण आशाविभागान् दिग्विभागान् रञ्जयन्तं रक्तवर्णोत्पादनात् शोभयन्तमिव विद्यमानम्। इह सन्ध्यायमानयेत्यत्र क्यङन्तोपमा, शोणितार्द्रयेवेत्यत्र गुणोत्प्रेक्षा, रञ्जयन्तमिवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा चेति परस्परमेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

आजान्विति। आजानुलम्बिना नलकीलपर्यन्तपातिना अतिदीर्घेण, दिक्कुञ्जरस्य ऐरावताद्यन्यतमदिग्गजस्य करप्रमाणं शुण्डापरिमाणं गृहीत्वेव आदायेव निर्मितेन प्रजापतिरचितेन दिग्गजशुण्डादण्डसदृशायतेनेत्यर्थः। चण्डिकायै कालिकायै रुधिरबलेः शोणितोपहारस्य प्रदानार्थं समर्पणार्थं पशुकर्त्तनार्थमित्याशयः, असकृत् मुहुर्मुहुः निशितानि सुधारोत्पादनाय प्रस्तरादौ तेजितानि यानि शस्त्राणि खड्गादीनि तेषाम् उल्लेखेन घर्षणेन विषमितम् उच्चावचीकृतं शिखरम् अग्रदेशो यस्य तेन तादृशेन। इह गृहीत्वेवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

अन्तरेति। अन्तरान्तरा मध्ये मध्ये लग्ना संलग्ना आश्याना अशुष्का हरिणस्य मृगस्य रुधिरबिन्दवः शोणितकणा यस्मिन् तेन तथोक्तेन, स्वेदजलं घर्मजलं तस्य कणिका बिन्दवः तैः चितेन व्याप्तेन, अत एव गुञ्जाफलैः कृष्णलाख्यैः 'काकचिंचागुञ्जे तु कृष्णला' इत्यमरः, मिश्राणि संयुक्तानि तैः तथोक्तैः, करिकुम्भमुक्ताफलैः गजशिरःपिण्डरसोद्भवैः विरचितं निर्मितम् आभरणं भूषणं यस्य तेन तादृशेनेव विद्यमानेन। इह च हरिणरुधिरबिन्दवो गुञ्जाफलसदृशाः घर्मबिन्दवश्च करिकुम्भमुक्ताफलसदृशा इत्यवधेयम्। विन्ध्यस्य बालवायजपर्वतस्य शिलातलवत् विशालप्रस्तरतलवत् विशालेन पृथुलेन वक्षःस्थलेन उरःस्थलेन उद्भासमानं शोभमानम्।

इह विरचिताभरणेनेवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा, विन्ध्यशिलातलविशालेनेत्यत्र लुप्तोपमा चेत्युभयोः परस्परं नैरपेक्ष्येण संसृष्टिरलङ्कारः।

अविरतेति। अविरतो दिने निरन्तरं यः श्रमः शक्त्यतिशयार्थं परिश्रमः तस्य अभ्यासात् पुनःपुनरनुष्ठानेन संस्कारातिशयात् उल्लिखितं कृशत्वेन चिह्नितम् उदरं जठरं यस्य तं तथोक्तम्।

इभमदेति। ऊर्वोः जङ्घयोर्यद्दण्डद्वयं दण्डयुगलं तेन, इभमदेन गजदानवारिणा मलिनं श्यामवर्णम् आलानस्तम्भयुगलं गजबन्धनस्तम्भद्वन्द्वम् उपहसन्तमिव पृथुलतायां तिरस्कुर्वन्तमिव गजबन्धनस्तम्भ-

और भयसे परिचर्या करने आई विन्ध्याटवी अपने हाथसे उसका घर्मबिंदु (पसीना) पोंछ रही हो; हरिणोंके विनाशके सूचक और उनके शोणितसे ही मानो आर्द्र (गीली) दृष्टिसे वह दिशाओंके समस्त मार्गोंको रंग देता था; आजानु-लंबित (घुटने तक पहुँचती) और कालिका देवीको शोणितकी बलि देनेके लिए बार-बार उठाये गये तीक्ष्ण (पैने) शस्त्रोंके चिह्नसे विषम कन्धेवाली उसकी दोनों भुजाएँ ऐसी शोभायमान हो रही थीं मानो दिग्गजकी सूँड़की नाप लेकर निर्मित हुई हों। उसका वक्षःस्थल विन्ध्य-शिलातलके समान विशाल देखनेमें आता था। वह धर्म-बिन्दुओं (पसीनेके बूँदों) से तर हो रहा था और उसके बीच-बीचमें कुछ-कुछ गाढ़े हरिण-शोणितकी बूँदें लग रही थीं, जिनसे ऐसा प्रतीत होता था मानो उसने गुञ्ज-फल-मिश्रित (चिरमिटी सहित) गज-कुम्भ-स्थलके मोतियोंका आभूषण धारण किया हो; दिन-रात व्यायाम करनेसे उसका उदर अधिक कृश हो गया

१. सलिललेखम्। २. मृगकुलक्षयरात्रि···। ३. रञ्जयन्तमाशाविभागानाम्। ४. जानुलम्बेन। ५. घनकुञ्जर, कुञ्ज···। ६. कालिका। ७. प्रदानाय। ८. अन्तरालग्न···। ९. कण···। १०. विमिश्रैः। ११. रचिताभरणेन। १२. विन्ध्यशिलाविशालेन। १३. चक्षुःस्थलेन, कक्षस्थलेन। १४. उल्लिखिताम्बरम्।

युगलमुपहसन्तमिवोरुदण्डद्वयेन, लाक्षा-लोहित-कौशेयपरिधानम्, अकारणेऽपि क्रूरजातितया बद्धत्रिपताकोदग्रभ्रूकुटीकराले ललाटपट्टे प्रबलभक्त्याराधितया 'मत्परिग्रहोऽयमिति कात्यायन्या त्रिशूलेनेवाङ्कितम्, उपजातपरिचयैरनुगच्छद्भिः, श्रमवशाद्दूरविनिर्गताभिः स्वभाव-पाटलतया शुष्काभिरपि हरिण-शोणितमिव क्षरन्तीभिर्जिह्वाभिरावेद्यमानखेदैः विवृतमुखतया स्पष्ट-दृष्ट-दन्तांशून् दंष्ट्रान्तराल-लग्न-केशरिसटानिव सृक्कभागानुद्वहद्भिः स्थूल-

द्वयादूरुद्वयस्य पृथुलत्वादित्याशयः। इभमदमलिनमिति विशेषणोपादानं प्राकृतिकश्यामवर्णस्य ऊरुदण्डयुगलस्य आलानस्तम्भेन सह सादृश्यत्वबोधनार्थमिति बोध्यम्।

इह उपहसन्तमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा, आक्षेपेण आर्थी उपमा चेति द्वयोरेकाश्रयानुप्रवेशरूपः सङ्करालङ्कारः

लाक्षेति लाक्षया जतुना लोहितं रक्तवर्णीकृतं कौशेयं कीटकोशोत्पन्नं क्षौमवसनं परिधानम् अधोंऽशुकं यस्य तं तादृशम्।

अकारणेऽपीति। अकारणेऽपि कोपसूचकभ्रुकुटीविधानहेत्वभावेऽपि क्रूरजातितया प्रकृत्यैव दुष्टजातितया कारणेन, बद्धाः विहिताः त्रिपताकाः पताकावत् त्रिवलिर्यया तया उदग्रया उच्चतया भ्रुकुट्या भ्रुवोः वक्रिमया करालं भीषणं तस्मिन् तथोक्ते, ललाटपट्टे पट्टवद्विपुले भालदेशे, प्रबलभक्त्या अत्युत्कृष्टप्रेम्णा आराधितया सेवितया कात्यायन्या गौर्या 'उमा कात्यायनी गौरी' इत्यमरः, 'अयं मातङ्गः मत्परिग्रहः मदीयकृपापात्रम्' इति कृत्वा त्रिशूलेन स्वीयत्रिशूलाख्यास्त्रविशेषेण अङ्कितमिव चिह्नितमिव' एवञ्च सति भगवत्यनुग्रहपात्रत्वेन देवादयोऽप्येनं सत्कुर्युरित्याशयः। अन्यत्रापि यः कोऽपि समर्थो राजादिः स्वसेवकाय स्वीयत्वबोधनार्थं ह्यङ्कितं वस्तु प्रयच्छतीति सम्प्रदायः। इह अङ्कितमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

उपजातेति। अत्र पुल्लिङ्गतृतीयान्तविशेषणानि श्वभिरिति वक्ष्यमाणकर्तृपदस्य, अस्य चान्वयः अनुगम्यमानमित्यग्रिमक्रियायेति ज्ञेयः। उपजातपरिचयैः समुत्पन्नसांगत्यैः एकस्मिन् स्थले बहुकालं वर्त्तनादित्याशयः। अनुगच्छद्भिः पश्चाद्गामिभिः। नचानुगम्यमानमिति वक्ष्यमाणक्रिययैवान्वये पुनरेतस्याः क्रियायाः पौनरुक्त्यमिति वाच्यम्, उक्तदिशा समाहितत्वात्।

श्रमवशादिति। श्रमवशात् मार्गव्रजनादिखेदवशात् दूरविनिर्गताभिः वदनादत्यन्तं बहिर्निसृताभिः स्वभावपाटलतया जातिस्वभावेन श्वेतरक्ततया शुष्काभिरपि निर्लेपाभिरपि हरिणशोणितं मृगरुधिरं क्षरन्तीभिरिव स्रवन्तीभिरिव जिह्वाभिः रसनाभिः आवेद्यमानः परेभ्यो बोध्यमानः खेदः क्लान्तिः यैः तैः तादृशैः। क्षरन्तीभिरिति क्रियोत्प्रेक्षा।

विवृतेति। विवृतमुखतया विदीर्णवदनतया कारणेन, स्पष्टं स्फुटं यथास्यात्तथा दृष्टा अवलोकिता दन्तांशवः दशनकिरणा येषु तान् तादृशान्, अत एव दंष्ट्राणां दशनानाम् अन्तरालेषु मध्येषु लग्नाः संसक्ताः केसरिणां हिंसितसिंहानां सटा स्कन्धजटा येषु तान् तादृशानिव, सृक्कभागान् ओष्ठप्रान्तान् 'दन्तवस्त्रं च तत्प्रान्तौ सृक्कणी' इति कोशः, उद्वहद्भिः धारणं कुर्वद्भिः। इहाऽप्युक्तालङ्कारः।

स्थूलेति। स्थूलानां पीवराणां वराटकानां कपर्दकानां मालिकाभिः स्रग्भिः परिगताः सहिताः कण्ठा

था; अपनी विशाल जंघोंसे वह हाथियोंको बाँधनेके—मदजल लग जानेसे मलीन हुए—दो बन्धनस्तम्भ (खंभों) की, मानो हँसी करता था; उसने लाखके समान रक्तवर्ण रेशमी वस्त्र धारण कर लिया था; निष्कारण क्रूर होनेके कारण उसका माथा ऊँची भृकुटीसे विकराल थी और उसपर तीन रेखायें थीं, वह उससे ऐसा प्रतीत होता था मानों दृढ़-भक्तिसे प्रसन्न हुई दुर्गादेवीने उसे अपना सेवक जान (यह मेरा अनुग्रह पात्र है ऐसा समझ) त्रिशूलका चिह्न बना दिया हो। उसके पीछे हिले हुए विविध भाँतिके कुत्ते चले आते थे; वे परिश्रमके कारण बाहर निकली जिह्वाओंसे अपना खेद प्रकट करते थे। यद्यपि उनकी जिह्वाएँ उस समय शुष्क थीं तथापि उत्पन्न होनेके समयसे ही रक्तवर्ण होनेके कारण ऐसी प्रतीति होती थी मानो हरिणोंके शोणितकी बूँदें टपकाती हों; मुँह अनावृत (खुले) होनेसे दाँतोंकी किरणें स्पष्ट दिखाई देती थीं; ओठोंके दोनों भागोंसे ऐसा प्रतीत होता

१. क्रूरतया। २. बद्धत्रिपताकाभ्रुकुटिकराले। ३. ललाटफलके। ४. दरविनिर्गताभिः। ५. दंष्ट्रांशून्। ६. दन्तान्तराल॰॰॰। ७. सटामिव।

वराटक-मालिका-परिगत-कण्ठैर्महावराह-प्रहारजर्जरैः, अल्पकायैरपि महाशक्तित्वादनुपजात-केशरैरिव केशरिकिशोरकैः, मृगवधू-वैधव्यदीक्षादान-दक्षैरनेकवर्णैः श्वभिः, अतिप्रमाणाभिश्च केशरिणामभयप्रदान-याचनार्थमागताभिः सिंहीभिरिव कौलेयककुटुम्बिनीभिरनुगम्यमानम्, कैश्चिद्गृहीत-चमर-बाल-गजदन्तभारैः, कैश्चिदच्छिद्र-पर्ण-बद्ध-मधुपुटैः, कैश्चिन्मृगपतिभिरिव गज-कुम्भ-मुक्ताफलनिकर-सनाथ-पाणिभिः, कैश्चिद्यातुधानैरिव गृहीतपिशितभारैः, कैश्चित् प्रमथैरिव केशरिकृत्तिधारिभिः; कैश्चित् क्षपणकैरिव मयूरपिच्छवाहिभिः,

गलप्रदेशा येषां तैः तादृशैः। महावराहाणां वनशूकराणां प्रहारेण दन्ताभिघातेन जर्जराः शिथिलाङ्गाः येषां तैः तादृशैः।

अल्पकायैरिति। अल्पकायैरपि क्षुद्रशरीरैरपि महाशक्तित्वात् प्रबलपराक्रमत्वात् अनुपजातकेसरैः अनुत्पन्नस्कन्धसटैः केसरिकिशोरकैः सिंहशिशुभिरिव। अत्रोपमा।

मृगवध्विति। मृगवधूनां हरिणस्त्रीणां वैधव्यदीक्षादाने विगतस्वामिकत्वव्रतविधाने दक्षाः कुशलाः तः तादृशैः मृगविनाशेऽत्यन्तदक्षैरित्यर्थः। अनेके बहवो ये वर्णा रक्तपीतादयो येषु तैः तादृशैः श्वभिः सारमेयः।

अतीति। अतिप्रमाणाभिः विस्तृतदेहाभिः, केसरिणां सिंहानां यत् अभयप्रदानं जीवरक्षणं तस्य याचनार्थं हस्तिनिकटे प्रार्थनार्थम् आगताभिः प्राप्ताभिः सिंहीभिरिव सिंहपत्नीभिरिव कौलेयककुटुम्बिभिः सारमेय (कुक्कुर) भार्याभिश्च अनुगम्यमानम् अनुव्रज्यमानम्। इह सिंहीभिरिवेति जात्युत्प्रेक्षा।

कैश्चिदिति। इत आरभ्य तृतीयान्तानि शबरवृन्दैरित्यस्य विशेषणानि उक्तविशेष्यस्य च परिवृतमित्यग्रिमक्रियायामन्वयः। गृहीता आत्ताः चमराणां चमरहरिणानां बाला पुच्छकेशाः गजदन्तानां हस्तिदशनानां भाराः समुदायाश्च यैस्तैः तादृशैः।

कैश्चिदिति। अच्छिद्रपर्णैः रन्ध्ररहिततरुदलैः बद्धानि मधुपुटानि मधुस्थापनार्थं सम्पुटकानि यैस्तैस्तादृशैः तदादायिभिरित्यर्थः।

कैश्चिदिति। मृगपतिभिरिव केसरिभिरिव गजकुम्भानां हस्तिशिरःपिण्डानां मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तेषां निकरेण वृन्देन सनाथाः संयुक्ताः पाणयो हस्ता येषां तैः तादृशैः। इह पूर्णोपमा अभङ्गश्लेषश्च, अनयोश्चैकाश्रयानुप्रवेशरूपः सङ्करः।

कैश्चिदिति। यातुधानैरिव राक्षसैरिव 'राक्षसो यातुधाने स्यात्' इति रामाश्रम्याम्। गृहीतो धृतः पिशितस्य मांसस्य भारः समूहो यैस्तैस्तादृशैः। उक्तालङ्कारः।

कैश्चिदिति। प्रमथैरिव शिवपारिषदैरिव 'प्रमथाः स्युः शिवपारिषदः' इत्यमरः, केसरिणां सिंहानां कृत्तयश्चर्माणि हस्ते परिधाने च धरन्तीत्येवं शीलैः। इहाप्युक्तालङ्कारः। अत्र च 'केसरिकृत्तिधारिभिः' इत्यत्र केसरिपदस्थाने व्याघ्रपदं निवेशनीयम्, प्रमथानां व्याघ्रकृत्तिधारित्वस्यैव प्रसिद्धत्वात्, अत एव च नात्र ख्यातिविरुद्धत्वदोष इति विचारणीयम्।

कैश्चिदिति। क्षपणकैरिव दिगम्बरैः बौद्धसन्यासिभिरिव, मयूराणां बर्हिणां 'मयूरो बर्हिणो बर्ही'

था मानो उनकी दाढ़ोंके मध्य-मध्यमें सिंह-केसर भर गये हों। उनके गलेमें बड़ी-बड़ी कौड़ियोंके कण्ठे पड़े थे, वे कुत्ते बड़े-बड़े शूकरोंकी दाँतोंकी आघातोंसे जर्जरित हो गए थे; शरीर तो उनका छोटा था पर शक्ति अधिक होनेके कारण वे सटा-रहित सिंहके बच्चोंके समान दिखलाई देते थे; वे हरिणोंको मारकर हिरनियोंको विधवा बनानेमें दक्ष थे; उनके पीछे-पीछे विशाल शरीरवाली कतिपय ही कुतियाँ भी आ रही थीं। वे सिंहोंके लिए अभयकी प्रार्थना करने आई हुई सिंहनियोंके समान प्रतीत होती थी।

मातङ्ग (सेनापति) के आसपास अधिकतर भीलोंके झुण्ड चल रहे थे, उनमेंसे कितने ही के पास चमर-मृगके बाल और हाथी दाँतकी गठरियाँ थीं; कितने ही छिद्र-रहित पत्तोंके दोनेमें मधु भर लिये थे; कितने असुरोंके समान मांस ले रक्खे थे, कितने शंकरके गणोंके समान सिंह-चर्म ले रक्खे थे; किसीने बौद्ध संन्यासियोंके समान मोरपंख ले रक्खे थे; कोई-कोई बालकोंके समान काकपक्षधारी थे (बालकोंके घुँघराले बाल होते हैं,

१. किशोरैः। २. वैधव्यदानदक्षैः। ३. कौलेय, कौलटेय। ४. आगृहीत...। ५. विभिन्नगज...। ६. पिशिताहारैः। ७. धारिभिः।

कैश्चिच्छिशुभिरिव काकपक्षधरैः, कैश्चित् कृष्णचरितमिव दर्शयद्भिः समुत्खात-विधृत-गज-दन्तैः, कैश्चिज्जलदागमदिवसैरिव जलधरच्छाया-मलिनाम्बरैः[1], अनेकवृत्तान्तैः शबरवृन्दैः परिवृतम्, अरण्यमिव सखड्गधेनुकम्, अभिनव-जलधरमिव मयूर-पिच्छ-चित्र-चाप-धारिणम्, वकराक्षसमिव गृहीतैकचक्रम्, अरुणानुजमिवोद्धृतानेकमहानाग-दशनम्, भीष्म-

इत्यमरः, पिञ्छानि छदानि वहन्तीत्येवं शीलैः, दिगम्बराणां तद्धारणव्यवहारात् शवराणान्तु तदेकत्रीकरणग्रहिलत्वादित्याशयः। उक्तालङ्कारः।

कैश्चिदिति। शिशुभिरिव शावकैरिव, काकानां सकृत्प्रजानां पक्षान् छदान्, काकपक्षान् शिखण्डकांश्च धरन्तीत्येवं शीलैः 'काकपक्षः शिखण्डकः' इत्यमरः। शैशवे शिशवानां शिखण्डकधरणव्यवहारात् शबराणाञ्च तदा व्यापादितकाकपक्षस्थापनादित्युभयोः सादृश्यम्। उक्तालङ्कारः।

कैश्चिदिति। समुत्खाताः प्रथमं सम्यक्प्रकारेणोत्पाटिताः विधृताः पश्चाच्च गृहीता गजदन्ता यैस्तैः तादृशैः गजदन्तादुत्खान्य धारयद्भिरित्यर्थः, अत एव कृष्णचरितं वासुदेवस्य व्यवहारं दर्शयद्भिरिव प्रकाशयद्भिरिव। अत्र क्रियोत्प्रेक्षा,

श्रीकृष्णो हि स्वव्यापादनया कंसाज्ञापितहस्तिपकव्यापारितं कुवलयापीडाभिधानं करिणं विजित्य तद्दन्तमुत्पाट्य च जग्राह अनन्तरञ्च स्वयमेव तं गजं हस्तिपकञ्च निहतवानिति भागवतीया कथा।

कैश्चिदिति। जलदस्य वारिदस्य आगम उत्पत्तिर्येषु एवंभूतैः दिवसैर्दिनैरिव, जलधरच्छाया अभिनवमेघद्युतिः तद्वत् मलिनानि कश्मलानि अम्बराणि वसनानि येषां तैः तादृशैः, पक्षे तु जलधरच्छायया मलिनम् अम्बरं गगनं येषां तैः। उपमालङ्कारः।

अनेकेति। अनेके बहुप्रकारा वृत्तान्ता आचरणानि येषां तैः तादृशैः, शवरवृन्दैः भिल्लगणैः परिवृतं परिवेष्टिम्।

अरण्यमिति। अरण्यं काननं तद्वदिव खड्गधेनुका छुरिका तया सहेति तं तादृशम्, पक्षे खड्गैः गण्डकैः धेनुकाभिः अरण्यकरिणीभिश्च सहेति तत् तादृशम्। उपमालङ्कारः। 'छुरिका चासिधेनुका' 'धेनुका तु करेण्वाञ्च' इति चामरः।

अभिनवेति। अभिनवो नूतनो यो जलधरो मेघस्तमिव, मयूराणां बर्हिणां पिञ्छानि छदानि तद्वत् चित्रम् अनेकविधवर्णं चापं धनुः इन्द्रधनुश्च धारयितुं शीलं यस्य तं तादृशम्। उपमालङ्कारः।

वकराक्षसमिति। वकः तत्संज्ञको यो राक्षसः असुरः तमिव, गृहीतं धृतम् एकम् अद्वितीयं चक्रम् अस्त्रविशेषो येन तम्, अन्यत्र तु गृहीता निवासाय स्वाधीनीकृता एकचक्रा तत्संज्ञका पुरी येन तं तादृशम्। उपमालङ्कारः।

पुरा किल एकचक्राख्यायां नगर्यां बकाभिधानोऽसुरः नरसंहारेणात्युपद्रवं कृतवान्। ततस्तत्रत्यो राजा प्रतिदिनमेकैकं नरं तद्भोजनाय प्रेषयित्वा तस्मादनर्थाल्लोकान् रक्षयामास। कस्मिंश्चित्समये दह्यमानलाक्षाभवनतः पलायितानां पाण्डवादीनामाश्रयदातुर्विप्रस्यावसरः समापन्नः पारिवारिकस्थित्यातिव्यग्रं तं समीक्ष्य कुन्ती निजमेकमात्मजं तत्र प्रेषयितुं स्वीकृत्य तद्भोजनाय भीमसेनं प्रेषितवती। स च तत्रोपेत्य तं व्यापादितवानिति महाभारतीया कथा।

अरुणेति। अरुणानुजो गरुडः तमिव, उद्धृता उत्खाता अनेकेषां महानागानाम् अनेकपृथुलगजानां

भीलोंके निकट कौओंके पंख थे), कोई-कोई हाथीको मारकर और उसके दाँत लेकर मानो कृष्णचरित्र दिखाते थे (शिशुपालवधके समय श्रीकृष्णने भी हाथीका दाँत उखाड़ लिया था), कोई-कोई वर्षाऋतुमें दिवसोंके समान मेघमलिन अम्बर थे (वर्षाऋतुमें आकाश मेघोंसे मलीन हो जाता है, भीलोंके वस्त्र मेघोंके समान मलीन थे); जंगलके समान, मातङ्ग खड्ग-धेनुका सहित था (जंगलमें गेंड़े और हथिनियाँ होती हैं, मातङ्गके पास खंजर था); अभिनव मेघके समान 'वह मयूरपिच्छ चित्र धनुषधारी था (मेघ मोरपंखके समान विचित्र इन्द्रधनुष धारण करते हैं, भीलके निकट मोरपंखसे भूषित धनुष था); वक राक्षसके समान उसने एक चक्र लिया था (वकासुरने 'एकचक्रा' नगरीको जीत ली थी, भीलके पास एक चक्र था); गरुड़ने जिस प्रकार अनेक सर्पोंके दाँत तोड़े थे, उसी प्रकार भीलने बड़े-बड़े हाथियोंके दाँत तोड़े थे, भीष्म जिस प्रकार द्रुपदके पुत्र

१. मलिनैरम्बरैः।

मिव शिखण्डि-शत्रुम्, निदाघदिवसमिव सतताविर्भूत-मृगतृष्णम्, विद्याधरमिव मान-सवेगम्, पराशरमिव[1] योजनगन्धानुसारिणम्, घटोत्कचमिव भीमरूपधारिणम्, अचल-राजकन्यका-केशपाशमिव नीलकण्ठ-चन्द्रकाभरणम्, हिरण्याक्ष[2]-दानवमिव महावराह-दंष्ट्रा-

दशना दन्ता येन तं तादृशम्, पक्षे उद्धृतान् खाताञ्जिसारितान् अनेकान् बहून् महानागान् विशालस-र्पान् दशति चञ्चुपुटेन सन्दश्य भक्षयतीति तं तादृशम् । उक्तालङ्कारः ।

भीष्ममिति । भीष्मो गाङ्गेयः तमिव, शिखण्डिनां मयूराणां शत्रुं बहोः कालेन व्यापादयितारम्, पक्षे शिखण्डिनः तत्संज्ञकपाण्डवपक्षीयद्रुपदात्मजस्य शत्रुं चिररिपुम् । उक्तालङ्कारः ।

पुरा किल अम्बालिका काशीराजसुता स्वविवाहाय भीष्मपितामहमेव वव्रे, किन्तु तत्प्रत्याख्याता सती तत्प्राणनाशार्थमेव स्वप्राणान् त्यक्त्वा द्रुपदराजसुता सञ्जाता, अनन्तरञ्च गन्धर्वस्य पुंस्त्वं जग्राह ततः शिखण्डीतिसंज्ञकेन लोके प्रसिद्धा आसीदिति संक्षिप्ता महाभारतीया कथा ।

निदाघेति । निदाघो ग्रीष्मकालः तमिव, सततं निरन्तरम् आविर्भूता वनात् प्रकटीभूता मृगेषु हरिणेषु तद्धननेष्वित्यर्थः तृष्णा अभिलाषा यस्य तं तादृशम्, पक्षे सततमाविर्भूता मृगतृष्णा मरीचिका दिनकररश्मिषु सलिलभ्रमो यस्मिन् तं तादृशम् । उक्तालङ्कारः ।

विद्येति । विद्याधरो देवयोनिविशेषः तमिव, मानेन शक्त्यहङ्कारेण मनोवद्वा सवेगं सर्वदा तीव्रगति-मन्तम्, अन्यत्र मानसे मानसाभिधाने सरसि वेगो मज्जनादिनिमित्तं वेगेन गमनं यस्य तं तादृशम् । मानसवेगाख्यो गन्धर्वः कश्चिद्भवेदिति तु न शङ्कनीयः तथा सति पदावृत्तिप्रसङ्गात् ।

पराशरमिति । पराशरो व्यासपिता तमिव, योजनं चतुष्क्रोशम्यापि 'योजनं परमात्मनि, चतुष्क्रोश्यां च योगे च' इति मेदिनी । गन्धः सौरभोऽस्यास्तीति योजनगन्धः कस्तूरीमृगः, अर्श आदित्वादच् प्रत्ययः, अन्यत्र-योजनगन्धां तन्नामिकां वृषलकन्यामनुसरतीत्येवं शीलम् । 'व्यासमातरि । कस्तूरीशीतयोश्च' इति भानुचन्द्रधृतकोशः । उक्तालङ्कारः ।

कदाचित् पराशरो हि सर्वयोगसमन्वितं पुत्रोत्पादनसमयमिति यावद्विचारयति तावत् काञ्चिदति-सुन्दरीं धीवरात्मजां सत्यवतीनाम्नीं ददर्श, दृष्ट्वा च जातस्मरस्तया रिरंसया कुहकं निर्माय मैथुनायोप-चक्रमे इति महाभारतीया कथा ।

घटेति । घटोत्कचः हिडिम्बायां भीमसेनादुत्पन्नोऽसुरः तमिव, भीमं भीषणम्, अन्यत्र आत्मा एव वीर्यरूपेण स्त्रीयोनौ प्रविशतीति सिद्धान्तात् भीमं भीमसेनतुल्यं रूपम् आकृतिं धारयितुं शीलं यस्य तं तादृशम् । 'सत्या भामा' इतिवत् भीमेति नामैकदेशे नामग्रहणम् । उक्तालङ्कारः ।

अचलेति । अचलराजः पर्वताधिपतिर्हिमालयः तस्य कन्यका पार्वती तस्याः केशपाशः कचसमूहः तमिव, नीलकण्ठानां मयूराणां चन्द्रका मेचका एव आभरणानि अलङ्कारा यस्य तं तादृशम्, 'मेचकः श्यामले कृष्णे तिमिरे बर्हिचन्द्रके' इति हैमः, 'बर्हिकण्ठसमं वर्णं मेचकं ब्रुवते बुधाः' इति कात्यः, पक्षे— नीलकण्ठस्य शङ्करस्य चन्द्र एव चन्द्रकः भालस्थः शशी एव आभरणं भूषणं यस्य तं तादृशम्, भगवतोर-र्द्धनारीस्वरूपत्वेनैकस्य मूर्ध्नः चन्द्रभूषणेनैव द्वयोरपि मूर्ध्नस्तद्भूषणकत्वमित्याशयः । उक्तालङ्कारः ।

हिरण्याक्षेति । हिरण्याक्षस्तदाख्यो हिरण्यकशिपुसंज्ञकभ्राता दानवो दैत्यः तमिव, महावराहैः विशालशूकरैः दंष्ट्राभिर्दशनैः करणैः विभिन्नं विहितक्षतं वक्षःस्थलं भुजान्तरं यस्य तं तादृशम्, पक्षे—महा-

शिखण्डीके शत्रु थे, वह भी उसी प्रकार मोरोंका शत्रु था; गर्मीके दिनमें जिस प्रकार सर्वदा मृगतृष्णा (सूर्य किरणमें जलभ्रम) उत्पन्न होती है उसी प्रकार वह निरन्तर मृगोंकी तृष्णा = वध करनेकी इच्छा रखता था; विद्याधर जिस प्रकार मानस-सरोवरकी ओर शीघ्र प्रस्थान करते हैं, वह भी उसी प्रकार मानस-वेग = शक्तिगर्वके वेगकी ओर गमन करता था; पराशरमुनि जिस प्रकार योजनगन्ध = धीवरकन्याके पीछे प्रेमसे दौड़े थे, वह भी उसी प्रकार कस्तूरी मृगोंके पीछे दौड़ता था; घटोत्कचने जिस प्रकार अपने पिता भीमका रूप धारण किया था क्योंकि पुत्र पिताका रूप होता है, उसने भी उसी प्रकार भयङ्कर-रूप धारण किया था; पार्वतीके केशोंमें जिस प्रकार शिवका चन्द्रमा आभूषणका कार्य करता था, वह भी उसी प्रकार मोरपंखोंके चन्द्रकोंका आभूषण धारण किया था; नारायणका तृतीय आदिवराहावतारकी दंष्ट्रासे जिस प्रकार हिरण्याक्षकी छाती विदीर्ण हुई थी, बड़े-बड़े

१. पाराशरमिव । २. हिरण्याख्य… ।

विभिन्न-वक्षः स्थलम् , अतिरागिणमिव कृत-बहु-वन्दि¹-परिग्रहम् , पिशिताशनमिव रक्त-लुब्धकम् , गीतकला-विलासमिव² निषादानुगतम् , अम्बिका-त्रिशूलमिव महिष-रुधिरार्द्र-कायम् , अभिनवयौवनमपि क्षपित³-बहुवयसम् , कृत-सारमेय-संग्रहमपि फलमूलाशिनम्⁴ , कृष्णमप्यसुदर्शनम् , स्वच्छन्दप्र⁵चारमपि दुर्गैकशरणम् , क्षितिभृत्पादानुवर्त्तिनमपि राजसे-

वराहेण भगवतो विष्णोर्दशावतारेषु शूकररूपतृतीयावतारेण दंष्ट्रया दन्तेन विभिन्नं विदारितं वक्षःस्थलं यस्य तं तथोक्तम् । उत्कालङ्कारः ।

अत्रायमितिहासः—पुरा किल हिरण्याक्षो महासुरो लोकान् संक्षोभयन् प्रतिदिनमस्वास्थ्यं चक्रे, अत्युग्रतपशालित्वेन भुवं सलिले मज्जयामास । अथ भगवान्नारायणस्तान् रिरक्षिषया शूकररूपमास्थाय सागराद्भुवमुद्धृत्य पर्वतकन्दरायां वर्तमान आसीत्, अनन्तरञ्च मृगयार्थं व्रजता हिरण्याक्षेणावलोकितं गदामादाय ताडितवान्, अथ च नखरेण तद्वक्षो विदारयित्वा निजघानेति ।

अतिरागिण मिति । अतिरागिणम् अत्यन्तविषयाधीनम् अर्थपतिमिव, कृतो विहितो बहूनाम् अनेकानां वन्दीनां हठादपहृतवधूनां परिग्रहः स्त्रीत्वेन स्वीकारो येन तं तादृशम्, पक्षान्तरे तु–कृतो बहूनां वन्दीनां मङ्गलपाठकानां परिग्रह एकत्रीकरणं येन तं तादृशम् । उक्तालङ्कारः ।

पिशितेति । पिशिताशनो मांसभक्षकः तमिव, रक्ता अनुरक्ता लुब्धका व्याधा यत्र तं तादृशम्, 'पक्षान्तरे तु रक्ते शोणिते लुब्धकं साभिलाषम् । उक्तालङ्कारः ।

गीतेति । गीतकला गानविद्या तस्या विलासं व्यापारमिव, निषादैः अन्त्यजैः अनुगतम् अनुसृतम्, पक्षे–निषादस्तन्त्रीकण्ठोद्भवः स्वरः 'निषादर्षभगान्धाराः' इत्यादिप्रसिद्धः तेन अनुगतं सहितम् । उक्तालङ्कारः ।

अम्बिकेति । अम्बिकायाः चण्डिकायाः 'मृडानी चण्डिकाम्बिका' इत्यमरः, त्रिशूलं शस्त्रविशेषः तमिव, महिषाणां सैरिभाणां तदाख्यासुरस्य च रुधिरेण शोणितेन आर्द्रः क्लिन्नः कायः शरीरं यस्य तं तादृशम् । उक्तालङ्कारः ।

अमीति । अभिनवं नूतनं मनोहारि वा यौवनं तारुण्यं यस्य एतादृशमपि क्षपितानि व्यतीतानि बहूनि नानाविधानि वयांसि शैशवादीनि येन तं तादृशमिति विरोधः, क्षपितानि व्यापादितानि बहूनि वयांसि पक्षिणो येन तं तादृशमिति तत्समाधानम् । 'खगबाल्यादिनोर्वयः' इत्यमरः । अत्र विरोधाभासोऽलङ्कारः, तथा च दर्पणे—

जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्गुणो गुणादिभिस्त्रिभिः । क्रिया क्रियाद्रव्याभ्यां यद्द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः ॥
विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ,..........।

कृतेति । कृतो विहितः साराणां धनानां मेयानां परिमातुं योग्यानां शस्यादीनाञ्च संग्रहः एकत्रीकरणं येन तं तादृशमपि फलमूलान्येव अशनं भक्षणं यस्य तं तादृशमिति विरोधः, कृतः सारमेयाणां शुनां संग्रहो येन तादृशमिति तत्समाधानम् । उक्तालङ्कारः ।

कृष्णमिति । कृष्णं नारायणमपि असुदर्शनं सुदर्शनचक्रेण रहितमिति विरोधः, 'चक्रं सुदर्शनम्' इत्यमरः, कृष्णं कालवर्णम् अत एव असुदर्शनं भयोत्पादकत्वेन भीमदर्शनमिति तत्समाधानम् । उक्तालङ्कारः ।

शूकरोंकी दंष्ट्रा (दाँतों) से उसी प्रकार उसकी छाती व्रण-युक्त हुई थी; अत्यन्त विषयासक्त सम्पन्न पुरुष जिस प्रकार बहुतसे वन्दियोंका संग्रह करते हैं, उसने भी उसी प्रकार अपने बलसे अपहरण कर लाये हुए परस्त्रियोंको पत्नी रूपमें संग्रह किया था; राक्षस जिस प्रकार शोणितके लोभी होते हैं, उसने भी उसी प्रकार व्याघ्र अनुराग करते थे; संगीतकलामें जिस प्रकार निषादस्वर गानके साथ-साथ चलता है, उसके साथ भी उसी प्रकार चाण्डालगण चलते थे, चण्डिकाका त्रिशूल जिस प्रकार महिषासुरके रुधिरसे आर्द्र (भीगा हुआ) था, उसका शरीर भी उसी प्रकार भैंसोंके रुधिरसे गीला हो गया था । नवयौवनमें होने पर भी उसने बहुत वयस (अवस्था, पक्षी) का क्षय किया था; सारमेय (धन, धान्य; कुत्ते) करने पर भी वह स्वयं फल-फूलका ही भक्षण करता था; वह कृष्ण = (कुरूप, वासुदेव) रहने पर भी सुदर्शन विहीन था; स्वच्छन्दचारी होने पर भी वह दुर्गैक-

१. वन्दी''' । २ विन्यासमिव'''कलाभिलाप । ३. बहुक्त''' । ४. क्षयित''' । ५. फलमूलाशनम् , फलाशिनम् । ६. स्वच्छन्दचारमपि ।

वानभिज्ञम्, अपत्यमिव विन्ध्याचलस्य, अंशावतारमिव कृतान्तस्य, सहोदरमिव पापस्य, सारथिमिव कलिकालस्य, भीषणमपि महासत्त्वतया गंभीरमिवोपलक्ष्यमाणम्, अनभिभवनीयाकृतिम्, मातङ्गनामानं शबरसेनापतिमपश्यम्। अभिधानन्तु तस्य पश्चादहमश्रौषम्।

आसीच्च मे मनसि—'अहो! मोहप्रायमेषां जीवितम्, साधुजन-विगर्हितञ्च चरितम्। तथाहि पुरुष-पिशितोपहारे धर्म्मबुद्धिः, आहारः साधुजनविगर्हितो मधुमांसादिः,

स्वच्छन्देति। स्वच्छन्देन स्वाभिप्रायेण प्रचारो भ्रमणं यस्य तं तथोक्तमपि दुर्गं दुर्गमं नगरम् एकम् अद्वितीयं शरणं गृहं यस्य तं तादृशमिति विरोधः, दुर्गा भवानी देवी एकम् अद्वितीयं शरणं रक्षिका यस्य तं तादृशमिति तत्समाधानम् 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। उक्तालङ्कारः।

क्षितीति। क्षितिभृद् राजा तस्य पादाः चरणाः तदनुवर्तिनमपि तत्सेवाविधायिनमपि राजसेवा नृपपरिचर्या तस्या अनभिज्ञम् अज्ञातारमिति विरोधः, क्षितिभृत् पर्वतः तस्य पादे प्रत्यन्तपर्वते 'पादाः प्रत्यन्तपर्वताः' इत्यमरः, अनुवर्तते अवतिष्ठत इति तं तादृशमिति तत्परिहारः। उक्तालङ्कारः।

अपत्यमिति। विन्ध्याचलस्य जलवालकपर्वतस्य अपत्यं सन्तानमिव अत्यन्तकठिनशरीरत्वात्। कृतान्तस्य यमस्य 'कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड् यमः' इत्यमरः, अंशावतारमिव एकदेशावतारमिव जीवसंहारात्। पापस्य अधर्मस्य सहोदरमिव सोदरमिव जीवानां तीव्रयातनाविधायित्वात्। कलिकालस्य कलियुगस्य सारथिमिव यन्तारमिव निरन्तराधर्मोत्पादनेन सञ्चालकत्वात्। उक्तस्थलेषु जात्युत्प्रेक्षा। भीषणमपि भयजनकमपि तृणनिक्षेपादिनिकृष्टाचारेण निःसत्त्वजीवानां त्रासोत्पादनात् चञ्चलस्वभावमपीत्यर्थः महासत्त्वतया प्रबलोत्साहस्वभावतया गम्भीरमिव धैर्यगुणयुक्तमिव उपलक्ष्यमाणम् अन्यैः परिदृश्यमानम्। इह गाम्भीर्यं गुण इति तदुत्प्रेक्षणाद्गुणोत्प्रेक्षा।

अनभीति। अनभिभवनीया अतिरस्करणीया आकृतिः स्वरूपं यस्य तं तादृशम्, अत्यन्तकर्कशत्वेन दुर्द्धर्षत्वादित्याशयः। मातङ्गनामानं मातङ्गेति संज्ञकं शबरसेनाधिपतिं किरातसैन्यस्वामिनम् अपश्यम् अद्राक्षम्। केवलदर्शनेन नामाववोधः कथमित्याशङ्कायामाह—अभिधानन्त्विति। तस्य सेनापतेः अभिधानं संज्ञाम् अहं वैशम्पायनः पश्चात् तदवलोकनानन्तरम् अश्रौषं भृत्यमुखादाकर्णयम्। एवञ्च सम्प्रति तन्नामाभिधाने न काचिद्विप्रतिपत्तिरित्याशयः।

आसीदिति। मे मम मनसि हृदये आसीद् बभूव चिन्तेति शेषः। तदेव उपपादयति—अहो! इत्यादिना। अहो! इत्याश्चर्ये, 'अहो उताहो किमुत' इत्यमरः, मोहोऽविवेकः प्रायो बहुलं यत्र तथोक्तम्, प्रायपदोपादाने तु दुर्गार्चनादौ सात्त्विकवृत्त्यापि कदाचित्प्रवृत्त्यवलोकनात् किञ्चिद्विवेकमस्तीति व्यञ्जनार्थम्। एषां शबराणां जीवितं प्राणितम्। च पुनः साधुजनैः शिष्टमण्डलैः गर्हितं जुगुप्सितं चरितम् आचरणम्। एतदेव विशिष्य समर्थयति—तथाहीत्यादिना। पुरुषस्य नरस्य यत् पिशितं मांसं तस्य य उपहारो भगवत्यै नैवेद्यनिवेदनं तस्मिन् धर्मबुद्धिः अयं धर्म इति ज्ञानम्। परमार्थतस्तु नरवलिदानमधर्म एवेति 'मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इत्यादिश्रुतिभिः प्रतिपादनादित्याशयः। आहारो भोजनं साधुजनविगर्हितः शिष्टजननिन्दितः मधुमांसादिः मद्यपिशितादिः आदिपदेन कन्दादीनां मत्स्यादीनां वा तामसाहाराणां परिग्रहः। मनुनापि निषिद्धं मांसभक्षणादिकमुक्तं तथा च—

'यो यस्य मांसमश्नाति स तन्मांसाद उच्यते। मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मात् मत्स्यान् विवर्जयेत्॥'

शरण (किलेमें शरण लेनेवाला, केवल दुर्गाका भक्त) था; क्षितिधर (राजा, पर्वत) के पादका अनुसरण करता था तथापि राजसेवासे अनभिज्ञ था (सर्वदा पर्वत प्रदेशमें रहनेसे अशिक्षित होनेके कारण राजसेवा नहीं जानता था); विन्ध्याचलका मानो वह पुत्र था; यमका अंश लेकर मानो उसने अवतार लिया था, पापका मानो वह सहोदर था; कलियुगका मानो वह सर्वस्व था और भयंकर होनेपर भी अत्यन्त अध्यवसायशील होनेके कारण वह धीर स्वभाववालेके समान देखनेमें आता था।

उनलोगोंको देखकर मेरे मनमें विचार हुआ—अहो! इनलोगोंका जीवन अज्ञानसे परिपूर्ण है और इनके कर्म साधुजनोंसे निन्दित हैं, क्योंकि ये नर-मांसकी बलि देना धर्म समझते हैं; विद्वानोंसे निन्दा किए गए मधु-

१. विन्ध्यस्य। २. सारमिव। ३. अनभिभवाकृतिम्। ४. मातङ्गकनामानम्। ५ सर्वशबर। ६. 'तस्य' इति क्वचिन्नोपलभ्यते। ७. घोरप्रायम्, मोहप्राज्यम्, एतेषाम्। ८. निर्वाहितम्। ९. निन्दितः, गर्हितः।

श्रमो मृगया, शास्त्रं शिवारुतम्, उपदेष्टारः सदसतां कौशिकाः, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्, परिचिताः श्वानः, राज्यं शून्याटवीषु, आपानकमुत्सवः, मित्राणि क्रूरकर्म्मसाधनानि धनूंषि, सहाया विषदिग्ध-मुखा भुजङ्गा इव सायकाः, गीतमुत्सादकारि मुग्धमृगाणाम्, कलत्राणि वन्दि-गृहीताः परयोषितः, क्रूरात्मभिः शार्दूलैः सह संवासः, पशुरुधिरेण देव-तार्च्चनम्, मांसेन बलिकर्म्म, चौर्य्येण जीवनम्, भूषणानि भुजङ्गमणयः, वनगज-मदैरङ्ग-रागः, यस्मिन्नेवं कानने निवसन्ति, तदेवोत्खातमूलमशेषतः कुर्वन्ति ।

श्रमः स्वशक्तिसम्पादनाय व्यायामः मृगया आखेटकः। शास्त्रम् उच्चस्वरवेदपाठः, शिवारुतं शृगाली-शब्दितं शिवारुतातिरिक्तशास्त्रपाठाभावात् तस्य चाशुभसूचकत्वान्निन्दितत्वमित्याशयः। इह शास्त्रे शिवारु-तत्वारोपस्य प्रस्तुतनिन्दितव्यवहारोपचयोपयोगितया समानाधिकरणः परिणामः। तथा च दर्पणे—

'विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि। परिणामो भवेत्तुल्यातुल्याधिकरणो द्विधा ॥'

सदसतां शुभाशुभानां विषयाणाम् उपदेष्टारः शिक्षकाः कौशिका उलूकपक्षिणः 'महेन्द्रगुग्गुलूलूक-व्यालग्राहिषु कौशिकः' इत्यमरः। उलूकानां हि सुखवायसान् प्रत्येवाभवावलोकनेनैतेषामपि प्रायः सुखमृगादीन् प्रत्येवाभिभवादित्याशयः। प्रज्ञा विवेकबुद्धिः शकुनिज्ञानं शाकुनशास्त्रीययत्किञ्चिद्भागावबोधः पक्षिशब्दं निशम्य आखेटस्यैव सदसन्निरूपणमित्यर्थः, तद्भिन्नपदार्थे गत्यभावादस्या अपि निन्दितत्वमिति भावः। श्वानः सारमेयाः परिचिताः विश्वासपात्राणि। राज्यम् आधिपत्यं शून्याटवीषु मनुष्यरहितवनेषु। उत्सवः प्रमोदव्यापारः आपानकं मद्यपानगोष्ठी। मित्राणि सुहृदः क्रूरं यत्कर्म हिंसादि तत्साधनानि प्रयोज-कानि धनूंषि चापानि। सहायाः अभिलषितकार्यकर्त्तृत्वात् साहाय्यसम्पादिनः भुजङ्गा आशीविषा इव विषेण गरलेन दिग्धं लिप्तं मुखम् अग्रभागं येषां तथाभूताः सायका बाणाः, एषामभिप्रायाः सरला एवेति स्वयमूहनीयाः। अलङ्कारश्चात्रोपमा। गीतं गानं मुग्धा मूढाः मृगा हरिणः तेषाम् उत्सादकारि ध्वंसविधायि 'मुग्धः सुन्दरमूढयोः' इति विश्वः। यदा मृगा हि एतेषां गानं निशम्य निश्चलाः सन्तो विद्यन्ते तत्समय एवैते तान् हिंसन्तीति गानस्यैव तेषां ध्वंसविधायित्वान्निन्दितत्वमित्याशयः। कलत्राणि स्वस्त्रियः, बन्दीगृहीताः बन्दीभावेनाङ्गीकृताः हठादपहृताः परयोषितः अन्यस्त्रियः। क्रूरात्मभिः दुष्टस्वभावैः शार्दूलैः व्याघ्रैः सह संवासः सहावस्थानम्। पशवो महिषादयः तेषां रुधिरेण शोणितेन देवतार्चनं देवपूज-नम्। मांसेन पिशितेन बलिकर्म पञ्चमहायज्ञमध्यवर्ति भूतयज्ञः। तथा च मनुः—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ३।७०।

चौर्येण परद्रव्यापहारेण जीवनं जीविकानिर्वाहः। भूषणानि अलङ्काराः भुजङ्गमणयः सर्परत्नानि पर्वतस्थायित्वात्तेषां तेऽनायासलभ्या इत्याशयः। वनगजमदैः अरण्यहस्तिदानवारिभिः अङ्गरागः अङ्गलेपनम्।

यस्मिन्निति। यस्मिन् अलक्षिताभिधेये कानने अरण्ये निवसन्ति निवासं कुर्वन्ति तदेव काननम् अशेषतः समस्ततः उत्खातम् उत्पाटितं मूलं मध्यदेशो यस्य तथाविधं कुर्वन्ति विदधति।

मांसादिका आहार करते हैं; मृगया (शिकार) को व्यायाम समझते हैं; शृगालोंके शब्दका प्रातःकालीन उच्चस्वरसे वेदपाठ मानते हैं, उल्लू इनके सत् असत् (भले बुरे) के उपदेशक हैं, क्योंकि उनसे ही ये शकुन विचारते हैं; पक्षियोंका ज्ञान ही इनकी बुद्धिमानी है; कुत्तोंके साथ मेल है; निर्जन वनोंमें इनका राज्य है; मद्यपानकी गोष्ठी इनका उत्सव है; क्रूर-कर्म करनेवाले धनुष इनके मित्र हैं; विषैले सर्पोंके समान बाण इनके सहायक हैं; मुग्ध हरिणोंका नाशक इनके गीत हैं; हठसे पकड़कर लाई गई पर-स्त्रियाँ ही इनकी भार्या हैं; हिंसक स्वभाववाले व्याघ्रोंके साथ इनका संवास (रहन-सहन) है; पशुओंके शोणितसे ये देवताओंकी पूजा करते हैं; मांसद्वारा बलिवैश्वदेव—पञ्चमहायज्ञवर्त्ति भूतयज्ञ-कर्म करते हैं; चोरीसे जीविका निर्वाह करते हैं; सर्प-मणिके आभूषण पहनते हैं; वन-गजके मदका शरीरमें लेप करते हैं और जिस वनमें रहते हैं उसे ही निर्मूल कर देते हैं। इस

१. शास्त्रे। २. समुपदेष्टारः। ३. शून्यास्वटवीषु। ४. मित्राणि क्रूरकर्माणि, धनं धनूंषि। ५. दग्ध···। ६. भुजङ्गमा इव। ७. उत्साहकारि। ८. वन्दी···। ९. पशुरुधिरेणैव। १०. जीवितम्। ११. भुजङ्गफणामणयः। १२. वनकरिमदैः। १३. इह 'च' इत्यधिकः पाठः समुपलभ्यते। १४. कुर्वते।

इति चिन्तयत्येव मयि स[1] शबर-सेनापति[2]रटवीपरि[3]भ्रमण-समुद्भवं श्रममपनिनीषु-रागत्य तस्यैव शाल्मली[4]तरोरधश्छाया[5]मवतारित-कोदण्डस्त्वरितपरिजनोपनीते[6]-पल्लवासने समुपाविशत् ।

अन्यतम[7]स्तु शबरयुवा ससम्भ्रममवतीर्य्य तस्मात् करयुगल-परिक्षोभिताम्भसः सरसो वैदूर्य्यद्रवानुकारि प्रलय-दिवसकर-किरणोपतापादम्बरैकदेशमिव विलीनम् , इन्दुमण्डलादिव प्रस्यन्दितम् , द्रुत[8]मिव मुक्ताफल-निकरम् , अत्यच्छतया स्पर्शानुमेयं हिमजडम् , अरविन्द-कोषरजः-कषायमम्भः-कमलिनीपत्र[9]पुटेन, प्रत्यग्रोद्धृताश्च धौतपङ्कनिर्म्मला[10] मृणालिकाः समु-पाहरत् ।

आपीत-सलिलश्च सेना[11]पतिस्ता मृणालिकाः शशिकला इव सैंहिकेयः क्रमेणादशत् ।

इतीति । इति पूर्वोक्तविधिना मयि वैशम्पायने चिन्तयति सत्येव स शबरसेनापतिः किरातसैन्य-स्वामी मातङ्गः, अटव्यां परिभ्रमणम् इतस्ततः पर्यटनं तस्मात् समुद्भवं सञ्जातं श्रमं परिश्रमम् अपनिनीषुः अपनेतुं दूरीकर्त्तुमिच्छुः तस्यैव शाल्मलीतरोः अधश्छायायाम् अधोऽनातपे आगत्य, अवतारितं स्कन्धान्ना-सितं कोदण्डं कार्मुकं येन स तथोक्तः, त्वरितेन शीघ्रवता परिजनेन सेवकेन उपनीतम् समीपे प्रापितं यत् पल्लवासनं किसलयविष्टरं तस्मिन् तादृशे समुपाविशत् तस्थिवान् ।

अन्यतम इति । अन्यतमः बहुसैनिकमध्ये कश्चिदनिर्द्दिष्टनामा शबरयुवा भिल्लतरुणः ससम्भ्रमं शीघ्रम् अवतीर्य अन्तः प्रविश्य प्रथममिति शेषः । तस्मात् पम्पाख्यात् करयुगलेन पाणिद्वयेन पत्रपुटेन परिक्षोभितं तृणाद्यपनयनाय विलोडितम् अम्भः सलिलं यस्य तस्मात् तादृशात् सरसः सरोवरात् कमलिनीपत्रपुटेन नलिनीदलपुटेन अम्भो मृणालिकाश्च समुपाहरदिति सम्बन्धः । नपुंसकलिङ्गद्वितीयान्तानि पदानि अम्भसो विशेषणानि । वैदूर्यस्य बालवायजस्य मणेः द्रवं गलितांशम् अनुकरोतीति तत् तादृशम्, देदीप्यमानत्वा-दित्याशयः । प्रलये कल्पान्तसमये दिवसकरस्य प्रचण्डादित्यस्य किरणैः रश्मिभिः उपतापात् प्रखरसन्ता-पात् विलीनं द्रवीभूय क्षरितम् अम्बरैकदेशं गगनैकभागमिव । इन्दुमण्डलात् चन्द्रबिम्बात् प्रश्यन्दितं द्रवीभूय पतितमिव । द्रुतं स्यन्दितं मुक्ताफलानां मौक्तिकानां निकरं वृन्दमिव सर्वतोऽत्यन्तोज्ज्वलत्वादि-त्याशयः । अत्यच्छतया अत्यन्तस्वच्छतया स्पर्शेन शैत्यस्पर्शेन अनुमेयं सलिलतया अनुमातुं योग्यम् आकाशसदृशतया प्रेक्षणाशक्यत्वादित्याशयः । हिमजडं तुहिनवत् शीतलम् । अरविन्दकोशस्य कमलक-र्णिकाधारस्य रजसा धूलिना कषायं तुवरसंयुतम् अम्भः सलिलम् । प्रत्यग्रोद्धृताः तत्क्षणमुत्पाटिताः धौतपङ्काः क्षालितकर्दमाः अतएव निर्मलाः स्वच्छाः मृणालिकाः क्षुद्रविसतन्तूनि । 'स्त्री स्यात्काचिन्मृणा-ल्यादि विवक्षापचये यदि' इत्यमरात् क्षुद्रविषये स्त्रीलिङ्गप्रयोगः । समुपाहरत् शबरसेनापतये समर्पित-वान् । एतेषु अम्बरैकदेशमिवेत्यत्र द्रव्योत्प्रेक्षा, प्रस्यन्दिमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा, मुक्ताफलनिकरमिवेत्यत्र जात्युत्प्रेक्षा, हिमजडमित्यत्र लुप्तोपमेति बोध्या ।

आपातेति । आपीतं सम्यक्तया पीतं सलिलम् अम्भो येन स तादृशः सेनापतिः सैन्यनायकः

प्रकार मैं विचार कर ही रहा था कि इतनेमें वह सेनापति-मातङ्ग वनमें अधिक भ्रमण करनेसे उत्पन्न थकावटको दूर करनेकी अभिलाषासे उसी सेमरके वृक्षकी छायामें आया और अपने धनुषको कन्धे परसे उतारकर, सेवकोंसे लाई गई पत्तोंकी चटाईपर बैठ गया। उस समय एक नवयुवक भीलने उस सरोवरमें झट-पट उतर अपने दोनों हाथोंसे कमलकी कलियोंकी रजसे सुगन्धित हुए शीतल जलको खूब आलोडन किया (हिलोड़ा)। वह जल वैडूर्यमणिके रसके समान, प्रलय-कालीन सूर्यकी रश्मियोंके तापसे द्रवीभूत होकर (गलकर) गिरे गगनतलके टुकड़ेके समान और चन्द्रमण्डलमेंसे निस्यूत (टपके) मौक्तिक रसके समान इतना स्वच्छ था कि स्पर्श करनेसे ही पहचाना जाता था। उसे कमलके पत्तोंके दोनेसे भरकर पी लिया और अतिशीघ्र ही टूटी हुई कमलकी कोमल-कोमल जड़ोंको, कीचड़ धोकर वह साथ ले आया। पानी पीनेके बाद सेनापतिने इस प्रकार उस मृणालिकाको धीरे-धीरे भक्षण किया जैसे राहु चन्द्र-कलाका ग्रास करता हो। पुनः जब वह अपनी थकावट

१. इह 'स' इति पाठः क्वचिन्नास्ति। २. शबरसेनापतिश्च। ३. भ्रमणसमुद्भवश्रमम्। ४. शाल्मलि। ५. छायाम्। ६. जनोपनीते पल्लवासने। ७. अन्यतरस्तु। ८. हृतमिव। ९. वेत्रसंपुटेन। १०. निर्मल-मृणालिकाः। ११. शबरसेनापतिः।

अपगतश्रमश्चोत्थाय परिपीताम्भसा सकलेन तेन शबर-सैन्येनानुगम्यमानः शनैः शनैरभिमतं दिगन्तरमयासीत्।

एकतमस्तु जरच्छबरस्तस्मात् पुलिन्द-वृन्दादनासादित-हरिण-पिशितः पिशिताशन इवातिविकृतदर्शनः पिशितार्थी तस्मिन्नेव तरुमूले मुहूर्त्तमिव व्यलम्बत। अन्तरिते च तस्मिन् शबरसेनापतौ स जीर्णशबरः पिबन्निवास्माकमायूंषि रुधिरबिन्दुपाटलया कपिलभ्रूलता-परिवेषभीषणया दृष्ट्या गणयन्निव शुककुल-कुलायस्थानानि श्येन इव विहगामिषास्वाद-लालसः सुचिरमारुरुक्षुस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत्। उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकनभीतानां शुककुलानामसुभिः।

सैंहिकेयः सिंहिकापुत्रो राहुः शशिकलाः चन्द्रकला इव ता मृणालिकाः क्रमेण जलपानानन्तरम् अदशत् दशनैरभक्षयत्। राहुर्यथा चन्द्रकला अश्नाति तथैवायमपीत्युपमालङ्कारः। अपगतो दूरीभूतः श्रमः मृगया परिश्रमो यस्य स तादृशः, उत्थाय उत्थानं विधाय परिपीताम्भसा कृतजलपानेन सकलेन समस्तेन तेन प्राक्प्रतिपादितेन शबरसैन्येन भिल्लानीकेन अनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानः शनैः शनैः मन्दं मन्दम् अभिमतम् अभिलषितं दिगन्तरम् अन्यदिशं प्रति अयासीत् अगमत्।

एकतमस्त्विति। तेषु मध्ये एकतमः कश्चिदनिर्दिष्टनामा, तु पुनरर्थे, जरच्छबरः वृद्धकिरातः तस्मात् पुलिन्दवृन्दात् शबरमण्डलात् अनासादितम् अलब्धहरिणपिशितं मृगमांसं येन स तादृशः, पिशिताशनो मांसभक्षको व्याघ्रः स इव विकृतं भीमं दर्शनम् अवलोकनं यस्य स तादृशः, पिशितार्थी मांसार्थी तस्मिन्नेव पूर्वोक्त एव तरुमूले शाल्मलीवृक्षमूले मुहूर्त्तमिव किञ्चित्कालमिव व्यलम्बत विलम्बमकरोत्। तस्मिन् शबरसेनापतौ किरातसैन्यनायके अन्तरिते वृक्षगहनत्वेन व्यवहिते सति स पूर्वोक्तो जीर्णशबरः स्थविरभिल्लः अस्माकं पक्षिणाम् आयूंषि जीवनसमयान् पिबन्निव पानेन विलुप्तं विदधन्निव। रुधिरबिन्दुभिः कोपप्रासशोणितकणैः पाटलया श्वेतरक्तया, तथा कपिले पिङ्गले ये भ्रूलते ताभ्यां परिवेषः परिधिः 'परिवेषस्तु परिधिः' इत्यमरः, तेन भीषणया त्रासकारिण्या, दृष्ट्या लोचनेन शुककुलस्य कीरगणस्य कुलायस्थानानि नीडाधारस्थलविशेषाणि गणयन्निव इयत्तया तत्संख्यां विदधन्निव। श्येन इव मांसभक्षी शशादनपक्षिविशेष इव विहगानां खगानाम् आमिषास्वादे पिशितभक्षणे लालसो लम्पटः 'लोलुपो लोलुभो लोलो लम्पटो लालसोऽपि सः' इति यादवः। तं वनस्पतिं शाल्मलीतरुम् आरुरुक्षुः आरोढुमिच्छुः आमूलात् मूलप्रान्तपर्यन्तं सुचिरं चिरकालम् अपश्यत् अवलोकितवान्। एषु 'पिशिताशन इव' इत्यत्र, 'श्येन इव' इत्यत्र चोपमालङ्कारः। 'पिबन्निव' इत्यत्र 'गणयन्निव' इत्यत्र च क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः।

उदिति। तस्मिन् क्षणे काले 'क्षणः पर्वोत्सवेऽपि स्यात्तथा मानेऽप्यनेहसः' इति रामाश्रमी टीका, तस्य यदालोकनं वीक्षणं तेन भीतानां त्रासमुपगतानां शुककुलानां कीरगणानाम् असुभिः प्राणैः उत्क्रान्तमिव निःसृतमिव। इह उत्क्रान्तमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

दूरकर लिया तब उठकर चल दिया और समस्त सेनाएँ भी जल पीकर उसके पीछे धीरे-धीरे अभिमत दिशाओंमें चली गईं।

परन्तु शबरोंके उस झुण्डमें एक वृद्ध भील था। वह राक्षसके समान अत्यधिक भीषण देख पड़ता था। उसे हरिणोंका मांस नहीं मिला था, इसलिए वह मांस पानेके अभिप्रायसे उसी वृक्षके नीचे थोड़ी देर तक जानेमें विलम्ब किया। जब शबर-सेनापति दृष्टिके बाहर हो गया तब—पक्षियोंका मांस खानेके लोभी बाजके समान—उस वृद्ध भीलने ऊपर चढ़नेके अभिप्रायसे बहुत देरतक उस वृक्षको मूलसे अग्रतक देखा। शोणितकी बूँदके समान उसकी गुलाबी दृष्टि पिंगल भौंओंके परिवेष्टनसे भयंकर लगती थी। जब वह वृक्षको देख रहा था तब ऐसा प्रतीत होता था मानो वह हमारी आयु पी रहा हो और तोतोंके घोसले गिन रहा हो। उसकी दृष्टिसे त्रस्त होकर तोतोंके प्राण तो मानो उसी क्षण निकल गये। निर्दय व्यक्तिके लिए संसारमें कुछ भी असाध्य नहीं

---

१. एकतरस्तु। २. इव विकृतिदर्शनः। ३. तरुमूले च तस्मिन्। ४. 'तस्मिन्' इति पाठः क्वचिन्नोपलभ्यते। ५. कपिलभ्रुवा परिवेष'''। ६. शुककुलायस्थानानि। ७. विहङ्गामिष ''विहगा- मिषस्वाद'''। ८. सुरुचिरम्। ९. तदालोकभीतानां।

किमिव हि दुष्करमकरुणानाम् ? यतः स तमनेक-ताल-तुङ्गमभ्रङ्कष-शाखाशिखरमपि सोपानैरिवायत्नेनैव पादपमारुह्य ताननुपजातोत्पतनशक्तीन् , कांश्चिदल्पदिवस-जातान् गर्भच्छवि-पाटलान् शाल्मली-कुसुमशङ्कामुपजनयतः, कांश्चिदुद्भिद्यमानपक्षतया नलिनं-संवर्त्तिकानुकारिणः, कांश्चिदर्कफलसदृशान् , कांश्चिल्लोहितायमान-चञ्चुकोटीन्, ईषद्विघटित-दल-पुट-पाटलमुखानां कमलमुकुलानां श्रियमुद्वहतः, कांश्चिदनवरत-शिरःकम्प-व्याजेन निवारयत इव प्रतीकारासमर्थान् , एकैकशः फलानीव तस्य वनस्पतेः शाखासन्धिभ्यः कोटरान्तरेभ्यश्च शुक-शावकानग्रहीत् , अपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत् ।

किमिवेति । हि यस्माद्धेतोः अकरुणानां निर्दयानां लोकानां किमिव दुष्करं कठिनं न किमपीत्यर्थः सर्वमेव कुकृत्यं सम्पादयन्तीत्याशयः । यतः स वृद्धकिरातः अनेके बहवो ये ताला उपर्युपरिनिहितताल[?]वृक्षाः तद्वत् उत्तुङ्गम् उन्नतम्, अभ्रं मेघं कषन्ति विलिखन्तीति अभ्रङ्कषाणि 'अभ्रं मेघो वारिवाहः' इत्यमरः, शाखानां स्कन्धानां शिखराणि अग्राणि यस्य तं तादृशम्, तं पादपं विटपं सोपानानि आरोहणानि तैरिव 'आरोहणं स्यात्सोपानम्' इत्यमरः, अयत्नेनैव अनायासेनैव आरुह्य आरोहणं विधाय, अनुपजाता अनुत्पन्ना उत्पतनशक्तिः गगनगमनसामर्थ्यं येषां तान् तादृशान् कांश्चित् अल्पदिवसजातान् स्वल्पदिनोत्पन्नान्, गर्भस्य तत्क्षणनिःसृतस्य भ्रूणस्य या छविः शोभा तया पाटलान् श्वेतरक्तवर्णान् अत एव शाल्मलीकुसुमस्य शाल्मलीतरुपुष्पस्य शङ्कां निजेषु भ्रान्तिम् उपजनयतः उत्पादयतः । कांश्चित्—उद्भिद्यमानौ प्रादुर्भूयमानौ पक्षौ पतत्रे येषां तेषां भावः तया, नलिनां पङ्कजानां संवर्त्तिका नवदलानि 'संवर्त्तिका नवदलम्' इत्यमरः, अनुकर्तुं शीलं येषां तान् तादृशान्, एतेनातिस्वच्छत्वं व्यज्यते । अर्कफलसदृशान् सद्योजाततया मन्दारफलसमानद्युतीन् । अलोहिता लोहिताः सम्पद्यमाना भवन्तीति लोहितायमाना रक्तायमाना चञ्चूनां कोटीनां कोट्य अग्रदेशा येषां तान्, अत एव ईषद्विघटितैः किञ्चिद्विकसितैः दलपुटैः पुटकाकारपत्रैः पाटलानि श्वेतरक्तानि मुखानि अग्रभागा येषां तेषां कमलमुकुलानां पङ्कजकुड्मलानां श्रियं कान्तिम् उद्वहतः धारयतः । अनवरतं निरन्तरं यः शिरःकम्पः बालकतया त्रासेन वा उत्तमाङ्गविधूननं तस्य व्याजेन कपटेन निवारयत इव 'वयं शिशव इति कृत्वा न हन्तव्या' इत्यादिना स्वव्यापादनं प्रतिषेधत इव प्रतिकारो मारणनिवृत्त्युपायः तत्रासमर्थान् अशक्यान् शिशुत्वेन चञ्चुपुटेन दंशनं कर्तुमक्षमत्वात् उड्डयनं विधाय पलायितुमयोग्यत्वाच्चेत्याशयः । एकैकशः प्रत्येकं फलानि रसोद्भवानीव तस्य वनस्पतेः शाल्मलीतरोः शाखासन्धिभ्यः स्कन्धग्रन्थिभ्यः कोटरान्तरेभ्यः विवरमध्येभ्यश्च शुकशावकान् कीरशिशून् अग्रहीत् आदत्त, च पुनः अपगतासून् विगतप्राणान् कृत्वा विधाय क्षितौ पृथिव्याम् अपातयत् अचिक्षिपत् । एषु हि 'किमिव हि दुष्करम्' इत्यत्रार्थापत्तिः 'सोपानैरिव' इत्यत्र जात्युत्प्रेक्षा, 'शाल्मलीकुसुमशङ्कामुपजनयत इव' इत्यत्र पदार्थहेतुककाव्यलिङ्गसंमिश्रो भ्रान्तिमान्, 'नलिनसंवर्त्तिकानुकारिण'. इत्यत्र 'अर्कफलसदृशान्' इत्यत्र च आर्थी उपमा, 'कमलमुकुलानां श्रियमुद्वहतः' इत्यत्र निदर्शना, 'निवारयत इव' इत्यत्र सापह्नवक्रियोत्प्रेक्षा, 'फलानीव' इत्यत्रोपमा । 'किमिव हि दुष्कराणाम्' इत्यस्यैव हि 'यतः स' इत्यादिना

है । वह वृक्ष अनेक ताड़वृक्षों के समान उन्नत था और उसकी चोटीकी डालियाँ गगनतलसे टकराती थीं तो भी वह शबर इस प्रकार अनायास उसपर चढ़ गया जैसे मानो सोपान (सीढ़ी) पर चढ़ता हो । पुनः वह तोतेके बच्चोंको, एक-एक करके,—जैसे मानो उस वृक्षका फल तोड़ता हो इस प्रकार—डालियोंकी सन्धिमेंसे और घोसलोंके अभ्यन्तरसे निकाल-निकाल कर और प्राण ले लेकर पृथ्वीपर पटकने लगा । उनमेंसे कितने ही बच्चोंको उड़नेकी शक्ति नहीं थी, वे थोड़े ही दिन पहले उत्पन्न हुए थे; गर्भावस्थाके समान श्वेत-रक्त थे और शाल्मली (सेमर) के फूलोंके समान देखनेमें लगते थे; कितने ही के अभिनव पंख निकल आनेके कारण कमलके कोमल पत्तोंके समान देखनेमें आरहे थे; कितने ही मन्दारपुष्प (आक के फूल) के समान थे; कितने ही चोंचका अग्रभाग (नोक) रक्तवर्ण होनेके कारण थोड़ी खिली हुई पंखड़ियोंसे रक्त मुखवाली कमलकी कलियोंकी शोभा धारण करते थे; और कितने ही अनवरत होते शिरःकम्पनके बहाने मानो उपाय करनेमें असमर्थ होकर उस व्याधको नहीं-नहीं करते थे ।

---

१. अधिरुह्य । २ शाल्मलि''' । ३. नलिनी''' । ४. उद्वहन्तः । ५. निवारयन्त इव । ६. प्रतीकारानेकैकशः, एकैकतया । ७. शाखान्तरेभ्यश्च । ८. 'कोटरान्तरेभ्यश्च' इति पाठः क्वचिन्नोपलभ्यते ।

तातस्तु तं महान्तमकाण्ड एव प्राणहरमप्रतीकारमुपप्लवमुपनतमवलोक्य द्विगुणतरोपजात-वेपथुर्मरणभयादुद्भ्रान्त-तरल-तारकां विषादशून्यामश्रुजलप्लुतां दृशमितस्ततो दिक्षु विक्षिपन्, उच्छुष्कतालुरात्मप्रतीकाराक्षमः त्रास-त्रस्त-सन्धि-शिथिलेन पक्षपुटेनाच्छाद्य मां तत्कालोचितप्रतीकारं मन्यमानः स्नेहपरवशो मद्रक्षणाकुलः किंकर्त्तव्यताविमूढः क्रोडभागेन मामवष्टभ्य तस्थौ।

असावपि पापः क्रमेण शाखान्तरैः सञ्चरमाणः कोटरद्वारमागत्य जीर्णासितभुजङ्ग-भोग-भीषणं प्रसार्य्य विविध-वन-वराह-वसा-विस्र-गन्धि-करतलम् अनवरत-कोदण्ड-गुणा-

---

समर्थनात् सामान्येन विशेषसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः अयमेव हि प्रधानम् एतस्यैव चार्थापत्त्यादयोऽङ्गमिति सङ्करालङ्कारः।

तात इति। तातस्तु मज्जनकस्तु क्रोडभागेन मामवष्टभ्य तस्थौ इति सम्बन्धः। महान्तं दीर्घतरम् अकाण्ड एव असमय एव आकस्मिक एव प्राणहरं जीवितविनाशनम् अप्रतीकारम् अचिकित्स्यम् उपप्लवं विपदम् उपनतम् आगतम् अवलोक्य निरीक्ष्य, द्विगुणतरः पूर्वं शरीरशैथिल्येन यावान् कम्प आसीत्तद्द्विगुणतर इत्यर्थः उपजात उत्पन्नो वेपथुः कम्पो यस्य स तादृशः, मरणभयात् मृत्युत्रासात् उद्भ्रान्ते उद्भ्रमिते तरले चञ्चले तारके कनीनिके यस्याः तां तादृशीम्, विषादेन शोकेन शून्यां लक्ष्यरहिताम्। दृशं लोचनम् इतस्ततः समन्ततो दिक्षु आशासु विक्षिपन् विस्तारयन्, उच्छुष्कम् प्राबल्येनाक्लिन्नं तालु काकुदं यस्य स तादृशः, आत्मनो निजस्य यः प्रतीकारो विपन्निवृत्त्युपायः तत्र अक्षमः अशक्तः, त्रासेन भोत्या त्रस्तैः विदीर्णैः सन्धिभिः अस्थिबन्धैः शिथिलेन श्लथेन पक्षपुटेन छदद्वयेन मां वैशम्पायनम् आच्छाद्य आवृत्य, तत्काले तत्क्षणे उचितप्रतीकारम् इदमेव योग्योपायं मन्यमानः ज्ञायमानः स्नेहपरवशः प्रेम्णा पराधीनः मद्रक्षणाकुलो मत्त्राणव्यग्रः किंकर्त्तव्यताविमूढः किमिदानीं मया कर्त्तव्यं विधेयमित्यत्र विषये सन्दिग्धबुद्धिः क्रोडभागेन उत्सङ्गप्रदेशेन माम् अवष्टभ्य अवलम्बनं विधाय आवृत्येत्यर्थः, तस्थौ तस्थिवान्।

असावपीति। असौ वृद्धचाण्डालोऽपि पापः पापिष्ठः अतिनृशंसः अत्यन्तक्रूरः, क्रमेण पर्यायेण शाखान्तरैः स्कन्धान्तरैः सञ्चरमाणः प्रवर्तमानः कोटरद्वारम् अस्मदीयनिष्कुहद्वारम् आगत्य प्राप्य तातं गतासुमकरोदित्यन्वयः। जीर्णस्य परिणयवयसः असितस्य श्यामवर्णस्य भुजङ्गस्य सर्पस्य 'सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गः' इत्यमरः, भोगः शरीरं तद्वत् भीषणं भयदम्, 'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इत्यमरः। विविधा अनेके ये वनवराहाः अरण्यशूकराः तेषां वसाभिः तत्क्षणव्यापादनात् स्नायुभिः तत्सम्बन्धैरित्यर्थः विस्रगन्धि आमगन्धि 'विस्रं स्यादामगन्धि यत्' इत्यमरः, करतलं हस्ततलं यस्य तं तादृशम्। अत्र हि 'विस्रगन्धिकरतलम्' इत्यस्य स्थाने 'विस्रकरतलम्' इत्येव पाठः साधीयान् उक्तकोशबलेन 'गन्धि'पदानुपादानेऽप्युक्तार्थक्षतेरभावात्, अन्यथाधिकपदत्वदोषं वारयितुं कः शक्नुयात्? अनवरतं निरन्तरं कोदण्डगुणानां धनुःप्रत्यञ्चानाम् आकर्षणेन आक्षेपेण व्रणः क्षतः तेन अङ्कितः

ऐसा प्राणहारी और प्रतीकार-रहित महा-उपद्रव असामयिक उपस्थित देखकर मेरे पिताको द्विगुणित कंप उत्पन्न हो आया। मरणके भयसे ऊँची और चंचल पुतलीवाले, शोकसे निस्तेज और आँसुओंसे भरे नयनोंको उन्होंने दिशाओंमें इधर-उधर फेंका। उनका तालु सूख गया। डरके कारण सन्धियाँ ढीली हो जानेसे पंख शिथिल हो गये। उनमें अपनी रक्षा करनेका सामर्थ्य न रहा और कोई प्रतीकार नहीं देखनेमें आया। तथापि स्नेहके कारण मेरी रक्षाके लिए विह्वल होकर उन्होंने अपने पंखोंसे मुझे आवृतकर (ढक) लिया। केवल इस उपायको ही संमुचित समझकर वें मुझे अपनी गोदमें लपेटकर बैठे रहे। इतनेमें अत्यधिक पापी और नृशंस व्याधने क्रमसे शाखाओंके बीच-बीचमें चढ़ हमारे घोंसलेके विवरके समीप आकर यमदण्डके समान अपना बायाँ हाथ लंबा किया। उसका हाथ वृद्ध काले सर्पके समान भयंकर था, करतल (हथेली) में जंगली शूकरोंकी चर्वी (मांस) की कच्ची बास आ रही थी और कोहनीमें धनुषकी डोरी खेंचने के चिह्न हो रहे थे। पुनः उसने

---

१. अतिमहान्तम्। २. आलोक्य। ३. तरलतारको'''तरलतरतारकान्,'''तारकाम्। ४. पक्षसंपुटेन। ५. तत्कालोचितं प्रतीकारं। ६. मद्रक्षाकुलः। ७. कर्तव्यतामूढः। ८. विभागेन। ९. क्वचित् क्रमेणेति पदं न विद्यते। १०. विमिश्र'''। ११. इह 'अनवरते'ति पदं क्वचिन्नास्ति।

कर्षण-व्रणाङ्कित-प्रकोष्ठम् अन्तक-दण्डानुकारिणं वामबाहुमतिनृशंसो मुहुर्मुहुर्दत्तचञ्चु-प्रहार-मुत्कूजन्तमाकृष्य[1] तातमपगतासुमकरोत्[2]। मां तु स्वल्पशरीरत्वाद्[3] भयसम्पीडिताङ्गत्वात् सावशेषत्वाच्चायुषः[4] कथमपि तत्पक्ष-पुटान्तर-गतं[5] नालक्षयत्। उपरतं[6] च तमवनितले शिथिलशिरोधरमधोमुखममुञ्चत्। अहमपि तच्चरणान्तरे[8] निवेशित[9]शिरोधरो निभृतमङ्क-निलीन-[10]स्तेनैव सहापतम्। आयुषोऽवशिष्टतया[11] तु पवनवशात् पुञ्जितस्य महतः शुष्कपत्र-राशे[12]रुपरि पति[13]तमात्मानमपश्यम्। अङ्गानि येन मे नाशीर्य्यन्त[14]।

यावच्चासौ तस्मात्तरुशिखरान्नावतरति तावदहमवशीर्ण-प[15]र्ण-सवर्णत्वादस्फुटोपलक्ष्यमाण-मूर्त्तिः पितरमुपरतमुत्सृज्य नृशंस इव प्राणपरित्यागयोग्येऽपि काले बालतया[16] कालान्त-

---

चिह्नितः प्रकोष्ठः कूर्परादधः प्रदेशो यस्य तं तादृशम् 'कच्चान्तरे प्रकोष्ठः स्यात् प्रकोष्ठः कूर्परादधः' इति शाश्वतः, कूर्परश्च 'कफोणिस्तु कूर्परः' इत्यमरात् भुजमध्यग्रन्थिः अन्तकदण्डानुकारिणं यमदण्डतुल्यम्, वामबाहुं सव्यभुजं प्रसार्य विवरमध्ये विस्तार्य मुहुर्मुहुः वारम्वारं दत्तः चञ्चुप्रहारः त्रोटीप्रघातो येन स तं तादृशम् उत्कूजन्तम् उच्चैः स्वरेण रुवन्तम्, तातं जनकम् आकृष्य कोटराद्बहिरानीय अपगतासुं विगतप्राणम् अकरोत् कृतवान्। जीर्णासितभुजङ्गभोगभीषणमित्यत्र लुप्तोपमा, अन्तकदण्डानुकारिणमित्यत्र चार्थी लुप्तोपमा।

मामिति। मां वैशम्पायनं तु स्वल्पशरीरत्वात् स्वल्पवपुष्ट्वात् भयेन त्रासेन सम्पीडितानि सङ्कुचितानि अङ्गानि अवयवा यस्य तस्य भावः तस्मात्, आयुषो जीवितव्यस्य सावशेषत्वात् अवशिष्टत्वेन सह विद्यमानत्वात्, कथमपि महता क्लेशेन पक्षपुटान्तरे छदपुटमध्ये गतं प्राप्तं नालक्षयत् नापश्यत् स जीर्णशवर इति शेषः, एवमग्रे। उपरतं त्यक्तप्राणम्, अत एव शिथिला श्लथा शिरोधरा ग्रीवा यस्य तं तादृशम्, तं जनकम्, अधोमुखम् अवाङ्मुखम् अमुञ्चत् अपातयत्।

अहमिति। तच्चरणान्तरे पितुः पादमध्ये निवेशितशिरोधरः स्थापितग्रीवः, निभृतं निःशब्दम् अङ्कनिलीनः उत्सङ्गेऽन्तर्हितः, तेनैव जनकेनैव सह साकम् अपतम् अधःपतनफलिकां चेष्टामकरवम्। आयुषः स्वजीवितसमयस्य अवशिष्टतया अवशेषत्वेन हेतुना तु पवनवशात् वायुसंयोगेन पुञ्जितस्य पिण्डितस्य ऊर्ध्वाधोभावमाश्रितस्येत्यर्थः महतो विशालस्य शुष्कपत्रराशेः नीरसदलसमूहस्य। पतितं स्रस्तम् आत्मानं स्वशरीरम् अपश्यम् अवलोकयम्। येन शुष्कपत्रराश्युपरिपातेन हेतुना, मे मम अङ्गानि अवयवाः नाशीर्यन्त विगलितानि नाभवन्।

यावदिति। यावत् यावता समयेन असौ जीर्णशवरः तस्मात् तरुशिखरात् शाल्मलीवृक्षाग्रात् नावतरति नोत्तरति तावता कालेन अहं वैशम्पायनः तमालविटपिनो मूलदेशमविशमित्यग्रेतनेन सम्बन्धः। अवशीर्णस्य तत्क्षणविगलितस्य अशुष्कस्य सरसः पर्णस्य तरुपत्रस्य सवर्णत्वात् तुल्यहरिद्वर्णत्वात् अस्फुटम् अप्रकटम् उपलक्ष्यमाणा अवलोक्यमाना मूर्त्तिः स्वरूपं यस्य स तादृशः। नृशंस इव क्रूर इव तत्समये तातपरित्यागादित्याशयः। उपरतं विगतप्राणं पितरं तातम्, उत्सृज्य परित्यज्य, प्राणपरित्यागे जीवितोत्सर्गे योग्येऽपि उचितेऽपि काले समये तथाविधप्रेमविधायितातपरित्यागादित्याशयः। बालतया शिशु-

---

बार-बार चोंचका प्रहार करते और बड़ी-बड़ी चीखें मारते मेरे पिताको बाहर खेंचकर उनके प्राण ले लिये। किन्तु मेरा शरीर अधिक छोटा था, मेरे समस्त अङ्ग त्राससे सङ्कुचित (सुकड़) गये थे और अवस्था शेष थी, इसलिए उसने पंखोंके अन्दर मुझे नहीं देखा। मेरे मरे हुए पिताको ग्रीवा (गर्दन) लटकाकर अधोमुख (औंधे मुँह) से पृथ्वीपर पटक दिया। मैं उनके पैरोंके मध्यमें अपनी ग्रीवा रखकर चुपचाप गोदमें छिप गया था, इसलिए मैं भी उनके साथ ही नीचे गिर पड़ा। मेरे कुछ पुण्य अवशिष्ट थे, इसलिए मैं वायुसे एकत्रित हुए सूखे पत्तोंके ढेरपर जा पड़ा। मेरे शरीरमें कुछ भी चोट नहीं लगी। सूखे पत्तोंके समान ही रंग होनेसे मेरा शरीर पूरा-पूरा स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। पुनः वह भील वृक्षके शिखर (चोटी) परसे जबतक नीचे नहीं आया तबतक ही मैंने, जिस प्रकार कोई मनुष्य परित्याग करता हो उसी प्रकार, अपने मरे हुए पिताको

---

१. तमाकृष्य। २. गतासुम्। ३. स्वल्पत्वात्। ४. अवशेषत्वात्। ५. पक्षसम्पुटान्तरगतम्। ६. एनम्। ७. तातम्। ८. तच्चरणान्तराले। ९. प्रवेशितः। १०. अङ्कदेशनिलीनः, अङ्कविलीनः। ११. अवशिष्टपुण्यतया तु पवनवश्येन, पवनवशपुञ्जितस्य। १२. पर्णराशेः। १३. निपतितम्। १४. नावशीर्य्यन्त। १५. पत्र। १६. बालकतया।

रभुवः स्नेहरसस्यानभिज्ञो जन्मसहभुवा भयेनैव केवलमभिभूयमानः किञ्चिदुपजाताभ्यां पक्षाभ्यामीषत्कृतावष्टम्भो लुठन्नितस्ततः कृतान्तमुख-कुहरादिव विनिर्गतमात्मानं मन्यमानः नातिदूरवर्त्तिनः, शबरसुन्दरी-कर्णपूर-रचनोपयुक्त-पल्लवस्य, सङ्कर्षण-पट-नील-च्छाययोपहसत इव गदाधर-देहच्छविम्, अच्छैः कालिन्दी-जल-च्छेदैरिव विरचितच्छदस्य, वनकरिमदोपसिक्त-किसलयस्य, विन्ध्याटवी-केशपाश-श्रियमुद्वहतः, दिवाप्यन्धकारितशाखान्तरस्य, अप्रविष्ट-सूर्य-किरणमतिगहनमपरस्येव पितुरुत्सङ्गमतिमहतस्तमालविटपिनो मूलदेशमविशम्।

त्वेन कालान्तरभुवः बाल्यातिरिक्तावस्थायां जननसमर्थस्य स्नेहरसस्य शयनासनभोजनादिषु प्रेमविषयकरसस्य अनभिज्ञ अज्ञाता जन्मसहभुवा उत्पत्तिकालादारभ्य समुत्पन्नेन भयेनैव त्रासेनैव केवलं समन्ततः अभिभूयमानः स्वाधीनीक्रियमाणः, किञ्चित् ईषत् उपजाताभ्याम् उत्पन्नाभ्यां पक्षाभ्यां पतत्राभ्याम् ईषत्कृतः किञ्चिद्विहितः अवष्टम्भः आधारो यस्य स तादृशः पृथिव्यां स्वल्पं स्वल्पमवलम्बनं विधायेत्यर्थः, इतस्ततः पृथिव्यां लुठन् निपतन्। कृतान्तस्य यमस्य मुखमिव मुखं वदनं यस्य तथाभूतात् कुहरात् विवरात् विनिर्गतमिव विनिःसृतमिव आत्मानं निजं मन्यमानः बोध्यमानः। इह विनिर्गतमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा।

नातीति। नातिदूरवर्त्तिनः नातिदविष्ठस्थायिनः, शबराणां किरातानां याः सुन्दर्यो रमण्यः तासां कर्णपूराणि कर्णभूषणानि तेषां रचनायां विनिर्मितौ उपयुक्ता उपयोगिनः पल्लवाः किसलया यस्य तस्य तादृशस्य, सङ्कर्षणस्य बलभद्रस्य 'सङ्कर्षणः शीरपाणिः कालिन्दीभेदनो बलः' इत्यमरः, पटवत् वस्त्रवत् नीलच्छायया नीलकान्त्या गदाधरदेहच्छविं श्रीकृष्णशरीरद्युतिम् उपहसत इव उपहासं कुर्वत इव विद्यमानम्। अच्छैः निर्मलैः कालिन्दीजलच्छेदैः यमुनाजलखण्डैरिव विरचिताः विनिर्मिताः छदाः पर्णानि यस्य तस्य तादृशस्य द्वयोरपि नीलरूपत्वादित्यभिप्रायः। वनकरिणाम् अरण्यगजानां मदा दानवारीणि तैरुपसिक्तानि सिञ्चितानि किसलयानि पल्लवानि यस्य तस्य तथोक्तस्य। विन्ध्याटव्या दण्डकारण्यस्य केशपाशश्रियं नीलवर्णत्वात् कुन्तलसमूहकान्तिम् उद्वहतः धारयतः। दिवाऽपि दिवसेऽपि अन्धकारितानि सूर्यकिरणप्रवेशाभावात् समुत्पन्नान्धकाराणि शाखान्तराणि स्कन्धाभ्यन्तरप्रदेशा यस्य तस्य तथोक्तस्य। अतिमहतः अत्यन्तविशालस्य तमालविटपिनः तमालतरोः अपरस्य अन्यस्य पितुः जनकस्य उत्सङ्गमिव क्रोडमिव भयनिवारकत्वात् पर्याप्तावरणकत्वाच्चेत्याशयः। अप्रविष्टा अन्तरप्राप्ताः सूर्यस्य दिनेशस्य किरणा रश्मयो यस्मिन् स तं तादृशम्, अतिगहनम् अतिशयेनापूर्णावकाशम्। मूलदेशं बुध्नभागम् अविशं प्रविष्टवान्। इह सङ्कर्षणादिच्छन्यन्ते लुप्तोपमाक्रियोत्प्रेक्षयोः अच्छैरित्यादिच्छदस्यान्ते जात्युत्प्रेक्षावृत्त्यनुप्रासयोश्चैकाश्रयानुप्रवेशरूपः सङ्करालङ्कारः। विन्ध्याटव्याः केशपाशश्रियमिव श्रियमिति बिम्बप्रतिबिम्बस्वभावबोधनान्निदर्शनालङ्कारः। उत्सङ्गमिवेत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा।

मृत्युके समय भी परित्याग कर दिया, क्योंकि आगे होनेवाले स्नेहका मुझे ज्ञान नहीं था। सहज भयसे अत्यधिक व्यग्र होनेके कारण कुछ निकले परोंका थोड़ा-थोड़ा साहाय्य लेता और इधर-उधर लोटता, अपनेको मृत्युके मुखमेंसे निकला समझकर समीपके एक बड़े तमाल (तम्बाकू) वृक्षकी जड़में इस प्रकार प्रविष्ट हो गया मानो दूसरे पिताकी गोद हो। वह जड़ इतना वृहद् था कि उसमें सूर्यकी रश्मियाँ भी घुस नहीं सकती थीं। उस वृक्षके पत्ते भीलिनियोंके कर्णभूषण बनानेके योग्य थे। बलरामके वस्त्रके समान नीली छायासे वह श्रीकृष्णके शरीरकी प्रभाकी, मानो उपहास करता था। स्वच्छ यमुना जलके टुकड़े ही के मानो, उसके पत्ते निर्मित हुए थे। उनपर वन्य-गजका मद सिक्त किया हुआ था। उस वृक्षने विन्ध्यावटीके केशपासकी शोभाको धारण किया था और दिनमें भी उसकी शाखाओंके मध्य-मध्यमें अन्धकार विद्यमान रहता था।

---

१. ईषत्कृतगमनावष्टम्भः। २. नीलच्छायम्, नीलदलच्छायया, नीलया छायया। ३. क्वचिद् 'देह' इति पाठो नास्ति। ४. मदसलिलैरिवोपसिक्त…, मदसलिलैरिव संसिक्त…। ५. उद्वहन्तः।

अवतीर्य्य च[1] स तेन समयेन क्षितितल-विप्रकीर्णान्[2] संहृत्य तान्[3] शुकशिशूननेक-लता-पाश-संयतानाबध्य[4] पर्णपुटेऽतित्वरित-गमनः सेनापतिगतेनैव वर्त्मना तामेव[5] दिशमन्वगच्छत्[6]। मान्तु लब्ध-जीविताशं प्रत्यग्र-पितृमरण-शोक-शुष्क-हृदयम् अतिदूरापातादायासितशरीरं[7] सन्त्रास-जात-वेपथुं सर्वाङ्गोपतापिनी[8] बलवती पिपासा परवशमकरोत्। अनया च काल-कलया सुदूरमतिक्रान्तः[9] स पापकृदिति परिकलय्य किञ्चिदुन्नमित-कन्धरो भयचकितया दृशा दिशोऽवलोक्य[10] तृणेऽपि चलति पुनः प्रतिनिवृत्त इति तमेव पदे पदे पापकारिणमुत्प्रेक्षमाणो निष्क्रम्य तस्मात्तमालतरु[11]-मूलात् सलिल-समीपमुपसर्त्तुं[12] प्रयत्नमकरवम्।

अवतीर्येति। अवतीर्य उत्तीर्य स वृद्धकिरातः तेन समयेन तत्कालेन क्षितितले भूतले विप्रकीर्णान् इतस्ततो विक्षिप्तान् तान् वृक्षपातितान् शुकशिशून् कीरडिम्भान् संहृत्य एकीकृत्य अनेकैः बहुभिः लता-पाशैः वल्लीरूपबन्धनरज्जुभिः संयतान् बद्धान् विधायेति शेषः। पर्णपुटे छदपुटे आबध्य प्रपूर्य, अतित्वरितम् अतिशीघ्रं गमनं गतिर्यस्य स तादृशः, सेनापतिगतेनैव सैन्यनायको येन वर्त्मना पथा गतस्तेनैव पथा तामेव दिशं सेनापत्याश्रितामेवाशाम् अगच्छत् अव्रजत्।

मामिति। मां पिपासा परवशमकरोदित्यन्वयः। लब्धा प्राप्ता जीविताशा प्राणधारणसम्भावना येन तादृशम्, तच्चाण्डालस्य गमनादित्याशयः। प्रत्यग्रः अभिनवो यः पितृमरणशोकः तान्मृत्युविषादः तेन शुष्कम् अक्लिन्नं संकुचितं वा हृदयं मनो यस्य स तं तादृशम्। अतिदूरापातात् अत्युन्नतप्रान्ततः पतनात् आयासितं परिश्रमितं शरीरं वपुर्यस्य स तादृशः तम्, तथा सन्त्रासेन अतिभयेन जातः समुत्पन्नो वेपथुः कम्पो यस्य स तादृशः तम्। सर्वाङ्गोपतापिनी समस्तहस्तपादादिव्यथादायिनी बलवती शक्तिशालिनी पिपासा तृट् परवशं पराधीनम् अकरोत् कृतवती।

अनया चेति। अनया अमुष्या कालकलया घटिकया स पापकृत् वृद्धकिरातः सुदूरं दूरदेशम् अतिक्रान्त अतीत इति परिकलय्य मनसि विचार्य, किञ्चिदुन्नमिता दिगवलोकनायेषदूर्ध्वीकृता कन्धरा ग्रीवा येन स तादृशः। भयेन त्रासेन चकितया चञ्चलया दृशा नेत्रेण दिशोऽवलोक्य आशा निरीक्ष्य सोऽथवान्यो वा तथाविध आयाति न वेति ज्ञानार्थमित्याशयः। तृणेऽपि यवसेऽपि चलति कम्पमाने सति पुनो भूयः प्रतिनिवृत्तः तथोक्तदिग्दर्शनात्प्रत्यावृत्तः तदागमनभयेनेत्याशयः। इति एवं पापकारिणं पापविधायिनं तमेव जीर्णशबरमेव पदे पदे प्रतिपदे उत्प्रेक्ष्यमाणः भयवशेन प्रतिस्थाने उत्पश्यमानः, निष्क्रम्य बहिर्निःसृत्य तस्मात् तमालतरुमूलात् तमालवृक्षाधःस्थलात् सलिलसमीपं जलान्तिकम् उपसर्तुं गन्तुं प्रयत्नम् उद्योगम् अकरवम् अविदधम्।

पुनः वह भीरु उस शाल्मली वृक्षसे उतरकर, पृथ्वीपर पृथक्-पृथक् पड़े तोतेके बच्चोंको शीघ्र एकत्रित करके, अनेक लतारूपी पाशोंमें लपेट, पत्तोंमें बाँध, जिस मार्गसे सेनापति गया था उसी मार्गसे, उसी ओर अतिशीघ्र चला गया। मुझे अब उस समय जीनेकी आशा तो हुई, किन्तु पिताके तत्काल मरनेके शोकसे मेरा हृदय सूख गया, अधिक उन्नतप्रदेशसे गिरनेके कारण शरीरमें व्यथा होने लगी, त्रासके कारण शरीर थर-थर काँपने लगा और समस्त अंगोंमें ताप उत्पन्न करके पिपासा मुझे पीड़ा देने लगी। उस चाण्डालको अधिक दूर चला गया जानकर, गलेको कुछ उन्नत करके भयचकित दृष्टिसे मैंने चारों तरफ देखा। एक तृण (तिनके) का भी आहट होनेपर पुनः उसके आनेका सन्देह करता और पद-पद पर उसी नृशंसको देखता, तमाल-वृक्षकी जड़मेंसे निकलकर मैं सरोवरके निकट पहुँचनेका प्रयत्न करने लगा।

---

१. क्वचित् 'च' इति पाठो नास्ति। २. विकीर्णान्। ३. क्वचित् 'तान्' इति पाठो न विद्यते। ४. आविध्य। ५. 'तामेव' इत्यपि पाठः क्वचिन्नास्ति। ६. अगच्छत्। ७. पातायासितशरीरं। ८. सन्त्रासजाता सर्वाङ्गोप··· । ९. आक्रान्तः। १०. विलोक्य। ११. तमालतरुतलमूलात्। १२. सर्त्तुं।

अजातपक्षतया[1] च नातिस्थिरतर-चरण-सञ्चारस्य[2] मुहुर्मुहुर्मुखेन[3] पततो मुहुस्तिर्यङ्नि-पतन्तमात्मानमेकया पक्षपाल्या सन्धारयतः क्षितितलसंसर्पण-श्रमातुरस्य[4] अनभ्यासवशादेक-मपि दत्त्वा पदमनवरतमुन्मुखस्य, स्थूलस्थूलं[5] श्वसतः[6] धूलिधूसरस्य संसर्पतो ममाभून्मनसि[7]— 'अतिकष्टासु दशास्वपि[8] जीवित-निरपेक्षा[9] न भवन्ति खलु जगति प्राणिनां[10] वृत्तयः[11]। नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्[12]। एवमुपरतेऽपि[13] सुगृहीताम्नि ताते यदहमविकलेन्द्रियः पुनरेव प्राणिमि। धिङ्मामकरुणमतिनिष्ठुरमकृतज्ञम्। अहो![14] सोढ-

अजातेती। मम मनसि एवमभूदिति सम्बन्धः। अजातपक्षतया अनुत्पन्नच्छदतया नातिस्थिरतरः किञ्चिदस्थिर इत्यर्थः, चरणसञ्चारः पादस्थापनसामर्थ्यं यस्य स तादृशः, मुहुर्मुहुः वारम्वारं मुखेन वदनेन पततो भूतले लुण्ठनं विदधतः, मुहुः वारम्वारं तिर्यक् कुटिलं कक्षाधोऽवयवयोरित्यर्थः, निपतन्तं भ्रश्यन्तम् आत्मानं स्वम् एकया केवलया 'एकोऽन्यार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा' इत्युक्तेः, 'एके मुख्यान्यकेवलाः' इत्यमराच्च, पक्षपाल्या पक्षप्रदेशेन 'पालिः कर्णलतायां स्यात् प्रदेशे पङ्क्तिचिह्नयोः' इत्यजयः, सन्धारयतः पतनाद्रक्षां कुर्वतः। क्षितितले भूतले संसर्पणेन गमनेन यः श्रमः खेदः तेन आतुरस्य व्यथितस्य। अन-भ्यासात् भूयो भूयो विधानाभाववशात् एकमपि एकसंख्याकमपि पदं चरणं दत्वा निवेश्य, अनवरतं निरन्तरम् अधिकसमयमिति यावत् उन्मुखस्य ऊर्ध्वाननस्य 'आननं लपनं मुखम्' इत्यमरः। स्थूलस्थूलं दीर्घदीर्घं यथा स्यात्तथा श्वसतः श्रमेण श्वासमोचणं विदधतः। धूलिभिः भूयो भूयः पतनात् लग्नैः क्षिति-तलपांशुभिः, धूसरस्य धूम्रवर्णस्य। संसर्पतः सलिलान्तिकं व्रजतो मम मनसि हृदये अभूत् जाता एवं वृत्तिरिति शेषः।

तां वृत्तिमेवं स्पष्टयति—अतिकष्टास्विति। अतिकष्टास्वपि अत्यन्तं क्लेशजनिकास्वपि दशासु एवं-विधासु अवस्थासु प्राणिनां जन्तूनां वृत्तयः प्रवर्त्तनरूपाः क्रियाः जीवितनिरपेक्षा जीवने गतस्पृहा न भवन्ति न जायन्ते, जन्तवो ह्यनेकमपि क्लेशमनुभवन्ति तथापि स्वप्राणसत्तामभिलषन्त्येवेत्याशयः। अत एव इह जगति अस्मिन् संसारे सर्वजन्तूनां सर्वप्रकारशरीरिणां 'प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तुजन्यशरीरिणः' इत्यमरः, जीवितात् जीवनात् अन्यत् इतरत् अभिमततरम् अभिलषिततरं वस्तु विषयं नास्ति न विद्यते। उक्तवि-षयं संयोजयितुमाह—एवमिति। यत् यस्मात् कारणात् सुगृहीतनाम्नि मम प्रातश्चिन्तनीयसंज्ञके 'स सु-गृहीतनामा स्यात् यः प्रातरनुचिन्त्यते' इति त्रिकाण्डशेषः, ताते जनके एवम् उक्तविधिना उपरतेऽपि मृतेऽपि चाण्डालस्य किरातस्य प्रक्षेपेणापमृत्युं प्राप्तेऽपीत्यर्थः, अहम् अविकलेन्द्रियः विषयग्रहणे यथास्थित-समर्थेन्द्रियः पुनरेव साम्प्रतमपि प्राणिमि श्वसिमि जीवनायाभिलषामीत्यर्थः, अतः अकरुणं निर्दयं तथावि-धेऽपि समये तातं परित्यज्य स्वप्राणरिरक्षिषया निःसरणादित्याशयः। अतिनिष्ठुरम् अतिक्रूरं निष्करुणत्वा-दित्याशयः। अकृतज्ञं कृतम् अनेन ममैतादृशमुपकारं विहितमिति न जानाति यः स तं तादृशम्, तद्विहितो-पकाराचिन्तनादिति भावः। मां वैशम्पायनं धिक् धिक्कारः 'उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु' इति धिग्योगे मामित्यत्र द्वितीया। अहो आश्चर्यम्। येन मया वैशम्पायनेन, सोढेन असाधारणदुःखमनु-

पूरे पंख स्पष्ट रूपमें उत्पन्न न होनेके कारण मेरे पैर डिगमिगाते थे। मैं प्रतिक्षण मुँहके बल लथड़ा जाता था। बार-बार जब मैं तिरछा होकर गिरनेको होता था तब एक पार्श्वभाग (करवट) से अपनेको संभाल लेता था। पृथ्वीपर चलनेसे परिश्रान्त हो (थक) जाता था। अभ्यास न होनेके कारण एक-एक पद रखकर पुनः ऊपरकी ओर देखता था। मेरा साँस फूलने लगता था। शरीर धूलसे मलिन हो गया था। इस प्रकार चलते-चलते मैंने विचार किया—संसारमें अत्यधिक क्लेश पानेपर भी प्राणी जीवनकी आशा नहीं छोड़ते; संसारमें समस्त जीवोंको जीवनसे अधिक प्रिय अन्य कुछ नहीं है, क्योंकि जिसका नाम स्मरण करनेसे आनन्द हो ऐसे पिताके इस प्रकार मर जानेपर भी मैं अवतक अच्छेरूपसे जीवित हूँ! धिक्कार है मुझ निर्दयी, कठिन और और कृतघ्न को! पिताकी मृत्युके शोकसे दुःखी होकर भी मैं प्राण-धारण करता हूँ और उपकार नहीं मानता!

१. अनुपजातपक्षतया, अजातपक्षतया। २. नातिस्थिरचरण'''। ३. अधोमुखेनापतः। ४. श्रमातुरस्य। ५. मुहुर्मुहुः स्थूलस्थूलं। ६. निःश्वसतः। ७. मम समभून्मनसि। ८ अवस्थास्वपि। ९. स्वजीवित'''। १०. सर्वप्राणिनां। ११. प्रवृत्तयः। १२. सर्वजन्तूनामेव १३. 'उपरतेऽपि' इति क्वचिन्न। १४. अकृतज्ञं विसोढपितृ'''।

पितृमरणशोकदारुणं येन मया जीव्यते, उपकृतमपि नापेक्ष्यते। खलं हि खलु मे हृदयम्। अहं हि लोकान्तरमुपगतायामम्बायां नियम्य शोकावेगमाप्रसव-दिवसात् परिणतवयसापि सता तातेन तैस्तैरुपायैः संवर्द्धनक्लेशमतिमहान्तमपि स्नेहवशादगणयता यत् परिपालितः, तत्सर्वमेकपदे विस्मृतम्। अतिकृपणाः खल्वमी प्राणाः, यदुपकारिणमपि तातमद्यातिगच्छन्तं नानुगच्छन्ति। सर्वथा न कञ्चित् न खलीकरोति जीवित-तृष्णा, यदीदृशावस्थमपि मामायासयति जलाभिलाषः। मन्ये चागणित-पितृमरण-शोकस्य निर्घृणतैव केवल-

भूतेन पितृमरणशोकेन तातमरणविषादेन दारुणं भयङ्करं यथा स्यात्तथा जीव्यते जीवनानि धार्यन्ते, उपकृतमपि तातविहितोपकारोऽपि नापेक्ष्यते स्मृतिपथे नानीयते अतश्चापि मां धिगित्यन्वयः।

अहमिति। हि निश्चयेन 'हि पादपूरणे हेतौ विशेषेऽप्यवधारणे' इति मेदिनी। मे मम हृदयं मनः खलम् अधमम् उपकाराज्ञत्वादित्याशयः। 'खलः कल्के भुवि स्थाने क्रूरे कर्णे जपेऽधमे' इति हैममेदिन्यौ। हि यस्मात् कारणात् लोकान्तरं परलोकम् उपगतायां प्राप्तायाम् अम्बायां जनन्यां शोकावेगं विषादप्रवाहं नियम्य अन्तर्निरुध्य, आप्रसवदिवसात् मज्जन्मदिनादवधि, परिणतवयसापि वृद्धावस्थेनापि अत एव समस्तकर्मायोग्येनेत्याशयः, एतादृशेनापि सता तैस्तैरुपायैः प्राग्दर्शितैः कीरशुकशेषभक्ष्यसंयोजनादिभिः संवर्द्धनक्लेशं मत्परिपालनदुःखम् अगणयता तद्गणनामविदधता तातेन पित्रा अहं यत्परिपालितः परिपोषितः, एकपदे तत्काले 'एकपदं तत्काले नपुंसकं, वर्त्मनि स्त्री स्यात्' इति रामाश्रमीटीका, 'तत्क्षणैकपदे तुल्ये' इति हलायुधश्च, तत्सर्वं विस्मृतं मानसपथान्निःसारितं मयेति शेषः, तस्य प्रतीकाराविधानादनुव्रजनाभावाच्चेत्याशयः।

अतीति। अमी एते मे प्राणा असवः अतिकृपणाः खलु अत्यन्ततुच्छा एव, यत् यस्माद्धेतोः उपकारिणमपि तातम् उपकृतिविधायिनमपि पितरम् अद्य अस्मिन्नहनि अतिगच्छन्तं मामतिक्रम्य व्रजन्तं नानुगच्छन्ति नानुव्रजन्ति। सर्वथा सर्वप्रकारेण जीविततृष्णा जीवनेच्छा कञ्चित् कमपि जनं न खलीकरोति नाधमीकरोति इति न, किन्तु सर्वथैव खलीकरोति सर्वमित्यर्थः। नञ्द्वयोपादानेन प्रकृतमर्थं दृढीकृतम्। अखलं खलं सम्पद्यमानं करोतीति खलीकरोति अभूततद्भावे च्विः। यत् यस्मात् कारणात् जलाभिलाषः जलपानेच्छा, ईदृशावस्थमपि अत्यन्तविषादव्यग्रमपि माम् आयासयति जलपानविधानाय सम्प्रेर्य क्लेशं जनयति। एवञ्च जीवनाभिलाषयैव इयं जलाभिलाषा, सा यदि जीवनाभिलाषा नाभविष्यत्तदा यदा जलतृष्णा सञ्जाता तदैव मृतः सन् तातमनुव्रजिष्यमिति नूनं जीवनाभिलाषैव सम्प्रति मां दुःखमुत्पादयतीत्याशयः। इह जीविततृष्णेति विशेषेण आयासासादनसामान्यसमर्थनात् विशेषेण सामान्यसमर्थनरूपोऽर्थान्तरन्यासः।

मन्य इति। मन्ये जाने च अगणितपितृमरणशोकस्य गणनातीततातमरणविषादस्य मम केवलम् इयं सलिलपानबुद्धिः जलाभिलाषा निर्घृणतैव निष्करुणतैव तत्प्रयुक्तवेत्याशयः, अन्यथा अक्लिन्नकण्ठो निष्प्राणतातमनुव्रजेयमिति तात्पर्यम्।

इह निर्घृणताजलाभिलाषयोर्हेतुहेतुमतोस्तादात्म्येन प्रतिपादनात् हेत्वलङ्कारः। तथा हि दर्पणे—

'अभेदेनाभिधा हेतुर्हेतोर्हेतुमता सह' इति।

मेरा हृदय यथार्थमें दुष्ट है। मेरी माताकी मृत्यु हो जानेपर पिताने अपने शोकका वेग रोका। स्वयं वृद्ध होनेपर भी जबसे मैं उत्पन्न हुआ तबसे लेकर वे जीवित रहे, तबतक उन्होंने स्नेहसे मेरा पालन किया और अपने परिश्रमकी कुछ भी गणना नहीं की; उन्होंने अनेक उपायोंसे मेरा संवर्धन किया। यह सब मैं एक साथ भूल गया! सत्य है, ये प्राण अत्यन्त निर्दय हैं, क्योंकि इस प्रकार उपकार करनेवाले पिताके कहीं चले जानेपर अब भी उनके पीछे नहीं जाते। जीवनकी तृष्णा सर्वथा सबको दुष्ट बना देती है, क्योंकि मैं ऐसी अवस्थामें प्राप्त हूँ तो भी पिपासा (प्यास) मुझे पीड़ा ही देती है। पितृमरणके शोककी तो मुझे थोड़ी भी चिन्ता नहीं है, किन्तु जल पीनेकी उत्कट अभिलाषा बनी ही है। यह सब केवल निर्दयता है, इसमें किसी प्रकारका सन्देह

१. मरणम्। २. नापेक्षते। ३. मया। ४. लोकन्तरगतायाम्। ५. शोकवेग। ६. 'तातेन' इति क्वचिन्नास्ति। ७. मे प्राणाः, मम प्राणाः। ८. तातं क्वापि गच्छन्तमद्यापि, मद्य क्वापि'''यान्तम्। ९. सर्वथा कञ्चिन्न, सर्वथा न कञ्चन। १०. ईदृगवस्थं। ११. मामावासयति, मामयमासयति, मामभिलापयति। १२. निर्घृणतयैव।

मियं मम सलिलपानबुद्धिः। अद्यापि दूरत[1] एव सरः। तथाहि जलदेवतानूपुर-रवानुकारि[2] दूरेऽद्यापि कलहंस-विरुतमेतत्[3], अस्फुटानि[4] श्रूयन्ते सारसरसितानि, अयञ्च[5] विप्रकर्षादाशामुख-विसर्पण-विरलः सञ्चरति नलिनी-षण्डपरिमलः। दिवसस्येयमतिकष्टा[6] च दशा वर्त्तते। तथाहि रविरम्बरतलमध्यवर्त्ती स्फुरन्तमातपमनवरतमनल-धूलि-निकरमिव विकिरति करैः, अधिकामुपजनयति तृषम्[7]। आतप-[8]सन्तप्त-पांसु-पटल-दुर्गमा भूमिः[9], अतिप्रबल-पिपासावसन्नानि गन्तुमल्पमपि मे नालमङ्गकानि, अप्रभुरस्म्यात्मनः[10] सीदति मे हृदयम्, अन्धकारतामुपयाति चक्षुः, अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैव[11] उपपादयेत्।'

अद्यापीति। अद्यापि साम्प्रतमपीत्यर्थः, दूरत एव विप्रकर्षादेव सरस्तीरं सरोवरतटम्। तदेव निरूपयति—तथाहीति। जलदेवतानां जलाधिष्ठात्रीणां देवीनां नूपुराणां पादाङ्गदानां 'पादाङ्गदं तुलाकोटिमञ्जीरो नूपुरं स्त्रियाम्' इत्यमरः, यो रवो ध्वनिः तदनुकर्त्तु शीलं यस्य तत् तादृशम्, दूरे विप्रकर्षे अद्यापि इदानीमपि एतत् श्रूयमाणम्, कलहंसानां कादम्बानां विरुतं कूजितम्। अस्फुटानि अव्यक्तानि सारसानां लक्ष्मणानां रसितानि कूजितानि श्रूयन्ते आकर्ण्यन्ते। विप्रकर्षात् दूरात् आशामुखेषु दिगाननेषु नानादिक्ष्वित्यर्थः, विसर्पणेन प्रसरणेन विरलः स्वल्पः नलिनीषण्डानां कमलिनीवनानां परिमलः सौरभम्।

दिवसस्येति। दिवसस्य दिनस्य इयं पुरो दृश्यमाना अतिकष्टा अत्यन्तं क्लेशदायिनी दशा अवस्था वर्त्तते अस्ति मध्याह्नसमय इत्यर्थः। एतदेव दर्शयति—तथाहीत्यादिना। अम्बरतलस्य आकाशस्य मध्यवर्त्ती मध्यगामी रविः सूर्यः, अनवरतम् अविच्छिन्नं स्फुरन्तं देदीप्यमानम् आतपं तेजः अनलधूलयो वह्निकणिकाः तेषां निकरमिव समूहमिव करैः रश्मिभिः विकिरति क्षिपति। अत्रोपमालङ्कारः। अधिकाम् अत्यर्थां तृषां पिपासाम् उपजनयति सम्पादयति।

आतपेति। आतपेन रवितेजसा सन्तप्तैः उष्णैः पांसुपटलैः रजःसमूहैः दुर्गमा दुःखेन गन्तुं योग्या भूः मही। अतिप्रबलया अत्यधिकया पिपासया जलपानेच्छया अवसन्नानि खिन्नानि मे मम अङ्गकानि शरीरक्षुद्रावयवाः अल्पमपि किञ्चिदपि गन्तुं चलितुं चालं न समर्थानि। आत्मनः शरीरस्य अप्रभुः असमर्थः अस्मि भवामि स्वेच्छया सञ्चलनासमर्थोऽस्मीत्यर्थः। मे मम हृदयं सीदति सखेदं भवति। चक्षुर्नेत्रम् अन्धकारतां तिमिरताम् उपयाति प्राप्नोति। अपिशब्दः प्रश्ने, नामशब्दः सम्भावनायाम्। तथा च—

'अपिः सम्भावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये। यथा युक्तपदार्थे च कामचारक्रियासु च ॥' इति विश्वः।

'नाम कामे(कोपे)ऽभ्युपगमे विस्मये स्मरणेऽपि च। सम्भाव्यकुत्साप्राकाश्यविकल्पेष्वपि दृश्यते ॥' इति मेदिनी। खलः अमङ्गलकरणाद् दुर्जनः 'पिशुनो दुर्जनः खलः' इत्यमरः, विधिः विधाता अनिच्छतोऽपि अनभिलषितोऽपि मे मम मरणं मृत्युम् उपपादयेत् विदधेत्।

नहीं। अभी सरोवरका तट तो दूर ही प्रतीत होता है, क्योंकि जलदेवताके चरणनूपुरों (पायजेबों) की झनझनाहटके समान कलहंसोंकी ध्वनि अधिक दूर सुनाई देती है। सारसपक्षियोंके शब्द भी स्पष्टरूपमें सुनाई नहीं पड़ते हैं, अन्तर अधिक होनेसे दिशाओंमें विस्तृत हो जानेके कारण कमलोंकी गंध भी कम मात्रामें आती है; और दिनका यह समय अत्यधिक कष्टप्रद है, क्योंकि गगनतलके मध्यमें आया सूर्य अपनी रश्मियोंसे—अग्निस्फुलिङ्गके समान भभकती—धूप सभी स्थानोंमें निरन्तर फैल रहा है; धूल धूपसे गरम हो गई है; भूमिपर पैर नहीं रक्खा जाता; पिपासा और भी अधिक लगती है। अत्यधिक पिपासा (प्यास) से मैं खिन्न हो गया हूँ। मेरे हाथ पैर अब थोड़ा भी सरकनेके योग्य नहीं है। आत्मा अपने अधीनमें नहीं है। हृदय विदीर्ण होता जाता है। नेत्रोंके सामने अँधेरा छा रहा है। अच्छा हो कि विधाता मेरी अभिलाषाके विना ही इस समय प्राण ले ले।

१. दूर एव सरस्तीरम्। २. नूपुरानुकारि। ३. विरुतमेतम्। ४. एतानि चास्फुटानि। ५. 'अयञ्च' इति पाठः 'कचिन्नास्ति। ६. इयं कष्टा दशा, अतिकष्टा दशाः। ७. तृषाम्। ८. आतपस्पर्शसन्तप्त।''' ९. भूः। १०. अलमप्रभुर'''। ११. अद्य, अथ।

इत्येवं[1] चिन्तयत्येव मयि तस्मात् सरसो नातिदूरवर्त्तिनि[2] तपोवने जावालिर्नाम महातपा मुनिः प्रतिवसति स्म[3]। तत्तनयश्च हारीतनामा मुनि-कुमारकः[4] सनत्कुमार इव सर्वविद्यावदातचेताः, समानवयोभिरपरैस्तपोधन-कुमारकैरनुगम्यमानस्तेनैव पथा द्वितीय इव भगवान् विभावसुरतितेजस्वितया दुर्निरीक्ष्यमूर्त्तिः, उद्यतो दिवसकर-मण्डलादिवोत्कीर्णः, तडिद्भिरिव विरचितावयवः, तप्त-कनक-द्रवेणेव बहिरुपलिप्त-मूर्त्तिः, आपिशङ्गावदातया देह-प्रभया स्फुरन्त्या सबालातपमिव दिवसं सदावानलमिव वनमुपदर्शयन्, उत्तप्त-लौह-

---

इत्येवमिति। इत्येवं पूर्वोक्तविधिना मयि वैशम्पायने चिन्तयत्येव विचारयत्येव सति, तस्मात् पूर्वप्रतिपादितात् सरसः सरोवरात् अदूरवर्त्तिनि समीपस्थायिनि तपोवने तपस्विजनाधिष्ठितविपिने जावालिर्नाम जावालिसंज्ञकः महत् उग्रं तपो यस्य एतादृशो मुनिः तपोनिधिः प्रतिवसति स्म निवसति स्म।

तत्तनय इति। तस्य तपोनिधेः तनय आत्मजः 'आत्मजस्तनयः सूनुः' इत्यमरः, हारीत इति नाम अभिधेयं यस्य तादृशो मुनिकुमारकः तापसबालकः, तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत्' इत्यग्रेतनेन सम्बन्धः। तमेव सम्प्रति विशेषयति—सनत्कुमार इत्यादिना। सनतो ब्रह्मणः कुमार इति सनत्कुमारः प्रजापतेः पुत्र इत्यर्थः 'सनत्कुमारो वैधात्रः' यद्वा—सनत् सर्वस्मिन् समये कुमारः कौमारव्रतावलम्बी। उक्तञ्च पुराणे—'तथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम्। तस्मात् सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम्॥' स इव सर्वविद्यावदातचेताः निखिलविद्यानिर्मलहृदयाः। इह पूर्णोपमा। समानवयोभिः सवयोभिः अपरैः तदतिरिक्तैः तपोधनकुमारकैः तापसदारकैः अनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानः तेनैव पथा तेनैव वर्त्मना द्वितीय एतदपरः भगवान् ज्ञानवान् धर्मवान् वा,—'भगं श्रीयोनिवीर्येच्छाज्ञानवैराग्यकीर्त्तिषु। माहात्म्यैश्वर्ययत्नेषु धर्मे मोक्षेऽथ ना रवौ' इति मेदिनी। विभावसुरिव अग्निरिव अतितेजस्वितया अत्युत्कृष्टदीप्तिमत्तया,—'तेजो दीप्तौ प्रभावे च स्यात्पराक्रमरेतसोः' इति मेदिनी। दुर्निरीक्षया दुःखेन द्रष्टुं योग्या मूर्त्तिः स्वरूपं यस्य स तथोक्तः। विभावसुरग्निरिवेति द्रव्योत्प्रेक्षा। उद्यतः उदयं विदधतः दिवसकरमण्डलात् सूर्यबिम्बात् उत्कीर्ण इव टङ्केन रचयित्वा उद्धृत इव, तडिद्भिः सौदामिनीभिः विरचिता निर्मिता अवयवा अङ्गानि यस्य स इव, तप्तम् उष्णं यत् कनकं सुवर्णं तस्य द्रवेण रसेन बहिः सूत्रैरेव बहिः उपलिप्ता लिम्पिता मूर्त्तिः स्वरूपं यस्य स तादृशः। एते त्रयोऽपि क्रियोत्प्रेक्षालङ्काराः।

आपिशङ्गेति। स्फुरन्त्या देदीप्यमानया, आपिशङ्गा किञ्चित्पिङ्गलवर्णा चासौ अवदाता धवला चेति तया 'अवदातः सितो गौरो वलक्षो धवलोऽर्जुनः' इत्यमरः, देहप्रभया शरीकान्त्या, दिवसं तत्कालमित्यर्थः सबालातपमिव अभिनवसूर्यालोकयुक्तमिव वनं तद्विपिनं सदावानलमिव अरण्याग्निना युक्तमिव उपदर्शयन् प्रकटयन् जनानिति शेषः। इह सबालातपमिवेत्यत्र सदावानलमिवेत्यत्र च गुणोत्प्रेक्षा।

उत्तप्तेति। उत्तप्तम् उष्णीकृतं यल्लोहम् अश्मसारः,—'लोहोऽस्त्री शस्त्रकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी। अश्मसारः' इत्यमरः। तद्वत् लोहिनीनां रक्तवर्णानाम् अनेकानि विविधानि यानि तीर्थानि गङ्गादीनि तेषु अभिषेकेण स्नानेन पूतानां पवित्रीकृतानाम्, अंसस्थले भुजशिरःस्थाने अवलम्बिनीनाम् अवल-

---

मैं इस प्रकार विमर्श कर ही रहा था कि इतनेमें ही उस सरोवर (तालाब) से थोड़ी दूर तपोवनमें महातपस्वी जावालि मुनि निवास करते थे। उनका पुत्र हारीतने उसी सरोवरमें स्नान करनेके लिए आया। उसीकी अवस्थाके अन्य मुनिकुमार भी उसी मार्गसे उसके पीछे पीछे आ रहे थे। उसका अन्तःकरण, सनत्कुमारके समान समस्त विद्याओंके अध्ययन करनेसे निर्मल हो गया था। अत्यधिक तेजके कारण उसका स्वरूप देखा नहीं जा सकता था। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो दूसरा अग्निदेव हो। उदयकालीन सूर्यमण्डलमेंसे वह मानो निकाला गया था; विद्युतसे मानो उसके शरीरावयव निर्मित हुए थे; तपे हुए सुवर्णके रसका मानो उसके शरीर पर पालिस किया गया था। उसकी शरीर-प्रभा थोड़ी पीली और स्वच्छ चमकती थी। उससे वह ऐसा प्रतीत होता था जैसे नवीन धूपसे दिन और दावाग्निसे जंगल प्रकाश-मान हो। तपाए हुए लोहेके समान रक्त और

---

१. एवं। २. अदूरवर्त्तिनि। ३. 'स्म' इति क्वचित् पाठो नास्ति। ४. तापसकुमारकः। ५. समवयोभिः। ६. कुमारैः। ७. रचितावयवः। ८. शिङ्गावदातया।

लोहिनीनामनेक-तीर्थाभिषेकपूतानामंसस्थलावलम्बिनीनां जटानां निकरेणोपेतः, स्तम्भित-शिखा-कलापः, खाण्डववन-दिधक्षया कृत-कपट-बटु-वेश इव भगवान् पावकः, तपोवन-देवतानूपुरानुकारिणा धर्म्मशासन-कटकेनेव स्फाटिकेनाक्षवलयेन दक्षिणश्रवणावलम्बिना विराजमानः, सकल-विषयोपभोग-निवृत्त्यर्थमुपपादितेन ललाटपट्टके त्रिसत्येनेव भस्म-त्रिपुण्ड्रकेणालङ्कृतः गगन-गमनोन्मुखवलाकानुकारिणा स्वर्गमार्गमिव दर्शयता सततमुद्-

---

म्बमानानां जटानां सटानां 'व्रतिनस्तु जटा सटा' इत्यमरः, निकरेण समूहेन उपेतः सहितः। उत्तप्तलोह-लोहिनीनामित्यत्र लुप्तोपमा।

स्तम्भितेति। स्तम्भितो बद्धः शिखानां चूडानां कलापः समूहो येन स तथोक्तः—'शिखा शाखा बर्हिचूडालाङ्गलिक्यग्रमात्रके। चूडामात्रे शिफायां च ज्वालायां प्रपदेऽपि च॥' इति मेदिनी। खाण्डववनस्य विविधमहौषधिपूर्णखाण्डवाख्यविपिनस्य दिधक्षया दग्धुमिच्छया कृतो विहितः कपटेन व्याजेन वटुवेशो द्विजरूपं येन स तादृशः, भगवान् माहात्म्यवान् पावको वह्निरिव दीप्तिस्वरूप इत्यर्थः। इहोपमा।

अत्रायं महाभारतीयेतिहासः—पुरा खलु श्वेतकिसंज्ञको भूपतिः द्वादशसांवत्सारिकं यज्ञमकृत। तत्र निरन्तरहविर्भक्षणेनाग्नेः मन्दाग्निरुत्पन्ना, ततश्च तद्व्यतिकर्तुं स स्वगुराज्ञया बहुविधमहौषधियुक्तं खाण्डववनं जिघत्सुर्द्विजरूपेण श्रीकृष्णस्य पार्थस्य च साहाय्यमाश्रित्य तद्विपिनं भस्मीचकारेति।

तपोवनेति। धर्मशासनस्य गुरुकृतविधिनिषेधादिरूपधर्मादेशस्य कटकं त्राणाय परिधिरूपेण वर्त्तमानं सैन्यं तेनेव 'कटकस्त्वद्रिनितम्बे वाहुभूषणे सेनायां राजधान्यां च' इति हैमः, भूपतेस्त्राणाय दुर्गाद्बहिः परिधिरूपेण सैन्यं यथा तिष्ठति तथा सव्येतरश्रोत्रे गुरुभिर्निरूपितस्य विधिनिषेधरूपधर्मस्य त्राणाय सैन्येनेव वलयाकारजपमालिकया विद्यमानमित्याशयः। स्फाटिकेन स्फटिकमणिरचितेन दक्षिणश्रवणावलम्बिना सव्येतरश्रोत्रस्थायिना, अक्षवलयेन वलयाकारजपमालिकया विराजमानः शोभमानः। इह धर्मशासनकटकेनेवेत्यत्र आर्थी उपमा, जात्युत्प्रेक्षा च, अनयोर्हि अङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

सकलेति। सकलानां समस्तानां विषयाणां स्रक्चन्दनरमणीप्रभृतीनां भोग्यवस्तूनाम् उपभोगनिवृत्त्यर्थम् उपभोगोपरमार्थम् उपपादितेन विहितेन, त्रयाणां सत्यानां शपथानां समाहार इति त्रिसत्यं तेनेव, नाहं विषयानुरक्तो भविष्यामि, नाहं विषयानुरक्तो भविष्यामि, नाहं विषयानुरक्तो भविष्यामि इति शपथत्रयलक्षणेनेत्यर्थः 'सत्यं कृते च शपथे तथ्ये च त्रिषु तद्वति' इति मेदिनी। ललाटपट्टके भालफलके भस्मत्रिपुण्ड्रकेण विभूतित्रितिलकेन भस्मनस्तिर्यग्रेखात्रयेणेत्यर्थः, अलङ्कृतो मण्डितः। इह त्रिसत्येनेवेति गुणोत्प्रेक्षा।

गगनेति। गगनगमनाय आकाशोड्डयनाय उन्मुखी ऊर्ध्वानना या वलाका विसकण्ठिका तामनुकर्त्तुं शीलं यस्य तेन तादृशेन 'वलाका विसकण्ठिका' इत्यमरः, स्वर्गमार्गं दिवौकसपन्थानं दर्शयतेव प्रकटयतेव उद्ग्रीवत्वादित्याशयः। सततं निरन्तरं उद्ग्रीवेण उन्नतकन्धरेण एवंविधेन स्फटिकमणिकमण्डलुना स्फटिकरत्नरचितकुण्ड्या 'अत्री कमण्डलुः कुण्डी' इत्यमरः, अध्यासितम् अवलम्बितं वामकरतलं सव्यहस्ततलं यस्य स तादृशः। इह गगनगमनोन्मुखवलाकानुकारिणेत्यत्रार्थी उपमा, दर्शयतेवेति क्रियोत्प्रेक्षा च, अनयोश्चाङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

अधिकतर तीर्थोंके स्नानसे पवित्र हुई उसकी जटा कंधेपर लटक रही थीं; शिखा (चोटी) को उसने बाँध रक्खा था। खाण्डव-वन भस्म करनेकी अभिलाषासे छल-पूर्वक ब्राह्मणका स्वरूप धारण करनेवाले अग्निदेवके समान वह देखनेमें आ रहा था। तपोवनके अधिष्ठात्री देवीके नूपुर (पायजेब) और धर्मोपदेशोंके समूहके समान स्फटिक रुद्राक्षकी माला उसके दाहिने कानमें लटक रही थी; ललाटमें भस्मका त्रिपुण्ड्र ऐसा प्रतीत होता था मानो समस्त सांसारिक भोगोंसे निवृत्ति पानेके लिये उसने त्रिसत्य (कायिक, वाचिक और मानसिक) का चिह्न बना लिया हो; आकाशमें उड़नेके लिए ऊपर देखते बगुलेके समान उसकी ग्रीवा (गर्दन) उठी हुई थी,

---

१. जटावलीनां। २. पट्टुवेष इव। ३. अनुलम्बिना, विलम्बिना। ४. निवृत्तिमुप,। ५. उत्पादितेन। ६. ललटापट्टे। ७. त्रिसत्यकेन। ८. अनुकारिस्वर्गमार्गमिव।

ग्रीवेण स्फटिक-मणि-कमण्डलुनाध्यासित-वामकुरतलः, स्कन्धदेशावलम्बिना कृष्णाजिनेन नीलपाण्डुभासा तपस्तृष्णानिपीतेनान्तर्निष्पतता धूम-पटलेनेव परीत-मूर्त्तिः, अभिनव-विससूत्र-निर्मितेनेव परिलघुतया पवनलोलेन निर्म्मांस-विरलपार्श्वास्थिपञ्जरमिव गणयता वामांसावलम्बिना यज्ञोपवीतेनोद्भासमानः, देवतार्चनार्थमागृहीत-वनलता-कुसुम-परिपूर्ण-पर्णपुट-सनाथ-शिखरेणाषाढदण्डेन व्यापृत-सव्येतर-पाणिः, विषाण-शिखरोत्खातामुद्वहता स्नानमृदमुपजात-परिचयेन नीवारमुष्टि-संवर्द्धितेन कुश-कुसुम-लतायास्यमान-लोल-दृष्टिना तपोवनमृगेणानुगम्यमानः, विटप इव कोमल-वल्कलावृत-शरीरः, गिरिरिव समेखलः, राहु-

स्कन्धेति । तपस्तृष्णया तपो मे वृद्धिं प्राप्नोत्वितीच्छया निपीतेन निगीलितेन, पुनरन्तर्निष्पतता जठरमध्यान्निःसरता धूमपटलेनेव धूमसमुदायेनेव विद्यमानेन, स्कन्धदेशावलम्बिना बाहुमूलभागाश्रितवता, नीला अश्वेता पाण्डुः श्वेता च भा कान्तिर्यस्य तेन तादृशेन कृष्णाजिनेन कृष्णसारमृगचर्मणा परीतमूर्त्तिः व्याप्तशरीरः । धूमपटलेनेवेति जात्युत्प्रेक्षा ।

अभीति । अभिनवैः प्रत्यग्रैः विससूत्रैः मृणालतन्तुभिः 'मृणालं विसमब्जादि' इत्यमरः, निर्मितेनेव कृतेनेव अत्यन्तसूक्ष्मत्वादित्याशयः । परिलघुतया अत्यन्तभारशून्यत्वेन अणुतया पवनेन वायुना लोलेन चञ्चलेन, अत एव निर्मांसं प्रायेण व्रतादिवशात् पिशितशून्यं सुतरां विरलम् असङ्कीर्णं पार्थक्येन दृश्यमानं यत् पार्श्वास्थिपञ्जरं पार्श्वगतास्थिनिकरः, तद् गणयतेव तत्संख्यां विदधतेव, वामे सव्ये अंसे स्कन्धे अवलम्बिना अवस्थानशीलेन यज्ञोपवीतेन यज्ञसूत्रेण उद्भासमानः देदीप्यमानः । इह 'अभिनवविससूत्र-निर्मितेनेव' इत्यत्र 'गणयतेव' इत्यत्र च क्रियोत्प्रेक्षा, तयोश्च परस्परं नैरपेक्ष्येण स्थितत्वात् संसृष्टिरलङ्कारः ।

देवतेति । देवतानां परमेश्वराणाम् अर्चनार्थं पूजनार्थम् आगृहीतैः आत्तैः वनलताकुसुमानि अरण्यव-ल्लिप्रसूनानि तैः परिपूर्णं भृतं यत् पर्णपुटं तेन सनाथं युक्तं शिखरम् ऊर्ध्वभागो यस्य स तेन तादृशेन, आषाढदण्डेन पलाशतरुरचितदण्डेन 'पलाशो दण्ड आषाढः' इत्यमरः, व्यापृतो व्यापारयुक्तः । सव्येतरो दक्षिणः पाणिः करो यस्य स तादृशः ।

विषाणेति । विषाणशिखरेण शृङ्गाग्रेण उत्खाताम् उत्खनितां स्नानमृदं हारीतस्यैवाप्लवनमृत्तिकाम् उद्वहता विषाणशिखरेणैव धारयता, उपजातः समुत्पन्नः परिचयः अहिंसाजनकत्वेन विशेषज्ञानं यस्य तेन तादृशेन, नीवारमुष्टिभिः मुष्टिपरिमितवनव्रीहिभिः प्रतिदिनं तदर्थत्यागैरित्यर्थः, संवर्द्धितः वृद्धिं प्रापितः तेन तादृशेन, कुशकुसुमलताभिः पार्श्वद्वयस्थायिनीभिः दर्भपुष्पव्रततीभिः आयास्यमाने संस्पर्शात् खेदं प्राप्यमाणे अत एव लोले चपले दृष्टी लोचने यस्य तेन तादृशेन, तपोवनमृगेण मुन्याश्रमहरिणा अनुगम्य-मानः अनुव्रज्यमानः ।

विटप इति । विटप इव तरुशाखेव, कोमलेन मृदुलत्वादेव परिधानयोग्येनेत्याशयः, अपरत्र मूलादि-भागात् कोमलेन त्वचा चोचेनआवृतम् आच्छादितं शरीरं वपुर्यस्य स तादृशः । गिरिः अचलः स इव, मेखलया मुञ्जरचितकटिसूत्रेण मध्यदेशेन च सह विद्यत इति समेखलः । राहुः विधुन्तुद इव 'तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः' इत्यमरः, असकृत अनेकशः आस्वादितः सोमयागसमये पीतः पूर्णिमासु ग्रस्तश्च सोमः

जिससे वह ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वर्गका मार्ग देखता हो । स्फटिक मणिका कमण्डल उसके बायें हाथमें था; कंधे पर स्थित कृष्णमृग-चर्म ऐसा लगता था मानो तप करते समय पीये गए तपके धूमने बाहर निकलकर उसके शरीरको घेर लिया हो; उसके बायें कंधे पर यज्ञोपवीत (जनेऊ) लटका हुआ था जो वायुसे आन्दोलित हो रहा था; मांसरहित पार्श्वभागकी हड्डियोंको मानो अलग-अलग गिन रहा था और इतना सूक्ष्म (महीन) था कि अभिनव मृणाल-सूत्रका निर्मित हुआ प्रतीत होता था । पूजाके लिए एकत्रित किये वनलताओंके पुष्पोंसे भरपूर पत्तोंके दोनेको पलाशके दण्डके अग्रभाग (नोंक) पर बाँधकर उसने दाहिने हाथमें थाम लिया था । उसके पीछे पीछे चंचल आँखोंवाला तपोवनका आन्दोलित (हिला हुआ) मृग, कुश, लता और पुष्पोंको देखता देखता आ रहा था । मृगके सींगपर खोदी हुई स्नान-मृत्तिका लगी हुई थी और मुष्टिक-मुष्टिक (मुठ्ठी मुठ्ठी) भर नीवारसे उसका पालन किया गया था । वृक्षके समान ऋषि-कुमारका शरीर मृदुल वल्कलसे ढँका हुआ था

१. 'मणि' इति क्वचित् पाठो नास्ति । २. नीलया । ३. अन्तरपगच्छता, अन्तर्निवसता । ४. पार्श्व-पञ्जरमिव । ५. कुसुमपूर्णं । ६. विषाणोत्खाताम् । ७. उपास्यमान । ८. अनुयातः । ९. वल्कावृत''' ।

रिवासकृदास्वादित-सोमः, पद्मनिकर इव दिवसकर-मरीचिपः, नदी-तट-तरुरिव सतत-जल-क्षालन-विमलजटः, करि-करभ इव विकच-कुमुद-दल-शकलसित-दशनः, द्रौणिरिव कृपानुगतः, नक्षत्रराशिरिव चित्रमृग-कृत्तिकाश्लेषोपशोभितः, घर्म्मकाल-दिवस इव क्षयितदोषः, जलधर समय इव प्रशमितरजः प्रसरः, वरुण इव कृतोदवासः, हरिरिवापनीत-

सोमलतारसः इन्दुश्च येन स तादृशः 'सोमस्त्वोषधीतद्रसेन्दुषु' इति हैमः, एतेनात्यन्तसोमयागविधायित्वं व्यञ्जितम्। पद्मानां पङ्कजानां निकरः समूह इव, दिवसकरस्य सूर्यस्य मरीचीन् किरणान् पिवति ग्रीष्मर्तौ पञ्चाग्निसाधनात् ऊर्ध्ववदनः सन् ग्रसते अपरत्र पूर्णप्रस्फुटनात् स्पृशतीति मरीचिपः। नद्याः सरितः तटं तीरं तस्मिन् तरुः वृक्षः तद्वदिव, सततम् अनवरतं त्रिसन्ध्यं जले सलिले क्षालनम् अवगाहनं तेन विमला निर्मला रजोरहिता इत्यर्थः, जटा सटा यस्य स तादृशः, अन्यत्र सततं निरन्तरं जलक्षालनेन स्रोतः-सलिलप्रक्षालनेन विमला मृत्तिकाहीना जटा मूलप्रदेशो यस्य स तादृशः। करिणां गजानां कलभः त्रिंशद्वर्षीयबालः तद्वदिव, विकचं विकसितं यत् कुमुदं कैरवं तस्य दलशकलवत् पर्णखण्डवत् सिताः स्वच्छाः दशना दन्ता दन्तौ च यस्य स तादृशः। इदं पद्यद्वयेऽपि तुल्यम्। द्रोणस्य द्रोणाचार्यस्यापत्यं द्रौणिः अश्वत्थामा तद्वदिव, कृपाम् अनुकम्पाम् अनुगतः प्राप्तः सर्वस्य दुःखत्राणे दयायुक्त इत्यर्थः 'कृपा दयाऽनुकम्पा स्यात्' इत्यमरः, अन्यत्र कृपः कृपाचार्यः तेन अनुगतः सङ्ग्रामादौ सहितः। नक्षत्राणाम् ऋक्षाणां राशिः निकरः तद्वदिव, चित्रमृगस्य विचित्रहरिणस्य कृष्णसारस्य या कृत्तिका चर्म तस्य आश्लेषेण सम्बन्धेन धारणेन उपशोभितः शोभां प्राप्तः, अपरत्र चित्रं चित्रासंज्ञकंचतुर्दशं नक्षत्रम्, मृगं मृगशिराख्यं पञ्चमं नक्षत्रम्, कृत्तिका तदाख्यं तृतीयं नक्षत्रम्, अश्लेषा एतत्संज्ञकं नवमं नक्षत्रम्, तैरुपशोभितः। घर्मकालस्य ग्रीष्मसमयस्य दिवसो दिनं तद्वदिव, क्षयिताः नाशं प्रापिताः दोषाः कामक्रोधादयो यस्य स तादृशः, अपरत्र क्षयिता समुत्पादितह्रासा दोषा रात्रिर्यस्य स तादृशः 'दोषा रात्रिमुखे रात्रौ' इति विश्वः। जलधराणां मेघानां समयः कालः प्रावृट्काल इत्यर्थः, तद्वदिव, प्रशमितः चित्तवृत्तिनिरोधाभ्यासेन निवारितः रजःप्रसरः प्रवर्त्तकगुणव्यापारः कामक्रोधादिर्येन स तादृशः, अपरत्र प्रशमितः वर्षणेन निवारितः रजःप्रसरः पांशुविस्तारो येन यत्र वा स तादृशः। वरुणः प्रचेताः तद्वदिव 'प्रचेता वरुणः पाशी' इत्यमरः, कृतो विहित उदके सलिले वासो व्रतविशेषः जलदेवतात्वेनावस्थानञ्च येन स तादृशः 'उदकस्योदः संज्ञायाम्' इति पा० सूत्रेणोदादेशः। हरिर्वासुदेव इव, अपनीतं दूरीकृतं नरकभयं नरकप्राप्तिभीतिः तदाख्यासुरभीतिश्च येन स तादृशः, एकत्र निरन्तरतपोऽर्जनात् अपरत्र तन्नाशादित्याशयः। प्रदोषो रजनीमुखं तस्य आरम्भः प्राक् समयः तद्वदिव, 'प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः, सन्ध्यावत् दिवसरजनिसन्धिवत् पिङ्गले पीतवर्णे तारके कनीनिके यस्य स तादृशः, एतद्धि महापुरुषस्य लक्षणम्, तदुक्तं सामुद्रिकशास्त्रे—'क्षुद्रोऽपि चक्रवर्ती स्यात् पीततारक-

(वृक्ष छालसे आच्छादित रहता है, हारीतके पास छालके कपड़े थे) पर्वतके समान वह मेखला-युक्त था (पर्वत अद्रि-नितम्बसे युक्त होता है, हारीत कटि-सूत्र (कमरकी डोरीयुक्त था)। राहुके समान वह बार-बार सोमरस का आस्वाद लेता था (राहु चन्द्रके अमृतका स्वाद लेता है, हारीत सोमलताका रसपान करता था)। कमल-समूहकी तरह वह सूर्य-रश्मियोंको पीता था (कमल सूर्यकी रश्मियोंको ग्रहण करते हैं, हारीत पञ्चाग्नि साधनं यज्ञमें सूर्य-रश्मियाँ पीता था)। नदी-तटके वृक्षोंकी तरह उसकी जटा सर्वदा जलमें प्रक्षालित (धुल) हो जानेसे स्वच्छ हो गई थी (वृक्षकी जड़ें धुल जाती हैं, हारीतकी लटें धुल गई थीं)। हाथीके बच्चेकी तरह उसके दाँत प्रस्फुटित कुमुद-पत्रके टुकड़ेके समान शुभ्रवर्ण थे। अश्वत्थामाके समान वह कृपानुगत था (अश्वत्थामा कृपाचार्यके साथ था; हारीत दयालु था)। नक्षत्रसमूहके समान वह चित्र-मृग कृत्तिकाश्लेषसे शोभित था (नक्षत्रोंमें चित्रा, मृगशिरा, कृत्तिका और अश्लेषा नक्षत्र हैं, हारीत चितकबरे मृगका चर्म धारण किया था)। ग्रीष्मऋतुके दिनके समान वह क्षयित-बहुदोष था (गर्मीमें रात छोटी हो जाती है, हारीतने अधिकतर रागद्वेषादि दोषोंको दूर कर दिया था)। वर्षाकालके समान उसमें रजःप्रसर नहीं होता था (वर्षासमयमें धूल नहीं उड़ती, हारीतमें योगाभ्यासद्वारा कामक्रोधादि रजोगुण प्रशमित हो गए थे)। वरुणके समान वह उद्वास करता था (वरुण जलमें निवास करता है, हारीत जलमें प्रविष्ट होकर व्रत करता था)। विष्णुके समान उसने नरक-भय का निवारण किया था (श्रीकृष्णने नरकासुरसे जो भय था उसे वधकर दूर किया था, हारीतने अपनी तपस्या-

१. दिनकर···। २. विरल···। ३. कलभः। ४. विश्लेपाः। ५. क्षपितबहुदोषः।

नरकभयः, प्रदोषारम्भ इव सन्ध्या-पिङ्गल-तारकः, प्रभातकाल इव बालातप-कपिलः, रविरथ इव दृढनियमिताक्षचक्रः, सुराजेव निगूढ-मन्त्रसाधन-क्षपित-विग्रहः, जलधिरिव कराल-शङ्खमण्डलावर्त्त-नाभिगर्त्तः, भगीरथ इव दृष्ट-गङ्गावतारः, मधुकर इवासकृदनुभूत-पुष्कर-वनवासः, वनचरोऽपि कृतमहालयप्रवेशः, असंयतोऽपि मोक्षार्थी, सामप्रयोगपरोऽपि

चक्षुषी' । अपरत्र सन्ध्यया सन्ध्यासमयवर्णेन पिङ्गलाः पीताः तारका उडूनि यस्मिन् स तादृशः । प्रभातं प्रत्यूषः तस्य कालः समयः तद्वदिव, बालातपवत् अभिनवदिनकरालोकवत् कपिलः पीतरक्तवर्णः, अपरत्र बालातपेन कपिलः । रवेः दिनाधिपस्य यो रथः स्यन्दनः तद्वदिव, दृढं यथा स्यात्तथा नियमितं निगृहीतम् अक्षाणाम् इन्द्रियाणां चक्रं समूहो येन स तादृशः, परत्र दृढं नियमितानि निबद्धानि अक्षो मध्यदण्डः स्यन्दनावयवश्च यस्मिन् स तादृशः । सुष्ठु सुन्दरो यो राजा स्वकर्मकुशलो भूपतिः तद्वदिव, निगूढम् अतिगुप्तं यत् मन्त्रसाधनम् इष्टदेवतामन्त्राराधनं तेन क्षपितः व्रतश्रमाद्याधिक्यात् कृशीकृतः विग्रहो देहो येन स तादृशः, भूपतिपक्षे तु—निगूढेन अतिगुप्तेन मन्त्रसाधनेन रहस्यालोचनेन क्षपितः क्षयं प्रापितः विग्रहः शत्रुजनितक्लेशः संग्राम इत्यर्थः येन स तादृशः । जलधिः समुद्रः स इव, करालो दन्तुर उच्चनीचो यः शङ्खः तस्य मण्डलावर्त्तवत् मण्डलसदृशावर्त्तवत् नाभिगर्तो यस्य स तादृशः, समुद्रपक्षे तु—करालशङ्खः महच्छङ्खः मण्डलावर्तः मण्डलसदृशेन जलावर्तश्च नाभिगर्त इव नाभिश्वभ्र इव यस्मिन् स तादृशः 'गर्तावटौ भुवि श्वभ्रे' इत्यमरः । भगीरथः सगरप्रपौत्रः स इव, दृष्टः अवलोकितः गङ्गाया जाह्नव्या अवतार अवतरणभूमिः सुरालयान्निष्पतनञ्च येन स तादृशः । भ्रमरो मधुकरः स इव, असकृत् बहुशः अनुभूतः तपस्यार्थम् अनुभवविषयीकृतः, पुष्करे तत्संज्ञकतीर्थे वने विपिने च वासः स्थितिः येन स तादृशः, अपरत्र मधुपानायानेकशोऽनुभूतः पुष्करवने पङ्कजवने वासो येन स तादृशः । इह 'विटप इव' इत्यारभ्य 'भ्रमर इव' इत्यन्तं यावत् श्लेषोपमेति केचित् । दर्पणकारोक्तदिशा पूर्णोपमालङ्कार इति विभावनीयम् ।

वनचर इति । वने विपिने चरतीति वनचरः वनवासी एतादृशः सन्नपि कृतो विहितो महालयेषु उच्चैस्तरभवनेषु प्रवेशो येन स तादृश इति विरोधः, कृतचित्तवृत्तिनिरोधाभ्यासेन सम्पादितो महालये परमात्मनि प्रवेशः प्रत्यक्षज्ञानविषयता येन स तादृश इति तत्परिहारः 'महालयो विहारे स्यात् तीर्थे च परमात्मनि' इति मेदिनी ।

असंयत इति । असंयतः धारणाध्यानसमाधिरहितोऽपि मोक्षार्थी संसारप्रपञ्चबन्धनासम्बन्धार्थी इति विरोधः धारणाध्यानसमाधीनामभावे मोक्षासम्भवादित्याशयः । असंयतोऽपि तत्समये संयमविरतोऽपि मोक्षार्थी भविष्यत्काले संयमाश्रयणान्मोक्षाभिलाषीत्यर्थः । मोक्षप्राप्तिर्हि संयमेनैव भवतीति सिद्धान्तः । तथा च पातञ्जलयोगदर्शने—'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' 'तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः' 'त्रयमेकत्र संयमः' इत्युक्तम् ।

सामेति । साम प्रथमोपायसान्त्वनं तत्प्रयोगपरोऽपि तदनुष्ठानपरायणोऽपि सततं निरन्तरम् अवल-

द्वारा नरक जानेका भय दूर कर दिया था)। रात्रिके आरंभके समान उसके सन्ध्या-पिंगल थे (रात्रिके आरंभमें तारे सन्ध्यासे पिंगल होते हैं, हारीतके आँखोंकी कनीनिकाएँ (पुतलियाँ) सन्ध्याके समान पिंगल थीं)। प्रातःकालकी तरह वह बालातप कपिल था (प्रातःकाल अभिनव आतप—धूपसे कपिल होता है; हारीत बालातपके समान कपिल था)। सूर्य-रथके समान उसका अक्ष-चक्र नियमित था (सूर्यके रथके पहिये और चक्र दृढ हैं, हारीतके अक्ष-चक्र—इन्द्रियसमूह अपने वशमें थे)। बुद्धिमान राजाकी तरह उसने गूढ़मन्त्र-साधनसे विग्रहका क्षय किया था (राजा गुप्त मन्त्रणाओंसे युद्ध नहीं होने देता है, हारीत गुप्त इष्टमन्त्रोंकी उपासनासे शरीरको क्षीण बना लिया था)। समुद्रके समान वह विकराल-शंखमण्डल आवर्त्त-गर्त्त था (समुद्र अधिकतर शंख तथा जल-भ्रमरसे युक्त—मनुष्यके नाभिके समान—गड्ढोंवाला है, हारीतके कान और ललाटके मध्यका स्थान मध्यमें नीची तथा चारोओर उन्नत थी)। भगीरथके समान उसने गंगावतारका दर्शन किया था (भगीरथने अपने तपसे स्वर्गलोकसे भूलोकमें उतरती हुई गंगाको देखा था, हारीतने गंगावतार-तीर्थस्थान—हरिद्वारको देखा था)। भ्रमरोंके समान वह बार-बार पुष्कर वनमें वास करता था (भ्रमर मधुपान करनेके लिए कमलवनमें

१. पिशङ्ग''' । २. नियमिताक्षचक्रः, दृढसंयमिता''' । ३. क्षपित''' । ४. जलनिधिरिव । ५. आवर्त्तगर्त्तः । ६. असकृद्दृष्ट''' । ७. भ्रमरः ।

सततावलम्बितदण्डः, सुप्तोऽपि प्रबुद्धः, सन्निहितनेत्रद्वयोऽपि परित्यक्तवामलोचनस्तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत्।

प्रायेणाकारण-मित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च[1] सदा खलु भवन्ति सतां चेतांसि। यतः स मां तदवस्थमालोक्य समुपजातकरुणः[2] समीपवर्तिनं[3]मृषिकुमारकमन्यतममब्रवीत्—'अयं कथमपि शुक-शिशुरसञ्जात-पक्षपुट एव तरुशिखरादस्मात् परिच्युतः। श्येन-मुख-परिभ्रष्टेन वाऽनेन[4] भवितव्यम्, तथा ह्यस्यो[5]ल्पशेषं जीवितम्, अयमामीलित-लोचनो मुहुर्मुहुरत्युल्वणं

स्बितः आश्रितः दण्डः तुरीयोपायो येन स इति विरोधः, साम एतत्संज्ञकतृतीयवेदः तत्प्रयोगपरोऽपि सततालम्बितयष्टिक इति तत्परिहारः।

सुप्त इति। सुप्तो निद्रितोऽपि प्रबुद्धः कृतजागरण इति विरोधः, सुप्तः शयनावस्थावत् सांसारिकज्ञानरहितोऽपि प्रबुद्धः 'सर्वं खल्विदं ब्रह्मे'ति परमात्मविषयकोत्कृष्टतत्त्वालोचक इति तत्परिहारः। अत्र भानुचन्द्रस्तु—सुष्ठु शोभना प्ताः = जटा यस्येति विग्रहे परिहारं प्रदर्श्य 'प्ता' इत्यस्य जटायां प्रयोगे प्राचीनपद्यमुदाजहार। तद्यथा—

'राजा राजार्चिताङ्घ्रेरनुपचितकलो यस्य चूडामणित्वं
नागा नागात्मजार्धं नभसितधवलं यद्वपुर्भूषयन्ति।
मा रामा रागिणी भून्मतिरिति यमिनां येन वोऽदाहि मारः
स प्ताः सप्ताश्वनुन्नारुणकिरणनिभाः पातु बिभ्रत्त्रिनेत्रः॥' इति।

श्रृङ्गारतिलकटीकास्थपद्यमिदम्।

सन्निहितेति। सन्निहितं सम्यग्विधिना वदने स्थापितं नेत्रद्वयं लोचनयुगलं यस्य तथोक्तः सन्नपि, परित्यक्तं दूरीकृतं वामं दक्षिणेतरं लोचनं नयनं येन स इति विरोधः, परित्यक्ता वामलोचना रमणी तत्सम्बन्ध इत्यर्थः येन स तथोक्तः ब्रह्मचर्याश्रयणादित्याशयः, इति तत्परिहारः। तदेव पम्पासंज्ञकं कमलसरः पङ्कजमयसरोवरं सिस्नासुः स्नातुमिच्छुः सन् उपागमत् प्राप्तवान्।

प्रायेणेति। प्रायेण बाहुल्येन अकारणमित्राणि कारणाभावेन स्नेहकारीणि अतिकरुणार्द्राणि अतिशयपरक्लेशदूरीकरणेच्छया क्लिन्नानि, खलु निश्चयेन सदा सर्वस्मिन् समये सतां साधूनां चेतांसि हृदयानि भवन्ति। यतः यस्माद्धेतोः स जाबालितनयो हारीतमाना तदवस्थं विवृतपूर्वक्लेशदशापन्नं मां वैशम्पायनम् आलोक्य दृष्ट्वा समुपजाता समुत्पन्ना करुणा दया यस्यैतादृशः समीपवर्तिनं निकटस्थायिनम् अन्यतमं बहुषु कमप्येकम् ऋषिकुमारकं मुनितनयम् अब्रवीत् अवोचत्।

अयमिति। अयं पुरो दृश्यमानः शुकशिशुः कीरशावकः कथमपि महता क्लेशेन असंजातपक्षपुट एव असमुत्पन्न पतत्रपुट एव अस्मात् प्रत्यक्षात् तरुशिखरात् वृक्षप्रदेशात् परिच्युतो निपतितः। वा अथवा अनेन शुकशिशुना श्येनमुखपरिभ्रष्टेन सिञ्चानकवदननिपतितेन भवितव्यम्। तदेवोपपादयति—तथाहीति। अतिदवीयः अत्यन्तदूरः तस्य भावस्तया तादृश्या अस्य कीरशावकस्य अल्पशेषं किञ्चिदवशिष्टं जीवितं जीवनम्। अयम् आमीलितलोचनः सङ्कुचितनेत्रः मुहुर्मुहुः अनेकशः अत्युल्वणं नितान्तदीर्घं यथा स्यात्तथा

रहते हैं, हारीत तपस्याके लिए पुष्करतीर्थ और महारण्यमें रहता था)। वनचर होनेपर भी उसने महालय (महल, परमात्मसाक्षात्कारके लिए समाधि) में प्रवेश किया था। असंयत (संयम-हीन, संसारसे विरक्त) होनेपर भी वह मोक्षकी अभिलाषा रखता था। साम (साम उपाय, साम-वेद) प्रयोग करता हुआ भी सर्वदा दण्ड (दण्ड उपाय, लकड़ी) ग्रहण करता था। निद्रा-वश होनेपर भी वह प्रबुद्ध (जागता, बाह्य-ज्ञानरहित ज्ञानी) बना रहता था और दो आँखें होनेपर भी उसने वामलोचन (बायीं आँख, स्त्री) का परित्याग किया था।

सन्तों का चित्त प्रायः निष्कारण ही प्रीति करनेवाला और दयासे आर्द्र होता है, क्योंकि जब ऋषिकुमार ने मुझे ऐसी अवस्थामें देखा तब उसे करुणा आई और उसने अपने पास खड़े एक मुनि-कुमारसे कहा—इस तोतेके बच्चेका पंख तो अभी निकले नहीं हैं, किन्तु न जाने यह किस प्रकार इस वृक्षके शिखर परसे या बाजके मुखमेंसे नीचे गिर पड़ा है क्योंकि दूरसे गिरनेके कारण इसमें अब थोड़ा ही प्राण अवशिष्ट है; नेत्र बन्द हो रहे हैं;

१. च सदा भवन्ति सतां चेतांसि, सतां खलु भवन्ति सदा चेतांसि, इति क्वचिदुपलभ्यते। २. दयः। ३. समीपतरवर्तिनम्। ४. इह 'प्रायः' इत्यधिकः पाठः। ५. तथाहि अतिदवीयस्तया प्रपातस्यावशेषजीवितः।

श्वसिति, मुहुर्मुहुर्मुखेन पतति, मुहुर्मुहुश्चञ्चुपुटं विवृणोति, न शक्नोति शिरोधरां धारयितुम् । तदेहि यावदेवायमसुभिर्न वियुज्यते तावदेव गृहाणैनम् अवतारय सलिलसमीपम्' ।इत्यभिधाय तेन मां सरस्तीरमनायत् ।

उपसृत्य च जल-समीपमेकदेश-निहित-दण्ड-कमण्डलुरादाय स्वयं मां मुक्तप्रयत्नम् उत्तानितं-मुखम् अंगुल्या कतिचित् सलिल-विन्दूनपाययत् । अम्भः क्षोदकृतसेकञ्च समुपजातप्रज्ञम् उपतट-प्ररूढ-नलिनी-पलाशस्य जलशिशिरायां छायायां निधाय यथासमुचितमकरोत् स्नानविधिम् । अभिषेकावसाने चानेकप्राणायामपूतोऽपि जपन्नघमर्षणानि प्रत्यग्रभग्नै-

श्वसिति प्राणिति, मुहुर्मुहुः वारम्वारं मुखेन वदनेन पतति परिच्यवति, चञ्चुपुटं त्रोटीपुटं विवृणोति व्याददाति, शिरोधरां ग्रीवां धारयितुं सारल्येन स्थापयितुं न शक्नोति न समर्थो भवति । तत् तस्मात् कारणात् एहि आगच्छ यावदेव यावत्समयम् अयं शुकशिशुः असुभिः प्राणैः न विमुच्यते न त्यक्तो भवति तावदेव तावत्समयम् इमं शुकशिशुं गृहाण धारय, सलिलसमीपं जलान्तिकम् अवतारय प्रापय' इति पूर्वोक्तविधिना अभिधाय उक्त्वा तेन मुनिकुमारेण सरस्तीरं पम्पासरोवरतटम् अनाययत् प्रापयत् ।

उपसृत्य इति । जलसमीपं सलिलान्तिकम् उपसृत्य प्राप्य च, एकस्मिन् देशे भागे निहतौ स्थापितौ दण्डकमण्डलू दण्डकुण्डिके येन स तादृशो हारीतः, स्वयम् आत्मना माम् आदाय गृहीत्वा, मुक्तः परित्यक्तः प्रयत्नः सलिलपाने उद्योगः वदनविकासादिव्यापार इत्यर्थः येन तं तादृशम् अत्यन्तावसन्नत्वादित्याशयः । उत्तानितमुखम् ऊर्ध्वीकृताननम् अङ्गुल्या कराग्रेण कतिचित् कियन्तः सलिलविन्दून् जलकणान् अपाययत् पानमकारयत् ।

अम्भ इति । अम्भःक्षोदैः सलिलप्रदानसमये कुमारककराच्च्युतैः जलविन्दुभिः सलिलकणैः कृतो विहितः सेकः सिञ्चनं यस्य तं तादृशं च, अत एव समुपजाता समुत्पन्ना प्रज्ञा प्रकृष्टबोधो यस्य तं तादृशं माम्, उपतटे तीरनिकटे प्ररूढा प्रादुर्भूता या नलिनी कमलिनी तस्याः पलाशस्य पत्रस्य, जलेन सलिलसेकेन शिशिरा शीतला यस्यां तस्यां तादृश्यां छायायाम् अनातपे निधाय संस्थाप्य यथासमुचितं यथायोग्यं शरीरेषु मृत्तिकालेपनादियुक्तमित्यर्थः स्नानविधिं मज्जनविधिम् अकरोत् कृतवान् ।

अभिषेकेति । अभिषेकस्य स्नानस्य अवसाने अन्ते च, अनेकैः बहुविधैः प्राणायामैः पूरककुम्भकरेचकाख्यैः वायुनिरोधानिरोधरूपयोगाङ्गविशेषैः पूतोऽपि पापरहितोऽपि । अघं दुष्कृतं मृष्यते प्रमार्ज्यते एभिरिति तानि तादृशानि अघमर्षणानि सूक्तानि, एतानि हि 'ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत' इत्यारभ्य 'दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः' इत्यन्तानि वरुणदेवतास्तुतिरूपाणि बोध्यानि । अन्यत्रापि 'सर्वैनसामपध्वंसि जप्यं त्रिष्वघमर्षणम्' इति । उन्मुखः उपरिभागकृताननः दिनाधिपामुखः सन्नित्यर्थः प्रत्यग्रभग्नैः तत्कालोत्खातैः रक्तारविन्दैः रक्तवर्णकमलैः, नलिनीपत्रपुटेन रक्तकमलाधारभूतेन कमदलपुटकेन भगवते माहात्म्यवते सवित्रे आदित्याय अर्घं पूजां दत्वा समर्प्य उदतिष्ठत् उत्थितोऽभूत् ।

साँस फूल रहा है; वार-बार मुख पृथ्वीपर चोट खाता (लथड़ाता) है; चोंच फारता है और इसमें अपनी ग्रीवा उठानेकी भी शक्ति नहीं है; इसलिए, आओ, जबतक इसकी जान नहीं निकले तबतक इसे उठाकर जलके समीप पहुँचा दें । इस प्रकार कहकर उसने मुनिकुमारके द्वारा मुझे सरोवरके तटपर पहुँचवा दिया । पुनः जलके समीप पहुँचकर, अपना दण्ड और कमण्डल एक किनारे रख, वह स्वयं ही मुझे उठा लाया और मेरे विषयमें समस्त आशाओंको छोड़ देनेपर भी मेरा मुँह ऊँचा कर अपनी उँगलियोंसे उसने कितनी ही जलकी बूँदें मुझे पिलाईं, जलके छीटोंसे मुझे स्नान कराया और मुझमें पुनः प्राणसञ्चार हो गया तब तटके समीप लगे कमलके पत्तोंके जलसे ठण्ढी छायामें मुझे रखकर उसने यथोचित स्नान किया । स्नान कर लेनेके बाद असंख्य प्राणायाम करके, स्वच्छ अन्तःकरण हो, पवित्र अघमर्षण मन्त्रका जपकर, उन्नत मुख करके, कमलिनीके पत्तोंके दोने के द्वारा, तत्काल तोड़े हुए रक्त-कमलोंसे सूर्यको अर्घ-प्रदान कर वह खड़ा हो गया । पुनः प्रक्षालित (धुले हुए)

१. निःश्वसिति । २. वमति । ३. विमुच्यते । ४. इमम् । ५. क्वचित् 'च' इति नास्ति । ६. आमुक्तप्रयत्नम् । ७. उन्नमित मुखम्, उत्तानितमन्मुखम् । ८. उपजातनवीनप्राणम् । ९. उपतटप्ररूढस्य यत्नवनलिनीदलस्य । १०. स्वोचितम्, समुपचितम् । ११. अभिमताभिषेक । १२. पूतो जपन् पवित्राण्यघमर्षणानि ।

रुन्मुखो रक्तारविन्दैर्नलिनीपत्र-पुटेन भगवते सवित्रे दत्त्वार्घमुदतिष्ठत् । आगृहीत-धौत-धवल-वल्कलश्च सज्योत्स्न इव सन्ध्यातपः करतल-निर्धूनन-विशद-सटः प्रत्यग्रस्नानार्द्र-जटेन सकलेन तेन मुनिकुमार-कदम्बकेनानुगम्यमानो मां गृहीत्वा तपोवनाभिमुखं शनैः शनैरगच्छत् ।

अनतिदूरमिव गत्वा दिशि दिशि सदासन्निहित-कुसुमफलैः ताल-तिलकतमाल-हिन्ताल-बकुल-बहुलैः, एलालताकुलित-नारिकेल-कलापैः, आलोल-लोध्र-लवली-लवङ्ग-पल्लवैः, उल्लसत्-चूत-रेणु-पटलैः, अलिकुल-झङ्कार-मुखर-सहकारैः, उन्मद-कोकिल-कुल-कलालाप-कोलाहलिभिः, उत्फुल्ल-केतकी-कुसुम-मञ्जरीरजः पुञ्ज-पिञ्जरैः, पूगीलता-दोलाधिरूढ-वनदे-

आगृहीतेति । आगृहीतं स्नानानन्तरं सम्यक् प्रकारेण परिहितं धौतं क्षालितं धवलं स्वच्छं वल्कलं वृक्षत्वक् येन स तथोक्तः, अत एव ज्योत्स्नया चन्द्रिकया सहेति सज्योत्स्नः, सन्ध्यातपः सायंसम्बन्धि-सूर्यप्रकाश इव । करतलाभ्यां हस्ततलाभ्यां निर्धूननेन आस्फालनेन ताडनेनेत्यर्थः विशदा नीरजाः सटा जटा यस्य स तादृशः, प्रत्यग्रेण नूतनेन तत्कालविहितेन स्नानेन मज्जनेन आर्द्रा स्विन्ना जटा यस्य स तेन तादृशेन, तेन पूर्वोक्तेन मुनिकुमारकदम्बकेन ऋषिपुत्रसमूहेन अनुगम्यमानः अनुव्रज्यमानो हारीतो मां वैशम्पायनं गृहीत्वा आदाय शनैः शनैः मन्दं मन्दं तपोवनाभिमुखं निजाश्रमसम्मुखम् अगच्छत् अव्रजत् ।

अनतिदूरमिति । अनतिदूरं किञ्चिद्दवीयसं मार्गं गत्वा आश्रमं स्वस्थानमपश्यदिति सुदूरस्थायिन्या क्रियया सम्बन्धः । इव शब्दोऽत्र वाक्यालङ्कारे । इह तृतीयान्तानि यानि पदानि सन्ति तानि अग्रिमस्य 'कानने'रित्यस्य विशेषणानि बोध्यानि । दिशि दिशि प्रतिदिशम् । सदा सर्वदा सन्निहितानि अवस्थितानि समीपवर्त्तीनि कुसुमानि पुष्पाणि फलानि रसोद्भवानि च येषु तैः तादृशैः, तालाः स्वनामप्रसिद्धाः तिलकाः श्रीमद्वृक्षविशेषाः, तमालाः तापिच्छा, हिन्तालाः फलतरुविशेषाः, बकुलाः केसराश्च बहुला अधिका येषु तैः तादृशैः । एलालताभिः चन्द्रवालावल्लीभिः आकुलिता व्याप्ता नारिकेलानां लाङ्गलीनां तरूणां कलापाः समूहाः येषु तैस्तादृशैः । आलोलाः पवनवेगेन समन्ताच्चपलाः लोध्राणां गालवानां लवलीनां लताविशेषाणां लवङ्गानां श्रीसंज्ञकानां पल्लवाः किसलयानि येषु तैः तादृशैः । उल्लसन्ति पवनवेगेन प्रचलन्ति चूतानाम् आम्रपुष्पाणाम् 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ, इत्यमरः, रेणुपटलानि परागसमूहा येषु तैः तादृशैः । अलिकुलस्य भ्रमरगणस्य झङ्कारैः 'झम्' इत्येवंविधशब्दैः मुखरा वाचालाः सहकारा अतिसुगन्धिरसालाये षु तैः तादृशैः 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः । उन्मदस्य मदोन्मत्तस्य कोकिलकुलस्य पिकगणस्य कलालापः अव्यक्तमधुरध्वनिरूपः कोलाहलः कलकलः एषामस्तीति तैः तादृशैः । उत्फुल्लानां प्रस्फुटितानां केतकीकुसुमानां मालतीपुष्पाणां या मञ्जर्यः वल्लर्यो 'वल्लरिर्मञ्जरिः स्त्रियौ' इत्यमरः, तासां रजःपुञ्जैः पराग-पटलैः पिञ्जराणि पीतवर्णानि येषु तैः तादृशैः । पूगीनां क्रमुकानां या लता वल्ली तद्वत् कृशतरवः ता एव दोला अधिरोहिणी 'दोला प्रेङ्खः पुमान् प्रेङ्खा, निश्रेणिरधिरोहिणी' इति रत्नकोशः, स्थानविशेषे दोलावद्-

स्वच्छ वल्कल धारण करनेसे वह चन्द्रिका युक्त सन्ध्यातपके समान शोभायमान हुआ । उसने अपने करतल (हथेली) से जटाको फटकार (झाड़) कर स्वच्छ किया, कमण्डलमें सरोवरका पवित्र जल भरा तथा वह मुझे लेकर तपोवनकी ओर धीरे-धीरे प्रस्थान करने लगा और तत्काल स्नान करनेके कारण आर्द्र जटावाले मुनि-कुमारोंका समूह उसके पीछे हो लिया ।

सरोवरसे हम बहुत दूर न पहुँचे थे कि इतनेमें मैंने एक अत्यधिक रमणीक आश्रम देखा । वह मानो दूसरा ब्रह्मलोक था । उसके चारोओर जंगल थे । उनमें अनेक प्रकारके वृक्ष लगे थे, वे फल-फूलोंसे लद रहे थे । वहाँ ताड़, तिलक, तमाल, हिन्ताल और मौलसरी आदिके वृक्ष अनेक थे । नारियलों पर इलायचीकी लता चढ़ रही थी । लोध्र, लवली और लवंग (लौंग) के पत्ते डोल रहे थे । आमकी मंजरीकी रज ऊँची उड़ रही थी । भ्रमरोंके गुञ्जन (झनकार) से आमके वृक्षोंमें शब्द हो रहा था । उन्मत्त कोकिलोंका झुण्ड कोलाहल कर

१. अर्घ्यम् । २. आगृहीतधवल··· । ३. सहज्योत्स्न इव । ४. विधूतविशदजटः । ५. कमण्डलुमापूर्य्यकमलकिञ्जल्कसुरभिणा शुचिना सरोवारिणा प्रत्यग्रस्नानार्द्रजटेन । ६. कुमारक । ७. क्वचित् 'शनैः' इत्येकमेव पदमुपलभ्यते । ८. कुसुमपटलैः । ९. तिलकतालीतमाल । १०. नालिकेरी··· । ११. लोल । १२. पुष्पैः । १३. उल्लसित··· । १४. कुलकलाप··· । १५. केतकमञ्जरीरजः, केतकीजर··· ।

वतैः, तारकावर्षमिवाधर्म्म-विनाश-पिशुनं कुसुम-निकरमनिल-चलितमनवरतमतिधवलमुत्सृजद्भिः, संसक्तपादपैः काननैरुपगूढम्, अचकित-प्रचलित-कृष्णसार-शत-शबलाभिः उत्फुल्ल-स्थलकमलिनी-लोहिनीभिः, मारीचमायामृगावलून-प्ररूढ-वीरुद्दलाभिः, दाशरथि-चाप-कोटि-क्षतकन्द-गर्त्तविषमित-तलाभिः, दण्डकारण्यस्थलीभिरुपशोभितप्रान्तम्, आगृहीतसमित्कुश-कुसुममृद्भिः अध्ययन-मुखर-शिष्यानुगतैः सर्वतः प्रविशद्भिः मुनिभिरशून्योपकण्ठम्, उत्क-ण्ठितशिखण्डिमण्डल-श्रूयमाणजल-कलस-पूरणध्वानम्, अनवरताज्याहुतिप्रीतैश्चित्रभानुभिः

नेकानां कुटिलीभूतत्वादित्याशयः, तासु अधिरूढा आश्रिता वनदेवता अरण्याधिष्ठात्र्यो देवता येषु तैः तादृशैः। अधर्मस्य पापस्य विनाशो ध्वंसः तस्य पिशुनं सूचकं देवार्च्चनोपयोगित्वादित्याशयः, अनिल-चलितं पवनान्दोलितम्, अतिधवलम् अत्यन्तशुभ्रं कुसुमनिकरं प्रसूनवृन्दम्, तारकावर्षमिव उल्कापा-तमिव अनवरतं निरन्तरम् उत्सृजद्भिः परित्यजद्भिः। संसक्ता मिथो मिलिताः पादपाः तरवो येषु तैः तथोक्तैः काननैः वनैः उपगूढम् आश्लिष्टम् आच्छादितमित्यर्थः 'गहनं काननं वनम्' इत्यमरः। 'पूगीलता-दोलाधिरूढ-वनदेवतैः' इत्यत्र वनदेवतानां तथाविधदोलाधिरोहणसम्बन्धाऽभावेऽपि तत्सम्बन्धप्रतिपा-दनादतिशयोक्तिरलङ्कारः। 'तारकावर्षमिव' इत्यत्र पूर्णोपमालङ्कारः।

अचकितेति। अचकितेत्यारभ्य 'गर्त्तविषमित'त्यन्तानि स्त्रीलिङ्गपदानि दण्डकारण्यस्थलीभिरित्यस्य विशेष-णानि। अचकितानाम् अभीतानां हिंसाभावादित्याशयः, प्रचलितानां सञ्चरतां कृष्णसाराणां तदाख्यहरि-णानां शतेन आधिक्येन समुदायेनेत्यर्थः शबलाभिर्विचित्राभिः। उत्फुल्लाभिः प्रस्फुटिताभिः स्थलकमलि-नीभिः स्थलपद्मिनीभिः लोहिन्यो रक्तवर्णाः ताभिः तादृशीभिः। मारीच एतन्नामाऽसुर एव मायामृगः व्याजेन मृगरूपधारी तेन अवलूनानि पूर्वं ग्रासाय छिन्नानि पश्चात् प्ररूढानि समुपजातानि वीरुधां लतानां दलानि पर्णानि यासु ताभिः तादृशीभिः 'पत्रं पलाशं छदनं दलः पर्णं छदः पुमान्' इत्यमरः। तथा दाशरथेः रामचन्द्रस्य चापकोट्या कार्मुकाग्रेण क्षतानि उत्खातानि यानि कन्दानि वृक्षमूलानि तेषां गर्त्तैः भूविवरैः विषमितानि उच्चनीचतां प्राप्तानि तलानि ऊर्ध्वदेशा यासां ताभिः तादृशीभिः, दण्डकारण्यस्य 'दण्डकसंज्ञक'-वनस्य स्थलीभिः स्थूलभूमिभिः उपशोभितः शोभां लम्भितः प्रान्तः पश्चात्प्रदेशो यस्य स तं तादृशम्।

आगृहीतेति। आगृहीताः पार्थक्येनाग्निहोत्रादिकार्यसाधनाय सम्यग्गात्ताः समिध एधांसि, कुशा दर्भाः, कुसुमानि प्रसूनानि, मृदो मृत्तिकाः यैस्ते तैस्तादृशैः। अध्ययनेन गुरुमुखोच्चारणानन्तरं तथाविधवे-दपारायणेन मुखराः शब्दायमाना ये शिष्या अन्तेवासिनः तैरनुगतैः युक्तैः, सर्वतः समन्तात् प्रविशद्भिः प्रवेशं विदधद्भिः मुनिभिः ऋषिभिः (करणैः) अशून्यः अविरहितः परिपूर्णः उपकण्ठो निकटदेशो यस्य तं तादृशम्। उत्कण्ठितेति। उत्कण्ठितेन घटपूरणध्वनौ जलदगर्जनभ्रान्त्या समुत्पन्नोत्कण्ठेन शिखण्डिमण्डलेन मयूरगणेन श्रूयमाणः निशम्यमानः जलैः सलिलैः कलसपूरणस्य घटपूरणस्य ध्वनिः शब्दो यस्मिन् स तं तादृशम्।

अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं आज्यानां सर्पिषां हविषाम् आहुतिभिः हवनैः प्रीताः सन्तुष्टाः

रहा था। विकसित (फूले हुए) केतकी पुष्पके रजके ढेरसे वहाँके वन पीले दीखते थे। सुपारीके लतारूपी हिंडोलेमें वनके अधिष्ठातृ देवियाँ झूलती थीं। वायुसे आन्दोलित किये हुए अधिकतर स्वच्छ फूल, अधर्म विनाश-सूचक उल्कापातके समान वार वार वृक्षोंसे गिरते थे। दण्डकारण्यकी भूमिसे उस आश्रमका पिछला भाग शोभायमान लगता था। वह भूमि निर्भय चित्तसे दौड़ते सैकड़ों कृष्णमृगोंके कारण विचित्र थी। विकसित नलिनियोंसे अधिक रक्तवर्ण थी। माया-मृगका रूप धारण कर मारीचने बड़ी बड़ी लताओंके पत्ते काट लिये थे। राम-लक्ष्मणने धनुषके अग्रभागसे वहाँ कन्द उखाड़ा था, इससे वह भूमितल निम्नोन्नत (ऊँचा नीचा) हो गया था। लकड़ी, कुशा और मट्टी लेकर समस्त दिशाओंसे आते तथा उच्चस्वरसे पाठ अभ्यास करते छात्रोंके आगे-आगे चलते हुए ऋषि उसके समीप ही दिखाई देते थे। जल-कलश भरनेमें होती ध्वनिको मेघकी गर्जना जानकर वहाँके मयूर गर्दन उठाकर सुनते थे। दिन-रात पड़ती घृतकी आहुतिसे सन्तुष्ट हुए अग्निदेवने समस्त ऋषियोंको

१. तारकावृष्टिम्। २. क्वचित् 'काननैः' इति पाठो नास्ति। ३. सारसारङ्ग। ४. क्वचित् 'स्थल' इति पाठो न विद्यते। ५. मारीचि। ६. रूढ। ७. कन्दर'''। ८. मृत्तिकैः। ९. शिष्यागतैः। १०. प्रसरद्भिः। ११. अविशून्य। १२. उत्कण्ठ'''। १३. मण्डली मण्डल'''।

सशरीरमेव मुनिजनममरलोकं निनीषुभिः, उद्धूयमान-धूम-लेखाच्छलेनावध्यमान-स्वर्ग-मार्ग-गमन-सोपान-सेतुमिवोपलक्ष्यमाणम्, आसन्नवर्त्तिनीभिस्तपोधन-सम्पर्कादिवापगत-कालुष्याभिः, तरङ्ग-परम्परा-संक्रान्त-रविबिम्बै-पङ्क्तिभिः, तापसदर्शनागतसप्तर्षि-मालाविगाह्यमानाभिरिव, अतिविकच-कुमुदवनमृषिजनमुपासितुमवतीर्णं ग्रहगणमिव निशासूद्वहन्तीभिर्दीर्घिकाभिः परिवृतम्, अनिलावनमित-शिखराभिः प्रणम्यमानमिव वनलताभिः, अनवरत-मुक्त-कुसुमैरभ्यर्च्यमानमिव पादपैः, आबद्ध-पल्लवाञ्जलिभिः उपास्यमानमिव विटपैः, उटजा-

तैः तादृशैः चित्रभानुभिः दक्षिणाग्निगार्हपत्याग्न्याहवनीयाग्निरूपैः त्रिभिर्वह्निभिः सशरीरमेव सविग्रहमेव मुनिजनम् ऋषिगणम् अमरलोकं देवलोकं निनीषुभिः नेतुमिच्छुभिः, उद्धूयमाना पवनेन सञ्चाल्यमाना या धूमलेखा उपरिगामिनी पारम्पर्येण वह्निकेतनश्रेणिः तस्याः छलेन कपटेन आवद्ध्यमानः विरच्यमानः स्वर्गमार्गगमनाय देवलोकमार्गगमनार्थं सोपानसेतुमिव सोपानसदृशीं लोकद्वयसंयोजिकापङ्क्तिमिव उपलक्ष्यमाणं ध्वन्यमानम्। इह धूमलेखां संगोप्य स्वर्गगमनसोपानसेतुत्वोत्प्रेक्षणात् सापह्नवोत्प्रेक्षा।

आसन्नेति। आसन्नवर्त्तिनीभिः निकटस्थायिनीभिः, तपोधनानां तापसानां मुनीनां सम्पर्कादिव सम्बन्धादिव अपगतं विलीनं कालुष्यं मालिन्यं यासां ताभिः। तरङ्गपरम्परासु कल्लोलपङ्क्तिषु सङ्क्रान्ताः प्रतिफलिताः रविबिम्बपङ्क्तयः सूर्यबिम्बराजयः यासु ताभिः तादृशीभिः, अत एव तापसानां जाबाल्यादिमुनिजनानां दर्शनाय सजातिप्रेम्णा साक्षात्काराय आगतया प्राप्तया सप्तर्षिमालया मरीच्यप्रभृतिदेवर्षिपङ्क्त्या विगाह्यमानाभिः विलोड्यमानाभिरिव वर्तमानाभिः। अनेन सप्तर्षीणां रविप्रतिबिम्बतुल्यत्वं सूचितम्। तथा निशासु क्षणदासु ऋषिजनं जाबाल्यादिमुनिमण्डलम् उपासितुं सेवितुम् अवतीर्णम् उपरिष्टात्प्राप्तं ग्रहगणमिव नक्षत्रमण्डलमिव अतिविकचकुमुदवनं पूर्णविकसितकैरवविपिनम् उद्वहन्तीभिः धारयन्तीभिः दीर्घिकाभिः वापीभिः परिवृतं परिवेष्टितम्।

इह 'तपोधनसम्पर्कादिव' इत्यत्र हेतूत्प्रेक्षा, 'विगाह्यमानाभिः' इत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा, 'गृहगणमिव' इत्यत्र जात्युत्प्रेक्षा।

अनिलेति। अनिलेन पवनेन अवनमितानि अवनम्रीभूतानि शिखराणि अग्रभागा यासां ताभिः तादृशीभिः वनलताभिः वनव्रततिभिः प्रणम्यमानमिव नमस्क्रियमाणमिव। इह क्रियोत्प्रेक्षा।

अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं मुक्तानि त्यक्तानि कुसुमानि पुष्पाणि यैस्तैस्तादृशैः पादपैः तरुभिः अभ्यर्च्यमानमिव पूज्यमानमिव। अत्र क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः।

आबद्धेति। आबद्धा विनिर्मिताः पल्लवाः किसलयान्येव अञ्जलयः यैस्तैस्तादृशैः विटपैः स्कन्धैः उपास्यमानमिव सेव्यमानमिव। इह 'पल्लवा एवाञ्जलयः' इत्यत्र निरङ्गकेवलरूपकम्, 'उपास्यमानमिव' इत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा चेत्यनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः।

उटजेति। उटजानां पर्णशालानां 'पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, अजिरेषु प्राङ्गणेषु प्रकीर्णाः प्रसारिताः; अत एव शुष्यन्तः सूर्यतेजसा शुष्कतां प्राप्नुवन्तः श्यामाका धान्यविशेषाः यत्र स तादृशम्। एषां शोषणं पर्णशालाच्छदिषामावरणार्थमिति ज्ञेयम्।

देह-सहित स्वर्ग ले जानेकी अभिलाषासे, ऊपर चढ़ती धूम-लेखाके व्याजसे मानो रास्तेमें सीढ़ियोंका पुल बाँधा हो—इस प्रकार दिखाई देता था।

आश्रमके समीप ही चारों तरफ वापियाँ (बावलियाँ) थीं। उनकी मलिनता मानो ऋषियोंके संसर्गसे जाती रही थी। तरङ्ग-परम्परामें सूर्यका प्रतिबिंब पड़नेसे ऐसा प्रतीत होता था मानो तपस्वियोंके दर्शनके लिए आए सप्तर्षि उनमें स्नान करते हों। उनमें अति-प्रस्फुटित कुमुद इस प्रकार देखनेमें आ रहे थे मानो रात्रिमें मुनियोंकी सेवा करनेके लिए नीचे उतरे तारे हों। वायुसे झुकी चोटियोंसे वनलताएँ मानो उसे नमस्कार करती थीं। निरन्तर (दिन-रात) फूल गिरा-गिराकर समस्त वृक्ष मानो उसकी पूजा करते थे। पल्लवोंकी अञ्जलि

१. तपोवन···। २. क्वचित् 'बिम्ब' इति पाठो नास्ति। ३. विकच···। ४. शिखाभिः। ५. पल्लवपुटाञ्जलिभिः।

जिर-प्रकीर्ण शुष्यच्छ्यामाकम् , उपसंगृहीतामलक-लवली लवङ्ग-कर्कन्धू-कदली-लकुच-चूत-पनस-तालफलम् , अध्ययनमुखर-वटुजनम् , अनवरत-श्रवण-गृहीत-वषट्कार-वाचालशुक-कुलम् , अनेक-सारिकोद्घुष्यमाण-सुब्रह्मण्यम् , अरण्य-कुक्कुटोपभुज्यमान-वैश्वदेवबलिपिण्डम् , आसन्न-वापी-कलहंसपोत-भुज्यमान-नीवारबलिम् , एणी-जिह्वापल्लवोपलिह्यमानमुनि-बालकम् , अग्निकार्य्योर्द्धदग्धसिमसिमायमान कुश-समित्कुसुमम् , उपल-भग्ननारिकेल-रस-स्निग्धशिलातलम् , अचिर-क्षुण्ण-वल्कल-रस-पाटलभूतलम् , रक्तचन्दनोपलिप्तादित्यमण्डल-निहित-करवीर-कुसुमम् , इतस्ततो विक्षिप्त-भस्मलेखा-लङ्कृत-मुनिजनभोजन-भूमिभा-

उपसंगृहीतेति । उपसंगृहीतानि तत्र तत्रैकत्रीकृतानि, आमलकं धात्री, लवली लताविशेषः, लवङ्गं स्वनामप्रसिद्धम्, कर्कन्धूर्बदरी, कदली रम्भा, लकुचो डहुः, चूत आम्रः, पनसं कण्टकी, तालं तृणराजश्च एतानि फलानि यत्र स तं तादृशम् । भक्षणार्थमेतेषामेकत्रानयनम् ।

अध्ययनेति । अध्ययनेन वेदानां गुरुमुखोच्चारणानुच्चारणेन मुखराः शब्दायमाना वटुजना ब्रह्मचारि-वर्गाः यत्र स तं तादृशम् ।

अनवरेति । अनवरतश्रवणेन निरन्तराकर्णनेन गृहीताः शिक्षां प्राप्ताः ये वषट्काराः हविःसमर्पण-मन्त्राः तैः तदभ्यासैरित्यर्थः वाचालं शब्दायमानं शुककुलं कीरगणं यस्मिन् स तं तादृशम् ।

अनेकेति । अनेकाभिः बह्वीभिः सारिकाभिः पीतपादाभिः उद्घुष्यमाणम् उच्चस्वरेणाभ्यस्यमानं सुब्रह्मण्यं वेदो यत्र स तं तादृशम् । तासामपि तदाकर्णनेन शिक्षणादित्याशयः ।

अरण्येति । अरण्यकुक्कुटैः वनचरणायुधैः 'कुक्कुटश्चरणायुधः' इत्यमरः, उपभुज्यमाना भक्ष्यमाणा वैश्वदेवबलिपिण्डाः पञ्चमयामार्द्धदत्तदेवयज्ञांशेश्यकहन्तकारा यत्र तम् । एषविधिः नित्यकर्मपद्धत्यादौ स्पष्टा ।

आसन्नेति । आसन्नवापीनां निकटवर्तिदीर्घिकाणां ये कलहंसपोताः कलहंसशिशवः तैः भुज्यमाना भक्ष्यमाणा नीवाराणां मुन्यन्नानां बलय उपायनानि यस्मिन् तं तादृशम् ।

एणीति । एणीभिः हरिणीभिः जिह्वापल्लवैः प्रसारितरसनैः (करणैः) उपलिह्यमाना आस्वाद्यमाना स्पर्शनं क्रियमाणा इत्यर्थः मुनिबालका ऋषिकुमारा यस्मिन् स तं तादृशम् ।

अग्नीति । अग्निकार्यं हवने अर्द्धदग्धानि अर्द्धभस्मीभूतानि अत एव सिमसिमायमानानि 'सिम सिम' इत्येवं शब्दं विधीयमानानि कुशशमित्कुसुमानि दर्भैधःपुष्पाणि यत्र तं तादृशम् ।

उपलेति । उपलैः प्रस्तरैः भग्नानि प्रस्तरान्तरेषु निधाय मर्दितानि यानि नारिकेलानि लाङ्गलीफलानि तेषां रसैः द्रवैः सलिलैर्वा स्निग्धानि चिक्कणानि तैलाक्तीकृतानि वा शिलातलानि शय्याभूतप्रस्तरा यत्र तत्र ।

अचिरेति । अचिरक्षुण्णानां तरुभ्यः तत्कालनिःसरितानां वल्कलानां त्वचां रसैः निर्यासैः पाटलं श्वेतरक्तरूपं भूतलं पृथ्वीतलं यस्मिन् स तं तादृशम् ।

रक्तेति । रक्तचन्दनेन पत्राङ्गेन उपलिप्ते आलिखिते आदित्यमण्डले रविबिम्बे निहितम् आदित्याय समर्प्य स्थापितं करवीरकुसुमं हयमारपुष्पं यस्मिन् स तं तादृशम् ।

इत इति । इतस्ततः समन्तात् विक्षिप्ताभिः प्रसृताभिः भस्मनां भूतीनां 'भूतिर्भसितभस्मनि

बनाकर डालियाँ मानो उसकी सेवा करती थीं । तपस्वियोंके प्राङ्गणोंमें, धूपमें सूखनेके लिए श्यामाक धान बिछा था । इमली, लवली, बेर, केले, लकुट, आम, कटहल और तालके फल एकत्रित संगृहीत थे । ब्राह्मण बालकगण स्वरसे पाठ पढ़ते थे । बार-बार सुने हुए वषट्कार (आहुति समर्पण मन्त्र) शब्दका उच्चारण करनेसे तोते वाचाल हो रहे थे । अगणित सारिकाएँ (मैना) वेदका घोष कर रही थीं । वनकुक्कुट (जंगली मुर्गे) वैश्वदेवमें दिया हुआ बलि भक्षण करते थे । समीपकी बावलीमें रहते कलहंसके बच्चे नीवारकी बलिका आहार करते थे । हिरनियाँ अपनी पल्लवके समान कोमल-जिह्वाओंसे तपस्वियोंके बालकों को चाटती थीं । होमकुण्डमें अध-जले कुश, समिधा और पुष्प चढ़ाते थे । प्रस्तरसे तोड़े गए नारिकेलके जलसे शिलातल आर्द्र हो रहे थे । तत्काल ही निचोड़े गये वल्कलोंके जलसे पृथ्वी रक्त हो गई थी । रक्तचन्दनसे चित्रित सूर्य-मण्डल पर करवीर (कनेर) के

१. 'लवङ्ग' इति पाठः क्वचिन्नास्ति । २. 'पनस' इत्यस्यापि पाठः क्वचिन्नास्ति । ३. मिसमिसायमान,''' भिसिभिसायमान, सिभिसिमायमान । ४. समित्कुश । ५. नारिकेर''' । ६. मण्डलकनिहित ।७. लेखाकृत''' भोजनभूमिपरिहारम् ।

गम्, परिचित-शाखामृग-कराकृष्टयष्टि-निष्काश्यमान प्रवेश्यमान-जरदन्धतापसम्, इभकरभकार्द्धोपभुक्तपतितैः सरस्वती-भुजलता-विगलितैः शङ्खवलयैरिव मृणालशकलैः कल्माषितम्, ऋषिजनार्थमेणकैर्विषाण-शिखरोत्खन्यमानविविध-कन्दमूलम्, अम्बुपूर्ण-पुष्कर-पुटैर्वनकरिभिरापूर्यमाण-विटपालबालकम्, ऋषिकुमारकाकृष्यमाणवनवराहदंष्ट्रान्त-राल-लग्न-शालूकम्, उपजात-परिचयैः कलापिभिः पक्षपुटपवन-सन्धुक्ष्यमाण-मुनिहोम-हुताशनम्, आरब्धामृत-चरु-चारुगन्धम्, अर्द्धपक्व-पुरोडाश-पुण्य-परिमलामोदितम्,

---

इत्यमरः, लेखाभिः पङ्क्तिभिः अलङ्कृताः सीमाबद्धीविधानात् भूषिताः मुनिजनानाम् ऋषिगणानां भोजनभूमिभागा भक्षणस्थलदेशा यस्मिन् स तं तादृशम्। पादस्पर्शादिनिवृत्तये भस्मरेखाचिह्नितत्वमित्याशयः।

परिचितेति। परिचितैः पूर्वत एव समुत्पन्नपरिचयैः शाखामृगैः कपिभिः कराकृष्टयष्ट्या हस्ताकर्षितलगुडेन निष्काश्यमानाः केचिद्वनाद्बहिः निःसार्यमाणाः केचिद्वनमध्ये पूर्यमाणाश्च जरन्तः परिणतवयाः अन्धाः नेत्रहीनाः तापसाः तपस्विनो यस्मिन् तं तादृशम्।

इभेति। इभकरभकैः हस्तिशावकैः अर्द्धोपभुक्तैः अर्द्धचर्वितैः पश्चात् पतितैः कथमपि तन्मुखेभ्यश्च्युतैः, सरस्वत्या भारत्या भुजलताया बाहुवल्ल्याः सकाशात् विगलितैः स्रस्तैः शङ्खवलयैरिव निरेखकटकैरिव विद्यमानैः मृणालशकलैः बिसखण्डैः कल्माषितं कर्बुरितम्। 'शङ्खवलयैरिव' इत्यत्र जात्युत्प्रेक्षा। ततश्च सरस्वत्या अनवरतस्थितत्वं गम्यते इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः।

ऋषीति। ऋषिजनार्थं मुनिगणभक्षणार्थम् एणकैः हरिणैः (कर्तृभिः), विषाणशिखरैः शृङ्ग-प्रान्तैः (करणैः) उत्खन्यमानानि उत्पाट्यमानानि विविधानि अनेकानि विचित्राणीत्यर्थः कन्दाः शालूकानि पङ्कजादीनां मूलानीत्यर्थः, मूलानि मूलकप्रभृतीनि च यस्मिन् तं तादृशम्।

अम्बुपूर्णेति। वनकरिभिः अरण्यहस्तिभिः (कर्तृभिः) अम्बुभिः सलिलैः पूर्णानि भृतानि यानि पुष्करपुटानि शुण्डाग्राणि तैः तादृशैः (करणैः) 'शुण्डाग्रं त्वस्य पुष्करम्' इत्यमरः, आपूर्यमाणानि भ्रियमाणानि विटपानां खण्डयित्वा समादाय रोपितानां स्कन्धानाम् आलवालानि आवापस्थानानि तरुमूलसलिलधारणगर्तानीत्यर्थः यस्मिन् तं तादृशम्।

ऋषीति। ऋषिकुमारकैः मुनिशिशुभिः आकृष्यमाणानि आकर्षणं क्रियमाणानि वनवराहाणाम् अरण्यशूकराणां दंष्ट्रान्तराललग्नानि दशनमध्यसंसक्तानि शालूकानि पद्मानां कन्दा मूलानीति तात्पर्यम् यस्मिन् तं तादृशम्। 'शालूकमेषां कन्दः स्यात्' इत्यमरः।

उपजातेति। उपजातपरिचयैः पूर्वस्मादेव ऋषीणामहिंस्रस्वभावज्ञायिभिरिति यावत्। कलापिभिः मयूरैः पक्षपुटानां छदपुटानां पवनेन वातेन सन्धुक्ष्यमाणाः प्रज्वाल्यमाना ऋषीणां हवनार्थं हुताशना अग्नयो यत्र तं तादृशम्। उक्तविशेषणदानैः तपोवनस्यात्यन्तशान्तत्वं व्यञ्जितम्।

आरब्धेति। आरब्धः पचनाय प्रवर्तितः योऽमृतचरुः आज्ययुक्तयवौदनः तस्य चारुः मनोहरः गन्ध आमोदो यत्र स तं तादृशम्।

फूल चढ़ाए गए थे। इधर-उधर भस्म (राख) की रेखा बनाकर ऋषियोंके भोजन-स्थलोंकी आड़ बाँध दी गई थी। हाथीके बच्चोंने मृणालके टुकड़े आधे चबा-चबाकर छोड़ दिये थे। परिचित वानरगण वहाँके बूढ़े और अन्धे मुनियोंको अपने हाथसे पकड़कर बाहर ले जाते और ले आते थे। वे सरस्वतीके भुज-लतामें से निकले शंखोंके कंकणसे समान लगते थे और उनसे आश्रम चित्रित हो रहा था। हिरन अपने सींगोंसे मुनियोंके लिए कन्द-मूल उखाड़ देते थे। हाथी अपनी सूँड़ोंमें जल भरकर वृक्षोंके आलवाल (क्यारियाँ) भर देते थे। वन्य-शूकरोंके दाँतोंके मध्य-मध्यमें भरे कमल-कन्दको मुनिकुमार आकर्षित कर (खेंच) लेते थे। पालतू मयूर अपने पंखोंसे वायु चलाकर तपस्वियोंकी होमाग्नि प्रज्वलित करते (सुलगाते) थे। अमृतके समान चरु (घृतयुक्त-यवौदन) की मनोहर सुगन्ध फैल रही थी। आधे पके पुरोडाश (हवनीयद्रव्य)

१. कराकृष्टिनिष्काश्यमान...। २. कलमक। ३. बाहुलताविभूषणैः। ४. पुण्यपरिमला, पुरोडाशपरिमला...।

अविच्छिन्नाज्यधारा-हुति-हुतभुंग्हुङ्कार-मुखरितम्, उपचर्य्यमाणातिथिवर्गम्, पूज्यमान-पितृ-दैवतम्, अर्च्यमान-हरि-हर-पितामहम्, उपदिश्यमान-श्राद्धकल्पम्, व्याख्यायमान-यज्ञविद्यम्, आलोच्यमान-धर्म्मशास्त्रम्, पठ्यमान-विविध-पुस्तकम्, विचार्य्यमाण-सकल-शास्त्रार्थम्, आरभ्यमाण-पर्णशालम्, उपलिप्यमानाजिरम्, उपमृज्यमानोटजाभ्यन्तरम्, आबध्यमानध्यानम्, साध्यमान-मन्त्रम्, अभ्यस्यमान-योगम्, उपह्रियमाण-वनदेवताबलिम्

अर्द्धेति । अर्द्धपक्वः अर्द्धविक्लितिमापन्नो यः पुरोडाशः हवनीयद्रव्यविशेषः तस्य पुण्यपरिमलेन सौरभेण आमोदितं हर्षितम् ।

अविच्छिन्नेति । अविच्छिन्ना अत्रुटिता या आज्यधारा सर्पिःसम्पातः तस्या आहुत्या हवनेन यो हुतभुजः अग्नेः हुङ्कारः 'हुं' इति शब्दः तेन मुखरितं वाचालितम् । यत्र 'हुतभुग्झङ्कार' इति पाठो विद्यते स खलु न निर्दुष्टः, अग्नेः झङ्कारोत्पादनाभावात् ।

उपचर्येति । उपचर्यमाणः सत्कारं प्राप्यमाणः अतिथिवर्गः अभ्यागतसमूहो यत्र तं तादृशम् ।

पूज्यमानेति । पूज्यमानानि आभ्युदयिकादिश्राद्धेन षोडशोपचारादिना पञ्चोपचारादिना वा अर्च्यमानानि पितरः पितृपितामहादयः दैवतानि देवताश्च यत्र तं तादृशम् । षोडशोपचाराणां पञ्चोपचाराणाञ्च आह्निककृत्यादौ नियमा द्रष्टव्याः ।

अर्च्यमानेति । अर्च्यमानाः पूज्यमानाः, हरिर्नारायणः, हरो महेश्वरः, पितामहः प्रजापतिश्च एते यस्मिन् तं तादृशम् ।

उपदिश्येति । उपदिश्यमानः पाठ्यमानः श्राद्धकल्पः आश्वलादिनिर्मितः श्राद्धविधिर्यत्र तं तादृशम् ।

व्याख्यायेति । व्याख्यायमाना अर्थद्वारा प्रतिपाद्यमाना यज्ञविद्या दर्शपौर्णमासादियज्ञविधायकशास्त्रं यस्मिन् तं तादृशम् ।

आलोच्येति । आलोच्यमानानि हृदये विचार्यमाणानि धर्मशास्त्राणि मन्वादिप्रणीतसंहिता यस्मिन् तं तादृशम् ।

पठ्येति । पठ्यमानानि अधीयमानानि विविधानि अनेकप्रकाराणि पुस्तकानि शास्त्राणि यत्र तत् तादृशम् ।

विचार्येति । विचार्यमाणा युक्त्या स्थाप्यमानाः सकलशास्त्रार्थाः समस्तवेदादिविषया यस्मिन् तं तादृशम् ।

आरभ्येति । आरभ्यमाणाः नूतननिर्माणाय प्रवर्त्यमानाः पर्णशालाः उटजा यस्मिन् तं तादृशम् ।

उपलिप्येति । उपलिप्यमानानि गोमयादिना लिम्पनं क्रियमाणानि अजराणि प्राङ्गणानि यत्र तं तादृशम् । 'अजिरं चत्वरोऽङ्गणम्' इत्यमरः ।

उपमृज्येति । उपमृज्यमानानि शोधिन्यादिना परिष्क्रियमाणानि उटजानां पर्णशालानाम् अभ्यन्तराणि मध्यानि यस्मिन् तं तादृशम् ।

आबध्येति । आबध्यमानं विधीयमानं ध्यानम् एकप्रत्ययधारा यत्र तं तादृशम् ।

साध्येति । साध्यमानः हवनादिना सिद्धिं लभमानः मन्त्रो यस्मिन् तं तादृशम् ।

अभ्यस्येति । अभ्यस्यमानः मुहुर्मुहुः क्रियमाणः योगः चित्तवृत्तिनिरोधो यस्मिन् तं तादृशम् ।

उपह्रियेति । उपह्रियमाणा समर्प्यमाणा वनदेवताभ्यः अरण्याधिष्ठातृभ्यो बलयः पूजावस्तूनि यस्मिन् तं तादृशम् ।

की पवित्र सुगन्धसे वह आश्रम सुगन्धित हो रहा था । अग्निमें निरन्तर घृतकी आहुति दी जा रही थी । उसका हुँ हुँ शब्द (सन-सनाहट) सुनाई देता था ।

वहाँ अभ्यागतोंकी सेवा की जाती थी; पितृ-देवताओंकी पूजा होती थी; भिन्न-भिन्न स्थानमें ब्रह्मा, विष्णु, महेशका पूजन होता था; गोभिलादिप्रणीत श्राद्धकल्पका उपदेश होता था; यज्ञ-विद्याओं पर व्याख्यान दिया जाता था; मन्वादिधर्मशास्त्रकी आलोचना होती थी; अनेक पुस्तकोंका पाठ होता था; समस्त शास्त्रोंके अर्थका विचार होता था; अभिनव पर्णशालाओं (पत्तोंकी कुटियों) का निर्माण होता था; गोमयादिसे आँगन लीपे जाते थे; तपस्वियोंके घर अन्दरसे स्वच्छ किये जाते थे; इष्टदेवताओंका ध्यान होता था, मन्त्रोंकी सिद्धि हवनादि द्वारा होती थी;

---

१. उग्रहुङ्कार''', झङ्कार । २. अभ्यर्च्यमान''' । ३. उद्दिश्यमान''' । ४. अवलोक्यमान । ५. वाच्यमान''' । ६. अपमृज्यमान''' । ७. उपहूयमान''' ।

निर्वर्त्यमान-मौञ्जी-मेखलम्, प्रक्षाल्यमान-वल्कलम्, उपसंगृह्यमाण-समिधम्, संस्क्रियमाणकृष्णाजिनम्, गृह्यमाण-गवेधुकम्, शोष्यमाण-पुष्कर-बीजम्, ग्रथ्यमानाक्षमालम्, गृह्यमाणत्रिपुण्ड्रकम्, न्यस्यमान-वैत्रदण्डम्, आपूर्यमाण-कमण्डलुम्, अदृष्टपूर्वं कलिकालस्य, अपरिचितमनृतस्य, अश्रुतपूर्वमनङ्गस्य, अब्जयोनिमिव त्रिभुवन-वन्दितम्, असुरारिमिव प्रकटितवराहनरसिंहरूपम्, सांख्यमिव कपिलाधिष्ठितम्, मथुरोपवनमिव बलावलीढ-

निर्वर्त्येति। निर्वर्त्यमाना निष्पाद्यमाना मौञ्जी मुञ्जनिर्मिता मेखला काञ्ची यस्मिन् तं तादृशम्।

प्रक्षाल्येति। प्रक्षाल्यमानं जलेन निर्मलीक्रियमाणं वल्कलं त्वक् यस्मिन् तं तादृशम्।

उपेति। उपसंगृह्यमाणा उपादीयमानाः समिध एधांसि यस्मिन् तं तादृशम्।

संस्क्रीति। संस्क्रियमाणं पिच्छकादिना विशुद्धीक्रियमाणं कृष्णाजिनं कृष्णसारमृगचर्म यस्मिन् तं तादृशम्।

गृह्येति। गृह्यमाणा आदीयमाना गवेधुकाः कन्दा धान्यविशेषा यत्र तं तादृशम्।

शोष्येति। शोष्यमाणानि घर्मेण शोषं प्राप्यमाणानि पुष्कराणां कमलानां बीजानि फलानि यस्मिन् तं तादृशम्। जपमालाविरचनायैतदित्यवगन्तव्यम्।

ग्रथ्येति। ग्रथ्यमाना ग्रन्थिः विरच्यमाना यत्र एवम्भूता अक्षमालारुद्राक्षमाला यत्र तं तादृशम्।

गृह्यमाणेति। गृह्यमाणं भाले धार्यमाणं त्रिपुण्ड्रकं भस्मना रेखात्रयं यस्मिन् तं तादृशम्।

न्यस्येति। न्यस्यमानः दूरादेत्य पृथिव्यां स्थाप्यमानः वेत्रदण्डः वेतसलगुडो यस्मिन् तं तादृशम्।

आपूर्येति। आपूर्यमाणः सलिलैः भ्रियमाणः कमण्डलुः पूजनार्थं जलाधारपात्रविशेषो यत्र तं तादृशम्। एतेषु यत्र यथायोग्यं कर्तृपदं 'कैश्चित्' 'केनचित्' इत्यादिकं निवेशनीयम्।

अदृष्टेति। कलिकालस्य कलियुगस्य नास्ति दृष्टम् अवलोकनं पूर्वं यस्मिन् तं तादृशम्। एवमपरयोरपि। कलिप्रवेशानर्हमित्याशयः, अनेन सर्वथा अधर्माभाव इति प्रतीयते। अनृतस्य असत्यस्य अपरिचितम् अपरिचयः, सततं सत्याचारादित्याशयः। अनङ्गस्य कामदेवस्य, अश्रुतपूर्वम् अनाकर्णितपूर्वम्, कामजनितविकारानुपलम्भादित्याशयः।

अब्जयोनिमिति। अब्जयोनिमिव प्रजापतिमिव, त्रिभुवनवन्दितं जगत्त्रयपूजितम्, असामान्यधर्मस्थानत्वात् सृष्टिकर्तृत्वाच्चेत्याशयः।

असुरेति। असुराः राक्षसाः तेषाम् अरिः शत्रुः विष्णुः तमिव, 'रिपौ वैरिसपत्नारि' इत्यमरः, प्रकटितानि प्रकाशितानि वराहाः शूकराः, नरा मनुष्याः, सिंहा मृगेन्द्राः, रूपाणि मृगाश्च येन तं तादृशम् 'रूपं मृगेऽपि विज्ञेयम्' इति हलायुधः, पक्षे—प्रकटिते व्यक्तीकृते वराहनरसिंहयोः शूकरावतार-नृसिंहावतारयो रूपे स्वरूपे येन तं तादृशम्।

सांख्यमिति। सांख्यं कपिलदर्शनं तमिव, कपिलया कनकाकृत्या गवा, कपिलेन सांख्यशास्त्रनिर्मात्रा ऋषिविशेषेण च अधिष्ठितम् आश्रितम्।

मथुरेति। मथुराया एतन्नामकप्रसिद्धाया नगर्याः उपवनमिव द्वादशवनेषु गर्भितम् अरण्यमिव, बलावलीढा शारीरिकशक्तियुक्ताः अत एव दर्पिताः समुत्पन्नगर्वाः धेनवो नवप्रसवा गावो यत्र तं तादृशम्।

योगका अभ्यास होता था; वनदेवताओंको पूजासामग्री दी जाती थी; मूँजकी मेखला बनाई जाती थी; वल्कल जलसे स्वच्छ किये जाते थे; समिधों (लकड़ियों) का संग्रह होता था; कृष्ण-मृगचर्म धोए जाते थे; पशुओंके चारेकी घास लाई जाती थी; कमलबीज सुखाये जाते थे; रुद्राक्षमालायें गूँथी जाती थीं; ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण किये जाते थे; बेंतके दण्ड रक्खे जाते थे; कमण्डलुमें जल भरा जाता था। कलिकालने कभी उस आश्रमको देखा नहीं था। असत्यका उसे परिचय नहीं था। कामदेवने भी उसका नाम नहीं सुना था। ब्रह्माके समान वह त्रिभुवन-वन्दित था। विष्णुके समान उसने वाराह-नृ-सिंहरूप प्रकट किया था (विष्णुने वाराह तथा नृ-सिंह अवतार ग्रहण किया था, आश्रममें शूकर, मनुष्य, सिंह तथा अन्य पशु विद्यमान थे)। सांख्यके समान वह कपिलाधिष्ठित था (कपिलमुनिने सांख्यदर्शन (प्रकृति-पुरुषका विवेक) शास्त्रका प्रवर्त्तन किया था, आश्रम कपिला गौसे युक्त था)।

१. मुञ्ज…। २. क्षाल्यमान…। ३. उपसंस्क्रियमाण…। ४. निगृह्यमाण…। ५. पोष्यमाण…। ६. त्रिपुण्ड्रकपूर्यमाण। ७. त्रिदण्डकम्, सन्क्रियमाणपरिव्राजकम्। ८. नरहरिवराहरूपम्। ९. मधुरोपवनमिव।

दर्पितधेनुकम् , उदयनमिवानन्दितवत्स-कुलम् , किम्पुरुषाधिराज्यमिव मुनिजन-गृहीत-कल-साभिषिच्यमानद्रुमम् , निदाघसमयावसानमिव आसन्न-जलप्रपातम् , जलधरसमयमिव-वनगहन-मध्य-सुख-सुप्त-हरिम् , हनूमन्तमिव शिला-शकल-प्रहार-सञ्चूर्णिताक्षास्थिसञ्चयम् ,

अत्र 'शेषाद्विभाषा' इत्यनेन वैकल्पिककप्प्रत्ययः । पक्षे तु-बलावलीढः शक्तिमान् दर्पितो गर्वितश्च धेनुक एतन्नामा दैत्यो यस्मिन् तं तादृशम् ।

मथुरायां धेनुकासुरं श्रीकृष्णो निहतवानिति श्रीमद्भागवतीया कथा ।

उदेति । उदयनम् एतत्संज्ञकं पाण्डवकुलोत्पन्नं कौशाम्बीनृपतिमिव, आनन्दितं तृणसलिलदानादिना परितोषितं वत्सकुलं गोवत्सगुणो यत्र तं तादृशम्, पक्षे—आनन्दितं सदाचरणादिना सन्तोषितं वत्सकुलं वत्सप्रान्तीयजनमण्डलं येन तं तादृशम्, तस्य वत्सप्रान्तनृपतित्वात् ।

पुरा किल वत्सदेशाधिपतिरुदयनः स्वाः प्रजाः नीतिमार्गेण संरक्षन् ताः सन्तोषयामासेति कथा सोमदेवभट्टविरचिते कथासरित्सागरे जिज्ञासुभिरवलोकनीया ।

किम्पुरुषेति । किम्पुरुषाणां किन्नराणाम् अधिराज्यं प्रभुत्वमिव, मुनिजनैः ऋषिगणैः गृहीता आत्ताः कलसाः सलिलपूर्णघटाः तैः अभिषिच्यमाना आभिषेकं क्रियमाणा द्रुमा वृक्षा यत्र तं तादृशम्, पक्षे—मुनिजनगृहीतकलसैः ऋषिगणगृहीतघटैः अभिषिच्यमानः द्रुमो नामाधिपतिः यस्मिन् तत् तादृशम् ।

किम्पुरुषाणां द्रुमो नाम राजाभूदित्यस्ति प्रसिद्धिः । तञ्च मुनयः किम्पुरुषराज्ये अभिषेकञ्चक्रुरिति तत्रैव कथासरित्सागरे उपलभ्यते ।

निदाघेति । निदाघसमयो ग्रीष्मकालः तस्यावसानं शेषमिव, आसन्नौ समीपस्थायिनौ, जलं वापीसलिलं प्रपातो निर्झरश्च तौ यस्य तं तादृशम् 'प्रपातो निर्झरेऽतटे' इति मेदिनी, पक्षे—आसन्नः समीपस्थः जलप्रपातः मेघजलपतनं यस्य तत् तादृशम् ।

जलधरेति । जलधरसमयो वर्षाकालः तमिव, वने विपिने यद्गहनं गह्वरं तस्य मध्येऽन्तः सुखेन विघ्नाभावादशङ्कितेन सुप्ता निद्रामुपगताः सिंहा मृगेन्द्रा यत्र तं तादृशम्, पक्षे—वनस्य क्षीरसमुद्रजलस्य गहने गह्वरमिव गम्भीरे मध्येऽन्तः सुखेन आनन्देन सुप्तो निद्रितो हरिर्विष्णुः यस्मिन् तं तादृशम् । 'वनं प्रस्रवणे गेहे प्रवासेऽम्भसि कानने' इति हैमः, 'गहनं गह्वरे दुःखे वने' इति त्रिकाण्डशेषः । आषाढश्रावणमासौ वर्षासमयौ, तत्राषाढे हरिः स्वपिति; भाद्रे च पार्श्वं परिवर्तते; कार्त्तिके च उत्तिष्ठतीति पुराणप्रसिद्धिः ।

हनूमन्तमिति । हनूमन्तं वायुतनयमिव, शिलाशकलस्य पाषाणखण्डस्य प्रहारेण निपातनेन सञ्चूर्णितः तैलसम्पादनार्थं पिष्टः अक्षाणां विभीतकफलानाम् अस्थिसञ्चयो मध्यप्रदेशसमूहो यस्मिन् तं तादृशम्, पक्षे शिलाशकलप्रहारेण सञ्चूर्णितः भञ्जितः अक्षस्य अक्षाभिधदशाननसुतस्य अस्थिसञ्चयो येन तं तादृशम् । 'अक्षो ज्ञानात्मशकटव्यवहारेषु पाशके । रुद्राक्षे रावणौ सर्पविभीतकतरावपि ॥' इति हैमः ।

वायुतनयो हि लङ्कादाहानन्तरं यथेच्छया चैत्यप्रासादभञ्जने प्रवृत्तस्तदा राक्षसा रावणमुपेत्य प्रोचुः—राजन् ! नायं वानररूपधारी किन्तु लङ्काविनाशाय कश्चित् काल एव, अतस्तत्प्रतीकारोऽनुपदमेव चिन्तनीयः । तन्निशम्य जातक्रोधोऽक्षनामानमात्मजं सबलं तद्धननाय प्रेषयामास । तत्रोपेत्य च युद्धे युध्यमानं तं हनूमान् निहतवान् इति रामायणीयलङ्काकाण्डीया कथा ।

मथुराके उपवनके समान वह बलावलीढ दर्पित धेनुक था (मथुरामें बलरामने उद्धत धेनुकासुरको मारा था, आश्रममें बलवती तेजस्विनी हथिनियाँ थीं)। उदयनके समान वह वत्स-कुलको आनन्द देता था (उदयनने अपने वत्स-कुलको आनन्दित किया था, आश्रममें बछड़ोंको आनन्द होता था)। किंपुरुष-राज्यके समान वहाँ जल-कलस लेकर ऋषि द्रुमाभिषेक करते थे (किंपुरुष राज्यमें द्रुम नामक राजाका अभिषेक हुआ था, आश्रममें ऋषि वृक्ष सींचते थे)। ग्रीष्मऋतुके अन्तके समान जल-प्रपात समीप था (ग्रीष्मके अन्तमें वर्षा होती है, आश्रमके समीप ही जलका झरना था)। वर्षाकालके समान वहाँ वनगहनके मध्यमें हरि आरामसे शयन करते थे (वर्षाऋतुमें हरि = नारायण समुद्रमें शयन करते हैं, आश्रमके वनमें सिंह शयन करते थे)। हनुमान्के

१. जलकलशा''' । २. प्रत्यासन्न''' । ३. प्रसुप्त । ४. अनिलसुतमिव । ५. शिलाशकलसञ्चूर्णिताक्षास्थि''' ।

खाण्डव-विनाशोद्यतार्जुनमिव प्रारब्धाग्निकार्य्यम्, सुरभिविलेपनधरमपि सतताविर्भूत-धूमगन्धम्, मातङ्ग-कुलाध्यासितमपि पवित्रम्, उल्लसित-धूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्, परिपूर्णद्विजपति-मण्डल-सनाथमपि सदा-सन्निहित-तरु-गहनान्धकारम्, अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकमाश्रममपश्यम्।

यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु, तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, कण्ठ-

खाण्डवेति। खाण्डवस्य एतत्संज्ञकवनस्य विनाशे भस्मीकरणे उद्यतः तत्परो योऽर्जुनः पार्थः तमिव प्रारब्धम् उपक्रान्तम् अग्निकार्यं हवनं यस्मिन् तं तादृशम्, पक्षे—प्रारब्धं भस्मोपद्रवनिराकरणेनोपक्रान्तम् अग्निकार्यं वह्नितर्पणं येन तं तादृशम्। अत्रत्येतिवृत्तं प्रागेव प्रतिपादितम्।

'अब्जयोनिमिव' इत्यारभ्य 'खाण्डव-विनाशोद्यतार्जुनमिव' इत्यन्तं पूर्णोपमालङ्कारः। 'जलधरसमयमिव' इत्यत्र हि पूर्णोपमा, 'वनगहन' इत्यत्र पुनरुक्तवदाभासालङ्कारश्चेत्यनयोः सङ्करः।

सुरभीति। सुरभि घ्राणतृप्तिजनकं 'सुरभिर्घ्राणतर्पणः' इत्यमरः, विलेपनम् अङ्गरागोचितं चन्दनादिकं धरतीति सः, तं तादृशमपि, सततं निरन्तरम् आविर्भूतः प्रकटितो धूमगन्धः वह्निकेतनसौरभो यस्मात्तं तादृशं सौरभप्रकटनसम्भवे धूमगन्धप्रकटनाद्विरोधः, सुरभेः गोः 'सुरभिर्गवि च स्त्रियाम्' इत्यमरः, विलेपनं गोमयं यस्यां सा तथोक्ता धरा पृथ्वी यत्र तं तादृशमिति तत्परिहारः।

मातङ्गेति। मातङ्गकुलेन अन्त्यजगणेन अध्यासितमपि आश्रितमपि पवित्रं पूतमिति विरोधः, मातङ्गकुलेन गजयूथेन अध्यासितम् इति तत्परिहारः। 'मातङ्गः श्वपचे गजे' इति विश्वः।

उल्लसितेति। उल्लसितम् ऊर्ध्वमुत्थितं धूमकेतुशतम् उत्पातग्रहशतं यत्र तथोक्तमपि प्रशान्तोपद्रवं प्रशमितविघ्नमिति विरोधः, धूमकेतवो वह्नयस्तेषां शतं समूहो यत्रेति तत्परिहारः। 'धूमकेतुः स्मृतो वह्नावुत्पातग्रहभेदयोः' इति विश्वः।

परिपूर्णेति। परिपूर्णेन समन्ताद्भृतेन द्विजपतिमण्डलेन चन्द्रमण्डलेन सनाथः संयुतस्तं तथोक्तमपि, सदा सर्वस्मिन् काले सन्निहितः निकटस्थायी तरुगहनेषु वृक्षगह्वरेषु अन्धकारः तमो यत्र तं तादृशमिति विरोधः, परिपूर्णेन ज्ञानपूर्णेन द्विजपतिमण्डलेन उत्तमब्राह्मणसमूहेन सनाथस्तं तादृशमिति तत्परिहारः। 'द्विजराजः शशधरः' 'दन्ता विप्राण्डजा द्विजाः' इत्यमरः।

'सुरभिविलेपनधरमपि' इत्यारभ्य 'परिपूर्णे'त्यन्तं विरोधाभासोऽलङ्कारः।

अतीति। अतिरमणीयम् अत्यन्तमनोहरम् अपरम् अतिरिक्तं ब्रह्मलोकं सुरलोकमिव आश्रमं तपोभूमिम् अपश्यम् अद्राक्षम्। इह ब्रह्मलोकमिवेति द्रव्योत्प्रेक्षा।

यत्र चेति। अपि चेति चकारस्यार्थः। यत्र यस्मिन् आश्रमे, मलिनता मालिन्यं हविर्धूमेषु हुताग्निकेतुषु न चरितेषु लोकानां व्यवहारेषु हिंसामात्सर्यादिपापाचारस्तत्र नासीदित्यर्थः। सर्वत्रात्मभावनया स्वच्छान्तःकरणत्वादित्याशयः। मुखरागो मुखस्य रक्तिमा शुकेषु कीरेषु न कोपेषु, अत्र निमित्तसप्तमी अत एव कोपनिमित्तकं वैरूप्यं मुखे नासीदित्यर्थः क्रोधस्यैवानुदयात्। तीक्ष्णता चर्मास्थिभेदनयोग्यः सामर्थ्यविशेषः कुशाग्रेषु दर्भमूलप्रदेशेषु, स्वभावेषु प्रकृतिषु तीक्ष्णता क्रूरता नासीत् शुद्धान्तःकरणत्वात्। चञ्चलता चाञ्चल्यं कदलीदलेषु रम्भापत्रेषु न मनःसु चित्तेषु चञ्चलता अधीरता उपद्रवाभावात्। कोकि-

समान वहाँ प्रस्तरोंके टुकड़ोंकी चोटीसे अक्षके अस्थिसञ्चयका चूर्ण किया जाता था (हनुमान्ने रावणके पुत्र अक्षयकुमारकी हड्डियाँ तोड़ी थीं, आश्रममें बहेड़ेकी गुठलियाँ तोड़ी जाती थीं)। खाण्डव-वन भस्म करनेमें उद्यत हुए अर्जुनके समान वहाँ अग्निकार्यका आरंभ हुआ था (वनमें अर्जुनने अग्निको भस्म करनेमें सहायता दी थी, आश्रममें होम प्रारंभ हुआ था)। सुरभिविलेपन गोबरके होनेपर भी वहाँ निरन्तर धूमकी गन्ध निकलती थी। मातङ्ग (चांडाल, हाथी) कुलका वास होनेपर भी वह पवित्र था। बहुसंख्यक धूमकेतु = (केतु, होमकी अग्नि) वहाँ दीखते थे तथापि उपद्रव कुछ भी नहीं होता था। द्विजपति = (चन्द्र, श्रेष्ठ ब्राह्मण) समस्त मण्डल वहाँ होनेपर भी समीपके वृक्षोंकी झाड़ीमें निरन्तर अन्धकार ही रहता था।

जिस आश्रममें मलिनता = कालोंच केवल होमाग्नि-धूममें ही थी, किन्तु किसीके चरित्रमें मलिनता =

१. हव्यधूमगन्धम्। २. मातङ्गक। ३. सहस्र···।

ग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, मेखलाबन्धो व्रतेषु नेर्ष्याकलहेषु, स्तनस्पर्शो होमधेनुषु न वनि[१]तासु, पक्षपातः कृकवाकुषु[२] न विद्याविवादेषु, भ्रान्तिरनलप्रदक्षिणेषु[३] न शास्त्रेषु[४], वसुसङ्कीर्त्तनं दिव्यकथासु न तृष्णासु[५], गणना रुद्राक्ष-वलयेषु न शरीरेषु, मुनि-बाल-नाशः क्रतु-दीक्षया न मृत्युना, रामानुरागो रामायणेन न यौवनेन, मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन।

लेषु परभृत्सु चञ्चूरागः लोचनारुण्यम्, न परकलत्रेषु अन्यस्त्रीषु चञ्चूरागः लोचनयोरासक्तिः तदभिलाषाभावात्। कमण्डलुषु कुण्डिकासु कण्ठग्रहो गलधारणम्, किन्तु सुरतेषु आलिङ्गनेषु न, मुनीनामूर्द्ध्वरेतस्त्वेन तदसत्त्वादित्याशयः। व्रतेषु उपनयनादिनियमेषु मेखलायाः काञ्च्याः बन्धो बन्धनम्, किन्तु ईर्ष्याकलहेषु ईर्ष्यानिमित्तकविग्रहेषु मेखलाबन्धः खड्गमुष्टिधारणं न, मुनीनामीर्ष्याया एवानुपलम्भात् 'मेखला खड्गबन्धे स्यात् काञ्चीशैलनितम्बयोः' इति मेदिनी। होमधेनुषु होमनिमित्तिकगोषु स्तनस्पर्शः दुग्धदोहनम्, किन्तु कामिनीषु वनितासु न स्तनस्पर्शः न कुचमर्दनं विषयासक्तयनुदयात्। कृकवाकुषु कुक्कुटपक्षिषु पक्षपातः छदाभ्यां पतनम्, किन्तु विद्याविवादेषु शास्त्रार्थेषु न पक्षपातः निर्णायकस्य वादिप्रतिवादिनोरन्यतरस्य नसाहाय्यविधानं तस्यानुचितत्वात्। 'कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः' इत्यमरः। 'विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय। खलस्य साधोर्विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥' इति। अत्र सर्वविधपक्षिण एव पक्षाभ्यां पतनसम्भवे ह्यत्र कृकवाकुमात्रस्यैव पक्षपतनदर्शनादविशेषे विशेषाख्यो दोषः समापतति तेनात्र 'पक्षिषु' इति पाठो विधेयः, एवञ्च नोक्तशङ्कालेशः। अनलप्रदक्षिणेषु हवनाग्निप्रदक्षिणकर्मसु भ्रान्तिः चतुर्दिक्षु भ्रमणम्, किन्तु शास्त्रेषु वेदादिषु न भ्रान्तिर्भ्रमः अयथार्थज्ञानम्, तत्त्वतो निश्चयात्। दिव्यकथासु परलोकीयाख्यानप्रवचनेषु वसूनां द्युप्रभृतीनामष्टानां देवविशेषाणां सङ्कीर्तनं सम्यक्प्रकारेण कथनम्, किन्तु तृष्णासु वित्तलिप्सानिमित्तकं वसुना वित्तस्य सङ्कीर्त्तनं न, ऋषीणां धनलिप्साया एवाभावात्। रुद्राक्षाणां वलयेषु कटकाकारमालासु 'कटकं वलयोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः, गणना जपादौ संख्या, किन्तु शरीरेषु देहेषु न गणना नापेक्षा, तत्र तेषामत्यन्तनिस्पृहत्वात्। क्रतुदीक्षया यज्ञप्रारम्भेण (करणेन) मुनीनाम् ऋषीणां बालनाशः केशकर्त्तनम्, पूर्वदिन एव संयमादिविधानायैवंविधानम्; किन्तु मृत्युना मरणेन बालनाशः बालकविध्वंसो न, तपोमाहात्म्येनासामयिकमरणाभावात्। रामायणेन रामायणीयगुणगणाकर्णनेन रामे दशरथात्मजे अनुरागः प्रेम, किन्तु यौवनेन तारुण्योचितमदाविर्भावेण रामायां कामिन्याम् नानुरागः नासक्तिः, तपःप्रभावेण तेषां युवावस्थायामपि कामोद्रेकाभावात्। जरया वृद्धावस्थया मुखस्य वदनस्य भङ्गविकारः त्वगादिशैथिल्यरूपो विकारः, किन्तु धनाभिमानेन वित्तगर्वेण मुखस्य भङ्गविकारः अन्येषु भ्रूकुट्यादिविकृतिर्न, तेषां वित्तगर्वयोर्द्वयोरप्यसत्त्वात्।

इह 'मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु' इत्यारभ्य 'मुखभङ्गविकारो जरया न धनाभिमानेन' इत्यन्तं यावत् सर्वस्मिन्नपि वाक्ये प्रश्नाभावेऽपि नञा अन्यस्य निराकरणात् श्लेषसङ्कीर्णा शाब्दी परिसङ्ख्यालङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे—

'प्रश्नादप्रश्नतो वाऽपि कथिताद्वस्तुनो भवेत्। तादृगन्यव्यपोहश्चेच्छाब्द आर्थोऽथवा तदा॥
परिसङ्ख्या'…….. ।

परहिंसादि पापप्रवृत्ति नहीं थी। तोतोंके मुँहपर ही ललाई थी, किन्तु क्रोधसे किसीका भी मुँह लाल नहीं होता था। कुशाग्रमें ही तीक्ष्णता थी, किन्तु किसीके स्वभावमें क्रूरता नहीं थी। केलेके पत्तेमें ही चञ्चलता थी, किन्तु किसीके मनमें नहीं थी। चक्षूराग=(नेत्रोंमें ललाई, नयनप्रीति) कोकिलोंमें ही था, परस्त्रियोंमें नहीं। कण्ठग्रह (गर्दन पकड़ना, कंठालिंगन) कमण्डलमें ही था, रतिविलासमें नहीं। मेखलाबन्ध (मौञ्जीबन्धन, जंजीर बाँधना) व्रतमें ही था, ईर्ष्यामूलक किसीसे विवादमें नहीं। होमधेनुके ही स्तनोंका स्पर्श होता था, किन्हीं स्त्रियोंके नहीं। मुर्गों ही का पक्षपात=(पंखोंका गिराना) होता था, किसीके शास्त्रीय विवादमें नहीं। अग्निकी प्रदक्षिणामें ही भ्रान्ति (परिभ्रमण, भ्रम) होती थी, शास्त्रार्थमें नहीं। दिव्यकथाओंमें ही वसु-संकीर्त्तन (देवविशेषोंका वर्णन, द्रव्यका गिनना) होता था, धनतृष्णामें नहीं। रुद्राक्षकी मालाकी गणना (गिनती, आदर) होती थी, शरीरकी नहीं। ऋषि-बालों (मुनियोंके केश, मुनियोंके बालक) का नाश यज्ञ-दीक्षामें ही होता था, मृत्युसे नहीं। रामानुराग (राममें भक्ति, स्त्रीमें अनुराग) रामायणमें होता था, यौवनमें नहीं। मुख पर भङ्ग-विकार

१. कामिनीषु। २. कुक्कुटेषु। ३. प्रदक्षिणासु। ४. शास्त्रार्थेषु। ५. जलतृष्णासु।

यत्र च महाभारते शकुनि-वधः, पुराणे वायु-प्रलपितम्, वयः परिणामे[1] द्विज-पतनम्, उपवन-चन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्त्वम्, एणकानां गीतश्रवण[2]व्यसनम्, शिखण्डिनां[3] नृत्य-पक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः, मूलानामधोगतिः।

(इति जावाल्याश्रमवर्णनं समाप्तम्)

यत्र चेति। इहापि चस्य अपि चेत्यर्थः। यत्र आश्रमे महाभारत एव शकुनिवधः दुर्योधनमातुलस्य सहदेवेन मारणं श्रूयते स्म, न तु यस्मिन् कस्मिन् स्थले शकुनेः खगस्य वधो मारणम् अवलोकितः, तेषां हिंसाया अभावात्। पुराणे व्यासनिर्मिताष्टादशपुराणेषु मध्ये वायुपुराणशास्त्रे एव वायोः पवनदेवतायाः प्रलपितं जल्पितं श्रूयते, न त्वन्यत्र क्वापि भवने वायुना वायुविकारेणोन्मादादिना प्रलपितं कस्यापि व्यर्थवचनम् आसीत् तथाविधरुज अनुत्पन्नत्वात्। वयःपरिणामे वृद्धावस्थायामेव द्विजानां दन्तानां 'दन्ता विप्राण्डजा द्विजाः इत्यमरः', पतनं पातः, न तु महापातकादौ द्विजानां विप्राणां पतनं पातित्वं स्वाचारभ्रंशो वा तेषां तदभावात्। उपवनस्य आरामस्य चन्दनेषु चन्दनवृक्षेष्वेव जाड्यं शीतलत्वम् न तु आश्रमवर्ति लोकेषु जाड्यं प्रज्ञाहीनत्वं सर्वेषामेव पूर्णशिक्षितत्वात्। अग्नीनामेव वह्नीनामेव भूतिमत्त्वं भस्मवत्त्वम्, न तु मुनिजनानां भूतिमत्त्वं वित्तसम्पद्वत्त्वम्, वित्तेकत्रीकरणविधानाभावात्। एणकानां मृगाणामेव गीतश्रवणे गानाकर्णने व्यसनम् आसक्तिः, न तु ऋषीणाम्, तेषां क्वापि व्यसनाभावात्। शिखण्डिनामेव मयूराणामेव नृत्ये नर्तनसमये पक्षस्य छदस्य पातः पतनं कस्यापि भ्रंशनमित्यर्थः, न तु ऋषीणां नृत्ये लास्यविषये पक्षपातः अभिलाषा, तेषां सर्वस्मिन्नपि विषये निरभिलाषित्वात्। भुजङ्गमानां सर्पाणामेव भोगः शरीरम्, न तु ऋषीणां भोगो माल्यगन्धचन्दनकामिन्यादिसम्भोगोत्पन्नं सुखम्, सर्वभोगानां परित्यागात्। 'भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः' इत्यमरः। कपीनां मर्कटानामेव श्रीफलेषु बिल्वफलेषु अभिलाषः इच्छाविशेषः, न तु ऋषीणां श्रीर्लक्ष्मीः सैव फलं काम्येष्टिफलं तत्र अभिलाषः अत्युत्कटेच्छा, तेषां मोक्षाभिलाषित्वेन काम्यकर्मानुष्ठानविधानाभावात्। मूलानां वृक्षव्रतत्यादिकन्दानामेव मूलकानामेव वा अधोगतिः भूतलाधोदेशगमनम्, न तु ऋषीणाम् अधोगतिः नरकगमनं पापरहितत्वात्।

इहापि पूर्ववदेव 'महाभारते शकुनिवधः' इत्यारभ्य 'मूलानामधोगतिः' इत्यन्तं यावत् सर्वस्मिन्नपि वाक्ये प्रश्नाभावेऽपि स्वाभिप्रायेणान्यस्य निराकरणात् श्लेषानुप्राणिता आर्थीपरिसंख्यालङ्कारः। लक्षणन्तु पूर्वमेव प्रतिपादितम्। पूर्वत्र शाब्दी अत्र त्वार्थीति भेदो ज्ञेयः। अत्रत्यसन्दर्भः कीदृशोऽतिरमणीय इति सहृदया एव प्रमाणम्।

इति 'चन्द्रकला' टीकायां जाबाल्याश्रमवर्णनं समाप्तम्।

(झुर्रीं पड़ना, विकृति) बुढ़ापेमें ही होता था, धनाभिमानसे नहीं। इसी प्रकार शकुनि (दुर्योधनका मामा, पक्षी) का वध महाभारतमें ही था, वायु-प्रलाप (वायुदेवका भाषण, अनर्थक प्रलाप) पुराणोंमें ही था, द्विज-पतन (दाँत गिरना, ब्राह्मणोंकी अवनति) वृद्धावस्थामें ही होता था, जाड्य (शीतलता, मूर्खता) उपवनके चन्दन-वृक्षोंमें ही था, भूति (भस्म, धन) अग्निमें ही थी, गीत सुननेमें आसक्ति मृगोंकी ही थी, नृत्य-पक्षपात (नृत्यमें पंख गिरना, नृत्यमें अभिरुचि) मयूरोंका ही था, भोग (फन, स्त्री आदिका सुख) साँप ही को था, श्रीफल (विल्वफल, धनके फल) का प्रेम बन्दरों ही को था और अधोगति (नीचे जाना, नरक) केवल वृक्षोंके मूलकी ही थी, ऋषियोंकी नहीं।

इस प्रकार 'विद्योतिनी' टीका में जाबाल्याश्रम वर्णन समाप्त।

---

१. परिणामेन। २. इह 'श्रवण' इति पाठः क्वचिन्नास्ति। ३. शिखण्डिनीनां गीतनृत्यपक्षपातः।

(जाबालिवर्णनम्)

तस्य चैवंविधस्य मध्यभाग[1]मलङ्कुर्वाणस्य, अलक्तको[2]लोहित-प[3]ल्लवस्य मुनिजनाल[4]म्बित-कृष्णाजिन-जल-कर[5]ङ्क-सनाथशाखस्य तापसकन्यकका[6]भिमूलभाग-दत्त-पीत[7]-पिष्टातकानेक-पञ्चाङ्गुलस्य हरिणशिशुभिः परिपीयमा[8]नालवाल[9]-सलिलस्य मुनिकुमारकाबद्ध-कुशचीरदाम्नः हरितगोमयोपलेप[10]नं-विविक्ततल[11]स्य, तत्क्षण कृत[12]-कुसुमोपहार-रमणीयस्य नातिमहतः

तस्येति। एवंविधस्य पूर्वोक्तदिशा वर्णितस्य तस्य आश्रमस्य मध्यभागं मध्यदेशम् अलङ्कुर्वाणस्य शोभमानस्य, रक्ताशोकतरोरधच्छायायामुपविष्टं 'भगवन्तं जाबालिमपश्यम्' इति वक्ष्यमाणेन क्रियया सम्बन्धः। अत्र षष्ठ्यन्तानि पदानि रक्ताशोकतरोः, द्वितीयान्तानि च जाबालिमित्यस्य विशेषणानि बोध्यानि। अलक्तकवत् यावकवत् आलोहितानि किञ्चिद्रक्तानि पल्लवानि किसलयानि यस्य तस्य तादृशस्य। मुनिजनैः ऋषिगणैः आलम्बिताः स्थापिताः कृष्णाजिनानि कृष्णमृगचर्माणि जलकरङ्काः नारिकेलास्थिरचिताः पात्रविशेषाश्च यद्वा जलकरङ्काः जलरक्षणार्थं कमण्डलवः तैः सनाथाः संयुताः शाखाः स्कन्धा यस्य तस्य तादृशस्य। 'करङ्को मस्तके शस्ये नारिकेलफलास्थिनि' इति विश्वः। 'करकस्तु पुमान् पक्षिविशेषे दाडिमेऽपि च। द्वयोर्मेघोपले न स्त्री करङ्के च कमण्डलौ॥' इति मेदिनी।

तापसकन्यकाभिः मुनिकुमारिकाभिः मूलभागे आलवाले मूलप्रदेशे दत्तानि निहितानि पीतपिष्टातकैः हरिद्रारूपपटवासचूर्णैः अनेकानि विविधानि पञ्चाङ्गुलानि करस्थपञ्चाङ्गुललक्ष्माणि यस्य तस्य तादृशस्य। हरिणशिशुभिः मृगबालकैः परिपीयमानं समन्तादास्वाद्यमानम् आलवालस्य मूलप्रदेशस्थावापस्य सलिलं जलं यस्य तस्य तादृशस्य। मुनिकुमारकैः ऋषिबालकैः आबद्धानि समन्तात्परिवेष्टितानि कुशचीराणां दर्भैः विधास्यमानवस्त्राणां दामानि रज्जवो यस्मिन् तस्य तादृशस्य। हरितेन हरिद्वर्णेन सरसेन गोमयेन गोःपुरीषेण यदुपलेन लिम्पनं तेन विविक्तं पूतं तलम् अधोदेशो यस्य तस्य तादृशस्य। तस्मिन्नेव क्षणे काले कृतेन विहितेन कुसुमोपहारेण पुष्पढौकनेन रमणीयस्य कमनीयस्य। नातिमहतो नातिविस्तृतस्य परिमण्डलतया गोलाकारतया कारणेन विस्तीर्णः अतिदीर्घः अवकाशः अधःस्थायी छायाप्रदेशो यस्य तस्य तादृशस्य। रक्तानां लोहितानाम् अशोकानां पुष्पाणां तरुः वृक्षः तस्य इत्येवार्थः, न तु रक्तो यः अशोकतरुः तस्य प्रसिद्ध्यभावात्। अधच्छायायां नीचस्थानातपे 'छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपः' इत्यमरः। उपविष्टम् आसीनम्।

इस प्रकार उस आश्रमके मध्यस्थानको अलंकृत करता अनतिबृहत् (न छोटा न बड़ा) लाल अशोकका एक वृक्ष था। उसके पत्ते लाखके समान लाल थे। ऋषियोंने उसकी डालियोंपर काले मृगचर्म और जल-पात्र लटका दिये थे। तापस-कन्याओंने उसके मूल भागपर हल्दीके बहुतसे पञ्चाङ्गुलके थापे लगा दिये थे। उसके चारों ओर आलवाल (क्यारी) बना था। हरिणके बच्चे उसमेंसे जल पीते थे। ऋषि-कन्याओंने उसमें कुशमय-वस्त्र और हार बाँध दिये थे। गायके तत्काल निकले गोबरसे उसका तल लीप दिया गया था। उसी समय

---

१. मध्यभागमण्डलम्। २. अलक्तलोहित'''। ३. लोलपल्लवस्य। ४'''अवलम्बित। ५'''करक'''। ६'''कुमारिकाभिरालवालदत्त'''। ७'''पीतविष्ट'''। ८. पीयमान,'''आपीयमान। ९. आलवालक'''। १०'''उपलिप्त'''। ११. भूतलस्य। १२'''रचित'''।

परिमण्डलतया विस्तीर्णावकाशस्य रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टम्, अत्युग्रतपोभि-र्भुवनमिव सागरैः कनकगिरिमिव कुलाचलैः क्रतुमिव वैतान-वाह्निभिः कल्पान्तदिवस-मिव रविभिः कालमिव कल्पैः समन्तान्महर्षिभिः परिवृतम्, उग्र-शाप-भीतयेव कम्पित-देहया प्रणयिन्येव विहित-केशग्रहया क्रुद्धयेव कृत-भ्रूभङ्गया मत्तयेवाकुलितगमनया प्रसाधितयेव प्रकटित-तिलकया जरया गृहीतव्रतयेव भस्मधवलया धवलीकृत-विग्रहम्,

---

अत्युग्रेति। अत्युग्राणि अतितीक्ष्णानि तपांसि येषां तैस्तादृशैः महर्षिभिरित्यस्य विशेषणानि। सागरैः समुद्रैः भुवनं विष्टपमिव, कुलाचलैः कुलाद्रिभिः कनकगिरिमिव सुमेरुपर्वतमिव, वितानस्य यज्ञस्य इम इति वताना ये अग्नयः दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयाः तैः क्रतुमिव यज्ञमिव 'वितानो यज्ञविस्तारोल्लोचेषु क्रतुकर्मणि' इति विश्वः। रविभिः द्वादशसूर्यैः कल्पान्तदिवसमिव युगान्तदिनमिव तस्मिन् समये तत्पूर्वं च द्वादशसूर्योदयस्य पुराणविख्यातत्वात्। कल्पैः युगान्तैः कालमिव अखण्डं समयमिव, समन्तात् सर्वतः महर्षिभिस्तापसैः परिवृतं परिवेष्टितम्।

अत्रैकस्योपमेयस्य बहुनामुपमानानां निरूपणान्मालोपमालङ्कारः। तदुक्तं दर्पणे—

'मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते'। इति।

उग्रेति। उग्रः कठिनो यो जाबालेः शापः अभिसम्पातः तेन भीतया त्रस्तया नार्येव, कम्पितः चालितो देहो वपुर्यया, पक्षे यस्यास्तया तादृश्या। प्रणयिन्येव कामिन्येव, विहितः केशग्रहः कचावलम्बनं यया तया तादृश्या। रतिकलहे कान्तापि केशग्रहं विधत्ते इयमपि केशे लग्नेत्यर्थः। क्रुद्धया कोपाविष्टया नार्येव, कृतो विहितो भ्रूभङ्गः भ्रुवोः शैथिल्यं भ्रुकुटी च यया तया तादृश्या। यथा क्रुद्धा भ्रूभङ्गं विधत्ते तथेयमपि कृतवतीत्यर्थः, मत्तया मद्यपानोन्मत्तया नार्येव, आकुलितम् उच्चावचीकृतं गमनं गतिर्यया, पक्षे यस्यास्तया तादृश्या, मद्यपानोन्मत्तापि स्खलद्गतिका भवति इयमपि तथैव सञ्जाता। प्रसाधितया भूषितया नार्येव, प्रकटितानि अभिव्यक्तानि तिलकानि देहे श्यामवर्णचिह्नानि, भाले तिलकञ्च यया तया

वहाँ अनेकविध फूलोंका उपहार दिया गया था, उससे वह और भी अधिक रमणीक प्रतीत होता था। वह बहुत बड़ा नहीं था तो भी चारों ओर फैलनेसे उसका अवकाश विस्तृत प्रतीत होता था। उसकी छायामें बैठे भगवान् महर्षि जाबालि-मुनिको मैंने देखा। जिस प्रकार समुद्रोंसे भुवन, कुलपर्वतोंसे मेरु, यज्ञकी अग्नियोंसे अग्नि, द्वादश सूर्योंसे प्रलय-दिवस और कल्पोंसे काल परिवेष्टित (घिरा) रहता है, उसी प्रकार महामुनियोंसे जाबालि परिवेष्टित थे। भयङ्कर श्रापके भयसे मानो शरीर कँपाती, प्रियतमाके समान केशोंका ग्रहण करती (प्रियतमा केश पकड़ लेती है, बुढ़ापेने केशोंको अति शुभ्र कर दिया था), क्रुद्धके समान भ्रू-भङ्ग करती (कुपिता स्त्री भौं चढ़ा लेती है, बुढ़ापेने भौंओंमें सिलवटें डाल दी थीं), उन्मत्तके समान गमनमें स्खलन करती (उन्मत्तके पैर सीधे नहीं पड़ते, बुढ़ापेमें भी मनुष्यके पैर डिगमिगाने लगते हैं), आभूषण-युक्त स्त्रीके समान तिलक प्रकट करती (आभूषण-युक्त स्त्री मस्तकमें तिलक लगाती है, बुढ़ापेने शरीरमें काले-काले चिह्न प्रकट कर दिये थे),

---

१. उग्रतपोभिः। २ कुलपर्वतैः। ३ वैतानिक…। ४ उग्रशापकम्पितदेहया।

आयामिनीभिः पलित-पाण्डुराभिः तपोभिर्विजित्य मुनिजनमखिलं धर्म्मपताकाभिरिवोच्छ्रिताभिः अमरलोकमारोढुं पुण्य-रज्जुभिरिवोपसंगृहीताभिः अतिदूर-प्रवृद्धस्य तपस्तरोः कुसुम-मञ्जरीभिरिवोद्गताभिर्जटाभिरुपशोभमानम्, उपरचित-भस्म-त्रिपुण्ड्रकेण तिर्य्यक्प्रवृत्त-गङ्गा-स्रोतस्त्रयेण हिमगिरि-शिलातलेनेव ललाटफलकेनोपेतम्, अधोमुख-

---

तादृश्या । अलङ्कृता स्त्री यथा सतिलका भवति तथेयमपि शरीरे तिलकानामुत्पन्नत्वात् । तथा गृहीतव्रतया स्वीकृतकिञ्चिन्नियमया नार्येव भस्म भूतिः तद्वद्धवलया श्वेतया भस्मना धवलया च जरया वृद्धावस्थया धवलीकृतः शुभ्रीकृतः विग्रहो वपुर्यस्य तं तादृशम् ।

अत्र 'उग्रशापभीतयेव' इत्यारभ्य 'गृहीतव्रतयेव' इत्यन्तं यावत् पूर्णोपमालङ्कारः । केवलं विशेषणस्योपादानेऽपि विशेष्यस्य 'नार्या' इत्यस्याध्याहारेण सामञ्जस्यं विधेयम् । केचित्तूत्प्रेक्षां निरूपयन्ति, तन्मते 'नार्या' इत्यस्य नाध्याहार इत्यवधेयम् ।

आयामीति । आयामिनीभिः विस्तीर्णाभिः, पलितेन वृद्धावस्थाप्रयुक्तश्वैत्येन पाण्डुराभिः । पाण्डुरूपाभिः तपसा तेजसा अखिलं समस्तं मुनिजनम् ऋषिगणं विजित्य अभिभूय, उच्छ्रिताभिः उर्ध्वीकृताभिः धर्मपताकाभिरिव धर्मद्योतकध्वजाञ्चलैरिव विद्यमानाभिः । अमरलोकं देवलोकम् आरोढुम् आरोहणं विधातुं पुण्यरज्जुभिरिव पवित्रप्रग्रहैरिव उपसंगृहीताभिः अङ्गीकृताभिः । अतिदूरप्रवृद्धस्य अत्यन्तवृद्धिमुपगतस्य तप एव तरुः वृक्षः तस्मात् उद्गताभिः उत्पन्नाभिः कुसुममञ्जरीभिरिव पुष्पवल्लरीभिरिव जटाभिः सटाभिः उपशोभमानं भूषितम् ।

अत्र 'धर्मपताकाभिरिव' इत्यत्र 'पुण्यरज्जुभिरिव' इत्यत्र च जात्युत्प्रेक्षालङ्कारः । 'तपस्तरोः' इत्यत्र निरङ्गकेवलरूपकम्, 'कुसुममञ्जरीभिरिव' इत्यत्र हि जात्युत्प्रेक्षेत्यनयोरेकाश्रयानुप्रवेशरूपसाङ्कर्यात् सङ्करालङ्कारः ।

उपरचितेति । उपरचितानि विहितानि भस्मना त्रीणि पुण्ड्रकाणि तिर्यक् रेखामयतिलकानि यत्र तेन तादृशेन । अत एव तिर्यक् प्रवृत्तं कुटिलभावेन प्रचलितं त्रिपथगाया गङ्गाया स्रोतस्त्रयं त्रिप्रवाहो यत्र तथोक्तेन, हिमगिरेः हिमालयस्य शिलातलेनेव पाषाणफलकेनेव ललाटफलकेन भालपट्टकेन उपेतं युक्तम् ।

इहोक्तविधशिलातलाप्रसिद्धेर्द्रव्योत्प्रेक्षा ।

अधोमुखेति । अधोमुखी निम्नाश्रिता या चन्द्रकला सुधांशुरेखा तस्या आकारः स्वरूप इव आकारो ययोस्ताभ्यां तादृशाभ्याम्, अवलम्बिता वार्द्धक्यादाश्रिता या वलिः शिथिलं चर्म, तथा च—'बलिर्दैत्यप्र-

---

व्रतधारण करनेवालीके समान भस्म-धवल देख पड़ती (व्रतधारिणी शरीरपर भस्म लगानेसे शुभ्रवर्ण होती है, बुढ़ापा शरीरको भस्मके समान शुभ्र कर देती है), जरा=बुढ़ापेने उनका शरीर श्वेत कर दिया था । उनकी लम्बी और वृद्धावस्थाके कारण शुभ्रवर्ण जटा ऐसी प्रतीत होती थी मानो तपसे समस्त ऋषियोंको जीत कर प्राप्त की हुई ऊँची धर्म-पताका हो, स्वर्गमें आरोहण करने (जाने) के लिए एकत्रित की हुई पुण्यकी डोरियाँ हों और अधिक दूर तक फैले हुए तप-रूपी वृक्षके फूलोंकी मञ्जरी हो । भस्मके त्रिपुण्ड्रसे उनका मस्तक ऐसा प्रतीत

---

१ तपसा । २ उपार्जिताभिः । ३. त्रिपथगा । ४ '''त्रयेणेव'''तलेन । ५ '''पट्टेनोपेतम् ।

चन्द्र-कलाकाराभ्यामवलम्बित-बलि-शिथिलाभ्यां भ्रूलताभ्यामवष्टभ्यमान-दृष्टिम् , अनवरत-मन्त्राभ्यास-विवृताधरपुटतया निष्पतद्भिरतिशुचिभिः सत्यप्ररोहैरिव स्वच्छेन्द्रिय-वृत्तिभिरिव विद्यागुणैरिव[2] करुणारस[3]-प्रवाहैरिव दशनमयूखैर्धवलित-पुरोभागम् उद्वमदमल-गङ्गा-प्रवाहमिव जह्नुम् , अनवरत[4]सोमोद्गारसुगन्धिनिश्वासावकृष्टै[5]र्मूर्त्तिमद्भिरिव शापाक्षरैः[6]

भेदे च करचामरदण्डयोः। उपहारे पुमान् स्त्री तु जरया श्लथचर्मणि ॥' इति मेदिनी। तया शिथिलाभ्यां शैथिल्यान्नेत्रोपरि च्युताभ्यामित्यर्थः, अत एव ताभ्यां भ्रूलताभ्याम् अवष्टभ्यमाना अवलम्ब्यमाना दृष्टिः अवलोकनं सामर्थ्यं यस्य तं तादृशम्।

इह 'चन्द्रकलाया आकार इव आकार' इत्यत्र आर्थी समासगता लुप्तोपमा।

अनवरतेति। अनवरतं निरन्तरं यो मन्त्राभ्यासः मन्त्रजपावृत्तिः तेन विवृतं व्यादत्तम् अधरपुटम् ओष्ठद्वयं यस्य तस्य भावस्तया कारणेन, निष्पतद्भिः, निःसरद्भिः, अतिशुचिभिः अत्यन्तस्वच्छैः, सत्यप्ररोहैरिव सत्यवचनसत्याचारयोरुद्गमैरिव, स्वच्छा अवदाताः पापरहिता या इन्द्रियवृत्तयः चित्तादीनामिन्द्रियाणां कर्माणि ताभिरिव, विद्यागुणैरिव विद्याया आन्वीक्षिक्याद्या ये गुणा विनयादयस्तैरिव, करुणारसप्रवाहैरिव दयारसस्रोतोभिरिव सर्वस्मिन् स्थले स्वच्छत्वादित्याशयः। दशनमयूखैः दन्तरश्मिभिः धवलितः शुभ्रीकृतः पुरोभागः अग्रदेशो यस्य तं तादृशम्। अत एव उद्वमन् दक्षिणश्रोत्राद्बहिरागच्छन् अमलः स्वच्छो गङ्गाप्रवाहो भागीरथी स्रोतो यस्मात्तं तादृशं जह्नुम् एतत्संज्ञकमृषिमिव विद्यमानम्।

अत्र 'सत्यप्ररोहैरिव' इत्यारभ्य 'करुणारसप्रवाहैरिव' इत्यन्तं यावत् वाक्यार्थहेतुकं काव्यलिङ्गमलङ्कारः, उपमा च तथा गुणोत्प्रेक्षेत्येतेतेषां मिथोऽङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

अत्रायमितिहासः—पुरा किल स्ववंशजाभ्युद्दिधीर्षया भगीरथो हि हिमाचलाच्चलितामथ च शङ्करजटायां लीनां गङ्गामवतारयितुं महेश्वरं सिषेवे, प्रसन्नो भगवान् सदाशिवः स्वशिरसस्तामवततार। अथ मार्गे व्रजन्ती सा जह्नोर्यज्ञभूमिं प्लावयामास, ततश्च क्रुद्धेन जह्नुना पीता सा पुनरपि भागीरथप्रार्थनया श्रोत्रविवरान्निःसारिता सती भूतलमाजगामेति। तत एव 'जाह्नवी' इति संज्ञामवाप।

अनवरतेति। इतो द्वितीयान्तानि 'आननम्' इत्यस्य विशेषणानि। अनवरतं निरन्तरं यः सोमः पीतसोमरसः तस्य उद्गारेण विक्षावेण वायुजनिशब्देनेत्यर्थः 'निगारोद्गारविक्षावोद्ग्राहा निगरणादिषु'

होता था मानो गङ्गाकी तीन धाराओंसे युक्त हिमालयका शिला-तल हो। अधोमुख (औंधी) रक्खी हुई चन्द्रकलाके समान तथा सिलवटें पड़नेसे शिथिल हुई दोनों भौंहोंसे उनकी दृष्टि अवरुद्ध हो (रुक) गई थी। मन्त्राक्षरोंके निरन्तर जपनेके कारण अनावृत (खुले) रहते अधर पुटोंमेंसे दन्त-रश्मियाँ बाहर निकल रही थीं जो सत्यके अंकुर, इन्द्रियोंकी स्वच्छ वृत्ति तथा करुणा-रसकी धाराके समान लगती थीं। उनसे आगेका भाग सफेद हो जानेके कारण वे स्वच्छ गंगा-प्रवाहको उगलते जह्नुके समान देखनेमें आ रहे थे। यज्ञमें निरन्तर जो सोमरसका पान किया गया उसके उद्गार (खट्टे मीठे डकार)

१'''मन्त्राक्षराभ्यास। २. क्वचिदयं पाठो नास्ति। ३. करुणरस'''। ४. अविरत, अविरल'''। ५'''निःश्वासाकृ'''। ६. मूर्त्तिमद्भिः शापाक्षरैरिव।

सदामुखभाग-सन्निहितैः परिस्फुरद्भिरलिभिरविरहितम्, अतिकृशतया निम्नतर-गण्ड-गर्त्तम् उन्नततर-हनु-घोणम् आकराल-तारकम् अवशीर्य्यमाण विरल-नयन-पक्ष्ममालम् उद्गत-दीर्घरोम-रुद्ध-श्रवण-विवरम् आनाभिलम्बित-कूर्चकलापमाननमादधानम्, अतिचपलाना-मिन्द्रियाश्वानाम् अन्तःसंयमन-रज्जुभिरिवाततताभिः कण्ठनाडीभिर्निरन्तरावनद्ध-कन्धरम्, समुन्नत-विरलास्थि-पञ्जरम्, अंसालम्बित-धवल-यज्ञोपवीतम्, अनिल-वश-जनित-तनु-तरङ्ग-भङ्गम् उत्प्लवमान-नवमृणालमिव मन्दाकिनीप्रवाहम् अकलुषमङ्गमुद्ध-

इत्यमरः सुगन्धिना सौरभवता निश्वासेन पवनेन अवकृष्टैः आकर्षितैः मूर्त्तिमद्भिः देहवद्भिः शापाक्षरैरिव अभिसम्पातवर्णैरिव, सदा सर्वदा मुखस्य वदनस्य यो भागोऽग्रिमप्रदेशः तत्र सन्निहितैः विद्यमानैः परिस्फुरद्भिः सञ्चरद्भिः अलिभिर्भ्रमरैः अविरहितम् अपरित्यक्तम् । अतिकृशया अत्यन्तक्षीणशरीरतया निम्नतरौ अत्यन्तगम्भीरतरौ गण्डगर्त्तौ अवटीभूतौ कपोलौ यस्मिन् तत् तादृशम् । उन्नततरा अत्युच्चाः हनू चिबुकं कपोलोर्ध्वांशद्वयमिति यावत् घोणा नासिका च यत्र तत् तादृशम्, 'घोणा नासा च नासिके' इत्यमरः, अत्यन्तकृशशरीराणामेवम्भूतमाननं भवत्यवलोकनीयम् । आकराले तेजस्वित्वेन हेतुना अत्यन्तभीषणे तारके कनीनिकायुगलं यस्मिन् तत् तादृशम् । अवशीर्यमाणा नश्यमाना विरला असान्द्रा नयनपक्ष्ममाला नेत्ररोमपङ्क्तिः यस्मिन् तत् तादृशम् । उद्गतैः उत्पन्नैः दीर्घैः विस्तृतैः रोमभिः लोमभिः रुद्धे आच्छादिते श्रवणविवरे श्रोत्ररन्ध्रयुगलं यस्मिन् तत् तादृशम् । आनाभिलम्बितो नाभिपर्यन्तलम्बमानः कूर्चकलापः श्मश्रुसमूहः मुखलोमसमूह इत्यर्थः यस्मिन् तत् तादृशम् आननं मुखम् 'आननं लपनं मुखम्' इत्यमरः, आदधानं धारयन्तम् । अत्र 'शापाक्षरैरिव' इत्यत्र गुणोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

अतिचपलेति । इत आरभ्य 'अङ्गम्' इत्यस्य विशेषणानि । अतिचपलानाम् अतीवचञ्चलानाम्, इन्द्रियाणि घ्राणत्वक्श्रोत्रनेत्ररसनादीनि एव अश्वाः घोटकाः सांसारिकपदार्थान्प्रति जीवानामाकर्षणादित्याशयः । तथा च कठोपनिषदि द्वितीयवल्ल्यां नाचिकेतसं प्रति धर्मराजस्यात्मनिरूपणप्रस्तावे उक्तिः— 'इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्' इति । तेषाम् अन्तर्मध्ये संयमनरज्जुभिरिव नियन्त्रणप्रग्रहैरिव, आततामिः अतिदीर्घाभिः कण्ठनाडीभिः गलप्रदेशस्थस्नायुभिः निरन्तरं सान्द्रं यथा स्यात्तथा अवनद्धा सम्बद्धा कन्धरा ग्रीवा यस्मिन् तत् तादृशम् । समुन्नतं शरीरस्यातिकृशत्वात् समुच्चवत् अवलोक्यमानं विरलम् अनिविडम् अस्थिपञ्जरं कङ्कालं यस्मिन् तत् तादृशम् । अंसे भुजान्तरे आलम्बितं लम्बमानं धवलं शुभ्रं यज्ञोपवीतं यज्ञसूत्रं यस्मिन् तत् तादृशम् । अतएव अनिलवशेन वायुप्रभावेण जनितः उत्पादितः तनूनां सूक्ष्माणां तरङ्गाणां कल्लोलानां भङ्गः कौटिल्यं यत्र तं तादृशम्, तथा उत्प्लवमानं सलिलोपरि विद्यमानं नवं नूतनं मृणालं बिसं तत्र तं तादृशम् मन्दाकिन्या वियद्गङ्गायाः प्रवाहं स्रोत इव अकलुषम् अनाविलं स्वच्छमित्यर्थः अङ्गं शरीरावयवम् उद्वहन्तं धारयन्तम् ।

इह 'इन्द्रियाण्येव अश्वाः' इत्यत्र निरङ्गकेवलरूपकम्, 'संयमनरज्जुभिरिव' इत्यत्र जात्युत्प्रेक्षेत्यनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः । तयोक्तविधकुटिलकृशतरङ्गतुल्यम् अस्थिपञ्जरम्, सलिलोपरि प्लवमाननूतनबिसतन्तुश्च यज्ञसूत्रमित्युपमालङ्कारः ।

होनेसे सुगन्धि निःश्वासवायुसे आकृष्ट होकर अभिशापके मूर्त्तिमान् अक्षरके समान भ्रमरगण, सर्वदा मुखके समीप रहकर भ्रमण करते थे, शरीर अतिशय कृश होनेके कारण गालके गर्त्त दो गभीर एवं उसके ऊपरके दो हाड़ और नाक अत्यन्त उच्च था, नेत्रकी कनीनिका अत्यन्त उग्र और लोमगण जीर्ण और विरल थे, दीर्घ रोमराजि उत्पन्न होकर कर्ण-विवरको आच्छादित किया हुआ था, एवं श्मश्रुसमूह (दाढ़ी) नाभिपर्यन्त लटका हुआ था, जाबालि इन सबोंसे युक्त मुखमण्डल धारण किये हुए थे और अत्यन्त चञ्चल इन्द्रियरूप अश्वगणको अभ्यन्तरमें बन्धन कर रख लेनेसे रज्जुके समान विस्तृत शिरासमूह उनके ग्रीवादेशको सघनभावसे परिवेष्टित कर रक्खा था, पार्श्वके विरल अस्थिपञ्जर उच्च हो गये थे, एवं शुभ्रवर्ण यज्ञोपवीत स्कन्धदेशमें लम्बमान था, अत एव वायुके वेगमें क्षुद्र-क्षुद्र तरङ्गगण टेढ़े हो जानेपर एवं जलके ऊपर एक अभिनव मृणाल भासित रहनेपर जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह देखनेमें आता है, जाबालि भी उसी

१ सन्निविष्टैः । २. समुन्नत...। ३. लम्बित । ४. इन्द्रियाणाम् । ५....संवद्ध...। ६. उन्नत...। ७. अवलम्बित, लम्बियज्ञो...। ८. वायु । ९....प्लातमृणालमिव ।

हन्तम् , अमल-स्फटिक-शकल-घटितमक्षवलयमत्युज्ज्वलस्थूल-मुक्ताफल-ग्रथितं सरस्वती-हारमिव चलदङ्गुलि-विवर-गतमावर्त्तयन्तम् , अनवरत-भ्रमित-तारकाचक्रमपरमिव ध्रुवम् , उन्नमता शिराजालकेन जरत्कल्पतरुमिव परिणतलतासञ्चयेन निरन्तर-निचितम् , अमलेन चन्द्रांशुभिरिवामृतफेनैरिव गुणसन्तान-तन्तुभिरिव निर्म्मितेन मानस-सरो-जल-क्षालनशुचिना दुकूलवल्कलेन द्वितीयेनेव जराजालकेन संच्छादितम् , आसन्नवर्त्तिना मन्दाकिनीसलिल-पूर्णेन त्रिदण्डोपविष्टेन स्फाटिक-कमण्डलुना विकच-पुण्डरीकराशि-

अमलस्फटिकेति । अत्युज्ज्वलानि अतिविशदानि स्थूलानि पृथुलानि मुक्ताफलानि मौक्तिकानि तैर्ग्रथितं गुम्फितं सरस्वत्या भारत्या हारमिव कण्ठमालामिव, चलन्तीनाम् अक्षवलयाकर्षणेन चपलीभूतानाम् अङ्गुलीनां करावयवानां विवरगतं छिद्रस्थितम्, अमलैः विशदैः स्फटिकानां स्फटिकमणीनां शकलैः खण्डैः घटितं रचितम् अक्षवलयं रुद्राक्षमालागुटिकाम् आवर्तयन्तं संख्याविशेषपूरणात् यथाक्रमं परिभ्रमयन्तम्, अत एव अनवरतं निरन्तरं भ्रमितं प्रवहसंज्ञकवातेन पर्यटितं तारकाचक्रं नक्षत्रसमूहो यत्र तथोक्तम् अपरं द्वितीयं ध्रुवम् उत्तानपादजमिव विद्यमानम् । इह च यथा वहोः कालात् स्थिरयोः ध्रुवयोरन्तर्बद्धस्तारकासमूहः प्रवहानिलैरजस्रं पर्येति तथा आसीनेन स्थिरतरेण ऋषिणा सव्यकराग्रनिहिता स्फटिकमाला जपसंख्याविशेषावधारणायानवरतं सञ्चालितेति साम्यमवगन्तव्यम् । उक्तं च सूर्यसिद्धान्ते—

"भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः । पर्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमम् ॥"

इह उपमा, पदार्थहेतुकं काव्यलिङ्गम्, द्वयोरुत्प्रेक्षा चेत्येषां परस्परमपेक्षाभावेन विद्यमानत्वात् संसृष्टिः।

उन्नमितेति । परिणतानां पाकमुपगतानां लतानां व्रततीनां सञ्चयेन समूहेन निरन्तरनिचितं सान्द्रभावेन व्याप्तं जरत्कल्पतरुमिव प्राचीनकल्पवृक्षमिव, उन्नमता उपरि स्फुरता शिराजालकेन धमनिसमूहेन निरन्तरनिचितम् । इह 'जरत्कल्पतरुमिव' इत्युपमा ।

अमलेनेति । अमलेन विशदेन, अत एव चन्द्रांशुभिरिव शशिचन्द्रिकाभिरिव अमृतफेनैरिव पीयूषडिण्डीरैरिव गुणानां कारुण्यतपश्चर्यादीनां सन्तानाः समूहा एव तन्तवः सूत्राणि तैरिव निर्मितेन रचितेन, मानससरो मानसाख्यसरोवरस्य जलेन सलिलेन यत् क्षालनं मलनिराकरणं तेन शुचिना पवित्रेण, द्वितीयेन अपरेण जराजालकेनेव श्वैत्यात् परिणतावस्थासमूहेनेव, दुकूलवत् पट्टवसनवत् वल्कलं वृक्षत्वक् तेन तादृशेन, संच्छादितम् आच्छादितनाभ्यधोभागम् ।

अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारः, द्वे चोत्प्रेक्षे, परस्परञ्चैषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः ।

आसन्नेति । आसन्नवर्त्तिना निकटस्थायिना, मन्दाकिनी गङ्गा तस्याः सलिलं जलं तेन पूर्णेन भृतेन त्रिदण्डस्त्रिपदिका तत्रोपविष्टेन तदुपरि स्थापितेन, राजहंसेन कादम्बेन 'राजहंसस्तु कादम्बे कलहंसे नृपोत्तमे' इति हैममेदिन्यौ, विकचः प्रस्फुटितः पुण्डरीकराशिः सिताम्भोजसमूहस्तमिव, स्फाटिककमण्डलुना स्फटिकमणिनिर्मितकमण्डलुना उपशोभमानं विराजमानम् । अत्रोपमा ।

प्रकार अङ्गवहन किये हुए थे। अतिशय उज्ज्वल और बृहत् मुक्तासमूहसे ग्रथित सरस्वतीके कण्ठहारके समान, स्वच्छ स्फटिक-खण्ड-निर्मित जपमालाको अङ्गुलीके अन्तरालमें रखकर परिवर्त्तित कर रहे थे, अतएव जिस प्रकार आवद्ध रहकर नक्षत्रचक्र घूमते रहते हैं, वैसे द्वितीय ध्रुवनक्षत्रके समान जाबालि देखनेमें आ रहे थे, पुरातन कल्पवृक्ष जिसप्रकार परिपक्व लतासमूहसे घनभावमें परिवेष्टित रहता है, जाबालि का शरीर भी उसीप्रकार उच्च २ शिरासमूहसे घनभावमें परिवेष्टित था, मानससरोवरके जलमें प्रक्षालन करनेसे परम पवित्र एवं क्षौम (रेशमी) वसनके समान स्वच्छ एक वल्कल वे पहने हुए थे, वह वल्कल मानो चन्द्रबिंबद्वारा या अमृतफेनद्वारा, अथवा दया-धर्म-प्रभृति-गुणसमूहरूपसूत्रद्वारा निर्मित था, और द्वितीय वार्धक्यके समान उधर उनके शरीरमें लगा हुआ था, गङ्गाजलसे परिपूर्ण स्फटिकनिर्मित एक कमण्डलु समीपवर्ती त्रिपदिकाके ऊपरमें स्थापित था, अत एव समीपवर्ती राजहंसद्वारा परिशोभित प्रस्फुटित श्वेतपद्मसमूहके समान जाबालि देखनेमें आ रहे थे, जाबालि, स्थैर्यद्वारा पर्वतोंको, गाम्भीर्यद्वारा समुद्रोंको, तेजद्वारा सूर्यको, शमगुणद्वारा चन्द्रमाको एवं स्वच्छताद्वारा आकाशको मानो विभक्त कर दिये थे, गरुड़ जिसप्रकार अपने प्रभावसे समस्त पक्षिगणका आधिपत्य लाभ किया था, जाबालि

१. घटिताक्ष...। २. उज्ज्वल। ३. तारक। ४. उल्लसता। ५. अमलैः। ६...क्षालित...। ७. अद्वितीयेन। ८. स्फटिक...। ९...कमल...।

मिव राजहंसेनोपशोभमानम्, स्थैर्य्येणाचलानां गाम्भीर्य्येण सागराणां तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मेः निर्म्मलतयाऽम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्व्वाणम्, वैनतेयमिव स्वप्रभावोपात्तसकल-द्विजाधिपत्यम्, कमलासनमिवाश्रमगुरुम्, जरच्चन्दनतरुमिव भुजङ्गनिर्म्मोक-धवलजटाकुलम्, प्रशस्त-वारणमिव प्रलम्ब-कर्णवालम्, बृहस्पतिमिवाजन्मवर्द्धित-कचम्, दिवसमिवोद्यदर्क-बिम्ब-भास्वर-मुखम्, शरत्कालमिव क्षीणवर्षम्,

स्थैर्येणेति। स्थैर्येण स्थिरतया अचलानां गिरीणाम्, गाम्भीर्येण गाम्भीर्यगुणेन सागराणां सरित्पतीनाम्, तेजसा प्रतापेन सवितुः आदित्यस्य प्रशमेन शान्त्या तुषाररश्मेश्चन्द्रमसः, निर्मलतया अतिस्वच्छतया अम्बरतलस्य आकाशस्य संविभागं स्वीयवस्तुनः परेभ्यः किञ्चिद्विभज्य प्रतिपादनं कुर्वाणं विदधानमिव स्थैर्यगाम्भीर्यप्रभृतीन् स्वगुणान् अचलादिभ्यः सम्यग्विभज्य दत्त्वेव स्थितमित्यर्थः स्वस्मिन् तथाविधस्थैर्यादिगुणयुक्तत्वादित्याशयः। अत्र अचलानां स्थैर्यं कम्पशून्यत्वं ऋषेः स्थैर्यन्तु चित्तस्थिरता, समुद्राणां गाम्भीर्यम् अगाधत्वम्, ऋषेः गाम्भीर्यन्तु दुरवगाहप्रकृतित्वम्, आदित्यस्य तेजः तीक्ष्णरश्मित्वम्, ऋषेस्तेजस्तु तपोमाहात्म्यवत्त्वम्, चन्द्रमसः प्रशमः सौम्यस्वरूपत्वम् ऋषेः शमस्तु इन्द्रियाणामन्तर्मुखेन प्रवृत्तिकरणम्, ऋषेर्निर्मलता पापराहित्यमिति परस्परं भेदसत्त्वेऽपि श्लेषमहिम्ना अभेदाध्यवसायादतिशयोक्त्यलङ्कारः, कुर्वाणमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा चेत्युभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

वैनतेयमिति। गरुडमिव 'गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः' इत्यमरः, स्वप्रभावेण स्वतेजसा उपात्तम् अर्जितं सकलेषु समस्तेषु द्विजेषु विप्रेषु पक्षिषु च आधिपत्यं स्वामित्वं येन तं तादृशम् 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्यमरः।

कमलेति। कमलासनो विरञ्चिः 'विरञ्चिः कमलासनः' इत्यमरः, तमिव; आश्रमस्य तत्तपोभूमेः ब्रह्मचर्यादीनां चतुर्विधानामाश्रमाणाञ्च गुरुः शिक्षयिता नियामकश्च तं तादृशम्। ब्रह्मणैव वर्णाश्रमाश्च नियमिता इति पौराणिकी वार्त्ता।

जरदिति। जरत् पुरातनो यश्चन्दनतरुः मलयजवृक्षः तमिव, भुजङ्गानां सर्पाणां ये निर्मोकाः कञ्चुकाः तद्वत् धवलाः श्वेताः जटाः सटाः, अन्यत्र भुजङ्गनिर्मोका धवला जटा इव ताभिः आकुलं सङ्कीर्णम्। प्राचीनचन्दनवृक्षेष्वेव परिमलविशेषाधिक्यात्सर्पाधिक्यसम्भव इति प्रतिपादनार्थं जरद्विशिष्टतरुग्रहणमित्यवधेयम्।

प्रशस्तेति। प्रशस्तो निखिललक्षणोपेतः वारणपतिः हस्तिनायकः तमिव प्रलम्बाः छेदनाभावादतिविस्तृताः कर्णवालाः श्रवणलोमानि यस्य तं तादृशम्, पक्षे—प्रलम्बाः लम्बमानाः कर्णौ श्रोत्रे वालाः पुच्छकेशाश्च यस्य तं तादृशम्।

बृहस्पतीति। बृहस्पतिः सुराचार्यः तमिव, आजन्म जन्मप्रभृति क्षौराभावात् वर्द्धिता वृद्धिं प्रापिताः कचाः केशा येन तं तादृशम्, पक्षे—कचः कचाभिधः सुतो येन तं तादृशम्।

पुरा किल बृहस्पतेः कचनामा पुत्र उत्पन्न इति पौराणिकी वार्त्ता।

दिवसमिति। दिवसो वासरः तमिव, उद्यत् उद्गच्छत् यत् अर्कबिम्बं सूर्यमण्डलं तद्वत् भास्वरं दीप्तिमत् मुखम् आननं यस्य तं तादृशम्, पक्षे—उद्यदर्कबिम्बेन भास्वरमुखं प्रारम्भिकप्रकाशो यस्य तं तादृशम्।

शरदिति। शरत्कालः वर्षात्ययसमयः तमिव, क्षीणानि व्यतीतानि वर्षाणि 'शतायुर्वै पुरुषः'

भी उसी प्रकार अपने प्रभाव से समस्त ब्राह्मणगणका आधिपत्य लाभ किये थे, ब्रह्मा जिसप्रकार ब्रह्मचर्यप्रभृति आश्रमचतुष्टयके नियन्ता हैं, वे भी उसी प्रकार उस आश्रमके नियन्ता (अथवा अध्यापक) थे, पुरातन चन्दनवृक्ष जिसप्रकार धवलजटाके समान सर्पकञ्चुकसे व्याप्त रहता है, वे भी उसीप्रकार सर्पकञ्चुकके समान धवलजटासे व्याप्त थे, प्रकाण्ड हस्तीका जिसप्रकार कर्णयुगल और पुच्छका लोम बृहत् रहता है, जाबालिके भी उसीप्रकार कर्णके लोम बड़े २ थे, बृहस्पति जिसप्रकार निजपुत्र कचको जन्मसे वर्द्धित किये थे, वे भी उसी प्रकार जन्मसे केशकलाप को वर्द्धित किये हुए थे, दिनका प्रथमभाग जिसप्रकार उदीयमान सूर्यमण्डलद्वारा दीप्तिमान् होता है, जाबालिका मुखमण्डल भी उसीप्रकार उदीयमान सूर्यमण्डलके समान दीप्तिमान् था, शरत्कालमें जिस

१. अवनेः स्थैर्य्येण सागराणां गाम्भीर्येण। २. क्वापि सकलपदं न विद्यते। ३. भुजग...। ४....वारणपतिमिव। ५. कर्णतलम् कर्णतालम्।

शान्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्, अम्बिका-करतलमिव रुद्राक्ष[1]-ग्रहण-निपुणम्, शिशिर-समय-सूर्यमिव कृतोत्तरासङ्गम्, बड़वानलमिव[2] सतत[3]-पयोभक्ष्यम्[4], शून्यनगरमिव दीनानाथ-विपन्नशरणम्, पशुपतिमिव भस्म-पाण्डु रोमाश्लिष्ट-शरीरम्, भगवन्तं जाबालिमपश्यम्।

अवलोक्य चाहमचिन्तयम्—'अहो प्रभावस्तपसाम्! इयमस्य शान्तापि मूर्त्तिरुत्तप्त-कनकावदाता परिस्फुरन्ती सौदामिनीव[5] चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि, सततमुदासीनापि महा-

इत्यादिनियमितावस्थाहायनानि यस्य तं तादृशम्, यत्किञ्चिदवशिष्टावस्थाकमित्यर्थः, पक्षे—क्षीणं स्वल्पत्वमुपगतं वर्षं वृष्टिर्यस्मिन् तं तादृशम्।

शन्तनुमिति। शन्तनुः चन्द्रवंशीयो भीष्मपितामहपिता तमिव, प्रियम् प्रेमास्पदं सत्यव्रतं सत्य-वचनसत्याचाररूपो नियमो यस्य तं तादृशम्, पक्षे—प्रियः अत्यन्तोत्कृष्टात्मजत्वात् प्रेमजनकः सत्यव्रतो यस्य तं तादृशम्।

अम्बिकेति। अम्बिकाया भवान्याः करतलं हस्तमिव, रुद्राक्षमालायाः ग्रहणे उपादाने निपुणं कुशलम्, पक्षे—रुद्रस्य महेश्वरस्य अक्षिणी नयने इति रुद्राक्षे तयोर्ग्रहणे कुतूहलेन पिधाने निपुणं दक्षम्।

शिशिरेति। शिशिरसमयस्य शीतकालस्य सूर्यम् आदित्यमिव, कृतो भुजान्तराले स्थापितः उत्तरासङ्ग उत्तरीयवसनं येन तं तादृशम्, पक्षे—कृतो विहित उत्तरस्या दिशः कौबेराशायाः सङ्गः यथाक्रमं सम्बन्धो येन तं तादृशम्, तत्समये सूर्यस्योत्तरदिग्गमनप्रारम्भात्।

वडवेति। वडवानलो वाडवाग्निः तमिव, सततं निरन्तरं पयो दुग्धमात्रं सलिलञ्च भक्ष्यम् अदनीयं शोषणीयञ्च यस्य तं तादृशम्।

शून्येति। शून्यं जनरहितं नगरं पुरमिव, दीनानां दुर्गतानाम् अनाथानाम् अस्वामिकानां विपन्नानां व्याधिव्यथितादीनाञ्च रक्षकं पालकम्, पक्षे—दीनानि शोभाशून्यानि, अनाथानि निवासिलोकरहितानि, विपन्नानां नष्टानि शरणानि गृहाणि यत्र तत् तादृशम् 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः।

पशुपतिमिति। पशुपतिः शङ्करः तमिव, भस्मवत् पाण्डूनि परिणतत्वात् शुभ्राणि यानि रोमाणि लोमानि, भस्मना भूत्या पाण्डुरोमाणि च तैराश्लिष्टं समन्तात् सक्तं शरीरं वपुर्यस्य तं तादृशम्, भगवन्तम् ऐश्वर्यादिमन्तं जाबालिम् एतन्नामानं मुनिराजम् अपश्यम् अद्राक्षम्।

अत्र 'वैनतेयमिव' इत्यारभ्य 'पशुपतिमिव' इत्यन्तं यावत् पूर्णोपमालङ्कारः। केवलं 'जरच्चन्दनतरुमिव भुजङ्गनिर्मोकधवलजटाकुलम्' इत्यत्र लुप्तोपमापूर्णोपमयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कार इति ज्ञेयम्।

अवलोक्येति। अवलोक्य प्रेक्ष्य च अहं वैशम्पायनः अचिन्तयम् अविचारयम्—अहो इत्याश्चर्ये। तपसां स्वाध्यायादीनां प्रभाव ऐश्वर्यम्, इयं पुरो दृश्यमाना शान्तापि प्रसन्नापि अस्य मुनेः मूर्त्तिः स्वरूपम् उत्तप्तम् अत्यन्तमुष्णीकृतं यत् कनकं काञ्चनं तद्वत् अवदाता निर्मला परिस्फुरन्ती देदीप्यमाना सौदामिनीव तडिदिव चक्षुषो लोचनस्य तेजांसि ज्योतींषि प्रतिहन्ति प्रतिघातं करोति, साम्मुख्येन व्रजन्तीनां लोच-

प्रकार वृष्टिक्षय प्राप्त होता है, जाबालिकी अवस्थाके वर्ष भी उसीप्रकार क्षय प्राप्त हुआ था, भीष्म जिसप्रकार पिता शान्तनुके प्रियपात्र थे, सत्यवाक्य और सत्यव्यवहारके नियम भी उसीप्रकार जाबालिके प्रिय थे, पार्वतीका पाणितल जिसप्रकार शङ्करके चक्षुपिधानमें निपुण है, जाबालिके हस्त भी उसीप्रकार रुद्राक्ष धारणमें निपुण था, माघ-मासके सूर्य जिसप्रकार क्रमसे उत्तर दिशाका आश्रयण करते हैं, जाबालि भी उसीप्रकार स्कन्धदेशमें उत्तरीय-वस्त्र धारण किये हुए थे, वडवानल जिसप्रकार सर्वदा केवल समुद्रका जल पान करता है, जाबालि भी उसी प्रकार नित्य दुग्धमात्र पान करते थे, जनशून्य नगर जिसप्रकार सौन्दर्यहीन और मनुष्यहीन भग्नगृह समूह का आश्रय होता है, उसीप्रकार वे उन लोगोंके रक्षक थे, महादेवका शरीर जिसप्रकार भस्मद्वारा श्वेतवर्ण लोमसमूहसे व्याप्त है, जाबालिका शरीर भी उसीप्रकार भस्मके समान श्वेतवर्ण लोमसमूहसे व्याप्त था।

उन्हें देखकर मैं चिन्ता करने लगा—स्वाध्यायादि ऐश्वर्यका कितना प्रभाव है! कारण, इनकी ऐसी आकृति तप्त काञ्चनके समान स्वच्छ एवं शान्त होने पर भी दीप्यमान विद्युतके समान मेरे नेत्रके तेजको प्रतिहत कर रही है,

१. रुद्राक्षवलयग्रहण...। २. और्वानलमिव। ३. सन्तत...। ४. भक्षम्। ५. सौदामनीव।

प्रभावतया भयमिवोपजनयति प्रथमोपगतस्य । शुष्क-नल-काश-कुसुम-निपतितानल-चटुल-वृत्ति नित्यमसहिष्णुतपस्विनां प्रतनुतपसामपि तेजःप्रकृत्या दुःसहं भवति, किमुत सकल-भुवन-वन्दित-चरणानामनवरत-तपःसलिल-क्षालितमलानां कर-कमल-तलामलकफलवदखिलं जगदालोकयतां दिव्येन चक्षुषा भगवतामेवंविधानामघक्षयकारिणाम् । पुण्यानि हि नामग्रहणान्यपि महामुनीनाम्, किं पुनर्दर्शनानि । धन्यमिदमाश्रमपदमयमधिपतिर्यत्र । अथवा भुवनतलमेव धन्यमखिलमनेनाधिष्ठितमवनितल-कमलयोनिना । पुण्यभाजः खल्वमी मुनयो यदहर्निशमेनमपरमिव नलिनासनमपगतान्यव्यापारा मुखावे-

---

नरश्मीनां विद्युत्तेजसा प्रतिनिवृत्तिः सर्वानुभवसंवेद्यैवेत्याशयः । सततम् अजस्रम् उदासीनापि मध्यस्थापि परेषां भयोत्पादने फलशून्यापि इयं मूर्तिरित्यर्थः, महाप्रभावतया अत्युग्रप्रतापतया प्रथमम् अपूर्वम् उपगतस्य प्राप्तस्य मम भयं त्रासम् उपजनयतीव उत्पादयतीव । शुष्काणि विरसानि यानि नलकाशकुसुमानि स्वनामविख्याततृणविशेषाः तेषु निपतितो योऽनलोऽग्निः तस्येव चटुला चञ्चला आशुतरा वृत्तिः प्रसरणव्यापारो यस्य तत् तादृशम्, तथा नित्यं सततम् असहिष्णु असहनशीलम् अन्यतेज इति शेषः, तनु स्वल्पं तपो येषां तेषामपि तपस्विनां तपस्यावतां तेजः प्रभावः, प्रकृत्या स्वभावेन (दुःसहम् असहनीयम्) इत्यत्र पाठान्तरं भवति परेषामिति शेषः । सकलभुवनतलेषु समस्तसंसारतलेषु वन्दितचरणानां नमस्कृतपादानाम् अनवरतं निरन्तरं तपांस्येव सलिलानि वारीणि तैः क्षालितानि धौतानि मलानि दुष्कृतान्येव मलानि पङ्कादीनि यैस्तेषां तादृशानाम्, तथा दिव्येन परलोकीयेन चक्षुषा ज्ञाननेत्रेणेत्यर्थः । करकमलतलं पाणिपद्मतलं तत्र आमलकफलवत् धात्रीफलवत्, अखिलं समग्रं जगत् संसारम् अवलोकयतां पश्यताम्, एवंविधानाम् इत्थंभूतानां जावालिसदृशानाम् अघक्षयकारिणाम् अवलोकनमात्रेणैवान्येषां दुष्कृतध्वंसविधायिनां भगवताम् ऐश्वर्यादिवतां किमुत किमाश्चर्यम् ।

अत्र 'उत्तप्तकनकावदाता' इत्यत्र लुप्तोपमा, 'उपजनयतीव' इति क्रियोत्प्रेक्षा, तथापरत्र लुप्तोपमा श्लिष्टपरम्परितरूपकञ्च ।

पुण्यानीति । हि निश्चितम्, महामुनीनां महातपस्विनां नामग्रहणान्यपि नामसङ्कीर्तनमात्राण्यपि पुण्यानि पुण्योत्पादकानि, दर्शनानि तेषां निरीक्षणानि किं पुनः वक्तव्यम्, नूनं पापापनोदकानीत्यर्थः । इदं प्रत्यक्षम् आश्रमपदम् ऋषिजनस्थानं धन्यं कृतकृत्यमित्यर्थः । यतो हि, यत्र आश्रमे अयं मुनिराजः अधिपतिः नेता । अथवा यद्वा अवनितलस्य मर्त्यलोकस्य कमलयोनिः ब्रह्मा तद्रूप इत्यर्थः तेन तथोक्तेन अनेन पुरोदृश्यमानेन मुनिना अधिष्ठितम् आश्रितम् अखिलं समग्रं भुवनतलमेव जगतीतलमेव धन्यं कृतपुण्यं 'सुकृति पुण्यवान् धन्यः' इति हैमः, तपोवनस्य तदन्तर्गतत्वादित्याशयः । खलु निश्चयेन अपगता दूरीभूता अन्ये व्यापाराः कर्माणि येषां ते तादृशाः, तथा मुखावलोकने मुनिवदननिरीक्षणे

और मैं यहाँ पहल पहल आया हूँ, अत एव सर्वदा दूसरेके भयोत्पादनमें प्रयोजन नहीं रहने पर भी मुझे मानो भय उत्पन्न कर रहा है। शुष्क नल और काशपुष्पके ऊपर पतित अग्नि जिसप्रकार तत्क्षणात् विस्तृत हो जाता है, उसीप्रकार त्वरितगति एवं सर्वदा परप्रभाव असहिष्णु साधारण तपस्विगणके तेज भी दूसरोंके पक्षमें स्वभावतः दुःसह होकर रहता है, और समस्त संसारके लोग जिनकी चरणवन्दना करते हैं, अनवरत तपस्याके जलमें जिसका समस्त मल प्रक्षालन किया गया है, एवं जो दिव्यचक्षुद्वारा करतलस्थित आमलकीफल के समान समस्त संसारका दर्शन करते हैं, एवं जिनके दर्शनमात्रसे लोगोंके पाप क्षय कर दिये जाते हैं, एवंविध माहात्म्यशाली उस महर्षिके तेजकी कथा और कहने की क्या है। महर्षियोंके नामोच्चारण भी पुण्य उत्पन्न करते हैं, उनके दर्शनकी कथा तो और क्या कहा जाय? यह आश्रम धन्य, जिस स्थानमें ये अधिपति हैं। अथवा समस्तभूमण्डल भी धन्य, क्योंकि जहाँ मर्त्यलोकके ब्रह्मा ये महर्षि निवास करते हैं। ये समस्त मुनि भी पुण्यवान्, क्योंकि ये लोग अन्य समस्त कार्य परित्याग कर केवल इनके मुखनिरीक्षणमें ही निश्चलनेत्र होकर अनेकविध धर्मोपाख्यान श्रवण करते हुए रात्रिन्दिव द्वितीय ब्रह्माके समान इनकी उपासना करते हैं। और सुन्दर पक्षिगणसे परिवृत होकर राजहंसी जिस

---

१ निपतिता चटुल । २ तनुतपसाम् । ३ क्वापि दुःसहमिति न विद्यते । ४ भुवनतल''' । ५'' तपःक्षपितमलानाम् । ६ करतलामलकवत् । ७'''अघक्षयकारणानि पुण्यानि'''नाम करणानि पुण्यानि नाम । ८ मुनीनाम् । ९ मुखकमलावलोकन... ।

लोकन-निश्चलदृष्टयः पुण्याः कथाः श्रृण्वन्तः पर्य्युपासते। सरस्वत्यपि धन्या, याऽस्यै सततमतिप्रसन्ने करुणाजलनिस्यन्दिन्यगाधगाम्भीर्य्ये रुचिरद्विजपरिवारा मुखकमलसम्पर्कसुखमनुभवन्ती निवसति राजहंसीव मानसे। चतुर्मुखमुखकमलवासिभिश्चतुर्वेदैः सुचिरादिव द्वितीयमिदमासादितं स्थानम्। एनमासाद्य शरत्कालमिव कलिकाल-जलधरसमय-कलुषिताः प्रसादमुपगताः पुनरपि जगति सरित इव सर्वविद्याः। नियतमिह सर्वात्मना कृतावस्थितिना भगवता परिभूत-कलिकाल-विलसितेन धर्म्मेण न स्मर्य्यते कृत-

निश्चला निमेषरहिता दृष्टिः अवलोकनं येषां ते तादृशाः, पुण्याः धर्मजनिकाः कथा किंवदन्तीः श्रृण्वन्तः आकर्णयन्तः, अमी प्रत्यक्षोपलभ्यमाना मुनयः तपस्विनः पुण्यभाजः सुकृतभाजः यत् यस्मात् कारणात् अहर्निशं प्रतिदिनम् अपरम् अन्यं नलिनासनं कमलासनमिव विद्यमानं तं समुपासते परिचर्यां कुर्वते। तु पुनरर्थे। सततं निरन्तरम् अतिप्रसन्ने अतिशयेन प्रसादगुणयुक्ते अतिस्वच्छे च, करुणा परदुःखप्रहाणेच्छा जलमिव करुणेव च जलमिति करुणाजलं तस्य निस्यन्दिनि स्राविणि, अगाधम् इयत्ताशून्यम् अतलस्पर्शञ्च, गाम्भीर्यं दुरवगाहस्वभावत्वं गम्भीरता च यस्य तस्मिन् तादृशे अस्य महर्षेः मानसे चित्ते मानससरोवरे च हंसीव मरालीव, रुचिराः सुन्दराः द्विजाः छात्रीभूता विप्राः पक्षिणश्च 'दन्तविप्राण्डजा द्विजाः' इत्यमरः, परिवाराः परिजनाः यस्याः सा तादृशी या सरस्वती भारती निवसति वासं विधत्ते साऽपि धन्या श्लाघ्या, असामान्यसुकृतेनैवंविधवासस्थानस्य प्राप्यत्वात् सा सरस्वत्यपि धन्येत्याशयः।

अत्र 'अवनितलकमलयोनिना' इत्यत्र निरङ्गं केवलरूपकमलङ्कारः, 'नलिनासनमिवे'त्यत्र द्रव्योत्प्रेक्षालङ्कारः, 'हंसीवे'त्यत्र पूर्णोपमालङ्कारः।

चतुरिति। चतुर्मुखस्य प्रजापतेः मुखकमलानि वदनपद्मानि तत्रवासिभिः स्थायिभिः चतुर्वेदः ऋग्यजुःसामाथर्वभिः सुचिरादिव चिरसमयादिव इदम् एतत् अपरं द्वितीयं तपोवनरूपम् उचितं योग्यं स्थानम् आसादितं प्राप्तम्। अत्र सुचिरादिवेति गुणोत्प्रेक्षा, तेन हि ब्रह्मणो मुखस्य तुल्यत्व तपोवनस्य पूतत्वं ध्वन्यत इत्यलङ्कारेण वस्तुध्वनिः।

एनमिति कलिकालः कलिसमयः जलधरसमयः वर्षाकाल इव तेन कलुषिताः निजप्रभाववशात् कुत्सितवृत्त्यादिना अनुष्ठानशून्येन च दूषिताः, मलिनीकृताश्च सर्वविद्या अष्टादशविद्या वेदादिविद्याः सरितो नद्य इव शरत्कालमिव घनात्ययमिव एनं मुनिम् (जाबालिम्) आसाद्य प्राप्य संसारे पुनरपि द्वितीयवारमपि प्रसादं सद्वृत्त्यादिना अनुष्ठानेन च निर्दोषत्वं नैर्मल्यञ्च उपगताः प्राप्ताः। मुनिरयं निखिला अपि विद्या धारयति तत्प्रतिपादितानुष्ठानञ्च सम्पादयतीत्याशयः।

नियतमिति। इह अस्मिन् आश्रमे सर्वात्मना सर्वविधिना कृता विहिता अवस्थितिः वासो येन स तेन तादृशेन भगवता माहात्म्यवता धर्मेण सुकृतेन, परिभूतं न्यक्कृतं दूरीकृतमित्यर्थः कलिकालस्य विलसितं चेष्टितं येन तथोक्तेन सता कृतयुगस्य सत्ययुगस्य नियतं नूनं न स्मर्यते न चिन्त्यते सत्ययुगीयनिखिल सदाचाराद्युपलम्भादित्याशयः

प्रकार पद्मका संसर्गसुख अनुभव करती हुई, अत्यन्त स्वच्छ जलयुक्त और अत्यन्तगम्भीर मानसरोवरमें सर्वदा वास करती है, उसीप्रकार विशुद्ध ब्राह्मणगणसे परिवृत होकर जो सरस्वती, इनके मुखका संसर्गसुख अनुभव करती हुई अनुग्रह और दयाके आधार एवं अत्यन्त गाम्भीर्यसम्पन्न इनके चित्तमें वास करती है, वह वाग्देवी सरस्वती भी धन्य है। चतुर्मुख ब्रह्माके मुखकमलनिवासी चतुर्वेद, जो कि बहुत समयके बाद इस द्वितीय स्थानको प्राप्त किया है। वर्षाकालमें कलुषताप्राप्त नदियाँ जिसप्रकार शरत्काल पाकर पुनः स्वच्छता प्राप्त करती हैं, कलिकालके प्रभावसे दूषित समस्तशास्त्रकी विद्या भी उसीप्रकार इनको प्राप्तकर पुनः संसारके मध्यमें निर्दोषता प्राप्त की है। भगवान् धर्मदेव सभी प्रकारके उद्योगका अवलम्बनकर इस आश्रममें रहते हुए, कलिकालके प्रभावको दूरीभूत करके अब निश्चय ही सत्ययुगका स्मरण नहीं करते हैं। ये भूतलमें वास करते हैं, यह देखकर

१ समुपासते। २ यदस्मिन्, याऽस्य तु। ३ रुचिरद्विजकुलपरिचये, द्विजपरिवारे। ४ क्वचित् 'सुख'पदं नास्ति। ५ हंसीव। ६ क्वचित् द्वितीयमुखपदं नास्ति। ७ वेदैः चतुर्भिर्वेदैः। ८ क्वचित् 'इव, द्वितीयम्' इत्युभयपदमपि नास्ति। ९ कलि–जलद–समय...।

युगस्य । धरणितलमनेनाधिष्ठितमालोक्य न वहति नूनमिदानीं सप्तर्षिमण्डल-निवासाभिमानमम्बरतलम् । अहो ! महासत्त्वेयं जरा, यास्य प्रलय-रवि-कर-निकर-दुर्निरीक्ष्ये रजनिकर-किरण-पाण्डु-शिरोरुहे जटाभारे फेनपुञ्ज-धवला गङ्गेव पशुपतेः क्षीराहुतिरिव शिखाकलापे विभावसोर्निपतन्ती न भीता । बहलाज्य-धूम-पटल-मलिनीकृताश्रमस्य भगवतः प्रभावाद्भीतमिव रवि-किरणजालमपि दूरतः परिहरति तपोवनम् । एते च पवन-लोल-पुञ्जीकृत-शिखाकलापा रचिताञ्जलय इवात्र मन्त्रपूतानि हवींषि गृह्णन्ति एतत् प्रीत्या-

---

अत्र नियतपदस्य ध्रुवादिपदवत् उत्प्रेक्षाभिधायकत्वाद्वाच्याभावाभिमानिनी क्रियोत्प्रेक्षा ।

धरणीति । अम्बरतलम् आकाशतलं (कर्तृ), अनेन मुनिना अधिष्ठितम् आश्रितं धरणितलं पृथिवीतलम् आलोक्य नूनं निश्चितम् इदानीं सम्प्रति सप्तर्षिमण्डलस्य कश्यपादिसमूहस्य निवासेन आत्मन्यवस्थानेन योऽभिमानोऽहङ्कारः तं न वहति धत्ते सप्तर्षिवन्मुनेरवस्था तेन पृथिवीतलस्यापि स्वसमानत्वादित्याशयः पूर्ववदेवालङ्कारः ।

अहो इति । अहो आश्चर्यम्, इयम् अस्य देहेऽवलोक्यमाना, जरा वृद्धावस्था, महासत्त्वा महाप्राणा अत्यन्तशक्तिमती । कथमेतदवधार्यते इत्यत आह—याऽस्येत्यादि । फेनस्य डिण्डीरस्य यः पुञ्जः समूहः तेन धवला उज्ज्वला या जरा, प्रलये कल्पान्ते यो रविकरनिकरः सूर्यकिरणसमूहः तद्वत् दुर्निरीक्ष्ये महातेजस्वितयाऽवलोकयितुमशक्ये, तथा रजनिकरस्य चन्द्रस्य किरणवत् मयूखवत् पाण्डवः श्वेतवर्णाः शिरोरुहाः केशा यत्र तथोक्ते, अस्य मुनेः (जाबालेः) जटाभारे जटासमूहे पशुपतेः महेश्वरस्य जटाभारे जटासमूहोपरि निपतन्ती पतनं विदधती फेनपुञ्जवत् धवला गङ्गा भागीरथी इव, तथा विभावसोर्वह्नेः शिखाकलापे ज्वालासमूहे निपतन्ती फेनपुञ्जधवला क्षीरस्य दुग्धस्य आहुतिः प्रक्षेप इव निपतन्ती उपगन्तुं प्रवृत्ता सती न भीता न त्रस्ता अत्र यथाक्रमं प्रलयरविकर, रजनिकरकिरण, फेनपुञ्जेत्यत्र तिस्रो लुप्तोपमाः, गङ्गेव आहुतिरिवेत्यत्र चोपमे द्वे इत्येतेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः ।

बहलेति । रवेः सूर्यस्य किरणजालं मयूखसमूहः (कर्तृ) बहलानां प्रचुराणाम् आज्यधूमानां हविर्धूमानां पटलैः वृन्दैः मलिनीकृतः श्यामतां प्रापितः आश्रमो यस्य तादृशस्य, भगवतो माहात्म्यवतो जाबालेः प्रभावात् माहात्म्यात् भीतमिव त्रस्तमिव सत् दूरत दूर एव एतत्तपोवनं परिहरति त्यजति, स्वप्रतिपक्षिणः प्रबलतमस इव धूमपटलस्योत्पादकतया मुनेरपि प्रतिपक्षिपक्षान्तर्भावाभ्रासेन तदन्तिकपरित्यागः समुचित एवेत्याशयः । अत्र भीतमिवेति क्रियोत्प्रेक्षा ।

एत इति । अत्र आश्रमे पवनेन समीरिणा लोलश्चपलः पुञ्जीकृतश्च शिखाकलापो ज्वालासमूहो येषां ते तादृशाः, एते पुरोऽवलोक्यमानाः आशुशुक्षणयः दक्षिणाग्नि—गार्हपत्याहवनीयरूपा होमवह्नयश्च, रचिताञ्जलयः आहुतिस्वीकरणाय ऊर्ध्वीकृतयुक्तपाणितलद्वया इव सन्तः, एतस्य महर्षिजाबालेः प्रीत्या स्नेहेन, मन्त्रपूतानि ऋचा पवित्राणि हवींषि होतव्यानि घृतादीनि गृह्णन्ति स्वीकुर्वन्ति 'शिखावानाशुशुक्षणिः' इत्यमरः । अत्रापि क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

आकाश, इस समय निश्चय ही अपने यहाँ सप्तर्षिगणके निवासवशसे अहङ्कारका वहन नहीं करता है । क्या आश्चर्य ! यह जरा, जो अत्यन्त बलवती देखने में आती है; कारण—फेनपुञ्जके समान शुभ्रवर्णा गङ्गा जिसप्रकार महादेवके जटासमूहमें पतित होनेसे भीत नहीं होती, एवं दुग्धकी आहुति जिसप्रकार अग्निके शिखासमूहमें पतित होनेसे भीत नहीं होती, उसीप्रकार जो जरा, प्रलयकालीन सूर्यके किरणसमूहके समान दुर्निरीक्ष्य एवं चन्द्रके रश्मिसमूहके समान शुभ्रवर्ण केशयुक्त इनके जटासमूहमें उपस्थित होने से भयभीत नहीं होती है । घृतकी आहुति पतित होने पर प्रचुर धूमराशि उपस्थित होकर आश्रमको मलिन कर रहा है, इससे प्रतीत होता है कि मानों, सूर्य के रश्मिसमूह भी भगवान् जाबालिके प्रभावसे भीत होकर दूरसे ही इस तपोवन को परित्याग कर रहे हैं । वायु होमाग्निके शिखासमूहको चालित कर सम्मिलित कर दिया है, अत एव प्रतीत हो रहा है मानो, होमाग्नि समस्त महर्षिके प्रीतिप्रणयवशसे दोनों हाथोंको गिराकर मन्त्रपूत घृतकी आहुतिको ग्रहण कर रहा है, आश्रमस्थ लतासमूहके

---

१ आलक्ष्य, अवलोक्या । २ क्वचित् 'मण्डल'पदं नास्ति । ३...रविरश्मि... । ४...दुर्निरीक्ष्ये । ५ रजनिकरनिकरपाण्डुरे जटाभारे । ६ निष्पतन्ती । ७...आश्रमपदस्य । ८.. भीतभीतमिव । ९...जालकमपि । १०...पुञ्जितशिखाकलापाः, शिखाजटिलाः ।

शुशुक्षणयः[1]। तरलित-दुकूलवल्कलोऽयञ्चाश्रमलता-कुसुम-सुरभि-परिमलो मन्द[2]मन्द-सञ्चारी सशङ्क इवास्य समीपमुपसर्पति गन्धवाहः। प्रायो महाभूतानामपि दुरभिभवानि भवन्ति तेजांसि[3]। सर्वतेजस्विनामयञ्चाग्रणीः। द्विसूर्य्यमिवाभाति जगदनेनाधिष्ठितं महात्मना। निष्कम्पे[4]व क्षितिरेतदवष्टम्भात्[5]। एष प्रवाहः[6] करुणा[7]रसस्य, सन्तरणसेतुः संसार-सिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्[8], परशुस्तृष्णालता-गहनस्य, सागरः सन्तोषामृत[9]-रसस्य, उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य, अस्तगिरिरसद्ग्रहस्य[10], मूलमुपशमतरोः, नाभिः[11] प्रज्ञाचक्रस्य, प्रासादो[12]-

---

तरलितेति। तरलितानि कम्पितानि दुकूलवत् क्षौमवसनवत् वल्कलम् ऋषिपरिहिततरुत्वक् येन स तादृशः, आश्रमलताकुसुमानाम् आश्रमलतापुष्पाणां सुरभिर्घ्राणतर्पणः परिमलो गन्धो यत्र स तादृशः, मन्दमन्दसञ्चारी शनैः शनैः सञ्चरमाणः अयञ्च गन्धवाहः पवनः, सशङ्कः भीताशय इव सन् अस्य जाबालेः समीपम् अन्तिकम् उपसर्पति उपगच्छति, परिहितवल्कलकम्पनेन नर्मसाचिव्य इव व्यवहारात् स्वस्यापराधशङ्कया पवनस्य सशङ्कत्वं समुचितमेवेत्यभिप्रायः। सशङ्क इवेति गुणोत्प्रेक्षा।

प्राय इति। प्रायो बाहुल्येन महाभूतानामपि महाजन्तूनां मृगपतिगजादीनामपि तेजांसि महांसि दुरभिभवानि दुःखेनातिक्रमितुं शक्यानि भवन्ति, चाऽत्र किन्त्वर्थे। अयं मुनिः सर्वतेजस्विनां निखिलधामवताम् अग्रणीः प्रधानः, सुतरामस्य तेजोऽतिक्रमणासम्भवात् सूर्यप्रभृतिनामुक्तविधो व्यवहारः समुचित एवेत्याशयः।

द्विसूर्यमिवेति। अनेन जाबालिना महात्मना भगवता अधिष्ठितम् आश्रितं जगत् द्विसूर्यमिव द्वौ सूर्यौ यत्र तद्वदिव आभाति अस्याऽप्यपरसूर्यसमानप्रभावत्वादित्याशयः। द्विसूर्यमिवेति द्रव्योत्प्रेक्षा।

निष्कम्पेति। एतस्य मुनेः अवष्टम्भात् आलम्बादिव क्षितिः पृथिवी निष्कम्पा निश्चला। इह अवष्टम्भादिवेति हेतूत्प्रेक्षा।

एष इति। एष जाबालिः, करुणा दयैव रसस्सलिलं तस्य प्रवाह ओघः, सर्वत्रैवैकरूपेण करुणाया विद्यमानत्वात्। संसारो मिथ्याज्ञानजन्या वासना स एव सिन्धुः समुद्रस्तस्य सन्तरणसेतुः उत्तरणजलपोतः 'तत्त्वमसि' इत्यादिमोक्षोपयोगिवाक्योपदेशद्वारा ज्ञानोत्पादनेन समुत्तरणात्। क्षमा परपरिभवादिषत्पद्यमानेषु क्रोधप्रतिबन्धः क्षमा एवाम्भांसि जलानि तेषाम् आधार आशयः सर्वत्रैव क्षमाकरणात्। तृष्णा विषयभोगलिप्सा एव लता वल्लयः तासां गहनस्य काननस्य परशुः कुठारः विनाशकारित्वात्। सन्तोषो यथाप्राप्तवस्तुनैव हृदि सन्तृप्तिः स एव अमृतरसः पीयूषद्रवः तस्य सागरः समुद्रः, विपुलाधारत्वात्। सिद्धिमार्गस्य मोक्षपथस्य उपदेष्टा उपदेशकः, तादृशजिज्ञासुजनायाध्यात्मविद्योपदेशात्। असद्ग्रहो दुरभिसन्धिरेव असद्ग्रहः शनैश्चरप्रभृतिदुष्टग्रहः तस्य अस्तगिरिः अस्ताचलः, एनं प्राप्यैव सर्वेषां दुरभिसन्धिनाशात्। उपशमतरोः शान्तिद्रुमस्य मूलं ब्रध्नः हेतुश्च, उपदेशादिना शान्तिप्रकरणात्। प्रज्ञामेव चक्रं तस्य नाभिः आलम्बनीभूतमध्यभागः, एनमाश्रित्यैव सर्वेषां ज्ञानविस्तारात्। धर्मः अभ्युदयनिश्रेय

कुसुमसौरभवाही और मन्द २ सञ्चारी वायु, रेशमी वस्त्रके समान महर्षिके पहननेका वल्कलको कम्पितकर मानों शङ्कित चित्तसे इनके समीपमें उपस्थित हो रहा है। कारण—सिंह और हस्तिप्रभृति महाप्राणियोंके तेज भी दूसरोंके पक्षमें दुरतिक्रमणीय, किन्तु ये तो समस्त तेजस्वीगणके मध्यमें प्रधान। इस महात्माके अधिष्ठानसे संसारमें मानो, दो सूर्य का प्रकाश पाया जा रहा है। इन्हें आश्रयकर रहनेसे मानो, पृथिवी निश्चल होकर विद्यमान है। ये महर्षि करुणाजलके प्रवाह हैं, संसारसमुद्रसे उत्तीर्ण होनेके लिये सेतु (जहाज) हैं, क्षमारूप जलके आधार हैं, भोगलालसारूप लतासमूहके कुठार हैं, संतोषरूप सुधारसके समुद्र हैं, मोक्षपथके उपदेशक हैं, दुरभिसंधिरूप पापग्रहके अस्ताचल हैं, शांतिवृक्षके मूल हैं, ज्ञानचक्रके आश्रयीभूत मध्यस्थान हैं, धर्ममय ध्वजाके उच्चमय अट्टालिका हैं, समस्त विद्यारूप

---

१ प्रतिगृह्णन्त्याशुशुक्षणयः, प्रतिगृह्णन्त्येतत्प्रदत्तान्याशुशुक्षणयः। २ मन्दमन्दचारी मन्दसञ्चारी। ३ तेजांसि, यतः। ४ निष्कण्टकेव। ५...अवष्टम्भादेव, अवष्टम्भेन। ६ प्रभवः। ७ करुणरसस्य। ८ कृपाम्भसाम्। ९ अमृतस्य। १० असद्ग्रहकस्य। ११ नेमिः। १२ प्रसादो, स्थितिवंशो।

धर्मध्वजस्य, तीर्थं[1] सर्वविद्यावताराणाम्, वडवानलो[2] लोभार्णवस्य, निकषोपलः शास्त्ररत्नानाम्, दावानलो रागपल्लवस्य, महामन्त्रः[3] क्रोधः-भुजङ्गस्य[4], दिवसकरो मोहान्धकारस्य, अर्गलबन्धो नरक[5]-द्वाराणाम्, कुलभवनमाचाराणाम्, आयतनं मङ्गलानाम्, अभूमिर्मदविकाराणाम्, दर्शकः[6] सत्पथानाम्, उत्पत्तिः साधुतायाः, नेमिरुत्साह-चक्रस्य, आश्रयः सत्त्वस्य, विपक्षः कलिकालस्य, कोशस्तपसः, सखा सत्यस्य, क्षेत्रमार्जवस्य, प्रभवः[7] पुण्य-सञ्चयस्य, अदत्तावकाशो मत्सरस्य, अरातिर्विपत्तेः, अस्थानं परिभूतेः, अननुकूलोऽभिमानस्य, असम्मतो दैन्यस्य, अनायत्तो रोषस्य, अनभिमुखः[8] सुखानाम् ।

ससिद्धिद एव ध्वजः पताका तस्य प्रासादो राजभवनम् अस्योपरि धर्मावलम्बनात्। सर्वविद्यासु आन्वीक्षिक्यादिषु ये अवताराः प्रवेशाः तेषां तीर्थं घट्टः, घट्टमवलम्ब्य सलिलेषु प्रवेशवत् एनमालम्ब्यान्तेवासिनां सर्वविद्यासु प्रवेशात् । लोभो धनाद्यागमे बहुधा जायमानेऽपि पुनः पुनर्वर्धमानोऽभिलापः स एवार्णवः समुद्रः तस्य वडवानलः और्वः परिशोषकत्वात् । शास्त्राणि वेदादीन्येव रत्नानि मणयः तेषां निकषोपलः उत्कर्षापकर्षपरीक्षकप्रस्तरः, छात्राणां शास्त्रज्ञानपरीक्षाविधानात् । रागो विषयाभिलाप एव पल्लवः किसलयः तस्य दावानलो वनाग्निः दाहकत्वात् । क्रोधः परवशीकृतात्मनः परापकरणहेतुबुद्धिविशेषः स एव भुजङ्गः सर्पः तस्य महामन्त्रः, उपशमविधायित्वात् । मोहः कार्याकार्यविवेकाभावः अज्ञानमिति यावत् स एवान्धकारस्तिमिरः तस्य दिवसकरः उच्छेदकत्वात् । इह करुणारसस्येत्यारभ्य 'मोहान्धकारस्ये'त्यन्तं प्रायः सर्वत्रैव परम्परितरूपकमलङ्कारः, तत्र क्वचित्क्वचिच्च श्लिष्टपरम्परितरूपकम् एकदेशविवर्त्तिरूपकञ्च । किञ्चैकस्य मुनेर्विषयभेदेनानेकधोल्लेखादुल्लेखालङ्कारश्चेत्युभयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः ।

अर्गलेति । नरकद्वाराणां दुर्गतिद्वाराणाम् अर्गलबन्धः कपाटबन्धकरणकीलकः, उपदेशादिना तत्त्वज्ञानमुत्पाद्य नरकप्रवेशनिवारणात् । आचाराणां वेदादिविहितसदाचाराणां कुलभवनं पुरातनाधारगृहम्, यावज्जीवनमेव सदाचारानुष्ठानात् । मङ्गलानां समग्रश्रेयसाम् आयतनं भवनं पवित्रभूमिमित्यर्थः, सर्वविधमङ्गलसम्पादनात् । वाक्यत्रयेऽप्यत्र प्रत्येकवृत्तिनिरङ्गकेवलरूपकालङ्कारसङ्कीर्णः प्राग्वदेवोल्लेखालङ्कारो ज्ञेयः ।

अभूमिरिति । मदविकाराणाम् अहङ्काररूपमानसिकविकाराणाम् अभूमिरस्थानम्, अभिमानगन्धेनाऽपि शून्य इत्यर्थः महायोगित्वात् । सत्पथानाम् उत्कृष्टतमकर्ममार्गाणां दर्शक उपदेष्टा सर्वज्ञत्वात् सर्वहितचिन्तकत्वाच्च । पूर्वोक्तेन 'सिद्धिमार्गस्य' इत्यनेन सहास्य न पौनरुक्त्यम् उभयोः परस्परं भेदादित्यूहनीयम् । साधुतायाः सुजनतायाः उत्पत्तिः जन्मस्थानम् अस्मादेवानेकेषां सौजन्योपदेशप्राप्तेः । उत्साह उद्योग एव चक्रं तस्य नेमिः प्रान्तभागः, रथचक्रस्य प्रान्तदेशो यथा गन्तव्यमार्गस्य समग्रभागं स्पृशति तथायमपि उत्साहस्य पराकाष्ठाप्राप्त्या निखिलान् पदार्थान् परिमातीत्याशयः। सत्त्वस्य सत्त्वगुणमात्रस्य आश्रयः आधारः, रजस्तमसोभिभवाभावात् । कलिकालस्य कलियुगस्य प्रतिपक्षः शत्रुः तत्कार्यपापावरोधकत्वात् । तपसः कोशो भाण्डागारम्, तपःपरिपूर्णत्वात् । सत्यस्य अनृतव्यवहारस्य सखा मित्रम्, क्षणमपि परित्यागाकरणात् । आर्जवस्य कोमलतायाः क्षेत्रं भूमिः, सर्वत्रैव सारल्यावलोकनात् । पुण्यसञ्चयस्य धर्मसमूहस्य प्रभव उत्पत्तिस्थानम्, दर्शनोपदेशादिना सर्वेषामेव पुण्योत्पादनात् । मत्सरोऽन्यशुभद्वेषस्तस्य न दत्तोऽवकाशः स्वस्मिन्नवस्थानस्थानं येन स तादृशः, क्वाप्यन्यशुभद्वेषाविधानात् । विपत्तेः आपदः अरातिः शत्रुः स्वतेजसा हननात् । परिभूतेरनादरस्य अस्थानम् अपदम्, सर्वदोषरहितत्वात् । अभिमानस्य समस्तलोकानामेव अहङ्कारस्य अननुकूलः अनाज्ञापकः तत्त्यागोपदेशात् । रोषस्य कोपस्य अनायत्तोऽनधीनः

जलके मध्यमें प्रवेश करनेके लिए घाट हैं, लोभरूपी समुद्रके वडवानल, शास्त्ररूपी रत्नसमूहके परीक्षक-पाषाण(कसौटी), विषयासक्तिरूपी पल्लवोंके दावानल, क्रोधरूपी सर्पके उपशमकारी महामन्त्र, अज्ञानरूपी अन्धकारके सूर्य, नरकद्वारसमूहके कपाटबन्ध करने का खिल, सदाचारोंके मौलिक आश्रय-गृह, समीप्रकारमङ्गलके आश्रयस्थान (घर), एवं ये अहङ्कारजनित मदविकारोंके अस्थान, सत्पथके प्रदर्शक, सौजन्यके उत्पत्तिस्थान, उत्साह-चक्रके प्रान्तभाग, सत्त्वगुणके आधार, कलिकालके विरोधी, तपस्याके कोशागार (भण्डार), सत्यके मित्र, सरलताके क्षेत्र, पुण्यसमूहके उत्पत्ति स्थान हैं,

---

१ तीर्थः । २ वाडवानलः । ३ मन्त्रः । ४ क्रोधभुजङ्गस्य । ५ नरकपुरद्वाराणाम् । ६ आदर्शः सर्वविद्यानामुत्पत्तिः । ७ प्रसवः, प्रभावः । ८ अवशो विषयाणामनभिमुखः, अनवकाशो विषयाणामनभिमुख इत्युभयविधः पाठः क्वचित् समुपलभ्यते ।

अस्य भगवतः प्रभावादेवोपशान्तवैरमपगतमत्सरं तपोवनम् ।

अहो ! प्रभावो महात्मनाम् । अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमुपशान्तान्तरात्मानस्तिर्य्यञ्चोऽपि तपोवन-वसति-सुखमनुभवन्ति । तथा हि एष विकचोत्पलवन-रचनानुकारिणमुत्पतच्चारुचन्द्रकशतं हरिण-लोचनं द्युति-शबलमभिनव-शाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमातपाहतो निःशङ्कमहिः । अयमुत्सृज्य मातरमजातकेशरैः केशरि-शिशुभिः सहोपजातपरिचयः क्षरत्क्षीरधारं पिबति कुरङ्ग-शावकः सिंहीस्तनम् । एष मृणाल-कलापाशङ्किभिः शशिकर-धवलं सटाभारम् आमीलित-लोचनो बहु मन्यते द्विरद-

'अधीनो निघ्न आयत्तः' इत्यमरः, दुराचारे प्रवर्त्तयितुमसमर्थत्वात् । सुखानामिहलोकभवानामित्यर्थः अनभिमुखः अनेच्छुकः, तदुपकरणपरित्यागात् । इह 'नेमिरुत्साहचक्रस्य' इत्यत्र परम्परितरूपकमलङ्कारः।

अस्येति । अस्य भगवतो माहात्म्यवतः प्रभावादेव माहात्म्यादेव उपशान्तं विनष्टं वैरं मिथो विरोधो यत्र तत् तादृशम्, तथा अपगतो दूरीभूतो मत्सरोऽन्यशुभद्वेषो यस्मात् तत् तादृशं तपोवनं 'विद्यते' इति शेषः।

अहो इति । विस्मयसूचकमव्ययपदमिदम् । महात्मनां महानुभावानां प्रभावो माहात्म्यम् । एतदेव विशेषतो दर्शयति—अत्रेति । हि निश्चितम् अत्र तपोवने शाश्वतिकं सदातनं विरोधं वैरम् अपहाय दूरीकृत्य उपशान्ता मिथो विरोधशून्या अन्तरात्मानः अन्तःकरणानि येषां ते तादृशाः तिर्यञ्चोऽपि पशुपक्ष्यादयोऽपि तपोवनवसतिसुखं मुनिस्थाननिवासानन्दमनुभवन्ति अनुभवविषयीकुर्वन्ति। उपपादयति—तथाहीति। एष पुरतोऽवलोक्यमानः अहिः सर्पः, आतपेन सूर्यकिरणेन आहतः सन्तप्तः सन्, विकचानां विकसितानाम् उत्पलानां नीलपद्मानां वनस्य विपिनस्य या रचना सृष्टिः तामनुकर्त्तुं शीलं यस्य तं तादृशम्, उत्पतत् उपरि गच्छत् चारु सुन्दरं चन्द्रकाणां मेचकानां (चन्द्राकारचिह्नानां) शतं समूहो यत्र तं तादृशम्, अत एव हरिणानां तत्तच्छष्पभक्षणतत्पराणां मृगाणां यानि लोचनानि नयनानि तेषां द्युतिभिः शोभाभिः शबलं कर्बुरितम् अभिनवशाद्वलमिव प्रत्यग्रशष्पबहुलदेशमिव विद्यमानं शिखिनो मयूरस्य कलापं पिच्छं निःशङ्कं निर्भयं विशति छायाप्राप्त्यर्थं प्रविशति । विरोधे सति तु सर्पोऽनादिकालशत्रोर्मयूरस्य पिच्छमात्मनैव कथमाश्रयेदित्याशयः । अत्राद्याऽर्थोपमाऽपरा च श्रौतोपमा इत्युभयोः परस्परं नैरपेक्ष्येण स्थितत्वात्संसृष्टिरलङ्कारः।

अयमिति । अयं पुरतोऽवलोक्यमानः कुरङ्गशावको मृगशिशुः मातरं निजजननीं मृगीम् उत्सृज्य परित्यज्य, अजातकेसरैः अनुत्पन्नसटैः केसरिशिशुभिः मृगपतिशावकैः सह उपजातपरिचयः उत्पन्नसंस्तवः, क्षरन्ती स्रवन्ती क्षीरधारा दुग्धधारा यस्मात्तं तादृशं सिंहीस्तनं पिबति पानं करोति ।

एष इति । आमीलितलोचनः सटाकर्षणेनानन्दोदयान्मुकुलितलोचनः, एष पुरतोऽवलोक्यमानः मृगपतिः सिंहः, मृणालकलापाशङ्किभिः सटासमूहे बिससमूहभ्रान्तिमद्भिः, द्विरदकलभैः करिशावकैः आकृष्यमाणम् अवकृष्यमाणं शशिकरवत् चन्द्ररश्मिवत् धवलं स्वच्छं सटाभारं स्वजटासमूहं बहु मन्यते

मत्सरताको इन्होंने अवकाश नहीं दिया है, विपत्तिके शत्रु हैं, किसीकी अवज्ञाके अस्थान हैं, किसीके भी अभिमानके अनुकूल नहीं हैं, क्षुद्रताके प्रिय नहीं हैं, क्रोधके अधीन नहीं हैं एवं ऐहिक सुखके अभिलाषी नहीं हैं।

इस महर्षिके प्रभाव से ही इस तपोवनमें प्राणियोंकी परस्पर शत्रुता मिट गयी है और अन्य शुभद्वेषका यहाँ नाम नहीं है।

अहो ! महात्माओंका प्रभाव कितना विशाल होता है कारण—इस स्थानमें पशु-पक्षिगण भी चिरकालसे परस्पर शत्रुता परित्यागकर विद्वेषहीन चित्तसे तपोवन-वासका सुखानुभव कर रहे हैं। उसका प्रमाण—यह सर्प धूपके उत्तापसे सन्तप्त होकर, विकसित नीलकमलवनके अनुकरणकारी, ऊपर उठे सैकड़ों मनोहर चन्द्राकारचिह्नसे चिह्नित एवं तृणभक्षणके समय हरिणगणके नेत्रकान्ति के समान मयूर के समुदाय में छाया प्राप्त करनेके लिए निर्भय चित्तसे प्रवेश कर रहा है, मानो नई नई दूर्वाके खेतमें जाता हो। इस हरिणके बच्चेका सिंहके केसर-रहित बच्चोंके साथ मेल हो गया है, यह अपनी माताको परित्यागकर दुग्धधाराच्यवनकारी सिंहीका स्तन पान कर रहा है। ये हाथीके बच्चे सिंहकी चन्द्ररश्मिके समान धवलवर्ण जटासमूहको मृणाल समझकर आकर्षण करते हैं, और

१ प्रसादादेवैतदप्युपशान्तवैरम् । २ उपशान्तात्मानः । ३ उत्पलिनीवनानुकारिणाम् । ४ अधिवसति, आवसति । ५ कलापमाहतः । ६ अनुपजात । ७ प्रचरत्''' । ८ आपिबति । ९ मृणालशङ्किभिः । १० शिशिरकर, शिशिरकलापकर''' । ११ जटाभारम् ।

कलभैराकृष्यमाणं मृगपतिः । इदमिह कपि-कुलमपगत-चापलमुपनयति मुनि-कुमारकेभ्यः स्नातेभ्यः फलानि । एते च न निवारयन्ति मदान्धा अपि गण्डस्थलीभाञ्जि मदजल-पान-निश्चलानि मधुकर-कुलानि सञ्जातदयाः कर्णतालैः करिणः । किं बहुना, तापसाग्निहोत्र-धूमलेखाभिरुत्सर्पन्तीभिरनिशमुपपादितकृष्णाजिनोत्तरासङ्ग-शोभाः फलमूलभृतो वल्कलिनो निश्चेतनास्तरवोऽपि सनियमा इव लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः किं पुनः सचेतनाः प्राणिनः ।'

इत्येवं चिन्तयन्तमेव मां तस्यैव रक्ताशोकतरोश्छायायाम् एकदेशे स्थापयित्वा हारीतः पादावुपगृह्य कृताभिवादनः पितुरनतिसमीपवर्त्तिनि कुशासने समुपाविशत् । आलोक्य तु मां सर्वे एव मुनयः 'कुतोऽयमासादितः शुकशिशुः' इति तमासीनमपृच्छन् । असौ तु तान-

---

स्वल्पस्वल्पापकर्षणेनानन्दोदयात्समादरं करोति । अत्र जटासमूहे मृणालसमूहभ्रमाद् भ्रान्तिमानलङ्कारः, शशिकरधवलमित्यत्र च लुप्तोपमा, स्वभावोक्तिश्चेति परस्परमेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः ।

इदमिति । इह अस्मिन् तपोवने, अपगतचापलं मुनितेजसा विनष्टचाञ्चल्यम् इदं कपिकुलं वानरवृन्दं स्नातेभ्यो विहितास्नावेभ्यः मुनिकुमारकेभ्यः तपस्विबालकेभ्यः फलानि सस्यानि उपनयति भक्षणायाहरति ।

एत इति । मदान्धा मदोन्मत्ता अपि सञ्जातदयाः मधुकरवृन्देषु समुत्पन्नकरुणाः, एते च करिणो हस्तिनः, गण्डस्थलीं करटस्थलीं भजन्त इति तानि तादृशानि, मधुकरकुलानि भ्रमरसमूहान् कर्णतालैः विस्तृतकरतलस्वरूपकर्णताडनैः न निवारयन्ति न दूरीकुर्वन्ति, महर्षिप्रभावेणैतेषामपि कस्यापि सुख-हननाविधानादित्याशयः ।

किमिति । बहुना अधिकेन जल्पितेन किं फलमित्यर्थः । अनिशं सन्ततम् उत्सर्पन्तीभिः उत्तिष्ठ-न्तीभिः तापसानां मुनीनां यानि अग्निहोत्राणि यागविशेषाः तेषां धूमलेखाभिः दहनकेतनपङ्क्तिभिः उपपा-दिता विहिता कृष्णाजिनोत्तरासङ्गस्य कृष्णसारमृगचर्मरचितोत्तरीयस्य शोभा कान्तिरिव शोभा येषु ते तादृशाः, फलानि सस्यानि मूलानि कन्दानि च बिभ्रतीति ते वल्कलिनो वृक्षत्वग्धारिणो निश्चेतनाः ज्ञानरहिताः, अस्य भगवतो माहात्म्यवतो महर्षेः तरवोऽपि वृक्षा अपि सनियमा व्रतिन इव लक्ष्यन्तेऽव-लोक्यन्ते कृष्णाजिनशोभादिधारणादित्याशयः । सचेतना चेतनायुक्ता ये प्राणिनो मानवादयः तेषां किं पुनः किं वक्तव्यम्, ते त्वेवंरूपा भवन्त्येवेत्याशयः । अत्र 'कृष्णाजिनोत्तरासङ्ग-शोभाः' इत्यत्र लुप्तोपमा, 'सनि-यमा इव' इत्यत्र गुणोत्प्रेक्षा चेत्यनयोः परस्परमङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः ।

इत्येवमिति । एवं पूर्वोक्तविधिना चिन्तयन्तं मां वैशम्पायनं तस्यामेव अशोकतरोः अशोकवृक्षस्य अधश्छायायाम् एकदेशे एकस्मिन् भागे स्थापयित्वा संस्थाप्य हारीतः तन्नामा मुनिः, पादौ पितुर्जाबाले-रेव चरणौ उपगृह्य धृत्वा पादयोः पतित्वेत्यर्थः, कृताभिवादनो विहितप्रणामः पितुर्जनकस्य अनतिसमीप-वर्त्तिनि नातिनिकटवर्त्तिनि कुशासने दर्भविष्टरे समुपाविशत् उपविष्टवान् । तु: पुनरर्थे । आलोक्य दृष्ट्वा मां सर्वे निखिला एव मुनयः ऋषयः कुतः कस्मात् प्रदेशात् अयं शुकशावकः आसादित आनीत इति

वह पशुराज (सिंह) अपनी आँखें आधी मीचकर प्रसन्न होता है । ये वानरगण अपनी स्वाभाविक चपलताको परित्याग कर, स्नान करके उठे हुये मुनिकुमारोंको भोजन करने के लिये फल ला देते हैं । मदान्ध हाथियों के गंडस्थलपर बैठ भ्रमरगण भी निश्चल होकर मदजल पीते हैं, हाथी दया के कारण कान हिलाकर उन्हें नहीं उड़ाते हैं । अधिक कहाँ तक कहूँ ! तापसगणके अग्निहोत्र यज्ञ से (सर्वदा) धूमराशि उत्थित होकर समस्तवृक्षके शाखापर कृष्णसारचर्मके उत्तरीयके समान शोभा उत्पन्न कर रहे हैं, महर्षि जाबालिके आश्रमस्थ वे समस्त अचेतन, फलमूलधारी, वल्कलविशिष्ट वृक्ष व्रतधारीके समान दीख रहे हैं । जब वृक्षोंकी यह हाल है फिर सचेतन प्राणियों की तो बात ही क्या है ?

इस प्रकार मैं चिन्ता कर रहा था कि इसी अवसर पर हारीत मुझे उसी रक्ताशोकवृक्षके नीचे छायाके एकभागमें रक्खा, और वह अपने पिता (जाबालि) के चरणयुगलग्रहणपूर्वक प्रणाम कर के उनके अनतिसमीपवर्त्ती कुशासन पर बैठ गया । समस्त मुनिगण मुझे देखकर बैठे हुए हारीतसे पूछने लगे—'यह शुकशावक कहाँसे

---

१ कलभकैः । २ कुमारेभ्यः । ३ जातदयाः । ४ उत्सर्पन्तीभिरुपपादित, सर्पन्तीभिरहर्निशमुपपा-दित''' । ५'''शोभनाः । ६ वल्कलिनस्तरवः । ७ इवास्य भगवतः समीपवर्त्तिनोऽत्र लक्ष्यन्ते; इव लक्ष्यन्तेऽस्य भगवतः समीपवर्त्तिनः । ८ प्राणिन एवम् । ९ तस्यामेवाशोकतरोरधश्छायायाम् । १० मां ते मुनयः सर्वं एव ।

ब्रवीत्—'अयं मया स्नातुमितो गतेन कमलिनीसरस्तीर तरु-नीड-पतितः। शुक-शिशुरातपजनित-क्लान्तिरुत्तप्तपांशुपटल-मध्यगतो दूर- निपतन-विह्वल-तनुरल्पावशेषायुरासादितः, तपस्विदुरारोहतया च तस्य वनस्पतेर्न शक्यते स्वनीडमारोपयितुमिति जातदयेनानीतः। तद्यावदयमप्ररूढपक्षतिरक्षमोऽन्तरीक्षमुत्पतितुम्, तावदत्रैव कस्मिंश्चिदाश्रमतरुकोटरे मुनिकुमारकैरस्माभिश्चोपनीतेन नीवार-कण-निकरेण विविधफलरसेन च संवर्द्ध्यमानो धारयतु जीवितम्। अनाथ-परिपालनं हि धर्मोऽस्मद्विधानाम्। उद्भिन्नपक्षतिस्तु गगनतल-सञ्चरणसमर्थो यास्यति यत्रास्मै रोचिष्यते। इहैव वोपजात-परिचयः स्थास्यति।'

इत्येवमादिकमस्मत्संबद्धमालापमाकर्ण्य किञ्चिदुपजात-कुतूहलो भगवान् जाबा-

एवम् आसीनमुपविष्टं तं हारीतम् अपृच्छन् पृष्टवन्तः। असौ हारीतः तु पुनः तान् मुनीन् अब्रवीत् उक्तवान्—'अयं शुकशावकः इतः अस्मात्स्थानात् स्नातुम् आप्लवनार्थं गतेन प्राप्तेन मया हारीतेन कमलिनीसरसः पद्ममयसरोवरस्य पम्पायाः तीरतरोः तटस्थितवृक्षस्य नीडात् कुलायात् पतितः च्युतः। आतपेन सूर्यरश्मिना जनिता उत्पादिता क्लान्तिः देहव्यथा यस्य स तादृशः। उत्तप्तस्य उष्णीभूतस्य पांशुपटलस्य धूलिसमूहस्य मध्यगतोऽभ्यन्तरवर्त्ती, दूरात् निपतनेन अधःसंयोगफलिकया क्रियया विह्वला व्यग्रा तनुः शरीरं यस्य स तादृशः, अत एव अल्पं किञ्चित् अवशेषम् अवशिष्टम् आयुः जीवितं यस्य स तादृशः आसादितः आनीतः। तपस्विभिः मुनिभिः दुरारोहतया दुःखेनारोढुं योग्यतया तस्य वनस्पतेः शाल्मलीतरोः स्वनीडं स्वकुलायम् आरोपयितुं स्थापयितुं न शक्यते न समर्थीभूयत इति हेतोः, जातदयेन उत्पन्नकरुणेन आनीतः आसादितः। तत्तस्माद्धेतोः यावत् यावत्समयम् अयं शुकशिशुः अप्ररूढे अनुत्पन्ने पक्षती पक्षमूलद्वयं यस्य स तादृशः अन्तरिक्षं गगनमुत्पतितुम् उड्डीय गन्तुम् अक्षमोऽसमर्थः तावत् तावत्समयम् अत्रैव अस्मिन् तपोवन एव कस्मिंश्चित् अनिर्दिष्टनामनि आश्रमतरुकोटरे मुनिवसतिवृक्षकोटरे मुनिकुमारकैः तापसबालकैः अस्माभिश्च उपनीतेन आनीतेन नीवारकणनिकरेण मुनिधान्यसस्यसमूहेन फलरसेन सस्यद्रवेण च सम्वर्द्ध्यमानः वृद्धिं प्राप्यमाणः जीवितं जीवनं धारयतु दधातु। हि यतोऽस्मद्विधानाम् अस्मत्सदृशानां मुनीनाम् अनाथपरिपालनं दीनजनरक्षणं धर्मः आचारः। उद्भिन्ने स्फुटे पक्षती पक्षमूले यस्य स तादृशः, तु पुनः, गगनतलसञ्चरणसमर्थः अम्बरतलगमनक्षमः, यत्र यस्मिन् देशे अस्मै शुकशावकाय रोचिष्यते अभिलाष उत्पत्स्यते तत्र यास्यति व्रजिष्यति। 'रुच्यर्थानां प्रीयमाणः' १।४।३३ इति पा०सूत्रेण चतुर्थी। वा अथवा इहैव अस्मिन्नेव तपोवने। अन्ययोगव्यवच्छेदार्थ एवकारः, उपजातपरिचयः उपजातः अस्माभिः सह उत्पन्नः परिचयः संस्तवो यस्य स तादृशः स्थास्यति अवस्थितिं विधास्यति।

इत्येवमिति। इत्येवम् इत्थमादिकम् अस्मत्सम्बद्धं मद्विषयकम् आलापं प्रश्नोत्तररूपम् आकर्ण्य

आप लाये?' तब हारीत ने उन लोगोंसे कहा—'मैं यहाँ से स्नान करनेके लिए जाता था, तब मैंने देखा कि यह शुकशावक (तोता) कमलसरोवरके तीरपर वृक्षके किसी घोसलेमें से गिरकर यह गरम गरम भभकती रेतीमें पड़ा ताप से हाँप रहा था, ऊँचेसे गिरजानेके कारण इसका शरीर विह्वल होगया था, और इसमें थोड़ी ही जान बाकी थी। इसे देखकर मुझे दया तो आई किन्तु उस वृक्षपर चढ़ना तपस्वियोंके लिए कठिन समझकर मैं इसे घोसलेमें न रख सका और अपने साथ ले आया। अतएव जब तक पंख उत्पन्न नहीं हुए हैं, आकाशमें उड़नेमें समर्थ नहीं हैं, तब तक इसी स्थान में आश्रमस्थ किसी वृक्षके कोटरमें रहे और हमसे एवं अन्यान्य तापसकुमारगणसे प्रदत्त नीवारतंडुलके कणाओंके और अनेकविध फलके रस आहारकर वृद्धि लाभ करता हुआ जीवन धारण करे। कारण—हम लोगोंके समान लोगोंको निराश्रय व्यक्तियोंका परिपालन करना धर्म है, जब इसे पंख उत्पन्न हो जाय और आकाशमें भ्रमण करनेका सामर्थ्य होजाय तब जिस स्थान की अभिरुचि होगी, उस स्थानमें जायगा, अथवा हम लोगोंके साथ परिचय हो जानेसे इसी स्थानमें रहेगा।'

मेरे सम्बन्धमें इस प्रकार कथोपकथन सुनकर भगवान् जाबालिको कौतूहल उत्पन्न हुआ, वे मेरी ओर

१...शिरस्तरुः सरसस्तीरतरुनीडपतितः। २ दूरनिपतित...। ३ क्वचित् 'च' इति पाठो नास्ति। ४ अन्तरिक्षम् ५ क्वचित् 'विविध' इति पाठो नोपलभ्यते। ६. अस्त्यस्मद्विधानाम्। ७ सञ्चलन...। ८ यत्र चास्मै। ९ समुपजात...; उपजातविश्रम्भः। १० अस्मत्सम्बद्धमालापम्। ११ कौतूहलः।

शिरीषदावलितकन्धरः पुण्यजलैः प्रक्षालयन्निव मामतिप्रशान्तया दृष्ट्या दृष्ट्वा' सुचिरमुपजात-प्रत्यभिज्ञान इव पुनः पुनर्विलोक्य 'स्वस्यैवाविनयस्य फलमनेनानुभूयते' इत्यवोचत्।

स हि भगवान् कालत्रयदर्शी तपःप्रभावाद्दिव्येन चक्षुषा सर्वमेव करतलगतमिव जगदवलोकयति, वेत्ति च जन्मान्तराण्यप्यतीतानि, कथयत्यागामिनमप्यर्थम्, ईक्षण-गोचरगतानाञ्च प्राणिनामायुषः संख्यामावेदयति।

ततः सर्वैव सा तापसपरिषच्छ्रुत्वा विदित-तत्प्रभावा 'कीदृशोऽनेनाविनयः कृतः, किमर्थं वा कृतः, क्व वा कृतः, जन्मान्तरे वा कोऽयमासीत्' इति कुतूहलिन्यभवत्, असकृदुपयाचितवती च तं भगवन्तम्—'आवेद्य प्रसीद भगवन्! कीदृशस्याविनयस्य फलमनेनानुभूयते,

निशम्य किञ्चित् ईषत् उपजातकुतूहलः उत्पन्नाश्चर्यः भगवान् माहात्म्यवान् जाबालिः ईषदावलितकन्धरो मद्दिशि किञ्चिदानमितग्रीवः, पुण्यान्येव सुकृतान्येव जलानि सलिलानि तैः तथोक्तैः मां वैशम्पायनं प्रक्षालयन्निव धौतीकुर्वन्निव अतिप्रशान्तया नितान्तप्रसन्नया दृष्ट्या नेत्रेण सुचिरं बहुकालं दृष्ट्वा अवलोक्य, उपजातम् उत्पन्नं प्रत्यभिज्ञानं 'स एवायम्' इत्याकारकं ज्ञानं यस्य स तादृशः इव पुनः पुनः भूयो भूयो विलोक्य निरीक्ष्य स्वस्यैव आत्मन एव अविनयस्य अशिष्टव्यवहारस्य फलं भोगोऽनेन शुकशावकेन अनुभूयते साक्षात्क्रियते इति एवंविधिना तान् अवोचत् अब्रवीत्। 'पुण्यजलैः' इत्यत्र निरङ्गकेवलरूपकम्, 'प्रक्षालयन्निव' इत्यत्र क्रियोत्प्रेक्षा चेत्यनयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः।

ननु तस्मिन् समय एव प्रथमं दृष्टवतो महर्षेः प्रत्यभिज्ञा कथमुपजाता इत्यत आह—स हीति। हि यस्माद्धेतोः स भगवान् माहात्म्यवाञ्जाबालिः कालत्रयदर्शी अतीतानागतवर्त्तमानात्मककालत्रितयनिखिलोदन्ताभिज्ञः, तपःप्रभावात् दिव्येन ज्ञानात्मकेन चक्षुषा नेत्रेण सर्वं समस्तमेव जगत् संसारं करतलगतमिव पाणितलन्यस्तमिव अवलोकयति पश्यति। च पुनः अतीतानि गतानि जन्मान्तराणि भवान्तराणि वेत्ति जानाति। आगामिनमप्यर्थं भविष्यन्तमपि विषयं कथयति निरूपयति। ईक्षणगोचरगतानां लोचनपथप्राप्तानाञ्च प्राणिनां जीवानाम् आयुषो जीवितव्यस्य संख्याम् इयत्ताम् आवेदयति बोधयति।

तत इति। ततः तदनन्तरं सर्वैव समस्तैव सा तापसपरिषत् तपस्विसभा श्रुत्वा निशम्य पूर्वोक्तमिति शेषः। वृद्धतरुणभेदेन सम्प्रदायभेदेन वा तपस्विसभानामनेकत्वात्सर्वैवेत्यभिधानं युक्तमेव। विदितो ज्ञातः तस्य महर्षेर्जाबालेः प्रभावो माहात्म्यं यया सा तादृशी इति कुतूहलिनी अवगन्तुं चेतसि कौतुकवती अभवदित्यन्वयः। इति पदाभिधेयमाह—कीदृशः इति। कीदृशः कीदृक् अनेन शुकशावकेन अविनयः अशिष्टव्यवहारः कृतो विहितः, किमर्थं किं प्रयोजनं वा कृतोऽनुष्ठितः, क्व वा कस्मिन् देशे कृतः, जन्मान्तरे भवान्तरे वा अयं कः आसीत् अभवत्। तं भगवन्तं माहात्म्यवन्तम् असकृत् वारं वारम् उपयाचितवती तद्वृत्तान्तकथनाय प्रार्थितवती। हे भगवन्! आवेद्य अभिधेहि, प्रसीद प्रसन्नो भव, कीदृशस्य किंरूपस्य अविनयस्य अशिष्टव्यवहारस्य फलं भोगः अनेन शुकशिशुना अनुभूयते साक्षात्क्रियते। जन्मान्तरे

अपनी गर्दन जरा मोरकर, पुण्य जलसे मानो मेरा प्रक्षालन करते हों इस तरह अत्यन्तप्रसन्नदृष्टिसे मुझे परिचित के तरह बहुत समयतक वार वार देखे और इस प्रकार कहने लगे कि—'यह शुकशावक अपने ही अन्याय आचरणका फल अनुभव कर रहा है।'

वे महर्षि, त्रिकालज्ञ एवं तपस्याके प्रभावसे दिव्यचक्षुद्वारा समस्त संसारको ही करतलगतके समान देखते थे, लोगोंके पूर्वजन्मके घटनावली भी जानते थे, भविष्य विषय भी कहते थे एवं दर्शनमात्रसे ही प्राणियोंकी आयुका प्रमाण बता देते थे।

उसके बाद वह तपस्वियों की सभा (समस्त मण्डली) जाबालिसे ऐसी कथा सुनकर उनके माहात्म्यको अवगतकर मन ही मन कौतुकाविष्ट हुए जो, यह शुकशावक कैसा अन्याय आचरण किया होगा ? किस कारण किया होगा ?, कहाँ किया होगा ?, जन्मान्तर में यह कौन था ? इन बातोंको जानना चाहिये उसके बाद वे उसकी

१ दृष्ट्वा, क्वापि नोभयरूपः पाठः समुपलभ्यते। २ अभिजातप्रत्यभिज्ञः। ३ त्रिकालदर्शी। ४ आलोकयति। वेत्ति जन्मान्तराण्यतीतानि। ६ प्रमाणम्। ७ यतः सर्वैव, सर्वैव सा तापस…। ८ सतापसपरिषत् ९ क्वचित् 'वा' इति पदं नास्ति। १० कौतूहलिनि। ११ उपनाथितवती, इत्युपनाथितवती; उपेत्यार्थितवती। १२ भुज्यते।



विहगजातौ वा कथमस्य सम्भवः, किमभिधानो वायम्, अपनयतु नः कुतूहलम् आश्चर्याणां हि सर्वेषां भगवान् प्रभवः।'

इत्येवमुपयाचितस्तपोधनपरिषदा स महामुनिरवदत्—'अतिमहदिदमाश्चर्यमाख्यातव्यम्, अल्पशेषमहः, प्रत्यासीदति च नः स्नानसमयः, भवतामप्यतिक्रामति देवार्चनवेला, तदुत्तिष्ठन्तु भवन्तः, सर्व एव तावदाचरन्तु यथोचितं दिवस-व्यापारम्, अपराह्णसमये भवतां पुनः कृत-फलमूलाशनानां विस्रब्धोपविष्टानामादितः प्रभृति सर्वमावेदयिष्यामः। योऽयं यच्च कृतमनेनापरस्मिन् जन्मनि, इहलोके च यथास्य सम्भूतिः। अयञ्च तावदपगतक्लमः क्रियतामाहारेण। नियतमयमप्यात्मनो जन्मान्तरोदन्तं स्वप्नोपलब्धमिव मयि कथयति, सर्वमशेषतः स्मरिष्यति' इत्यभिदधदेवोत्थाय सह तैर्मुनिभिः स्नानादिकमुचित-दिवस-व्यापारम् अकरोत्।

भवान्तरे अयं क आसीत्, विहायसा आकाशमार्गेण गच्छतीति विहगः पक्षी तज्जातौ तद्वंशे अस्य कथं केन विधिना सम्भव उत्पत्तिः, वा अथवा किमभिधानः किन्नामा अयं शुकशिशुः, नोऽस्माकं कुतूहलम् आश्चर्यम् अपनयतु दूरीकरोतु, हि यतः सर्वेषां समस्तानाम् आश्चर्याणां परोक्षविषयविवरणस्वरूपाणां प्रभवो हेतुः अपूर्वार्थबोधक इत्यर्थः।

इत्येवमिति। इत्येवम् अनेन विधिना तपोधनपरिषदा तपस्विसभया तत्रस्थजनैरित्यर्थः उपयाचितः प्रार्थितः स महामुनिः प्रत्यवदत् प्रत्यवोचत्—'अतीति। इदमाश्चर्यम् अघटितघटनायुक्तम् अतिमहत् अतिदीर्घम् आख्यातव्यं निरूपणीयम्, मयेति शेषः। अहो वासरः अल्पशेषं स्वल्पावशिष्टम्, नोऽस्माकं स्नानसमयः मज्जनकालः प्रत्यासीदति सन्निधत्ते। भवतामपि युष्माकमपि देवार्चनविधिवेला देवपूजनविधिसमयः अतिक्रामति अत्युल्लङ्घिता भवति, तत्तस्मात् कारणात् भवन्तो यूयम् उत्तिष्ठन्तु उत्थानं विदधतु। सर्वं एव 'तावत्' इति वाक्यालङ्कारे। यथोचितं यथायोग्यं दिवसव्यापारं दिनकृत्यम् आचरन्तु अनुतिष्ठन्तु। अपराह्णसमये प्रहरद्वयानन्तरकाले भवतां युष्माकं पुनः द्वितीयवारं कृतं विहितं मूलफलानाम् अशनं भोजनं यैस्तेषां तथोक्तानाम्, विस्रब्धोपविष्टानां सुस्थभावेनोपवेशनं कृतानाम् आदितः प्रारम्भतः प्रभृति सर्वं समस्तम् आवेदयिष्यामि कथयिष्यामि। अयं शुकशिशुः यः पूर्वजन्मनि आसीत्, परस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे यच्च कर्म अनेन कृतं विहितम्, च पुनः इह लोके अस्मिन् संसारे यथा येन प्रकारेण अस्य सम्भूतिः उत्पत्तिः। तावत् प्रथमम् अयं शुक आहारेण भोजनेन अपगतक्लमो विनष्टश्रमः क्रियतां विधीयताम्। नियतं निश्चितं मयि जाबालौ कथयति निवेदयति सति अयं शुकः अपि आत्मनः स्वस्य जन्मान्तरोदन्तं परजन्मवार्त्तां स्वप्नोपलब्धमिव स्वप्नदृष्टवत् सर्वं समस्तम् अशेषत आदितः स्मरिष्यति

घटना कहनेके लिए भगवान् जाबालिको बारम्बार प्रार्थना करने लगे—'भगवन्! आप प्रसन्न होइए, हम लोगोंको कृपया कहिये जो यह शुकशावक कैसा अन्याय आचरणका फल अनुभव कर रहा है? जन्मान्तरमें यह कौन था? पक्षि जातिमें ही किस प्रकार इसकी उत्पत्ति हुई? और इसका क्या नाम है? आप हमलोगों का कुतूहल निवृत्त करें, क्योंकि—आप समस्त आश्चर्य विषयोंको कह सकते हैं।"

तपस्वियों की इसप्रकार प्रार्थना करनेपर वे महर्षि बोले—'अधिक विस्तृत और आश्चर्यजनक इसका वृत्तान्त है, दिन अब अल्पमात्र ही अवशिष्ट है, हमलोगोंके स्नानका समय भी उपस्थित हो गया है, आप लोगोंका भी देवतापूजाका समय अतिक्रान्त हो रहा है। अतएव आप लोग उठिये सभी यथोचित नित्य-कर्म करलें, सायं समय व्यतीत होनेपर आपलोग फलमूल भोजन करके फिरसे स्वस्थचित्त हो बैठेंगे तब मैं पहलेसे ही समग्र वृत्तान्त कहूँगा, यह शुकशावक पूर्वजन्ममें जो था एवं जो किया था एवं इस लोकमें भी इसकी जिस प्रकार उत्पत्ति हुई है। तबतक इसे खाद्यवस्तु प्रदानकर इसको आराम करने दीजिये मैं जैसे जैसे कहता जाऊँगा वैसे वैसे इसका अपने दूसरे जन्मका ठीक ठीक हाल इस प्रकार आएगा मानो स्वप्नमें हुआ है। इस प्रकार कहते हुए ही महर्षि

---

१ क्वापि 'वा' पदं न विद्यते। क्वचिच्च 'च' पदं वर्त्तते। २ उपयाच्यमानस्तु। ३ प्रत्यवदत्। ४ विधिवेला। ५ क्वचित् 'तावत्' पदं नास्ति। ६ क्वापि 'फल' पदं नास्ति। ७ आवेदयिष्यामि। ८ यच्चानेन कृतमपर। ९ लोके च यथा लोके यथा। १० जन्मान्तरवृत्त। ११ क्वचित् 'तैः' इति पदं नास्ति। १२ स्नानादिकमुचितं दिवसव्यापारम्, स्नानादिकं दिवसव्यापारम्।

अनेन च[1] समयेन परिणतो दिवसः । स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले द[2]त्तः तमम्बर[3]-तलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुद्वहत् । ऊर्ध्वमुखै-रर्क-विम्ब-विनि[4]हित-दृष्टिभिरुष्म[5]पैस्तपोधनैरिव परिपीयमान-तेजःप्रसरो विरलात[6]प-स्तनिमानमभजत् । उद्यत्सप्तर्षि[7]सार्थ-स्पर्श-परिजिहीर्षयेव संहृत-पादः पारावत-[8]पाद-पा-

स्मृतिपथमानयिष्यति, इत्यभिदधदेव इत्थं ब्रुवन्नेव उत्थाय उत्थानं विधाय मुनिभिः तपस्विभिः समं साकम् उचितं योग्यं दिवसव्यापारं दिनकृत्यं स्नानादिकम् अकरोत् विहितवान् ।

अनेनेति । अनेन समयेन मध्याह्नसमयानुष्ठेयक्रियया, अत्र अपवर्गे तृतीया । परिणतः अवसानं प्राप्तः दिवसो वासरः"स्नानोत्थितेन मुनिजनेन तपस्विमण्डलेन अर्घविधिं रक्तचन्दनरक्तकुसुमादिना सूर्याय पूजाविधिम् उपपादयता सम्पादयता क्षितितले भूतले दत्तोऽर्पितः यः रक्तचन्दनाङ्गराग इत्यर्थः । अम्बर-तलगतो गगनतलप्राप्तो रविः सूर्यः साक्षात् तं रक्तचन्दनाङ्गमिव रक्तचन्दनरूपमङ्गरागद्रव्यमिव उदवहत् तनाववधारयत्, तत्समये सूर्यस्यारक्तायमानत्वादित्याशयः । 'रक्तचन्दनाङ्गरागमिव' इति जात्युत्प्रेक्षा ।

ऊर्ध्वेति । ऊर्ध्वमुखैः ऊर्ध्ववदनैः अर्कविम्बे रविमण्डले विनिहिताः स्थापिता दृष्टयोऽवलोकनानि यैस्तैः, ऊष्माणम् उत्तापं पिबन्तीति तैस्तादृशैस्तत्संज्ञकैः, तप एव धनं येषां तैस्तथोक्तैः, परिपीयमानः आस्वाद्यमानः तेजःप्रसरः तेजस्समूहो यस्य स तथोक्त इव सन्, विरलः अस्तोन्मुखत्वात् स्वल्पीभूतः आतप आलोको यस्य स तादृशः सूर्यः तनोः क्षीणत्वस्य भावस्तनिमा तम् अभजत् प्राप । तनिमानमि-त्यत्र 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' इति पा०सूत्रेण इमनिच्प्रत्ययः । अत्र सन्ध्यासमये मन्दातपो रविः यत्क्षीणत्वमुपगतस्तत्र तद्बिम्वविनिहतदृष्टिभिर्मुनिभिः समस्तं दिनं यावत् स ऊष्मा पीतः, अत एव सायं रविस्तनुतामभजदिति क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः ।

उद्यदिति । उद्यत उदयमानस्य सप्तर्षिसार्थस्य सप्तर्षिगणस्य यः स्पर्शः पादेन संस्पर्शः, तस्य परि-जिहीर्षयेव परिहर्तुमिच्छयेव कारणेन, संहृतः सङ्कोचितः पादो रश्मिश्चरणश्च येन स तादृशः, संसारे प्रति-ष्ठितानां सप्तर्षीणां चरणेन स्पर्शनस्यात्यन्तमनौचित्यादित्याशयः । पारावतः कपोतः तस्य पादवत् चर-णवत् पाटलः श्वेतरक्तः रागः कान्तिः यस्य स तादृशः, रविः सूर्यः अम्बरतलात् गगनतलात् अलम्बत अवातरत् । अत्र पाद(रश्मि)द्वारा जगत्पूज्यानामृषीणां स्पर्शजनितोऽपराधो न भवत्विति हेतुना उप-संहृतपादः (रश्मिः) रविरम्बरतलादलम्बतेति हेतूत्प्रेक्षालङ्कारः । रश्मिचरणयोर्भेदेऽपि पादशब्दश्लेषेणा-भेदाध्यवसायादतिशयोक्त्यलङ्कारः, 'पारावतपादपाटलराग' इत्यत्र लुप्तोपमा च, इत्येतेषां परस्परमङ्गाङ्गि-भावेन सङ्करालङ्कारः । यद्यपि जगद्वन्द्यस्य रवेः प्रभायां पारावतपादसाम्यकल्पनादुपमानौचित्यं प्रतीयते तथापि सन्ध्याकाले तेजोविरहितलौहित्यसाम्येन रवेर्मन्दप्रभताऽतिशयध्वननाद्दोषाभावः, एतदर्थं पाठा-न्तरकल्पनमनावश्यकमेवाभातीति विभावयन्तु सुधियः ।

जावालि ने उन तपस्वियोंके साथ उठकर स्नानादिक विधि और उचित नित्य-कृत्य सम्पादन किया ।

तवतक दिन शेषप्राय हो गया था । तपस्विगण स्नान करके खड़े होकर सूर्यार्घ देनेके समयमें भूतलमें जो रक्तचन्दन दिये थे, उसीका मानो आकाशस्थित सूर्यने साक्षात् अङ्गराग शरीरमें धारण किया एवं ऊष्मप-तपस्विगण ऊर्ध्वमुख होकर सूर्यमण्डलमें दृष्टिस्थापनपूर्वक तेजपान कर लिये हों उसीसे मानो अल्प रौद्र-सम्पन्न सूर्य क्रमशः छोटे हो जाने लगा; उदयमान सप्तर्षिमण्डलके स्पर्श-परित्याग के इच्छासे ही मानो किरण (चरण) सङ्कुचितकर कपोतके चरणके समान श्वेतरक्तवर्ण कान्तिसमन्वित सूर्य आकाशसे नीचे लटकने लगा पश्चिम समुद्रमें थोड़े थोड़े लाल किरणोंवाले सूर्यमण्डलका प्रतिविम्व ऐसा दीखने लगा मानों क्षीरसमुद्रमें सोये हुए विष्णुके नाभिकमलसे मधुधारा निकल रही हो । दिवसके उस शेष समयमें पक्षिगणके समान सूर्यका किरण-जाल, भूतल और कमलवन परित्यागकर वृक्ष और पर्वतगणके ऊपर भागमें अवस्थान करने लगा, उस समय आश्रमस्थ वृक्षसमूहके ऊपर भागमें रक्तवर्ण सूर्यालोक पतित होनेसे क्षणभर देखनेमें आ रहा था कि सभी जगह मानो तपस्विगण रक्तवर्ण वल्कल लटकाये हों भगवान् सूर्यनारायणके अस्त हो जाने पर पश्चिमसमुद्रके तीरसे प्रवाललताके समान

१ क्वापि 'च' पदं नोपलभ्यते । २ अर्घो दत्तः ३ अम्बरतलं गतः, अस्ताचलगतः । ४ निहित''' । ५ ऊष्मपैः । ६ विरलातपो दिवसः । ७'''सार्थपरिजिहीर्षयैव । ८ चरण ।

टलरागो रविरम्बरतलादलम्बत। आलोहितांशु-जालं जलशयनमध्यगतस्य मधु-रिपोः विगलन्मधुधारमिव नाभि-नलिनं प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्यमण्डलमलक्ष्यत। विहाय धरातलम् उन्मुच्य च कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तरु-शिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिमकुर्वत। आलग्नलोहितातप-च्छेदा मुनिभिरालम्बित-लोहित वल्कला इवाश्रम-तरवः क्षणमदृश्यन्त। अस्तमुपगते च भगवति सहस्रदीधितावपरार्णव-तटात् उल्लसन्ती विद्रुमलतेव पाटला सन्ध्या समदृश्यत। यस्यामावध्यमानध्यानम्, एकदेश-दुह्यमान-होमधेनु-दुग्धधाराध्वनि-मनोहरम् अग्निहोत्र-वेदि-विप्रकीर्यमाणहरित-

आलोहितेति। आलोहितम् ईषद्रक्तवर्णम् अंशुजालं रश्मिपटलं यस्य तत् तादृशम्, विगलन्ती स्रवन्ती मधुधारा परागपङ्क्तिर्यस्मात् तत् तथोक्तम्, ईषद्रक्तविसारिरश्मिपटलस्य सादृश्यबोधनार्थमेतद्विशेषणमित्यवधेयम्, प्रतिमागतं प्रतिविम्बभावेन पतितं जलशयनमध्यगतस्य सलिलशयनमध्यस्थितस्य मधुरिपोः श्रीविष्णोः नाभिनलिनं नाभिकमलमिव अपरार्णवे पश्चिमसागरे सूर्यमण्डलं सूर्यविम्बप्रतिविम्बम् अलक्ष्यत जनैरैक्ष्यत। अत्र 'नाभिनलिनमिव' इत्युपमा।

विहायेति। धरणितलं भूतलं विहाय परित्यज्य, कमलिनीवनानि पद्मवनानि उन्मुच्य त्यक्त्वा तेषां परमप्रेमास्पदत्वेऽपि अस्ताचलगमनसमये समस्तस्यैव परित्याज्यत्वादित्याशयः, एवञ्च तथाविधार्थबोधनार्थमेव विशेषेणाभिधानमिदमिति भावुकाः। शकुनय इव पतत्रिण इव दिवसावसाने सन्ध्याकाले तरुशिखरेषु वृक्षाग्रेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः सूर्यमयूखाः स्थितम् अवस्थानम् अकुर्वत अविदधत इहापि 'शकुनय इव' इत्यत्रोक्तालङ्कारः।

आलग्नेति। आलग्नाः संसक्ताः लोहिता रक्तवर्णा आतपानाम् आलोकानां छेदाः खण्डा येषु तादृशाः, अत एव मुनिभिः तपस्विभिः आलम्बितानि उपरिस्थापितानि लोहितानि लोहितवर्णानि वल्कलानि तरुत्वचः येषु ते तथोक्ता इव अलक्ष्यन्त अदृश्यन्त। इह वल्कलानामुपरिस्थापनस्योत्प्रेक्षणाक्रियोत्प्रेक्षा।

अस्तमिति। भगवति प्रभाववति सहस्रदीधितौ दिनकरे अस्तमुपगते अदृश्यतां प्राप्ते अपरार्णवतटात् पश्चिमसमुद्रतीरात् उल्लसन्ती ऊर्ध्वमागच्छन्ती विद्रुमलतेव लतारूपेण तिर्यगवस्थिता प्रवालपंक्तिः पाटला श्वेतरक्ता सन्ध्या सायंसमयः समदृश्यत समलक्ष्यत। इह विद्रुमलतेवेति उपमा।

यस्यामिति। यस्यां सन्ध्यायाम् आवध्यमानं सायंकृत्यतत्परैः ऋषिभिः विधीयमानं ध्यानं परमेश्वरे एकप्रत्ययसन्ततिर्यस्मिन् तत् तादृशम्। एकदेशे तपोवनस्य कस्मिंश्चिद्भागे दुह्यमानानां होमधेनूनां होमार्थंगवां या दुग्धधाराः पयोधारास्तासां ध्वनितैः शब्दितैः धन्यतरं सत् अतिमनोहरम् अतिसुन्दरम्। अग्निहोत्राणां तत्संज्ञकयागविशेषाणां वेदिषु परिष्कृतचतुरस्रभूमिषु विप्रकीर्यमाणा हवनीस्तरणार्थं विक्षिप्यमाणा हरितः श्यामवर्णाः कुशा दर्भा यत्र तत् तादृशम्। 'अग्निहोत्रं जुहोति'

सन्ध्याराग देखा गया। उस समय सन्ध्यावन्दन करनेमें लगे हुए तपस्विगण ध्यान करते थे, आश्रमके एक भागमें होमधेनु दुहे जाने से दुग्धधाराके शब्द से आश्रम अत्यन्त मनोहर होने लगा। तपस्विगण होम करने के अग्निहोत्र यागके वेदीके ऊपर में हरिद्वर्ण कुश विछाने लगे एवं तपस्विकन्या दिक्पालगणकी पूजाके लिए सभी दिशाओंमें पक्व अन्न की वलि देने लगीं, ध्यान करके हृष्टचित्तसे अवस्थित तपस्विगण देखने लगे जो कोई अग्नि तृणमय क्षेत्रमें भ्रमण कर, लोहितवर्ण लोचनकनीनिका-समन्वित एवं कनकवर्ण होमधेनु जिस प्रकार दिवसावसानमें प्रत्यागमन करती है, उसी प्रकार दिवसके समय किसी अज्ञात देशमें रहकर, लोहितवर्ण नक्षत्रसमन्वित पिङ्गलवर्ण सन्ध्या, दिवस व्यतीत होनेपर पुनः प्रत्यागमन कर रहीथी। थोड़ा ही समयवीता था कि सूर्यका विनाश होनेसे कमलिनी, उसके शोकसे अधीर होकर कमलकलिकारूप कमण्डलु, हंसरूप श्वेतवस्त्र, मृणालरूप शुभ्र यज्ञ

१ अवालम्बत। २ क्वचित् 'मध्ये'ति पाठो नोपलभ्यते। ३ मधुभिदः। ४. इव नलि- ५ आलक्ष्यत, अवैक्ष्यत, अदृक्ष्यत। ६. धरणितलम्, अम्बरतलम्। ७ क्वापि 'च' इति पदं ... ८ तपोवनतरुशिखरेषु। ९ रक्तातपच्छेदाः। रक्तातपगभस्तिच्छेदाः नितधन्य। १० अ- ११ आलोहित। १२ तरवः अशोभन्त, अलक्ष्यन्त। १३ अपरार्णवतलात्। १४ ... १५ आपाटला। १६ ... १७ क्वचित् 'वेदि' पदं नोपलभ्यते।

कुशम् ऋषिकुमारिकाभिरितस्ततो विक्षिप्यमाण-दिग्देवतार्चन-बलि-सिक्थकम् आश्रमपदमभवत्। क्वापि विहृत्य दिवावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्त्तमाना सन्ध्यामुदितैस्तपोधनैरदृश्यत। अचिरप्रोषिते च सवितरि शोक-विधुरा कमल-मुकुल-कमण्डलु-धारिणी हंस-सितदुकूल-परिधाना मृणाल-धवल-यज्ञोपवीतिनी मधुकर-मण्डलाक्षवलयम् उद्वहन्ती कमलिनी दिनपति-समागम-व्रतमिवाचरत्। अपर-सागराम्भसि पतिते दिवसकरे तत्पतन-वेगोत्थितम् अम्भःशीकर-निकरमिव तारागणमम्बरम् अधारयत्। अचिराच्च सिद्ध-कन्यका-विक्षिप्त-सन्ध्यार्चन-कुसुम-शबलमिव तारकितं

तस्या नित्यहोमसम्पादनादित्याशयः। ऋषिकुमारिकाभिः मुनिपुत्रीभिः इतस्ततः चतुर्दिक्षु विक्षिप्यमाणाः स्थाप्यमानाः, दिग्देवतानाम् इन्द्रादीनां दिक्पालानाम् अर्चनाय सपर्यायै बलिसिक्थाः उपायरूपान्नानि यत्र तत्तथोक्तम्। आश्रमपदं मुन्यावासस्थानम्।

क्वापीति। मुदितैः ध्यानप्रसक्तैः तपोधनैः ऋषिभिः, क्वापि शष्पमयक्षेत्रादौ अज्ञातप्रदेशे च, विहृत्य ... विधाय अवस्थानं विधाय च, दिवावसाने दिनशेषे परिवर्त्तमाना प्रत्यागता, लोहिते रक्तवर्णे ... कनीनिके यस्याः सा तादृशी, पक्षे लोहिताः तत्समयेऽपि रक्तसूर्यरश्मिसम्पर्काद्रक्तवर्णाः तारकाः नक्षत्राणि यत्र सा तादृशी, कपिला कनकवर्णा तपोवनधेनुः आश्रमगौरिव कपिला पिङ्गलवर्णा, सन्ध्या सायंसमयः अदृश्यत अलक्ष्यत। अत्र सन्ध्याधेन्वोरुपमानोपमेयभावः सादृश्यात्प्रतीयतेऽतः पूर्णोपमालङ्कारः।

अचिरेति। सवितरि रवौ प्रतापवति नायके च, अचिरप्रोषिते अस्तमुपगते परलोकं गते च, शोकेन विरहेण विधुरा विह्वला, कमलमुकुलमेव पद्मकुड्मलमेव कमण्डलुः, कमलमुकुलमिव कमण्डलुश्च तं धारयतीति सा तादृशी, हंसा मानसौकस एव सितदुकूलं श्वेतवसनं हंसवत् सितदुकूलञ्च परिधानम् अधोंऽशुकं यस्याः सा तादृशी, गतभर्तृकाया रक्तनीलादिवसनपरिधाननिषेधादित्याशयः। मृणालं बिसतन्तुरेव धवलयज्ञोपवीतं श्वेतयज्ञसूत्रं मृणालवत् धवलयज्ञोपवीतञ्च अस्या अस्तीति सा तादृशी। तथा मधुकरा भ्रमराः तेषां मण्डलं समूह एव अक्षवलयं जपमालिका, मधुकरमण्डलवत् अक्षवलयञ्च, तत् उद्वहन्ती धारयन्ती कमलिनी नलिनी, पद्मिनीनामको नारीविशेषश्च, दिनपतेः आदित्यस्य स्वामिनश्च समागमाय ...ः समागमनहेतोः व्रतं नियमविशेषम् आचरदिव अकरोदिव। इह 'आचरदिव' इति क्रियोत्प्रेक्षा, ...ौ कमलिनी-दिनपत्योः स्त्रीपुरुषव्यवहारसमारोपात् समासोक्त्यलङ्कारः, इत्युभयोः परस्परमेकाश्रयानुप्रवेशरूपः सङ्करालङ्कारः। 'हंससितदुकूलपरिधाना' इति विशेषणं ददता विधवाया रक्तनीलादिवस्त्रधारणं निषिद्धमिति व्यञ्जितम्। उक्तञ्च—'पुराकल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते'।

अनेन हि द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च, तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनादिकं भवतीत्यभिप्रेत्य 'मृणालधवलयज्ञोपवीतिनी' इत्युक्तमित्यवधेयम्।

अपरेति। अपरः पश्चिमो यः सागरः समुद्रः तदम्भसि जले पतिते निपतिते दिवसकरे सूर्ये, तत्पतनवेगोत्थितं तत्पतनरभसप्रादुर्भूतम् अम्भःशीकरनिकरमिव पानीयपृषत्समूहमिव अम्बरम् अन्तरिक्षम् अधारयत् दधार। 'अम्भःशीकरनिकरमिव' इति जात्युत्प्रेक्षा।

अचिरादिति। अचिरात् स्वल्पसमयेन सिद्धा गुह्यकाः देवयोनिविशेषा इत्यर्थः 'पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः' इत्यमरः, तेषां याः कन्यकाः पुत्र्यः ताभिर्विक्षिप्तानि विकीर्णानि यानि सन्ध्यार्चनकुसुमानि सायङ्कालीनपूजनप्रसूनानि तैः तादृशैः शबलं कर्बुरितम् अनेकवर्णमिव सत् तारकितम्

...पवीत एवं मधुकररूपी रुद्राक्ष इस प्रकार धारण किया जैसे परदेश गये पति की प्राप्तिके लिये व्रताचरण करने पर ...ई की कमण्डल, सफेद धोती, यज्ञोपवीत और रुद्राक्षकी माला धारण करती है। इसतरह मानो कमलिनी सूर्यके ...गमके लिए व्रताचरण करने लगी। पश्चिम समुद्रके जलमें सूर्यके गिरनेके वेगसे उछलते हुए जलके ठण्डे कणोंके ...मान नक्षत्रसमूह आकाशमें आये। उसी समय नक्षत्रों (तारों) से छाया हुआ आकाश ऐसा दीखने लगा मानो ...कालीन पूजन करनेमें सिद्धकन्याओं द्वारा फेंके गये फूलोंसे चितकबरा हो गया हो। थोड़ी देरमें ही सन्ध्याका

१ क्वचिच्च 'अर्चन' पदं न विद्यते। २ दिवसावसाने। ३ मुनिभिः। ४ क्वचित् 'च' इति पदं ... ५ यज्ञोपवीता। ६ ...मालावलयम्। ७ रवि...। ८ दिनकरे, दिवाकरे। ९ दिवसकरे ... निहित... पवनवेगोत्थितम्, पतङ्गवेगोत्थितम्। १० अम्बरतलम्। ११ सतारं।

वियदराजत। क्षणेन चोन्मुखेन मुनिजनेनोर्ध्व-विप्रकीर्णैः प्रणामाञ्जलि-सलिलैः [1]प्रक्षाल्यमान इवागलदखिलः सन्ध्यारागः।

क्षयमुपगतायाञ्च[2] सन्ध्यायां तद्विनाश-दुःखिता कृष्णाजिनमिव विभावरी तिमिरोद्गमम-भिनवमवहत्।[3] अपहाय मुनि[4]-हृदयानि सर्वमन्यदन्धकारतां तिमिरमनयत्। क्रमेण च रवि-रस्तं गत[5] इत्युदन्तमुपलभ्य जात[6]वैराग्यो धौत-दुकूल-वल्कल-धवलाम्बरः सतारान्तःपुरः, पर्य्यन्तस्थिततनु[7]-तिमिर-तमाल-वन[8]-लेखम्, सप्तर्षिमण्डलाध्युषितम्, अरुन्धतीसञ्चरण-

उदिततारकासमन्वितं वियद् गगनं (कर्तृ) अराजत अशोभत। तथाविधपुष्पाणीव नक्षत्राण्यलक्ष्यन्तेत्याशयः। इह गुणोत्प्रेक्षा।

क्षणेनेति। अत्र समुच्चयार्थकः चः। क्षणेन सद्य एव उन्मुखेन ऊर्ध्वमुखेन मुनिजनेन तपस्विजनेन ऊर्ध्वविप्रकीर्णैः ऊर्ध्वदिशि विक्षिप्तैः प्रणामाञ्जलिसलिलैः इष्टदेवताप्रणामकालीनाञ्जलिपूर्णपानीयैः प्रक्षाल्यमान इव धौतं क्रियमाण इव सन्, अखिलः समग्रः संध्यारागः सायङ्कालीनलौहित्यम् अगलत् अच्युतत्, सायं समयो व्यतीत इत्याशयः। इह 'प्रक्षाल्यमान इव' इति क्रियोत्प्रेक्षा।

क्षयमिति। क्षयं विनाशम् उपगतायां प्राप्तायां सन्ध्यायाम्, तस्याः सन्ध्याया विनाशेन ध्वंसेन दुःखिता शोकातुरा विभावरी रजनी, कृष्णाजिनमिव श्यामवर्णचर्मवत् अभिनवं प्रत्यग्रं तिमिरोद्गमं राज्युदये उत्पन्नमन्धकारसमूहमित्यर्थः उदवहत् धारणमकरोत्। कुटुम्बजनमरणे श्यामलक्ष्मधारणं जनाः कुर्वन्तीति व्यवहारः। इह नीलसाम्यात्तिमिरोद्गमस्य कृष्णाजिनसाम्यमित्युपमा, सन्ध्याविनाशशोककातरेव सतीत्यवगमाद् भावाभिमानिनी प्रतीयमाना गुणोत्प्रेक्षा चेत्यनयोः परस्परमङ्गाङ्गिभावात् सङ्करालङ्कारः।

अपहायेति। तिमिरम् अन्धकारः मुनिहृदयानि तापसचेतांसि अपहाय त्यक्त्वा तेषु शश्वद्ब्रह्मालोकस्य सत्त्वादित्याशयः। अन्यत् सर्वं निखिलं वस्तु अन्धकारतां स्वाच्छादनेनाचाक्षुषताम् अनयत् प्रापयत्। एतेन तत्समये कृष्णपक्षस्य प्रतिपद्द्वितीया वा तिथिरासीदित्यवगम्यते।

क्रमेणेति। रविः दिनकरः कश्चित् अत्यन्तप्रियसखा च, अस्तम् अस्ताचलं पञ्चत्वञ्च गतः प्राप्त इति एवम् उदन्तं वृत्तान्तम् उपलभ्य ज्ञात्वा जातमुत्पन्नं वैराग्यं समस्तविषयेषु वैतृष्ण्यं ममाधीना एवैते नाहमेतेषामधीन इत्यधीनीकरणसंज्ञा यस्य स तादृशः, अन्यत्र तु जातवैरागः समुत्पन्नाधिकरागः। धौतदुकूलवत् प्रक्षालितक्षौमवसनवत् वल्कलं तरुत्वगेव धवलं शुभ्रम् अम्बरं वसनं यस्य सः, पक्षे धौतदुकूलवल्कलवत् धवलं निजप्रभावेण शुभ्रम् अम्बरं गगनं यस्य स तादृशः, तथा सतारं सप्रणवम् अन्तःपुरं हृदयमध्यं यस्य सः ध्याननिष्ठ इत्यर्थः, पक्षे—तारा अश्विन्यादय एव अन्तःपुराणि अन्तःपुरस्थनार्यः तैः सहेति स तादृशः (अमृतदीधितिः) पर्यन्ते प्रान्तभागे स्थिता विद्यमाना तनुतिमिरवत् स्वल्पान्धकारवत् तमालवनानां तापिच्छारण्यानां लेखाः पङ्क्तयो यत्र तं तादृशम्, (आश्रमम्) पक्षे पर्यन्ते स्थितं तनुतिमिरं स्वोदयेन विरलमन्धकारं तमालवनलेखेव यस्मिंस्तत् तादृशम् (गगनतलम्), सप्तानाम् ऋषीणां तत्सदृशानां येषां केषाञ्चित्तपस्विनां मण्डलेन समूहेन अध्युषितम् आश्रितम्, पक्षे—सप्तर्षयो नक्षत्रात्मकमरीच्यप्रभृतयः तेषां गणेन अध्युषितम्। अरुन्धत्या वशिष्ठपत्न्याः अरुन्धतीसंज्ञकताराविशेषस्य

सब रङ्ग इसप्रकार जाता रहा मानो ऊपर मुँह किये हुए तपस्वियोंके द्वारा इष्ट देवता नमस्कारके समय ऊपरको फेंके अञ्जलिके जलसे प्रक्षालित हो गया हो।

सन्ध्या व्यतीत होनेके बाद उसके विनाशसे कष्ट पाकर ही मानो रात्रिने कृष्णवर्ण मृगचर्मके समान नूतन अन्धकार धारण किया। वह अन्धकार तपस्वियोंके हृदयको छोड़कर सब आश्रममें बिलकुल व्याप्त हो गया। सूक्ष्म तिमिर-तमाल-वन-लेखा जिसके पर्यन्त भागमें हैं (आश्रममें सूक्ष्म अन्धकारके समान तमालके वृक्षोंकी कतारें थीं; आकाशमें अन्धकाररूपी तमाल वृक्ष थे), सप्तर्षि-मण्डलका जिसमें वास है (आश्रममें सप्तर्षि, आकाशमें सात तारे) अरुन्धतीके चरण-स्पर्शसे जो पवित्र है (आश्रममें वशिष्ठपत्नी, आकाशमें अरुन्धती नामका तारा), आषाढ जिसमें

१ क्षाल्यमानः। २ उपगतायां सन्ध्यायाम्, उपागतायां सन्ध्यायाम्। ३ शापदग्धमिव भयाद्विहायेव। ४ मुनिजनहृदयानि। ५ उपगतः, उपागतः। ६ समुपजात। ७ अन्तःपुरपर्य्यन्तस्थिततनु। ८ वृक्ष।

पवित्रम्[1], उपहिताषाढम्, आलक्ष्यमाणमूलम्[2], एकान्तस्थितचारुतारकमृगम्[3] अमरलोकाश्रममिव गगनतलम्[4] अमृत-दीधितिरध्यतिष्ठत् । चन्द्राभरणभृतस्तारका कपाल-शकलालङ्कृतादम्बरतलात् त्र्यम्बकोत्तमाङ्गादिव गङ्गा सागरम्[5] आपूरयन्ती हंस-धवला धरण्यामपतज्ज्योत्स्ना । हिमकर-सरसि विकच-पुण्डरीक-सिते चन्द्रिका-जलपान-लोभादवतीर्णो निश्चलमूर्त्तिरमृतपङ्क-लग्न इवादृश्यत[6] हरिणः । तिमिर-जलधर-समयापगमानन्तरम्[7] अभिनव-सित-सिन्धु[8]-

च सञ्चरणेन परिभ्रमणेन पवित्रं पूतम् । उपहिता ऋषिभिः स्थापिता आषाढाः पलाशदण्डा यत्र तं तादृशम्, 'पालाशो दण्ड आषाढः' इत्यभिधानचिन्तामणिः, पक्षे—उपहिते सन्निहिते आषाढे पूर्वाषाढोत्तराषाढे नक्षत्रे यत्र तत् तादृशम् । आलक्ष्यमाणानि समन्ताद्विलोक्यमानानि मूलानि तपस्विनां भक्ष्यभूतमूलानि यस्मिन् तं तादृशम्, पक्षे आलक्ष्यमाणं समन्ताद्दृश्यमानं मूले मूलसंज्ञकनक्षत्रं यत्र तत्तादृशम् । तथा एकान्ते रहसि स्थिते चारु मनोहरे तारके कनीनिके येषां ते तादृशाः, एकान्ते एकभागे स्थिताः चारुतारका मृगा यत्र तं तादृशम्, पक्षे—एकान्ते स्थितः चारुतारकं मनोहरनक्षत्रं मृगो मृगशिरा यत्र तत् तादृशम् । अमरलोके देवलोके य आश्रमो वशिष्ठप्रभृतिमुनीनामावासस्थानं तमिव गगनतलम् आकाशतलम् अमृतदीधितिः चन्द्रः अध्यतिष्ठत् अधितस्थौ, प्राणतुल्यात्मीयजननिधनोदन्तं प्राप्यापर आत्मीयजन इवेत्याशयः, तेनेहाश्रमेण सहाकाशस्य साम्यं वाच्यं तथाविधात्मीयजनेन सहामृतदीधितेः साम्यन्तु प्रतीयमानमित्येकदेशविवर्त्तिन्युपमा श्लेषालङ्कारेण साङ्कर्यमुपैति ।

चन्द्राभरणेति । सागरं समुद्रम् आपूरयन्ती निजोदयेन निजसलिलेन च परिपूर्णं विदधती, चन्द्रोदयेन सागराणां पूरणं प्रसिद्धम्, गङ्गापक्षे हि आपूरयन्तीत्यस्य आपूरयिष्यन्तीत्यर्थः, भविष्यतिसामीप्ये च वर्त्तमानत्वमिहेत्यवगन्तव्यम् । हंसवद्धवला हंसेन धवला शुभ्रा च ज्योत्स्ना चन्द्रिका, चन्द्र एवाभरणं भूषणं तद्बिभर्त्ति धारयतीति तस्मात्तादृशात्, तारका नक्षत्राणि कपालशकलानीव मनुष्यमस्तकास्थिखण्डानीव तैः अलङ्कृतात् भूषितात् अम्बरतलात् गगनतलात् त्र्यम्बकस्य महेश्वरस्य उत्तमाङ्गात् शिरसः गङ्गा जाह्नवी इव धरण्यां पृथिव्याम् अपतत् पपात । इह पूर्णोपमा ।

हिमकरेति । विकचानि प्रस्फुटानि यानि पुण्डरीकाणि सिताम्भोजानि तद्वत् सिते शुभ्रवर्णे, तैः सिते च, हिमकरश्चन्द्र एव सरः कासारः तत्र तथोक्ते, चन्द्रिका कौमुदी एव जलं सलिलं तस्य पानलोभात् अवतीर्णः मध्यप्रविष्टः, हरिणः चन्द्राङ्कवृत्तिलक्ष्मरूपो मृगः, अमृतं चन्द्रपीयूषमेव पङ्कः कर्दमः तत्र लग्नोऽत्यन्तसंसक्त इव सन् निश्चलमूर्त्तिः निष्पन्दस्वरूपः अलक्ष्यत जनैरदृश्यत, अन्योऽपि हरिणः सरोवरे जलं पातुमवतीर्णः कर्दममग्नो निष्पन्दस्तिष्ठति । इह कौमुद्याः पानसम्भवाभावात् पीयूषस्य तरलतया तत्र त[illegible]विधलग्नत्वसम्भवाभावाच्च स्वाङ्गरूपकमलङ्कारः 'अमृतपङ्कलग्न इव' इति क्रियोत्प्रेक्षा चेत्यनयोः परस्परमङ्गाङ्गिभावात् [illegible]रालङ्कारः ।

तिमिरेति । अ[illegible] [illegible]वानि प्रत्यग्राणि यानि सितानि शुभ्राणि सिन्धुवारकुसुमानि निर्गुण्डीप्रसूनानि तद्वत् पाण्डुरैः शुभ्रैः, [illegible]ग अर्णवेभ्यः सागरेभ्यः आगतैः प्राप्तैः पक्षे सागरानपि प्राप्तैः, हंसैरिव चन्द्रस्य पादैः

उपस्थित है (आश्रममें पलाश-दण्ड; आकाशमें पूर्वाषाढ नक्षत्र), मूल जिसमें दृष्ट आता है (आश्रममें जड़ें, आकाशमें मूलनक्षत्र), और जिसके एक स्थानमें चारु तारक मृग हैं (आश्रममें सुन्दर आँखोंवाले हरिण, आकाशमें सुन्दर मृगशिर-नक्षत्र), ऐसे अमरलोकके आश्रमके समान आकाशमें, चन्द्रमाने सूर्यका अस्त हुआ सुन, वैराग्य ग्रहण कर (संसारसे विरक्ति; विशेष राग (रक्तता), धुले हुए दुकूलरूपी वल्कलके श्वेतवस्त्रसे युक्त, धुले हुए दुकूलके समान धवल आकाशसे युक्त, हृदयको ब्रह्ममें लीन करके, अश्विन्यादि ताराओंके साथ विद्यमान अन्तःपुरसे युक्त प्रवेश किया । पूर्वसमयमें समुद्रपूरण विधायिनी एवं हंसगणके भ्रमणसे शुभ्रवर्णा गङ्गा जिसप्रकार चन्द्रकलाभूषित और नरकपालशोभित महादेवके मस्तकसे पृथिवीमें गिरी थी, उसी प्रकार समुद्रको पूर्ण करनेवाली और हंसके समान शुभ्रवर्णा चन्द्रिका (चाँदनी) चन्द्र और नक्षत्रगणसे सुशोभित आकाशसे पृथिवीमें छिटकने लगी । चन्द्रमाके बिम्बमें हरिण ऐसा दीखने लगा मानो विकसित श्वेत कमलोंके सरोवरमें जल पीनेके लोभसे उतरा हुआ निश्चल हरिण कीचड़में फँस गया हो ऐसा लोगोंसे देखा जाने लगा । अन्धकार दूर हो जानेके बाद तालाबमें चन्द्रमाकी किरणें

१ पवित्रितम्, पूतम् । २ उपलक्ष्यमाण । ३ तारकामृगं । ४ क्वापि तलं इति पदं नास्ति ।
५ सागरान् । ६ आलक्ष्यत । ७ समयानन्तरम् । ८ सिन्दुवार ।

वार-कुसुम-पाण्डुरै[1]रर्णवागतैरगाह्य[2]न्त हंसैरिव कुमुद-सरांसि चन्द्रपादैः । विगलित-सकलोदयरागं रजनिकर-बिम्बमम्बरापगावगाह-धौत-सिन्दूरमैरावत-कुम्भस्थलमिव तत्-क्षणमलक्ष्यत । शनैः शनैश्च दूरोदिते भगवति हिमस्रुति[3] सुधा-धूलि-पटलेनेव धवलीकृते[4] चन्द्रातपेन जगति, अवश्यायजलविन्दु[5]मन्दगतिषु विघटमान-कुमुदवन[6]-कषाय-परिमलेषु समुपोढ-निद्रा-भरालस-तारकैरन्योन्य-ग्रथित-पक्ष्मपुटैरारब्ध-रोमन्थ-मन्थर-मुखैः सुखा-सीनैराश्रममृगैरभिनन्दितागमनेषु प्रवह[7]त्सु निशामुख-समीर[8]णेषु, अर्द्धयाममात्रावखण्डि-तायां विभावर्य्याम्, हारीतः कृताहारं मामादाय सर्वैस्तैः सह[9] मुनिभिः उपसृत्य चन्द्रातपोद्भा-

रश्मिभिः तिमिरम् अन्धकारो जलधरसमयः प्रावृट्काल इव श्यामत्वसादृश्यात् तस्य अपगमानन्तरं निवृ-त्त्यनन्तरं कुमुदसरांसि कैरवोपलक्षिततटाकानि अगाह्यन्त आलोड्यन्त अस्पृश्यन्त च । प्रावृट्काले हंसा हि समुद्रादागत्य सरोवरे विचरन्तीति प्रकृतिः। इह 'हंसैरिवे'त्युपमा, 'अभिनवसितसिन्धुवारकुसुमपाण्डुरैः' इत्यत्र लुप्तोपमा चेति सङ्कीर्णोपमा ।

विगलितेति । विगलितः यथाक्रममूर्ध्वगमनाद्विलयं प्राप्तः, सकलः समस्त उदयराग उदयकालीनं लौहित्यं यस्य तत्तादृशम्, रजनिकरबिम्बं चन्द्रमण्डलम् अम्बरापगा व्योमनदी मन्दाकिनी आकाशरूपा-पगा च तत्र अवगाहेन स्नानेन धौतं प्रक्षालितं सिन्दूरं नागजं यस्य तत्तादृशम्, ऐरावतस्य शुभ्रवर्णदेवे-न्द्रगजस्य कुम्भस्थलमिव तत्क्षणं तत्कालं जनैः अलक्ष्यत अदृश्यत । शुभ्रत्वसादृश्याद्धंसचन्द्रपादयोरुपमा-नोपमेयभावः, अतिवर्त्तुलत्वसादृश्येन चन्द्रबिम्बस्य कुम्भस्थलोपमानत्वम्, इति स्फुटमेवोपमालङ्कारः।

शनैरिति । एतादृशसमये हारीतः कृताहारं विहितभोजनं मां वैशम्पायनम् आदाय गृहीत्वा पितरं जाबालिम् अवोचत् अब्रवीत् इति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः । अपि चेति चार्थः । तथा च शनैःशनैः मन्दं मन्दं भगवति माहात्म्यवति हिमस्रुति प्रालेयवर्षिणि चन्द्रे दूरोदिते दूरमुदयं प्राप्ते सति, तथा जगति संसारे सुधाया धूलिपटलेनेव पांसुसमूहेनेव चन्द्रातपेन शशिन आलोकेन धवलीकृते सति श्वेतीकृते सति, अवश्यायजलबिन्दुभिः हिमसलिलविन्दुवहनैः मन्दा मन्थरा गतिर्गमनं येषां तेषु तादृशेषु, एवमादीनि सप्तम्यन्तानि पदानि अग्रिमस्य 'निशामुखसमीरणेषु' इत्यस्य विशेषणानि बोध्यानि। विघटमानस्य विकासं प्राप्यमाणस्य कुमुदवनस्य कैरववनस्य कषायः घ्राणतर्पणः परिमलो विमर्दगन्धो येषु तादृशेषु, तथा समुपोढेन उपस्थितेन निद्राभरेण प्रमीलातिशयेन अलसा मन्थरा निश्चेष्टा इत्यर्थः तारका कनीनिका येषां तैः तादृशैः, अन्योन्यं परस्परं ग्रथितानि नेत्रमुद्रणेन दृढसंसक्तानि पक्ष्मपुटानि नयनलोमानि येषां तैः तादृशैः, तथा आरब्धेषु प्रथममुपक्रान्तेषु रोमन्थेषु चर्वितचर्वणेषु मन्थराणि प्रमीलावेशादलसानि मुखानि वदनानि येषां तैस्तादृशैः किञ्चित्किञ्चित्कालं विश्रम्य रोमन्थं विदधद्भिरित्यर्थः, सुखासीनैः यदृच्छयोपविष्टैः आश्रममृगैः तपोवनहरिणैः अभिनन्दितं स्पर्शसुखप्राप्त्या श्लाघितम् आगमनं येषां तेषु तादृशेषु, निशा-मुखसमीरणेषु प्रदोषकालीनपवनेषु, प्रवहत्सु सञ्चलत्सु सत्सु तथा विभावर्यां रजन्याम्, अर्धयाममात्रेण अर्धप्रहरमात्रेण अवखण्डितायां न्यूनत्वं प्राप्तायां सत्यां प्रहरचतुष्टयेऽतिक्रान्त इत्यर्थः, तैस्तैः सर्वैः निखिलैः मुनिभिस्तपस्विभिः सह उपसृत्य आगत्य (हारीतः) चन्द्रातपेन शशिज्योत्स्नया उद्भासिते विशेषेण

ऐसी शोभायमान हुई मानो वर्षा ऋतुके बाद अभिनव सिन्धुवार (निर्गुण्डी) पुष्पके समान श्वेत हंस आकाशसे उतरकर कुमुद सरोवरमें तैरते हों । चन्द्रमाके बिम्बमेंसे उदयकी सब रक्तिमा जाती रही उस समय वह ऐसा दीखने लगा मानो आकाशगङ्गामें स्नान करनेसे धुले हुए सिन्दूर वाले ऐरावत हस्तीका कुम्भस्थल हो ।

धीरे धीरे चन्द्रमाका अत्यधिक उदय हो जानेसे सुधासंज्ञक (चूना) विलेपन द्रव्यके चूर्णके समान चाँदनीसे समस्त संसार सफेद हो गया, विकसित कुमुद वनके सुगन्धको लाता हुआ रातके प्रथम प्रहरका वायु, ओसकी बूँदोंके कारण, धीरे धीरे बहने लगा; सुखसे बैठे, धीरे धीरे मुंह हिलाकर चर्वित चर्वण करते हुए आश्रमके हरिण जिनकी आँखें नींदसे भारी थी और पलक बंद थे–वायुका अभिनन्दन करने लगे; और केवल अर्धप्रहर रात बीती, तब हारीत भोजन कर चुकने के बाद, मुझे लेकर मुनियोंके साथ अपने पिता जाबालिके पास जा पहुँचे । उनके

१ गगनागतैः । २ अवागाह्यन्त, अगृह्यन्त । ३ हिमततिस्रुति, हिमदीधितौ । ४ 'धवलीकृते जगति' इत्येव पाठः । ५ विन्दु...नमन्दः विन्दुपतनशीतेषुमन्दः । ६ ...खण्ड... । ७ प्रवात्सु । ८ समीरेषु । ९ तैर्महामुनिभिः ।

सिनि तुपोवनैकदेशे वेत्रासने सुखोपविष्टम् अनतिदूरवर्त्तिना जालपादनाम्ना शिष्येण दर्भपवित्र-धवित्र-पाणिना मन्दमन्दम् उपवीज्यमानं पितरमवोचत् 'तात ! सकलेयमाश्चर्य्यश्रवण-कुतूहलाकलित-हृदया समुपस्थिता तापसपरिषदाबद्धमण्डला प्रतीक्षते व्यपनीत-श्रमश्च कुतोऽयं पतत्रिपोतः, तदावेद्यतां किमनेन कृतमन्यस्मिन् जन्मनि को वायमभूद्भविष्यति वे'ति। एवमुक्तस्तु स महामुनिरग्रतः स्थितं मामवलोक्य तांश्च सर्वानेकाग्रान् श्रवण-तत्परान् मुनीन् बुद्ध्वा शनैः शनैरब्रवीत्—'श्रूयतां यदि कुतूहलम्'।'

इति महाकविबाणभट्टविरचितायां कादम्बर्यां कथामुखविवरणम्।

प्रकाशिते, तपोवनैकदेशे मुनिस्थानान्यतरप्रदेशे वेत्रासने वेतसरचितविष्टरे सुखोपविष्टं सुखपूर्वकमासीनम्, अनतिदूरवर्त्तिना नातिनिकटस्थायिना, दर्भवत् कुशवत् पवित्रं पूतम्, धवित्रं मृगचर्मरचितं व्यजनं पाणौ हस्ते यस्य तेन तादृशेन, 'जालपाद' इति नाम यस्य तेन तथोक्तेन शिष्येण छात्रेण मन्दमन्दम् शनैः शनैः उपवीज्यमानम् आन्दोल्यमानं (पितरम् अवोचत्)।

तातेति। हे तात पितः ! सकला समस्ता इयं प्रत्यक्षरूपेण दृश्यमाना, आश्चर्यस्य अद्भुतपदार्थस्य यच्छ्रवणकुतूहलं यदाकर्णनचित्तवृत्तिविशेषः तेन आकलितं व्याप्तं हृदयं मानसं यस्याः सा तादृशी, तथा आबद्धं विहितं मण्डलं वर्तुलरूपपङ्क्तिभावेनावस्थानं यया सा तथोक्ता, समुपस्थिता समागता तापसपरिषत् मुनिसभा प्रतीक्षते भवद्वचनारम्भमाकांक्षते भवद्विलम्बेनैव विलम्ब इत्याशयः, अयञ्च पतत्रिपोतः शुकशावकः, व्यपनीतः भोजनानुष्ठापनादिना दूरीकृतः श्रमः खेदो यस्य स तादृशः कुतो विहितः। यदनेन शुकशावकेन कृतम् अनुष्ठितं तदावेद्यतां निवेद्यतां 'अस्माकं' इति शेषः। अन्यस्मिञ्जन्मनि एतज्जन्मापेक्षयापरस्मिन् भवे अयं कः अभूत् आसीत्, 'अग्रे च को भविष्यति ?'। एवम् इत्थम् उक्तोऽभिहितस्तु महामुनिः जाबालिः अग्रतः पुरतः स्थितम् आसीनं मां वैशम्पायनम् अवलोक्य दृष्ट्वा एकाग्रान् एकतानान् सर्वान् निखिलान् श्रवणपरान् आकर्णनतत्परान् तान् मुनीन् ऋषीन् बुद्ध्वा अवगम्य च शनैः शनैः अतिवृद्धत्वात् कृशत्वाच्च मन्दं मन्दम् अब्रवीत् अगादीत्—'यदि चेत् कौतूहलम् आश्चर्यं तर्हि श्रूयतां निशम्यताम्।'

इति श्रीकृष्णमोहनशास्त्रिविरचितायां 'चन्द्रकला'नामिकायां टीकायां कथामुखविवरणम्।

पिता चन्द्रिकासे चमकते तपोवनके एकभागमें बेंतके आसन पर बैठे थे। थोड़ी दूरमें खड़ा जालपाद नामका एक शिष्य दर्भका पवित्र पंखा हाथमें लेकर धीरे धीरे उनको वायु सञ्चालन कर रहा था। ऐसी दशामें हारीत उनसे कहने लगे—'पिताजी ! समस्त मुनियोंका हृदय आश्चर्यजनक वृत्तान्त सुननेके कुतूहलसे व्याकुल है और आपके पास मण्डल बाँधकर कथारम्भकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। इधर इस तोतेके बच्चेकी थकावट भी अब जाती रही है, इसलिए आप कहिये कि इसने पहले जन्ममें क्या किया था ? यह कौन था और अब जन्मान्तरमें क्या होगा ?' हारीत जब इस प्रकार बोल चुके तब मुझे आगे खड़ा देखकर और सब तपस्वियोंको एकाग्र चित्तसे सुननेमें तत्पर हुआ जान वे धीरे धीरे बोले—'यदि आपलोगोंको कौतूहल उत्पन्न हुआ है तो सुनिये ?'

इस प्रकार पं० श्रीकृष्णमोहनशास्त्रि-विरचित 'विद्योतिनी' नामक अनुवादमें कथामुख समाप्त हुआ।

---

१ वेत्रासनोपविष्टम्। २ ...तिदूरवर्त्तिना...। ३ क्वचित् 'धवित्र' इति पदं नास्ति। ४ मन्दम्। ...च। ६ हे तात !। ७ ...आकुलितहृदया। ८ प्रतीक्ष्यते। ९ यदनेन कृतमपरस्मिन् जन्मनि ...भूद्भविष्यति चेति। १० इत्येवमुक्तस्तु। ११ अग्रस्थितम्। १२ क्वचित् 'तत' इति पदं नास्ति। ...तूहलम्।



कथासुखं समाप्तम्

